❀ पुस्तक : समीक्षण ध्यान: दर्शन और साधना

❀ लेखक : श्री शान्ति मुनि

❀ प्रथम अनावरण : १९९०

❀ प्रकाशक : श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ,
समता भवन, बीकानेर (राज.) ३३४००१

❀ अर्थ सौजन्य : श्री अमोलकचन्द जी मोतीलाल जी दुगड़

❀ मुद्रक : जैन आर्ट प्रेस,
समता भवन, बीकानेर

मूल्य :



ध्यान की सर्वाधिक
मौलिक एवं अप्रतिम
विधा
समीक्षण ध्यान
के
उद्घाता
समता साधना के
जाज्वल्यमान प्रतीक
'आचार्य श्री नानेश'
के
ध्यान योगी महनीय
व्यक्तित्व को

—शांति मुनि

प्रकाशकीय

जैन धर्म की साधना पद्धति मे ध्यान योग का विशेष महत्व है। 'योग' शब्द आत्मविद्या का सूचक है तो ध्यान योग अन्तर प्रवेश का साधन। ध्यान चित्त की निर्विकल्प अवस्था है जिसमें चित्त की अनन्त किन्तु सुषुप्त ऊर्जा को जाग्रत कर बहिर्मुखी प्रवाह को रोका जाता है। इस स्थिति मे सम्पूर्ण सकल्प-विकल्प निष्क्रिय हो जाते है और आत्मा स्थिर दीपशिखा वत शुद्ध उपयोग में स्थित हो जाती है। समीक्षण ध्यान अन्तर-जागृति एव आत्म साक्षात्कार की अनूठी एवं परिष्कृत प्रक्रिया है। इसे आत्मलक्षी अन्तर्यात्रा का सोपान माना जा सकता है क्योकि यह आत्मरमणता की गहराई मे पैठने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एव सर्वोपयोगी साधन है। निस्सदेह इससे वृत्तियो का संशोधन, इन्द्रियो का सयमन एव कषायो का शमन होता है तथा चित्त की निर्मलता व आत्मा की समता विकसित होती है।

आत्मा वस्तुत परमात्मा का ही आवृत या आच्छन्न रूप है परन्तु कर्मावरण से ऊर्ध्वगमन के सहज स्वभाव से च्युत हो जाती है। आत्मा की इस ऊर्ध्वगामिता के केन्द्र मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान चित्त का है, जिसकी वृतिया मानव को ऊर्ध्वगामी भी बना सकती है या भ्रमित भी कर सकती है। अत पातंजल योगसूत्र मे चित्तवृत्ति के निरोध को ही (योगश्चित्त वृत्ति निरोध) योग माना गया है।

जैन-साधना मे योग एव मुख्यत ध्यान योग की महता प्रारम्भ से ही स्वीकार की गई है। भद्रबाहु स्वामी ने सर्व सवर योग ध्यान एव महाप्राण ध्यान की साधना की थी तो आचार्य कुन्दकुन्द, उमास्वाति, जिनभद्रगणि, देवनंदि आदि ने ध्यान योग का विशद वर्णन किया। जैन योग को अभिनव विधा के रूप मे प्रस्तुत कर आठवी शताब्दी मे आचार्य हरिभद्र सूरि ने नवीन आयाम दिया। आपने योग बिन्दु, योगशतक, योग दृष्टि समुच्चय एव योग विंशिका नामक ग्रन्थ चतुष्टय का प्रणयन कर महत्वपूर्ण भूमिका निर्मित की। उन्होने योग को उत्तम कल्पवृक्ष एव उत्कृष्ट चिंतामणि

रत्न मानकर इसे जीवन की परम सफलता—मुक्ति का अनन्य हेतु बताया है। तदनन्तर आचार्य जिनसेन व शुभचन्द्र ने योगदान किया। इसी क्रम मे सोमदेव सूरि, हेमचन्द्राचार्य एवं पंडित आशाधर ने क्रमशः योगसार, योग शास्त्र एवं अध्यात्म रहस्य ग्रन्थों में योग एवं ध्यान का सूक्ष्म विवेचन किया है। विनय विजय जी एवं यशोविजय जी का भी इस दिशा मे महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

इसी शृखला में इस शताब्दी के महान अध्यात्म योगी, समीक्षण ध्यान के सूत्रधार आचार्य श्री नानेश का नाम स्तुत्य हैं, जिन्होंने जिनशासन की प्रभावना हेतु अथक प्रयास किये हैं। स्वविश्लेषण की इस 'समीक्षण' पद्धति में आत्म चेतना का साक्ष्य कराती है तो हमारे अन्तस की कटुता, वक्रता एवं ग्रन्थिया भी नष्ट करती है। भौतिकता की चकाचौंध में मानव आज आत्मानुभूति तक नही कर पा रहा है। सुख का अथाह स्रोत हमारे भीतर ही विद्यमान है। परन्तु वर्हिमुखी प्रवृत्ति के कारण हम अशान्ति एव तनाव के दौराहे पर भटक कर अटक गये हैं।

मानव आज स्वयं मे भीड और भीड में एकाकी है परन्तु ध्यान योग की इस मौलिक प्रक्रिया से जुड़कर वह आत्म विश्लेषण द्वारा कलुषितता दूर कर आत्म प्रकाश पा सकता है। हमारी अन्तर्दृष्टि का जागरण अस्तित्व बोध कर अह के विसर्जन से ही होता है। शरीर का अभिमान व ममत्व छूट जाने से तनाव कम होता है और चित्त की स्थिरता बढती है। परिणामस्वरूप हम ध्यान में प्रवृत होकर वर्हिमुखी प्रवृत्तियो से हटते हैं ओर आत्मस्थ होते हैं। यही आत्मदर्शन है और आत्मरमणता भी।

प्रस्तुत कृति मे आचार्य श्री के सुयोग्य शिष्य विद्वद्वर्य श्री शान्ति मुनिजी ने समीक्षण ध्यान के दर्शन एव साधना पक्षो का विस्तृत विवेचन किया है। इसे दो खन्डो मे विभक्त कर सैद्धान्तिक स्वरूप को प्रथम खण्ड मे रूपायित किया है तो द्वितीय खण्ड मे प्रयोगात्मक विधियां समाविष्ट हैं। ध्यान के भेद-प्रभेद, विधियां, अनित्यत्व, अशरणत्व, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व भावनाओ, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक, वोधि-बीज एवं धर्म तत्व का समीक्षण प्रस्तुत कर पूर्व पीठिका

प्रस्तुत की है। तदनन्तर समीक्षण ध्यान को द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के आयामो से स्पष्ट करते हुए मैत्री, प्रमोद, करुणा एवं मध्यस्थ भावनाओं की भूमिका का निरूपण किया गया है। प्राणायाम व कषायों की समीक्षा कर हमें स्व-रूप परिलक्षित होता है तथा गुणस्थान आरोहण की समीक्षा हमें आत्मज्योति से मिलाती है। बोधि-समीक्षण ही साधना व धर्म तत्व का मूलाधार सिद्ध कर मुनि श्री ने साधकों का मार्गदर्शन किया है। इस अद्वितीय एव विशिष्ट कृति के लिए संघ मुनिश्री के प्रति आभारी एवं श्रद्धानत है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में देशनोक निवासी श्रीमान् अमोलकचन्द जी मोतीलाल जी दुगड द्वारा आर्थिक सहयोग प्रदान किया गया है। श्री मोतीलाल जी धर्मनिष्ठ, उदार एवं सरलमना है। पूरे परिवार की आचार्य श्री नानेश एवं उनके आज्ञानुवर्त्ती सत-सती वर्ग के प्रति अटूट श्रद्धा है। आपके पुत्र श्री सुन्दरलाल जी दुगड़ वर्तमान में श्री अ. भा. सा. जैन सघ के उपाध्यक्ष पद पर सुशोभित होकर समर्पित भाव से अपनी सेवाए दे रहे हैं। एतदर्थ अर्थ सौजन्य के लिए दुगड़ परिवार के प्रति आभार।

सघ की साहित्य समिति का संयोजक बनाकर मुझे सेवा का अवसर प्रदान किया गया एतदर्थ आभारी हूं। पूरा विश्वास है कि साहित्य समिति स्तरीय सत्-साहित्य सुलभ मूल्य पर प्रकाशित कर कीर्तिमानीय कार्य करती रहेगी।

बीकानेर
१६ फरवरी, १९९२

भवदीय

भंवरलाल बैद	**चम्पालाल डागा**	**पीरदान पारख**
अध्यक्ष	मंत्री	संयोजक
श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर		साहित्य समिति

गुमानमल चोरड़िया **सरदारमल कांकरिया** **धनराज बेताला**
डॉ. नरेन्द्र भानावत **मोहनलाल मूथा** **केशरीचन्द सेठिया**

सदस्यगण साहित्य समिति

अन्तर्दर्शन

भारतीय सस्कृति आत्मा की सस्कृति है। भारतीय दर्शन आत्मा के दर्शन हैं। भारत की समस्त सास्कृतिक सम्पदा आत्मा को केन्द्रित करके ही स्थिर है और भारत के सभी दर्शन भी अपने तर्क-वितर्कों की व्यूह रचना में आत्मा की ही परिक्रमा करते हुए परिलक्षित होते हैं।

आत्मा के स्वरूप, उसके स्थायित्व, उसकी व्याख्या आदि के विषय मे पर्याप्त मतभेदो के होते हुए भी आत्मा के अस्तित्व को सभी दर्शनो ने निर्विवाद रूप से स्वीकार किया हैं।

बौद्ध जैसे क्षणवादी दर्शन ने आत्मा को क्षणस्थायी स्वीकार किया है तो सांख्य जैसे नित्यत्ववादी दर्शन ने आत्मा को कूटस्थनित्य माना है। जैन तत्त्व दर्शन ने उसे आपेक्षिक दृष्टि से स्वदेह परिमाण परिणामी नित्य स्वीकार किया है, तो नैयायिक वैशेषिक दर्शनो ने उसे विभुव्यापक रूप प्रदान किया है। चार्वाक जैसे नास्तिक वादी दर्शन ने आत्मा के जन्म-जन्मातर को अस्वीकार किया है, तो प्राय· अन्य सभी दर्शनो ने किसी न किसी रूप मे पुनर्जन्म की सत्ता को अनिवार्य माना है।

इस प्रकार आत्मा के स्वरूप एवं उसकी व्याख्या के सम्बन्ध मे मत वैविध्य होते हुए भी आत्मा का अस्तित्व, चाहे स्वतन्त्र रूप मे मानें या पञ्च तत्त्व से निर्मित के रूप मे, सभी दर्शन स्वीकार करते हैं।

इस मान्यता भेद के होने पर भी जितने भी पुनर्जन्मवादी दर्शन हैं, उन्होंने मोक्षतत्त्व को भी स्वीकार किया है। अथवा हम यो कह सकते हैं कि प्राय. सभी आस्तिकवादी दर्शनो का मूल ही मोक्ष अथवा निर्वाण तत्त्व है। सभी अध्यात्मवादी दर्शनो का प्रतिपाद्य आत्मा और उसके परिनिर्वाण रूप केन्द्र की ही परिक्रमा करता हुआ दिखाई देता है।

यह एक कटु सत्य है कि विभिन्न दर्शनो ने आत्मा और उसकी मुक्ति के स्वरूप को तर्क-वितर्कों के महाजाल में उलझा-पुलझा दिया

है और इसी कारण आत्मा के स्वरूप के विश्लेषण मैं मत भिन्नताओ के समान ही मुक्ति और उसकी उपलब्धि के मार्गों के स्वरूप का भी कोई एक रूप निश्चित नहीं हो सका है। जितने दर्शन उतनी ही साधना विधियो का आविष्कार होता गया। जितने दर्शन उतने ही प्रकार की मोक्ष की कल्पनाएं बनती चली गईं।

किन्तु इतना मत वैविध्य होने पर भी इस विषय मे सभी दर्शन निर्विवाद रूप से एक मत हैं कि मुक्ति साधना का एक प्रमुख एवं अनिवार्य अग ध्यान-योग है। न्याय, वैशेषिक, साख्य योग—पातञ्जलि, बौद्ध आदि सभी दर्शनो ने ध्यान-योग को मुक्ति साधना का प्रमुख अंग माना है। महावीर दर्शन की तो पूर्ण आधार शिला ही ध्यान-योग है।

ध्यान साधना की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महावीर दर्शन मे कहा गया है—

अहो ! अनन्त वीर्योऽयमात्मा विश्व प्रकाशकः।
त्रैलोक्यं चालयत्येव, ध्यान शक्ति प्रभावत.॥

यह आत्मा अनन्त वीर्य—शक्ति सम्पन्न एव विश्व के अणु-अणु का प्रकाशक है। जब इसमे ध्यान ऊर्जा का जागरण हो जाता है तो यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चलित कर सकता है।

वास्तव में ध्यान की शक्ति अबूझ है। क्योकि ध्यान का सामान्य अर्थ है चित्तवृत्तियो के भटकाव को अवरूद्ध करके उन्हें किसी एक तत्त्व पर केन्द्रित कर देना। यह वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि बिखरी हुई सूर्य किरणें—सौर ऊर्जा अकिञ्चित् कर होती है, किन्तु वे ही किसी आइग्लास पर केन्द्रित होकर अग्नि उत्पन्न कर देती है।

ठीक यही स्थिति चैतन्य ऊर्जा की है। जब ध्यान के द्वारा ऊर्जा का जागरण हो जाता है तो उसके लिये इस विश्व में कोई भी असम्भव कार्य नही बचता है।

ध्यान—ऊर्जा का इतना अचित्त्य प्रभाव होने पर भी ध्यान साधना का हो पाना सुकर नही है। जीवन इतना जटिल हो गया है कि उसे सहज बनाना कठिन हो गया है। तदुपरान्त भी विभिन्न साधना-उपासना विधियो को ध्यान सज्ञा से अभिहित किया है। किसी

ने प्रार्थना को ध्यान माना, तो किसी ने भक्ति साधना को, किसी ने इष्ट के प्रति तन्मयता को, तो किसी ने देहातीत अवस्था को। यों ध्यान को विभिन्न रूपो में निरूपित एवं व्याख्यायित किया जाता रहा है।

ध्यान की उपयोगिता आध्यात्मिक दृष्टि से तो सर्वविदित है ही, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से भी ध्यान अतीव उपयोगी साधन है। आज के तनावपूर्ण वातावरण मे तो इसकी उपयोगिता और अधिक बढ़ गई है।

एक मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार दुनिया के ९० प्रतिशत व्यक्ति मानसिक असन्तुलन, अर्थात् किसी न किसी रूप में पागलपन के शिकार हैं और जो दस प्रतिशत बचने हैं वे भी स्वयं मुश्किल से ७० प्रतिशत ही स्वस्थ मानसिकता की स्थिति में होगे।

यों तो आज का युग ही समस्याओं का युग है। प्रत्येक इन्सान विविध आयामी समस्याओं से घिरा हुआ और उनसे जूझता हुआ पाया जायगा। समस्याओ के भी कोई एक-दो रूप ही तो नहीं हैं। वैयक्तिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनैतिक और न जाने कितने प्रकार हैं समस्याओ के। और यह एक-एक समस्या भी संख्यातीत रूप धारण करके सामने आ खडी होती है। एक का सुलझाव-समाधान होता है तब तक अन्य अनेक समस्याएं उपस्थित होती हैं। यह जीवन ही समस्या-संकुल हो गया है। उलझे हुए रेशम के धागों के समान एक गाठ निकालें तो दूसरी दस गांठें और पड़ जाती हैं। इन्सान के चारो ओर समस्याओं की ही चार दीवारी खड़ी है, जिनसे निकलने का कोई द्वार ही परिलक्षित नहीं होता है।

इन समस्याओं की परिधि मे इन्सान अर्धविक्षिप्त अथवा पागल न बन जायें तो क्या बने ? उनका मानसिक सन्तुलन अस्त-व्यस्त न हो तो क्या हो ?

यों तो समस्याएं आज ही नई उत्पन्न नही हुई हैं। युग-युग से समस्याओं का दौर चलता चला आया हैं। जब से मानव सभ्यता का अस्तित्व है तब से समस्यायें विद्यमान रही हैं। हां, उनके स्वरूप, आकार-प्रकार में अन्तर आता जाता है अथवा वे युगानुसार कम ज्यादा होती रहती है।

आज जितना अधिक तकनीकी विकास हुआ, उतनी ही आवश्यकतायें बढ़ी और जब आवश्यकताओं की पूर्ति सब के लिए सब रूपो मे सम्भव नही हुई, तो वे ही आवश्यकतायें समस्या बनकर खड़ी हो गई। दूसरे रूप मे हम आज के युग को समस्याओं का युग कहे तो अतिशयोक्ति नही मानी जा सकती है।

यह समस्याओं का विस्तार ही तो मानसिक तनावों का मूल कारण है। जब मानव-मन समस्याओ का समाधान प्राप्त नही कर पाता है, तो तनावग्रस्त बन जाता है और वह तनावग्रस्तता अनेक शारीरिक-स्नायविक, मानसिक, सामाजिक एव पारिवारिक विकृतियों को जन्म देती हैं।

तथ्यो के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि आज का युग तनाव का युग है। तनाव भी ऐसे कि सामान्य-सी बातो, समस्याओ पर अच्छे-अच्छे बुद्धिजीवी आत्महत्या को प्रेरित हो जाते हैं। ऐसे एक नहीं, अगणित प्रसग आए दिन समाचार-पत्रो मे पढने को मिल सकते हैं, जिनमें अच्छे-अच्छे डॉक्टर, अच्छे-अच्छे अभिभाषक आदि व्यक्ति जरा से पारिवारिक तनाव पर आत्म-हत्या कर रहे हैं।

वर्तमान युग की इस दुःखान्तिका के होने पर भी हमें यह नही भूलना चाहिये कि किसी समस्या का समाधान नही होता है। सत्य यह है कि समस्या की उत्पत्ति के पूर्व ही उसका समाधान निश्चित होता है।

आज की तनावपूर्ण स्थिति का समाधान भी सुनिश्चित है और है हमारे पास ही। किन्तु हमने उसकी ओर से मुंह मोड़ रखा है। आज जन-समुदाय समस्याओ के ताने-बाने मे इतना उलझ गया है कि समाधान पर उसकी दृष्टि ही नही पहुंच पाती है। फलस्वरूप अपने पर्स मे ही नोट होते हुए वह भिखारी-सा जीवन व्यतीत करता है। यह कितनी दर्दनाक दयनीय दशा है आज के इन्सान की कि मिष्ठान्न का थाल सामने होते हुए भी वह दृष्टि मे नही आता है और जीवन क्षुधा से पीड़ित रहता है।

आम इन्सान की यह चिन्तनीय मानसिकता जब आत्म-कल्याण एव लोक मंगलकारी युगप्रचेता महान् आत्म-साधको की दृष्टि

आती है तो उनका निष्कारण करुणापूत हृदय द्रवित हो उठता है। स्वतः ही उनकी साधना की अनुभूतियां अभिव्यक्ति का रूप धारण करने लगती हैं। उनकी अभिव्यक्ति के पीछे लोक-मंगल अथवा जन-कल्याण का उद्देश्य ही मुख्य रहता है।

ऐसे ही एक युग-प्रचेता, युग पुरुष समता विभूति समीक्षण ध्यानयोगी आचार्य-प्रवर श्री नानेश के द्वारा अपनी चिर संचित साधना की अनुभूतियो का सहज अभिव्यञ्जन हुआ, जिसे समीक्षण ध्यान की संज्ञा प्रदान की गई।

यह तो हम अच्छी तरह समझ चुके हैं कि हमारी मानसिक एवं आध्यात्मिक सभी समस्याओ का एकमेव सबल समाधान है ध्यान-योग। ध्यान-योग एक ऐसी साधना विधि है जो अनादिकाल से बन्द अध्यात्म के द्वार तो उद्घाटित करती ही है, वर्तमान के समस्त मान-सिक स्नायविक तनावों से भी मुक्ति दिलाती है। एक ख्याति प्राप्त हार्ट स्पेशलिस्ट डॉक्टर के अनुसार ३० मिनट प्रतिदिन ध्यान-योग की साधना करने वाला व्यक्ति हार्ट का पेसेन्ट (मरीज) नही बनता है। यह तो ध्यान की ऊपरी-सतही उपलब्धियां हैं। ध्यान-साधना की आन्तरिक उपलब्धिया तो अबूझ हैं, जिन्हे एक साधना की अनुभूतियों से गुजरने वाला व्यक्ति ही जान सकता है।

हां, तो ध्यान-साधना ही तनावपूर्ण युग का सर्वाधिक सशक्त समाधान है। ध्यान पर अनेक चिन्तकों, विचारकों ने अपने-अपने ढंग के अनेक विचार दिये हैं। कही-कही व्यावहारिक जीवन में ध्यान को आत्मसात् करने की विधियां भी प्रस्तुत हुई हैं।

उन्ही साधना विधियो में सुपरीक्षित एवं सुपरिष्कृत ध्यान है—'समीक्षण-ध्यान'। समीक्षण-ध्यान आगम वर्णित ध्यान विधियों का निचोड़—निष्कर्ष है और आचार्य-प्रवर श्री नानेश की दीर्घकालीन साधनात्मक अनुभूतियो का सन्दोह है। यद्यपि अभी यह साधना विधि प्रयोगात्मक प्रणाली के आधार पर अधिक जन-प्रचारित नही हुई है, किन्तु जिन आत्म-साधको ने इसकी प्रयोगात्मकता को आत्मसात् किया है, उन्होने आत्मानन्द के साथ मन सन्तुलन एव मानसिक एकाग्रता के क्षेत्र मे आशातीत सफलता प्राप्त की है।

आचार्य-प्रवर श्री नानेश ने अनेक बार समीक्षण ध्यान के

विविध आयामी प्रयोगों को आत्मसात् ही नही किया, अपितु अपने शिष्य परिकर को भी उन अनुभूतियो का आस्वादन करवाया है। उनकी स्वयं की जीवन प्रणाली तो प्रतिपल ध्यान योग मे लीन एक ध्यानयोगी की प्रणाली है। उनकी चेतना के प्रत्येक प्रदेश में, उनके जीवन के प्रत्येक व्यवहार में ध्यान-योग प्रतिबिम्बित ही दिखाई देता है। उनकी इस योग-मुद्रा का प्रभाव अपने परिपार्श्व को भी प्रभावित करता है, इसीलिये उनके निकट का समस्त वायु मण्डल ध्यान साधना से अनुप्राणित बना रहता है।

आचार्य-प्रवर ने अपनी सुदीर्घ ध्यान-साधना की अनुभूतियों के आधार पर ध्यान की इस नूतन विधा को अभिव्यक्ति प्रदान की हैं। यद्यपि यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि यह समीक्षण-ध्यान विधा आगम प्रति-पादित ध्यान-विधा से भिन्न नही है, फिर भी इसकी अन्य अनेक प्रचलित ध्यान विधाओ से अलग ही विशेषता है। इसके द्वारा हम जीवन की सामान्य से सामान्य वृत्ति का समीक्षण करते हुए आत्म–समीक्षण और परमात्म समीक्षण की स्थिति तक भी पहुंच सकते हैं।

ध्यान की यह अप्रतिम विधा अपने आप में एक नूतन विधा है। यह केवल मानसिक तनाव मुक्ति तक ही सीमित नहीं है, इसका प्रभाव आत्मदर्शन की उस भूमिका तक जाता है जो परमात्म-दर्शन के द्वार उद्घाटित कर देता है।

समीक्षण ध्यान-साधना में किसी भी प्रकार की हठ योग जैसी प्रक्रियाओ को स्थान नहीं दिया गया है। यह साधना सहज योग की साधना है, समीक्षण अर्थात् द्रष्टाभाव की साधना है। इस प्रक्रिया में हम दुर्वृत्तियो के निष्कासन के प्रति किसी प्रकार की जबर्दस्ती नहीं करते हैं और न शक्ति जागरण अथवा आत्मोन्नयन के प्रति भी किसी प्रकार की हठवादिता अपनाई जाती है। यहां केवल द्रष्टाभाव-आत्म-समीक्षण की सूक्ष्म प्रक्रिया के द्वारा ही सहज सरलता से अशुभत्व का वहिष्कार एव शुभत्व का सस्कार होता चला जाता है।

प्रस्तुत कृति मे ग्रन्थ दो खण्डो में विभक्त है। प्रथम खण्ड में समीक्षण ध्यान के दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यह यथास्थान स्पष्ट किया जाता रहा है

कि समीक्षण ध्यान अपने आप मे एक नूतन, स्वतन्त्र एवं मौलिक ध्यान पद्धति है, क्योकि यह ध्यान की प्रारम्भिक स्थिति से लेकर केवल्योपलब्धि की परिणति तक पहुंचकर अनन्त काल तक समीक्षक भाव के रूप मे स्थायित्व को प्राप्त कर लेती है। तथापि यह जैनागमो में वर्णित ध्यान विधाम्रो-प्रक्रियाओ से भिन्न नही है। अतः इसके सैद्धान्तिक स्वरूप को स्पष्ट करते समय आगमिक ध्यान पद्धतियो को भी उसी रूप मे निरूपति किया गया है।

ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड मे समीक्षण ध्यान की प्रेक्टिकल-प्रयोगात्मक विधियो का उल्लेख किया गया है। यह अनुभूत एवं आचरित विधियों का उल्लेख है, अतः इसकी उपयोगिता एवं उपलब्धिमत्ता में किसी प्रकार की शका-कुशका अथवा खतरे की सम्भावना नही है।

प्रस्तुत रचना मे एक बात स्मरणीय है कि इसमे अनेक स्थलो पर कुछ पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग हुआ है, जो जैन तत्व दर्शन में किन्हीं विशेष अर्थों मे ही प्रयुक्त होते हैं। यद्यपि उन शब्दो को यथास्थान स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है तथापि उन्हे अलग परिशिष्ट के रूप में भी स्पष्ट किया जा रहा है।

श्रम स्वीकार की दृष्टि को समक्ष रखते हुए इस कृति की शुद्ध प्रतिलिपि करने में अहर्निश धर्म साधना मे ओत–प्रोत गीतकार, गायक एव कवि श्री रघुवीर सिंहजी (सिहाग) जैन सिसाय, के श्रम को विस्मृत नही किया जा सकता है।

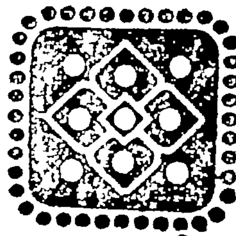
एक बात और, ग्रन्थ मे अधिकाश स्थलो पर 'परमाणु' शब्द का प्रयोग हुआ है—जैसे अहंकार के परमाणु, वासना के परमाणु आदि। यहा यह समझ लेना आवश्यक है कि जैन तत्व दर्शन मे परमाणु पुद्गल पदार्थ के एक ऐसे अविभाज्य लघुतम घटक को माना गया है जिसके दो खण्ड-टुकड़े नही हो सके, किन्तु प्रस्तुत रचना मे भाषा शैली की सुविधा के लिये 'परमाणु' शब्द का प्रयोग प्राय: पुद्गल स्कन्ध के लिये ही किया गया है। तात्पर्य यह है कि इस रचना में जहां–कही भी परमाणु शब्द आए वहा अनन्त परमाणुओं का पिण्ड स्कन्ध ही समझना चाहिये।

इसी प्रकार साधना विधियों में कुछ स्थलो पर सैद्धान्तिक व्युत्क्रम भी हुआ है। जैसे पूर्ण कर्म निर्जरा के बाद पुनः पुनः उसी

प्रक्रिया से गुजरना, गुणस्थान आरोहण मे उच्चतम गुणस्थानों पर पहुंचकर पुनः दूसरे दिन उसी प्रक्रिया मे गुणस्थानों पर आरोहण करना आदि। किन्तु यह सब एक भावात्मकता से गुजरने का अभ्यास मात्र है। इसे हम सैद्धान्तिकता से जोड़ने का प्रयास न करें। केवल साधना की अनुभूतियों से गुजरें और अन्तर् आनन्द प्राप्त करते चले जायें।

२८ मई १९८८ —शान्ति मुनि

श्रीनगर (कश्मीर)



-: अनुक्रम -:

प्रथम खण्ड

१. खोज का युग (१ से ११)

२. समीक्षण ध्यान दार्शनिक व्याख्या (१२ से २९)

३. ध्यान : भेद प्रभेद–आगमिक सन्दर्भ में (३० से ३५)

६. अशरणत्व समीक्षण (८२ से ८९)

७. संसार समीक्षण (९० से १०४)

८. एकत्व-समीक्षण (१०५ से ११२)

९. अन्यत्व-समीक्षण (११३ से १२३)

१०. अशुचित्व समीक्षण (१२४ से १३२)

११. आश्रव-समीक्षण (१३३ से १४२)

१२. संवर-समीक्षण (१४२ से १५३)

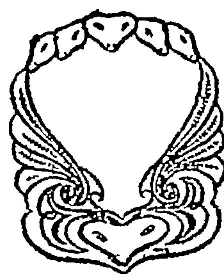
१३. निर्जरा समीक्षण (१५४ से १७५)

१४ लोक समीक्षण (१७६ से १८३)

१५ बोधि बीज का समीक्षण (१८४ से १६४)

१६. धर्म तत्त्व समीक्षण (१६५ से २०४)

द्वितीय खण्ड



समीक्षण ध्यान:

दर्शन

और

साधना

प्रथम खण्ड

दर्शन

और

सिद्धान्त

१ खोज का युग

हम एक बात बार-बार सुनते और दोहराते चले जाते है कि आज का युग खोज का युग है, वैज्ञानिक आविष्कारो का युग है, अथवा नित नूतन उपलब्धियो का युग है । जबकि तथ्य इस बात को प्रमाणित करते हैं कि प्रत्येक युग खोज, आविष्कार एव उपलब्धियों का युग होता है । कोई भी युग अथवा काल खण्ड ऐसा नही गया होगा, जिसमे मानवीय सभ्यता ने जैन शास्त्रीय भाषा मे कर्म भूमिज जन चेतना ने, आविष्कार खोज अथवा उपलब्धियो के द्वार नही खट-खटाये हो अथवा नूतनता उपलब्ध नही की हो । मानव मन ही नितनूतन उपलब्धियो की खोज का अभ्यासी रहा है । अतः यह कहा जा सकता है कि जब से मानवीय सभ्यता ने जन्म लिया अथवा व्यवस्थित जीवन क्रम प्रारम्भ किया तब से अन्वेषरणा का कार्य चलता रहा है ।

कुछ और स्पष्ट शब्दो मे कहे तो आज के युग से अधिक आविष्कार हमारे पूर्वज हजारो वर्ष पूर्व कर गये है । दो-चार हजार वर्ष पुराने ध्वसावशेष एव शिलालेख इन तथ्यो को प्रमाणित करते जा रहे हैं कि प्राचीन शिल्प कलाओ-वास्तुकलाओ के सामने आज की तथाकथित विकसित सभ्यता कोई मूल्य नही रखती है । मिश्र के पिरामिड्स दुनिया के सात महान आश्चर्यों की गरणना में आते हैं । यही नही, आदि युग मे जहा मानव ने सभ्यता अथवा कर्म क्षेत्र मे पाव रखे, अग्नि का आविष्कार-भोजन पकाने का तथा बीज व पन-कृषि कर्म आदि के आविष्कार किये, जो कोई कम महत्त्वपूर्ण नही थे ।

यह तो बाह्य भौतिक अनुसधानो की बात हुई । अन्तरग आध्यात्म साधना के क्षेत्र मे हुए अमूल्य अनुसधानो की तुलना मे तो संभवत. आज का युग विकास की ओर नही ह्रास की ओर ही अधिक गतिशील हुआ है ।

१ खोज का युग

हम एक बात बार-बार सुनते और दोहराते चले जाते हैं कि आज का युग खोज का युग है, वैज्ञानिक आविष्कारो का युग है, अथवा नित नूतन उपलब्धियो का युग है। जबकि तथ्य इस बात को प्रमाणित करते है कि प्रत्येक युग खोज, आविष्कार एव उपलब्धियों का युग होता है। कोई भी युग अथवा काल खण्ड ऐसा नही गया होगा, जिसमे मानवीय सभ्यता ने जैन शास्त्रीय भाषा मे कर्म भूमिज जन चेतना ने, आविष्कार खोज अथवा उपलब्धियो के द्वार नही खटखटाये हो अथवा नूतनता उपलब्ध नही की हो। मानव मन ही नितनूतन उपलब्धियो की खोज का अभ्यासी रहा है। अतः यह कहा जा सकता है कि जब से मानवीय सभ्यता ने जन्म लिया अथवा व्यवस्थित जीवन क्रम प्रारम्भ किया तब से अन्वेषणा का कार्य चलता रहा है।

कुछ और स्पष्ट शब्दो मे कहे तो आज के युग से अधिक आविष्कार हमारे पूर्वज हजारो वर्ष पूर्व कर गये है। दो-चार हजार वर्ष पुराने ध्वसावशेष एव शिलालेख इन तथ्यो को प्रमाणित करते जा रहे हैं कि प्राचीन शिल्प कलाओ-वास्तुकलाओ के सामने आज की तथाकथित विकसित सभ्यता कोई मूल्य नही रखती है। मिश्र के पिरामिड्स दुनिया के सात महान आश्चर्यों की गणना मे आते हैं। यही नही, आदि युग मे जहा मानव ने सभ्यता अथवा कर्म क्षेत्र में पाव रखे, अग्नि का आविष्कार-भोजन पकाने का तथा बीज व पन-कृषि कर्म आदि के आविष्कार किये, जो कोई कम महत्त्वपूर्ण नही थे।

यह तो बाह्य भौतिक अनुसधानो की बात हुई। अन्तरग आध्यात्म साधना के क्षेत्र मे हुए अमूल्य अनुसधानो की तुलना मे तो सभवत. आज का युग विकास की ओर नही ह्रास की ओर ही अधिक गतिशील हुआ है।

हमारे पूर्वज प्राचीन तत्त्व द्रष्टा ऋषि-महर्षि साधक चेतनाओ ने जो आध्यात्मिक शोध की है, और अन्तर की अनन्त गहराई की थाह पाई है, उस तुलना मे आज का हमारा युग कहा पहुंच सका है? सत्य तो यह है कि बाह्य अनुसंधानों की चकाचौंध में अन्तरग उपलब्धियो को प्राय. पूर्णतया भुला दिया गया है । इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि भौतिक अनुसधानो के कार्य ने इस युग में कुछ अधिक गतिशीलता अपनाई है ।

बाहर की खोज-अशान्ति का कारण

मूल मे खोज का कार्य प्रत्येक युग मे चलता रहेगा । वह चाहे बाहर की ओर हो, अथवा भीतर की ओर । यह भी निर्विवाद सत्य है कि वाहर की खोज ने जितनी तीव्रता अपनाई है, उतनी ही अशाति भी वढ़ी है । वायु प्रदूषण एव मनप्रदूषण के द्वारा आम जनमानस सत्रस्त एव बुझी-बुझी सी जिन्दगी जीने को विवश हो रहा है । और इस स्थिति ने बाहर की खोज से ऊपर-अलग हटकर अन्तरानुसधान के द्वार खटखटाये है । जिसे हम साधना, योग भक्ति अथवा ध्यान की संज्ञा प्रदान करते हैं ।

अन्तरग के अनन्त ऐश्वर्य एव अपरिमेय आनन्द को प्राप्त करने हेतू विभिन्न साधनो मे ध्यानयोग का सर्वोत्तम-सर्वोत्कृष्ट स्थान है अथवा यो कहे, आत्मानन्द की गहराईयो मे प्रवेश करने के लिये ध्यानयोग ही एक सबल एव सफल साधन है ।

आत्मिक आनन्द का साधन समीक्षण ध्यान

चू कि परम आनन्द अथवा अन्तरग शान्ति की प्यास मानव मन की सहज किन्तु चिरकालीन प्यास है । अतः इसकी उपलब्धि के प्रयास भी चिर अतीत से होते चले आ रहे है । आज तक लाखों-करोडो साधको ने सख्यातीत विधियो के द्वारा अगणित प्रयास किये हैं । और वे ही विधिया जो कुछ सशक्त एवं सूक्ष्म वन गई, ध्यान की एक स्वतन्त्र विधि के रूप मे स्थिर हो गई । उन्ही विधियो मे एक मौलिक-दार्शनिक किन्तु व्यावहारिक विधि है—समीक्षण ध्यान । समीक्षण ध्यान साधना कितनी गहन-गम्भीर एवं सक्षम साधना है ? उसका दार्शनिक पहलू क्या है तथा उसका साधना पक्ष क्या है । इसे समझने का प्रयास

किया जा रहा है प्रस्तुतकृति के माध्यम से। समीक्षण ध्यान की साधना पद्धति अपने आप मे एक सुस्पष्ट एवं दार्शनिक साधना पद्धति है। इस साधना का प्रत्येक आयाम सहजयोग से अनुप्राणित है, अस्तु, यह सर्वजन योग्य अथवा आम व्यक्ति के लिये सहज उपयोगी सिद्ध होती है। वास्तव मे वही ध्यान साधना सफल मानी जाती है जो सर्वजनोपयोगी एव सुकर हो। समीक्षण ध्यान साधना मे हठयोग अथवा राजयोग आदि की दुरूह विधियो को स्थान नही दिया गया है। अतः यह सहज सुकर साधना मानी जा सकती है।

समीक्षण ध्यान साधना का दार्शनिक पक्ष है, उसकी तर्क सम्मत सैद्धान्तिक-आगमिक एव सावैधानिक व्याख्या प्रस्तुत करना तथा उसका साधना पक्ष है, उसकी ऐसी मौलिक प्रयोगात्मक विधिया प्रस्तुत करना जिनके द्वारा साधक इस साधना को जीवन व्यवहार मे आत्म-सात कर तनाव मुक्ति एव आत्म शांति का मार्ग प्रशस्त कर सके।

उपर्युक्त दोनो पक्षो का सयुक्तिक, साहजिक एवं सामष्टिक विवेचन करने का प्रयास इस कृति का उद्देश्य है।

चूकि दर्शन का सम्बन्ध तर्क से अधिक है। एक दार्शनिक तथ्यों को तभी स्वीकृति प्रदान करता है, जबकि वे तर्क की कसौटी पर प्रमाणित होते हो। अत समीक्षण ध्यान के दार्शनिक विवेचन में तर्क पुष्ट विवेचन ही समादृत हो सकता है। यहां दर्शन के उद्देश्य के संदर्भ मे कुछ प्रकाश डालना अप्रासगिक नही होगा।

दर्शनशब्द-निर्युक्ति

दर्शन मानव मस्तिष्क की विचित्र किन्तु तर्क निष्ठ उपज है। दर्शन, जीवन और जगत की विचित्रताओ का पर्यविलोकन करने वाला दिव्य चक्षु है। दर्शन शब्द की निष्पत्ति 'दृश्' धातु से हुई है। 'दृश्' का अर्थ है देखना। "दृश्यते अनेन इति दर्शनम्" जिसके द्वारा देखा जाय, वह दर्शन कहलाता है। नेत्रों का दर्शन चाक्षुष दर्शन कहलाता है, किन्तु प्रस्तुत मे दर्शन शब्द किन्ही भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। जिन तत्त्वो का साक्षात्कार चर्म चक्षुओ से नही किया जा सकता, उनका साक्षात्कार दर्शन-चक्षु का विषय क्षेत्र है। सक्षेप मे दर्शन का अर्थ है तत्त्व का साक्षात्कार।

दर्शन की सार्थकता केवल भौतिक पदार्थों की शक्ति-सीमा के परिबोध मे ही नही, अपितु, सृष्टि के चराचर तत्त्वो की अपरिमेयता एव सूक्ष्मता के प्रति अन्तरदृष्टि के जागरण मे है ।

दर्शन का उद्देश्य

विश्व के रगमच पर प्रतिपल घटित होने वाले घटना चक्रों की विविधता, विचित्रता, साश्चर्यता एव रमणीयता का तीक्ष्ण प्रज्ञा से तर्क-पटु विवेचन करना, विश्व मे चेतन-अचेतन सत्ता का क्या स्वरूप है, उस सत्ता का जीवन और जगत पर क्या प्रभाव पडता है, प्रकृति प्रदत्त उपादानो की रमणीय व्यवस्थाओ का केन्द्र क्या है, प्रकृति अपने सन्तुलन को कैसे बनाये रखती है आदि प्रश्नो की गहराई मे पहुचकर उनकी तर्क-संगत व्याख्या करना दर्शन-शास्त्र का प्रमुख लक्ष्य रहा है।

पाश्चात्य दार्शनिको के अनुसार दर्शन का उद्देश्य है, विश्व की बौद्धिक एव तर्क-सगत व्याख्या प्रस्तुत करना, अर्थात् पाश्चात्य अवधारणा के अनुसार मानसिक व्यायाम का ही अपर पर्याय दर्शन है । किन्तु पौर्वात्य दर्शन तर्क के साथ श्रद्धा के सबल को समुचित महत्व प्रदान करते हैं, अतएव पूर्व के दर्शन विशेषकर भारतीय दर्शनों मे श्रद्धा एवं तर्क का सुन्दर समन्वय मिलता है । दृश्य एव अदृश्य जागतिक तत्त्वो के प्रति नैसर्गिक श्रद्धा के साथ तर्क-पुरस्सर विवेचना प्रस्तुत करना भारतीय दर्शनो की प्रमुख विशेषता है । तात्पर्य यह है कि भारतीय दर्शन जगत के साथ जीवन की भी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं । आध्यात्मिक दृष्टि से भारतीय दर्शन आत्मा एव परमात्मा की सत्ता को उजागर करते है । इस प्रकार यदि भारतीय दर्शन की ऐसी कोई विशेषता है, जो उसे पाश्चात्य दर्शन से पृथक करती है, तो वह है, आत्मा की परम सत्ता (मोक्ष) का चिन्तन ।

सृष्टि के दो प्रमुख घटक है—चेतनामय जगत और अचेतन सृष्टि । जैन दर्शन की भाषा मे चेतन एव जड, साख्य दर्शन के शब्दो में पुरुष और प्रकृति, वेदान्त के चिन्तन मे ब्रह्म एव माया का विस्तार कहा जाता है।

उपर्युक्त दोनो तत्त्वों के अन्वेषण की मुख्य दो परम्परायें कायम हो गई हैं, और वे दो परम्परायें ही निरन्तर प्रवहमान सरिता

की तरह दर्शन-जगत की दो धाराए बन गई हैं, एक पाश्चात्य और दूसरी पौर्वात्य । पाश्चात्य दर्शन भौतिक तत्त्वो के विश्लेषण की गहराई मे पहुचे, तो पौर्वात्य दर्शन चेतन-आत्म तत्त्व के अन्वेषण की दिशा मे प्रवृत्त हुए । इसी दृष्टि से भारतीय सभ्यता एव सस्कृति से प्रभावित सभी पौर्वात्य दर्शनो को आत्मवादी दर्शन कहा जाता है ।

भारत के प्राय: सभी दर्शनों का प्रमुख ध्येय आत्मा और उसके स्वरूप का प्रतिपादन करना रहा है । चेतन एवं परम चेतन की सत्ता को जिस समग्रता एव सूक्ष्मता से भारतीय दार्शनिको ने समझने समझाने का प्रयास किया, वह अपने आप मे अनूठा एव अतुलनीय है ।

समीक्षण ध्यान-आगम सम्मत ध्यान

दर्शन के इस उद्देश्य के अनुसार समीक्षण ध्यान के दार्शनिक पक्ष को स्पष्ट करने के लिये उसके उद्देश्य-विधेय एव विधि विधान का सर्वाङ्गीण विवेचन अपेक्षित है । उसे ही यहा प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है ।

सर्वप्रथम हम यह अच्छी तरह समझ लें कि समीक्षण ध्यान साधना आगम वर्णित ध्यान विवेचना के निष्कर्ष से अभिन्न साधना है । समीक्षण ध्यान साधना आगम वर्णित ध्यान पद्धतियो मे अजस्र प्रवाह रूप में आगे बढने वाली साधना है अत. इसे हम आगमवर्णित ध्यान साधना का प्राण-हार्ट कह सकते हैं । इस रूप मे इसे एक नूतन किन्तु मौलिक सज्ञा-अभिधा एव व्याख्या प्रदान की गई है । हां, इसमें ध्यान साधना की विभिन्न भव्य एव प्रयोगात्मक विधियो एव शैलियो का अनुभूति मूलक अनुसधान–आविष्कार अवश्य हुआ है । और वह इस दृष्टि से सर्वथा उपयोगी भी सिद्ध होता है कि युग परिवर्तन के साथ मानसिक-वाचिक एव कायिक समस्याओ अथवा तनावो के प्रकारों मे भी परिवर्तन होता है । और उन सब समस्याओ एवं तनावो के समाधान भी तदनुरूप ही हो सकते है, बस यह प्रयोग-पद्धति प्रस्तुत ध्यान साधना मे अपनाई गई है । तथापि आत्म शान्ति का मूल मार्ग प्रशस्त करने की दृष्टि से यह आगमिक ध्यान साधना का ही मूल रूप है और इस रूप मे आगम वर्णित, आर्त्त, रौद्र आदि चार ध्यान

पदस्थ, पिण्डस्थ आदि उसकी विधियां एवं अनित्य-अशरण आदि द्वादश अनुप्रेक्षाएं आदि सब समीक्षण ध्यान से अनुप्राणित होते हुए ही कार्यकारी सिद्ध होते हैं अतः ये समीक्षण ध्यान के ही विभिन्न रूप है।

अतः समीक्षण ध्यान के सम्पूर्ण सन्दर्भ को समझने के लिये ध्यान के आगमिक सन्दर्भों को समझना आवश्यक है। किन्तु ध्यान की सुविस्तृत भेद-प्रभेदात्मक व्याख्या-विवेचना के पूर्व ध्यान की परिभाषा एवं उसकी उपयोगिता को समझ लेना आवश्यक है।

ध्यान-परिभाषा

यदि हम एक वाक्य मे ध्यान की परिभाषा करना चाहें तो वह है—'चेतना की अन्तर्यात्रा' जिसमे चेतना, स्वात्म बोध पूर्वक बाहर से भीतर की ओर, पर से स्वयं की ओर विस्तार से गहराई की ओर, अथवा परिधि से केन्द्र की ओर गतिशील होती है। या यो कहे, चेतना का वह क्षण जो केवल स्वय का द्रष्टा बन जाता है जहा सभी दृश्य स्वयं मे विलीन हो जाते हैं। और चेतना अपनी चरम परिणति मे परम मुक्त अवस्था को उपलब्ध हो जाती है, ध्यान है। आत्म समीक्षण व अन्तर निरीक्षण। स्वय के परिपूर्ण सत्य का एक क्षण मे साक्षात्कार है ध्यान की चरम परिणति, ध्यान की प्रस्तुत परिभाषा के प्रसंग मे समीक्षण शब्द के अर्थ-सन्दर्भ को समझ लेना उचित होगा।

समीक्षण-अर्थ-सन्दर्भ

समीक्षण शब्द 'सम्+ईक्षण' इन दो शब्दों के मेल से बनता है। 'सम्' शब्द सस्कृत का एक उपसर्ग है जो सम्यग्, समानता, सही सत्य आदि अर्थो का द्योतक है। तथा 'ईक्षण' शब्द देखने अथवा सर्वतः देखने के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। इस प्रकार समीक्षण शब्द का शाब्दिक अर्थ हुआ सम्यक प्रकार से अथवा समता पूर्वक देखना—निरीक्षण करना। इसका तात्पर्यार्थ है अपनी ही वृत्तियो को सम्यग्रीत्या समभाव पूर्वक निश्चित् रूप से देखना। अपनी अन्तरग स्थिति को सहज वृत्ति मे अवलोकित करना आत्म समीक्षण है तथा अपनी बहिरंग स्थिति का समता पूर्वक निरीक्षण बहिर समीक्षण है।

समीक्षण ध्यान एक अन्तश्चक्षु है, अथवा वह एक ऐसा तृतीय नेत्र है, जिसके द्वारा अन्तरवृत्तियो को देखा जाता है। जहां

बाहर के चर्म चक्षु–चमडे की आखे स्थूल रूप को ही देखने तक सीमित रह जाती हैं–वहा समीक्षण ध्यान रूप तृतीय नेत्र अन्तश्चेतना के दर्शन तक ले जाता है और अपनी चरम परिणति मे परमात्मदर्शन तक ले जाता है। इस रूप मे 'ध्यानम् पुरुषस्य: तृतीय. नेत्रम् ।' वाली उक्ति समीक्षण ध्यान के लिये पूर्णतः सघटित होती है।

ध्यानः सामान्य व्याख्या

"ध्यान" अन्तर्मुखी होने की साधना है। ध्यान का अर्थ है–ध्येय के प्रति तल्लीनता अथवा ध्यान का अर्थ उस अवस्था से है जिसमें ध्याता और ध्येय एकाकार हो जाते हैं। आपेक्षिक दृष्टि से चेतना का द्वैत के सिमट कर अद्वैत मे प्रवेश करना ध्यान की चरम उपलब्धि है।

भारतीय सस्कृति की प्राय सभी साधना पद्धतियो मे 'ध्यान" शब्द का प्रयोग हुआ है और उसकी विभिन्न परिभाषाए भी निश्चित हुई हैं। साध्य की सिद्धि हेतु विभिन्न साधनागो में ध्यान को सशक्त एवं सफल साधन स्वीकार किया गया है किन्तु जैन सस्कृति किंवा जैन साधना-पद्धति तो मूलतः ध्यान की ही साधना है, वहा साधक का प्रत्येक अनुष्ठान ध्यान से अनुप्राणित होता है। साधना के विभिन्न अंगों में जैन दर्शन मे "ध्यान" पर जितना अधिक बल दिया गया है, संभवतः उतना अन्य अगो पर नही। वहां साधक की साधना को कालापेक्षया विभिन्न विभागो मे विभाजित किया गया है। रात्रि-दिवस के चौबीस घटो मे एक चौथाई अर्थात् छः घटे केवल ध्यान साधना के लिये नियोजित किये गये हैं। जैन तत्त्व दर्शन के उद्गाता प्रभु महावीर ने स्वय कई घटो एव दिनो नही, बल्कि महीनो ध्यान साधना में बिताये और तद्द्वारा ही जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि का साक्षात्कार किया।

आधुनिक युग के महान् दार्शनिक एव भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने ध्यान के विषय मे कहा—"ध्यान चेतना की वह अवस्था है, जहां समस्त अनुभूतियां एक अनुभूति मे विलीन हो जाती हैं, विचारो मे सामजस्य आ जाता है, परिधियां टूट जाती हैं और भेद-रेखाए मिट जाती हैं। जीवन और स्वतन्त्रता की इस अखण्ड अनुभूति मे ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रह जाता तथा जीवात्मा परमात्मा बन जाता है।"

ध्यान मस्तिष्क की रिक्तता अथवा सम्पूर्ण विचारो का अभाव नही है, वरन् इसमे हम जगत की स्वार्थपोषी जिम्मेदारियो एवं कल्पनाओं से अपने मन को हटा लेते है उसे चिन्तन मे गहरा डूबने देते हैं और जीवन तथा कार्य के बोझ से शान्तिदायी मुक्ति की भावना तक ले जाते है, और उसका स्वाद लेते है । केवल प्रबल प्रयत्न से ही ध्यान की यह स्थिति प्राप्त होती है ।

ध्यान: सामान्य परिभाषा

यह कहा जा चुका है कि साधना मे ध्यान की उपादेयता को प्राय: सभी दर्शनो मे निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है, किन्तु इसकी परिभाषाए एव व्याख्याए विभिन्न रूपो मे प्रस्तुत की गई हैं । आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने ध्यान की परिभाषा निश्चित करते हुए कहा है—अपनी जागृत अवस्था मे भाव-मन विभिन्न प्रकार के बोध प्राप्त करता रहता है । उनमे से कुछ वस्तुए चेतना–केन्द्र के अधिक निकट होती है, कुछ उसके किनारें पर घूमती रहती है । जिस वस्तु पर चेतना का प्रकाश केन्द्रित हो जाता है वह वस्तु, ध्यान का विषय (ध्येय) बन जाती है । अत किसी भी पदार्थ या विषय पर चेतना के प्रकाश का केन्द्रित हो जाना "ध्यान" कहलाता है । इस प्रकार ध्यान का अर्थ हुआ वस्तु (ध्येय) पर चेतना–प्रकाश का केन्द्रित हो जाना । जैन तत्त्व दृष्टि से इसे ही एक पुदगल निविष्ट दृष्टि कहा गया है । वाचक मुख्य श्री उमास्वाति ने ध्यान को पारिभाषित करते हुए कहा है—

"उत्तम सहननस्यैकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानम् ।"

अर्थात् उत्तम शारीरिक सगठन पूर्वक चित्त का किसी एक विषय पर केन्द्रित होना 'ध्यान' है । इसे थोडी सरल भाषा में कहे तो मन का किसी एक विषय पर स्थिर हो जाना, एकाग्र हो जाना ध्यान है ।

योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पतजंली ने चित्त वृत्तियों के निरोध सम्बन्धी पुरुषार्थ को योग कहा है –"योगश्चित्त वृत्ति निरोध: ।' जीवन शोधियो ने महर्षि पतजली की इस परिभाषा को सम्मानपूर्वक अनुमोदन दिया है । आजकल कई साधको ने मन को विचार शून्य करने और गतिहीन बनाने का नारा दिया है । गीता मे वर्णित द्रष्टा-

भाव को उन्होंने योग की प्रारम्भिक कडी मान लिया है । उनकी राय है कि मन की स्वैच्छिकता तथा गतिशीलता को नियन्त्रित करने का प्रयास अथवा उसे छोडना सर्वथा अवैज्ञानिक है । उत्तम यह है कि मन की स्वैच्छिकता को यथावत् चलने दिया जाय और हम केवल साक्षी बने रहे । परिणाम यह होगा कि मन स्वतः ही शान्त और विचार शून्य होकर नियत्रण के लिये समर्पित हो जायेगा । बात बड़ी सम्मोहक और तर्क पूर्ण लगती है, किन्तु इसमें व्यावहारिकता का अभाव है । द्रष्टाभाव तो राग-द्वेष पर नियंत्रण की प्राथमिक स्थिति है । वह तो साधना के विकास पथ मे एक परिणाम की स्थिति है । जो साधक साधना के प्रवेश द्वार पर खडे हैं, उनके लिये यह सम्मोहक भले ही हो, व्यावहारिक नही है । यह शिक्षा तो ठीक उसी प्रकार की है जैसे गोताखोरी सीखने आये हुए व्यक्ति को एक थैला देकर समझा दिया जाय—"कुछ चिंता नही करनी है, तल पर पहुंच कर मोती उठा लेने हैं और इस थैले मे हिफाजत से रखते जाना है ।" जब तक सृष्टि के कर्मजाल से वैराग्य नही होगा, जब तक इन्द्रियो के वेग पर नियत्रण नही होगा, जब तक मन की वृत्तियो का वैज्ञानिक ढग से शमन नही होगा, तब तक द्रष्टाभाव, स्थितप्रज्ञता अथवा समत्व तक कैसे पहुंचा जा सकता है ? वैराग्य का रस्सा पकड़ कर उतरे बगैर समत्व तक पहुचेंगे कैसे ?

भगवान महावीर ने मन को अश्व (घोडे) की उपमा दी है ।[१] गीता ने उसकी गति को पवमान (झझावात) से समरूपित किया है ।[२] अप्रशिक्षित घोडा अड़ियल होता है, निरंकुशता उसकी प्रवृत्ति है । मन को पहले उसी के किसी विषय पर केन्द्रित करना अनिवार्य है । केन्द्रीकरण की इस साधना को ही ध्यान कहा जाता है ।

---

१. मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई ।
त सम्मं तु णिगिण्हामि, धम्म सिक्खाइ कंथगं ।।
—उत्तराध्ययन—२३-५८ ।

२ चचलं हि मनः कृष्ण ! प्रमाथि बलवद्दढम् ।
तस्याऽहं निग्रह मन्ये, वायोरिव सुदुष्करम् ।।
—गीता—

इस दृष्टिकोण से जैन साधना पद्धति मन को गति शून्य करने की अपेक्षा मन की गति को बदलने, उसे सही दिशा देने पर बल देती है। अतएव एक जैनाचार्य ने योग का अर्थ "योगो दुश्चित्त वृत्ति निरोधः१" किया है, जो कि योगश्चित्त वृत्ति निरोधः का परिष्कृत रूप है।" किन्तु उपर्युक्त दोनो परिभाषाएं निषध परक हैं। केवल निषेध में सर्वांगीणता का दर्शन नही हो सकता है। इस पर आचार्य श्री नानेश ने अतलग्राही मन्थनपूर्वक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। आपने योग को निवृत्ति के सकुचित घेरे से निकाल कर विधि का परिवेष प्रदान किया है, "योगश्चित्त वृत्ति संशोध." योग का अर्थ है चित्त वृत्तियो का सशोधन। जहा सशोधन होगा, दु श्चिन्तन का अवरोध स्वतः सिद्ध हो जायेगा।

वास्तव मे योग की यह परिभाषा अपने आप मे सर्वांगपूर्ण संघटित होती है। क्योकि जैन दर्शन की ही नही, प्रत्येक दर्शन की साधना चित्त शुद्धि एव तद्द्वारा आत्म शुद्धि पर ही बल देती है। और योग की इस परिभाषा मे सशुद्धि को केन्द्र माना गया है। सशुद्ध आत्मा ही परमात्मभाव का द्रष्टा एव अनुभोक्ता वनता है। अतः योग की विशुद्धतम परिभाषा "योगश्चित्त वृत्ति सशोधः" ही समीचीन सिद्ध होती है।

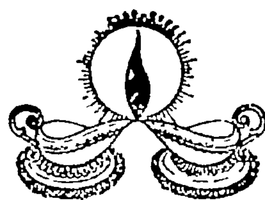
मन जव तक मन रूप मे है गतिशील रहेगा। सर्वथा शून्य नही हो सकता, क्योकि मनन करना—गतिशीलता उसका अस्तित्वगत गुण है। इस तथ्य को आज का मनोविज्ञान भी स्वीकार कर चुका हैं। अतः प्राथमिक साधना मे ध्यान अथवा मनोनिग्रह का अर्थ मन की गति को परिवर्तित करना, चिन्तन की दिशा को अन्तर्मुखी एवं उर्ध्वगामी वनाना, मन को दुर्वृत्ति से हटाकर सद्वृत्तियो मे नियोजित करना, मन को सचिन्तन मे नियुक्त करना तथा शास्त्रीय भाषा मे मन को अशुभत्व से हटाकर शुभत्व की ओर उन्मुख करना है। इसी दृष्टिकोण से जैन दर्शन की साधना सहजयोग की साधना कही जाती है यहां देह के साथ भी कोई हठ की प्रवृत्ति नही होती है। जिस किसी भी आत्म साधक क्रिया मे सलग्न हो, उसी में एकावधानता ले

---

१. उपाध्याय यशोविजय जी कृत योगदर्श की टीका १-१

आना सहजयोग की पृष्ठभूमि है। अतिसक्षेप मे कहे तो चित्त वृत्तियों का परिशोधन, उदात्तीकरण तथा चेतना-प्रकाश का केन्द्रीकरण सभी ध्यान साधना के अन्तर्गत आ सकता है।

इस प्रकार ध्यान न तो विमुखता है। न उन्मुखता है, वह तो सन्मुखता है। चित्तवृत्तियो का स्वचेतना के अभिमुख होना और उसी मे समा जाना ध्यान की चरम-उपलब्धि है।



२ | समीक्षण ध्यान दार्शनिक व्याख्या

समस्या अनेक समाधान एक

आम आदमी कुछ गहरे आनुवंशिक एवं पारम्परिक संस्कारों के दायरे मे बंधा हुआ जीता है। अगणित जन्मों के संस्कारो की एक लम्बी परम्परा या कतार उसके जीवन क्रम के साथ जुडी होती है, जो उसे बंधी बधाई परम्परा मे जीने को बाध्य करती है। यह बात किसी एक युग अथवा काल खण्ड की ही बात नही है। प्रत्येक युग में इन्सान एक क्रमबद्ध साचे मे ढलता हुआ परिलक्षित होता है। और इस रूप मे आम आदमी की बुनियादी समस्याए अथवा आवश्यकताएं समान प्रायः बनी रहती है। जब समस्याएं समान होती हैं तो उनके समाधान भी उसी के अनुरूप ढले होते है।

बुनियादी समस्याओं के समान होते हुए भी उनके इर्द-गिर्द अगणित समस्याएं ऐसी होती है, जो युग परिवर्तन की ओट मे अपने रूप बदलती रहती है। कुछ समस्याए ऐसी होती हैं, जिन्हे हम 'यूनिवर्सल' समस्याए कह सकते हैं, जो सामान्य उतार-चढाव के साथ सदा बनी रहती है। शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक समस्याएं मौलिक रूप से सदा बनी रहने वाली समस्याएं हैं। जब से मानव का अस्तित्व है, तब से मानव मन को केन्द्रित करने वाली ये समस्याएं भी खड़ी हैं। केवल इनके रूपो मे युगानुसार उतार-चढाव आता रहता है। उदाहरण के लिये पेट की समस्या को लें—आदि युग का मानव भी इस समस्या से पीडित था, और आज का मानव भी। उस समय वानप्रस्थिक जीवन था, और इस समस्या का समाधान वनौपज—वृक्ष के फलो आदि के द्वारा हो जाता था। फिर कृषि कर्म का विकास हुआ, और तरह-तरह के अन्नादि उत्पन्न होने लगे, और विविध प्रकार के व्यञ्जनादि बनने लगे। यही स्थिति तन ढकने के लिये वस्त्रादि की थी। उस समय वृक्ष की छालो-पत्तो आदि से तन ढका जाता था, और

आज के युग में विविध प्रकार के वस्त्रो का निर्माण हो गया । समस्या वही है, समाधान के आयाम बदलते जाते हैं ।

यही स्थिति मानिसक एव आध्यात्मिक समस्याओं के सन्दर्भ मे हैं । चूंकि मानसिक समस्याएं भी अधिकाशतः शारीरिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित होती हैं, अनः आवश्यकताओं के उतार-चढाव पर मानसिक समस्याओ के समाधान भी बदलते जाते हैं ।

इतना होने पर भी मानसिक एवं आध्यात्मिक समस्याओं का मूल केन्द्र तनाव एव संघर्षपूर्ण जीवन है । इस राग द्वेषात्मक परिवेश मे पद-पद पर तनाव है, कर्म बन्धन है, और उनके द्वारा होने वाली अशान्ति अथवा जन्म मरणादि दु.खो की परम्परा है । और इसका समाधान है 'ध्यान'—'समीक्षण ध्यान' ।

चूंकि प्रत्येक युग में उपर्युक्त सामान्य समस्याएं बनी ही रहती हैं, अतः ध्यान साधना की अपेक्षा—आवश्यकता भी प्रत्येक युग की आवश्यकता है । किन्तु वर्तमान युग के परिप्रेक्ष्य में ध्यान साधना की आवश्यकता अथवा उसकी माग तीव्रतम हो चली है ।

वर्तमान युग विभिन्न झझावातो से आक्रान्त मानसिक पेचीदगियो का युग है । वायु प्रदूषण के समान मनः प्रदूषण भी अपनी चरम सीमा का स्पर्श करता परिलक्षित हो रहा है । हम एक उक्ति दोहराते चले आते हैं कि—"आवश्यकता आविष्कार की जननी है ।" और नितनूतन—नि:सीम आवश्यकताओ की सम्पूर्ति के लिये सैंकडो वैज्ञानिक नितनूतन आविष्कार-उपलब्धियो का अम्बार लगा रहे हैं । किन्तु यह भी उतना ही सच है कि आवश्यकताओ की इन उद्दाम लालसाओ ने मानसिक तनावो मे भी सीमातीत वृद्धि की है । आज का आम मानव एक कठपुतली अथवा मशीन-सी जिन्दगी जी रहा है, जिसे न अपने मूल परिवेश का सम्यग्बोध है और न अपने परिपार्श्व का । इन्सान खोया-खोया-सा इस घुटन भरी जिन्दगी का भार ढोए चला जा रहा है । जिसे न अपने ओर का पता है, न छोर का ।

आज राष्ट्रीय रगमच ही नही, सम्पूर्ण जन-मानस त्रस्त है । विश्वयुद्धो के सृजन मे सलग्न कूटनीति ओर सर्वनाशी आणविक अस्त्रो

की घुड-दौड़ के जिस वैज्ञानिक युग मे हम जी रहे है, इसमें मानवीय मूल्य और मापदण्ड भी बदल गये है । लगता है, अब मानवीय अस्तित्व अनिश्चित है । उसमें न तो निश्चितता रह गई है और न निर्श्चितता । यायावरो की तरह हम भटक रहे है, और अपने ही भविष्य के प्रति आतंकित बने हुए हैं विज्ञान का तथाकथित विकास यहा तक पहुंच गया है कि एक उन्मादी आक्रामक इस धरती की अद्यावधि सचित सभ्यता को चुटकी बजाते भस्मसात कर सकता है, और समस्त सुरक्षा-साधन निरर्थक होकर ताकते रह सकते हैं ।

इस तनाव और सघर्षपूर्ण स्थिति ने बुद्धिवादी जन-चेतना को झकझोरा है । क्योकि ये तनाव अब केवल व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित नहीं रहे हैं । ये व्यष्टि से समष्टि तक अनुबद्ध हो गये हैं । आज की यह सृष्टि-समष्टि विनाश के कगार पर खड़ी परिलक्षित होती है ।

ब्रिटिश विज्ञान-शास्त्री गार्डरेटरे टेलर ने अपनी पुस्तक—'द बॉयलॉजिकल टाइम बम' मे कीटाणु-युद्ध की विभिषिकाओं का दिग्दर्शन कराते हुए लिखा है, "अब इन आयुधो के प्रहार से यह संभव हो गया है कि किसी देश को शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्थायी तौर से दुर्बल बनाकर शताब्दियो तक पराधीन रखा जा सके । यह कितनी चिन्ताजनक, दयनीय और अमानवीय स्थिति होगी ? अमेरिकी कृमि विज्ञानी साल्वे डोर लूरिया ने यह आशका व्यक्त की है कि "अब सिर्फ राजनेता ही नहीं, सामान्य रसायन वेत्ता भी किसी देश अथवा समस्त विश्व को बर्बाद करने की शक्ति से सुसज्जित हो गये है । इससे सार्वभौम विनाश को रोक सकना और भी अधिक ज[illegible] [illegible] है ।"

यह विस्फोटक, विषम एव तनावपूर्ण स्थिति आज की मानवीय व्यष्टि से समष्टि तक सर्वत्र व्याप्त हो रही है । इस रूप मे यह अच्छी तरह समझ सकते हैं कि वर्तमान मे तनावमुक्ति के प्रयासो की कितनी अधिक आवश्यकता है । आज का आम चिन्तनशील युवा मानस इस तनाव से मुक्त होना चाहता है, वह आत्म शान्ति या आत्म सन्तोष का मार्ग चाहता है, किन्तु समुचित मार्ग दर्शन के अभाव से वह अधिक से अधिक भटकता जा रहा है । आज की युवा पीढी ने तनाव मुक्ति का एक मोहक किन्तु भ्रामक मार्ग निकाला है–'नशा ।'

एक दैनिक समाचार पत्र नवभारत टाईम्स ने आज के भटकाव पूर्ण युवा वर्ग का भारतीय सन्दर्भ मे चिन्तनपूर्ण मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है ।

नशे के जहर में तनाव मुक्ति की खोज

नशा-नशा-नशा । पटना, बनारस, दिल्ली, हैदराबाद, कहीं भी लडके, लडकियो के बीच गहरे पैठिये तो उनकी अनेक झकझोर देने वाली आदतो मे, नशीली वस्तुओ के इस्तेमाल की जबरदस्त आदत भी शामिल मिलेगी । खबर तो यहा तक कहती है कि जयपुर, सागर, मद्रास तथा बम्बई के कॉलेजो तथा विश्वविद्यालयो मे भी पन्द्रह से पैंतीस प्रतिशत लडके-लड़किया नशीली वस्तुओ का इस्तेमाल नियमित रूप से करते हैं । इस सन्दर्भ मे जो सबसे अधिक चौंकाने वाली बात उभर कर सामने आ रही है, वह है नशा प्रेमियो मे लडकियो की बढती सख्या । चरस मारिहुआना, अफीम-किस नशीले पदार्थ का इस्तेमाल नही करती वे ? सिगरेट पीना बुर्जुआ प्रवृति है, बीडी पीना इन्टेलेक्चुअल कल्चर है, चरस का इस्तेमाल आधुनिकता भी है, और इससे अह को भी सन्तोष मिलता है । कॉलेज के कैन्टीन मैनेजरो और छात्रावासो के द्वार पर बैठे पान-विक्रेताओ को विश्वास मे लेकर बात कीजिये, तो नशा करने वाली लडकियो के नाम गिनाकर प्रतिशत भी निकाल देंगे । एक सर्वेक्षण सस्था द्वारा एकत्र किये गये आकडे बताते है कि बम्बई के कॉलेजो के नशेबाज लडके-लड़कियों मे पचपन प्रतिशत लडकिया है ।

आखिर आज का युवा इन नशीले पदार्थों का इतना अधिक सेवन क्यो कर रहा है ? दिल्ली के एक कॉलेज छात्र ने अपनी मनो

हुई अग्रेजी मे वड आत्म विश्वास के साथ कहा, नशे से हमारी इद्रिया जागती है और हम अपने अध्ययन विषय को अधिक सरलता के साथ पकड़ पाते है । दूसरे ने कहा, 'नशा हमे जगाए रखता है, हमारी स्मरण शक्ति को बढाता है ।' महिला कॉलेज की एम. ए, की एक छात्रा (जो कॉलेज के छात्रावास मे ही रहती है) ने बताया, "हमारी अपनी भी एक पीडा है, अपने अस्तित्व की पीडा, हम जो हैं वह होने की पीड़ा है, जो होना चाहते हैं वह नही होने की पीडा है....? एक दूसरी छात्रा ने कहा, 'हम क्या करे' हमे लगता है हमे कोई समझता नही, हमारे माता-पिता भी नही—भाई अपना 'कैरियर' बनाने मे लगा है—लगता है कोई अपना सगा, सच्चा दोस्त नही तो आओ थोडी देर नशे का साथ ही सही—।"

लगता है कि मूल कारण है युवाओ मे अकेलेपन का अहसास । भीड़ भरी जिन्दगी मे भी वे अपने को कही अलग-थलग पाते हैं । नशा गम भुलाने के साथ ही नई दोस्तियो का पैगाम भी लाता है, तो उसकी तरफ टूट पड़ते हैं । फिर भविष्य का भी तो कोई भरोसा नही। सचाई और सपनो का टकराव, पाठ्यक्रमो की नीरसता, सवेदना शून्य मशीनी अध्यापन शैली, शरीर मे अन्दर ही अन्दर कसकते-सिसकते नए-नए अनुभवो की अनहोनी अकुलाहट, होस्टल के बन्धन और हजार दूसरे डर और दर्द । फिर दो पल के लिये दो ग्राम होठो तले दाब ही लिये तो कौनसा पाप हो गया ?

हमारी शिक्षा-नीति की न जाने यह कौनसी कमी है जो विश्वविद्यालयो मे खेल-कूद सास्कृतिक कार्यक्रमो और मनोरजन के साधनों के बावजूद हमारे कॉलेजो के लड़के-लडकिया हमेशा ऊबे-ऊबे रहते हैं, और कॉलेज जीवन उन्हे रोमाचहीन जान पडता है । पिकनिक पर बाहर भी जायेंगे तो साथ मे टेपरिकार्डर भी ले जायेंगे और म्यूजिक का पूरा-पूरा मजा लेने के लिये थोड़ा नशा भी । नदी, पेड, पहाडो, फूलों और चिड़ियो को देखकर न कोई हरकत पैदा होती है, न कोई प्रतिक्रिया । एक तरह से मशीन मानव जैसा ही होता है उनका पूरा व्यवहार । लगता तो यही है कि नशे के माध्यम से उनका मन कुछ ऐसा ढूढता है, जो हम उन्हे नही दे पाते 'किक' की सार्थकता भी शायद यही है ।

आम तौर पर विश्वास किया जाता है कि युवाओ मे नशे

की आदत बुरी संगति से पडती है । पर आंकड़े कहते है कि यह धारणा गलत है । क्योकि नशा करने वाले सौ लडके-लड़कियो में केवल ग्यारह दूसरो के असर मे आये थे । कोई दूसरा हमे न भडका सकता है, न फुसला सकता है, नशीली चीजो का इस्तेमाल हमारा अपना निर्णय है…।" एक युवा ने कहा था—सच्चाई जो भी हो, इस बात से तो सर्वेक्षण संस्थाओ तथा समाज शास्त्रियो ने भी इन्कार नही किया है कि युवाओ मे नशे की लत मनोविज्ञान अथवा चरित्र का ही कोई असन्तुलन है । यह एक गैर जिम्मेदाराना काम है—अपने प्रति और अपने परिवेश के प्रति भी मजा चुनौती को स्वीकार करने मे है उससे भागने मे नही । इस प्रकार के किसी खोट से ही पैदा होती होगी यह लत ।

सबसे खतरनाक नशीला पदार्थ है 'हेरोइन' । इसका सबसे ज्यादा इस्तेमाल पटना, बनारस और सागर मे होता है । दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता मे ज्यादातर युवा शराब की ओर भागते है । शराब छोडी जा सकती है, हेरोइन लेने वालों का उससे छुटकारा पाना असम्भव सा हो जाता है । स्वास्थ्य पर हेरोइन का असर भी सबसे खतरनाक पडता है । इसे छोडना इसलिये भी मुश्किल हो जाता है कि इसका इस्तेमाल करने वालो का एक छोटा-सा अन्दरूनी गिरोह सा बन जाता है । वे एक दूसरे से बन्ध से जाते हैं । एक तरह की ऐसी वफादारी पैदा हो जाती है कि गुट की सदस्यता छोड़ना धर्म छोडने के समान हो जाता है ।

नशा करने वाले लडके-लडकियो की आर्थिक स्थिति भी हमेशा डावाडोल रहती है । घर से जो पैसा आता है उसमे काम नही चलता और कुछ और कमाने के लिये जुगत की तलाश जारी रहती है । अकसर गलत आदतो का शिकार तो होना ही पडता है । कभी-२ भारी सकट भी उपस्थित हो जाता है । फीस, किताबें, मेस या कैन्टीन के पैसे भी कभी-कभी नशे मे ही उड़ जाते हैं । दोस्तो से उधार लिया जाने लगता है—चोरी की आदत पड़ जाती हो तो कोई आश्चर्य की बात नही । इम्तहान पास आता है और साल भर की फीस जुर्माने सहित जमा करने के बाद परीक्षा के लिये प्रवेश-पत्र लेने के दिन निकट आने लगते है तो धड़कन बढ़ती है, और नए-नए

बहानों के साथ घर चिठ्ठिया लिखी जाती हैं। समुचित उत्तर न आने पर दिमाग प्रतिहिंसा की ओर चलता है—और अक्सर इसी उधेड़बुन में परीक्षाएं शुरू हो जाती हैं और एक दिन मालूम पड़ता है कि साल खराब हो गया।

महत्वपूर्ण सवाल यह है कि इनसे उन्हे कैसे छुटकारा दिलाएं। सबसे पहली बात तो यह है कि परिवार मे मधुरता का वातावरण बनाकर रखे और युवाओ को महसूस होने दे कि वे भी परिवार के उतने ही महत्वपूर्ण सदस्य हैं जितने बड़े भाई-बहिन या माता-पिता। साथ ही उन्हे स्वाभाविक रूप से यह भी लगते रहना चाहिये कि उन्हें सहज स्नेह मिलता है और महत्वपूर्ण निर्णयो में उनका भी योगदान है। कॉलेजो मे भी उनकी सार्वजनिक शक्ति की अभिव्यक्ति और विकास के लिये पूरा प्रोत्साहन चाहिये। वातावरण और सुविधाओं की कमी हो तो, उन्हे वह मुहैया किया जाना चाहिये, ताकि छात्र अपने आपको अपने मे छिपे गुणो को पहिचान कर अपने व्यक्तित्व का स्वस्थ विकास कर सके। किसी भी कीमत पर उन्हे अकेलेपन का अनुभव न होने दें।

एक सात्विक मोड़

यह है आज की युवा चेतना का तनाव मुक्ति का प्रयास। वास्तव मे यह प्रयास स्वयं के शरीर और पारिवारिक जीवन के साथ छलावे के अतिरिक्त और कुछ नही है। नशे के द्वारा वे क्षण भर के लिये अपनी समस्याओ से अपने आपको भुलावा भले ही दे दें, तनाव मुक्त नही हो सकते।

यह चिन्तन पूर्ण तर्क संगत सत्य है कि आज तनाव मुक्ति की समस्या ज्वलन्त है और इसके समाधान भी विविध रूपों मे खोजे जा रहे हैं, किन्तु यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि इन्सान जब किसी अति पर पहुंचता है तो वह उस अति से करवट लेता है। और अब समय आ गया है कि युग एक सात्विक करवट ले जो उसे एक प्रशस्त आनन्द प्रदान कर सके।

आज जिस मनः स्थिति के परिवेश मे आम व्यक्ति जी रहा है, उससे वह स्वयं सन्तुष्ट नही है। वह जो जीवन जी रहा है, वास्तव

में वह जीवन है ही नही । वह तो एक रोल है, एक पार्ट है, जो संस्कारों ने, समाज ने, परिस्थितियों ने, संस्कृति ने अथवा देश की परम्परा ने उसे थमा दिया है । उसी पकड के साथ वह एक अभिनय कर रहा है । और आश्चर्य इस बात का है कि इस अभिनय को ही उसने अपना मूल रूप मान लिया है, उसके साथ तादात्म स्थापित कर लिया है ।

यही तो आज की सब से बडी ट्रेजडी है कि इतने तकनीकी विकास, सुख-सुविधाओ के अम्बार के होते हुए भी इन्सान की मनःस्थिति अधिक से अधिक असन्तुलित होती जा रही है । मानसिक शान्ति कही दूर-दूरतर भागती जा रही है । ऐसा नही है कि इन्सान अपनी इस स्थिति से परिचित नही है । आज का बुद्धिवादी वर्ग इस स्थिति से अच्छी तरह परिचित होता रहा जा है । उसने एक सात्विक करवट ली है । प्रचण्ड धन-लिप्सा, समस्त तकनीकी साधन, मनोरंजन के सभी बाह्य उपकरणो और आज के तथाकथित विकास से उसे ऊब होने लगी है । अब वह इस बाह्य आडम्बरी लिप्सापूर्ण जीवन से कही भाग जाना चाहता है । चाहता ही नही, उसकी भाग दौड़ विगत कुछ अर्से से चालू हो गई है । हिन्दी साप्ताहिक धर्मयुग ने इस भाग दौड़ को निम्न शब्दो मे अभिव्यक्ति दी है—

शान्ति की खोज में अमेरीकी युवा पीढ़ी

"[1]अमेरिका की चकाचौंध कर देने वाली सस्कृति से ऊब कर वहा के कुछ युवक-युवतिया न्यूयॉर्क, वाशिंगटन और शिकागो की सभ्यता छोड कर शहरों, सडको और बस्ती से सैकडो मील दूर ऐसी जगहों पर जाकर बस रहे हैं और अपना एक गांव बसा रहे हैं, जहा वे रेडियो, टेलीविजन, होटल, नाचघर, रेस्तरां, शराब और पत्र-पत्रिकाओ से बचे रहें ।

अस्वाभाविक आवाजो, बनावटी रंगों, प्रेम और सेक्स से ऊबे हुए इन लोगो का भी अपना एक सपना है । इक्कीसवी शताब्दी के शुरू होते-होते विज्ञान पर आधारित आज के विकसित औद्योगिक

---

१. धर्म युग ३ नवम्बर १९८५ से साभार

समाज का एक ऐसा विकल्प पैदा करना जो निराशा, कुंठा और घटन की पीडा से मुक्त हो।

किन्तु यह सपना नही, सच है। और इस तरह जिन गांवो अथवा छोटी-छोटी मुक्त वस्तियो की स्थापना वे कर रहे हैं। ये अधिकतर पढे-लिखे और समृद्ध परिवारो के युवा, उनका नाम रखा गया है, 'आर्मेडिलोज ड्रीम' यानि 'चीटी खोरो का सपना,'

है न यह एक अजीब सी संज्ञा किसी कहानी के शीर्षक जैसी? पर चौंकिये नही, इस तरह 'ड्रीम' या 'सपनो के गाव' सात-आठ साल पहले ही चुपचाप अस्तित्व मे आने लगे थे। गोकि अमरिकी प्रचार माध्यमो का ध्यान उन पर इतने वर्षों बाद अब जा रहा है।

इन अमरीकी युवाओ ने, जिनमे कुछ विवाहित, बच्चो वाले जोड़े भी हैं। अपनी वस्तियो का नाम आर्मेडिलो' नामक एक दक्षिण अमरीकी जन्तु के जीवन को प्रतीक बनाकर रखा है। आर्मेडिलो एक चींटीखोर जानवर है जो ऊपर के हवा पानी मे दूर जमीन मे बिल खोद कर रहता है और मौसम की मार पडते ही, या दुश्मन की आहट पाते ही अपने बिलो मे जाकर छिप जाता है। ऊपर का हवा-पानी आज की समृद्ध पाश्चात्य सभ्यता है। और दुश्मन है विज्ञान और उद्योग, जिन्होने हमारा सुख चैन छिन लिया है। ऐसा विश्वास है, 'चीटीखोरो का सपना' नामक गावो के निवासियो का।

'चीटीखोरों का सपना' के निवासियों ने आर्मेडिलो के हर व्यवहार को एक प्रतीक मानकर उसको एक नया अर्थ दिया है। मसलन दूसरे जानवरो से उसका दूर रहना सादगी, सन्तोष और अपने आप मे सम्पूर्णता की निशानी है। उसका 'रक्षाकवच' आधी-पानी और हमलों से वचाव का प्रतीक है।

सुखों से घिरी बेचैन जिन्दगी

'चीटीखोरो के सपना' के लोग भी इसी तरह की जिन्दगी जीना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि हर तरह की सुविधा-सम्पन्नता और वैभव के वावजूद हमारी सभ्यता का भावनात्मक पक्ष कमजोर

हुआ है। कहीं किसी को शान्ति नहीं, और जो है उसका सुख भोगे बिना, उसके लिये प्रकृति और ईश्वर का शुक्रगुजार हुए बिना, जो नहीं है उसे भी जल्दी से जल्दी पा लेने की अपनी कोशिश में आज का आदमी अपनी आत्मा की पहचान भी खोता जा रहा है। हम सब मन को छोड़ कर शरीर की सजावट मे लगे हुए हैं। ऐसे में हमें जरुरत है एक ऐसे 'रक्षा-कवच' की जो हमें 'स्टार वार' की कल्पना से दूर रख कर हमारे अस्तित्व को लुप्त होने से बचाये, और आधुनिकीकरण के नाम पर चल रहे प्रयोगो और तनावों से भी हमें दूर रखे। जरूरी यह भी है जब खतरा पैदा हो तब हम 'आर्मेडिलो' की तरह अपने को गेंद की तरह लुढ़काते हुए अपने-अपने 'बिलो' में घुस जाने की क्षमता पैदा करें। खतरा किस बात का ? खतरा आज की दुनिया मे अपने आदिम संस्कारो और आदिम पहचान को खो बैठने का। समस्या का हल है, आधुनिक समाज के विकल्प शहरों से दूर ऐसे छोटे-छोटे 'आर्मेडिलो गाव' जो अपने आप मे पूर्ण हों। और ऐसे ही गावो की स्थापना का प्रयोग कर रहे हैं अमेरिका के 'आर्मेडिलो-निवासी'।

एक आर्मेडिलो का कहना है कि आदमी आज जितना बेचैन और परेशान है उतना इतिहास मे वह पहले कभी नही था। उसकी लडाई दूसरो से तो है, अपने आप से भी है, जो अधिक खतरनाक है। प्रकृति, पहाडो, नदियो, जगल, फूलो और चिडियो की खूबसूरती का स्वाद भूल कर वह मनोरजन के नये, निहायत कृत्रिम आयाम ढूंढने मे लगा हुआ है। मनोरंजन के एक उत्तम माध्यम सिनेमा को भी, जिसके जरिये वह जीवन के और नजदीक जा सकता था, उसने सेक्स और हिंसा से लाद कर निहायत नकली और बेमानी बना डाला है। कुछ वर्षों में ही दो वडी लडाईया हुई, संस्कृतिया टूटी और फिर बनी, औरत-मर्द के सम्बन्धो मे न जाने कितने नये-नये नुक्ते कायम हुए। यहा की सभ्यता वहा गयी, वहा की यहा आयी। इन सारे परिवर्तनों और सक्रातियो के बावजूद आदमी की खुशियो का चीर सजा नही है, उसे हरा ही गया है। इसलिए हमारी विपदाओ का जवाब शिकागो नही, चीटीखोरो का गाव है।

शुरूआत तो कीजिये

आज के तेजी के साथ वढते हुए शहरी समाज मे विकसित और विकासशील देशो का आदमी अपने आप में एक विरोधाभास,

एक अप्रासंगिक कडी होकर रह गया है। और उसकी स्वाभाविक चेतना को भी कम्प्यूटर और मशीन-मानव के हवाले कर दिया गया है। सुखी पारिवारिक जीवन और स्वस्थ यौन-सम्बन्धों की भी आंच आयी है। आदमी कभी साहित्य और कला हो जाता है और कभी अर्थशास्त्र और विज्ञान, फिर भी कही भी उसकी कोई पहचान स्थापित नही हो पा रही है। साथ ही, वह कभी निहायत भौतिक हो जाता है, कभी निहायत मानवतावादी। उसकी करूणा समाप्त हो गयी है। और वह सन्देह तथा विश्वासहीनता के काले घेरे में जी रहा है। इन सबसे वचने के लिये वह नशे और खुले सेक्स का सहारा लेता है, जो उवकाई के साथ-साथ आत्म संहार की वृत्ति को वढा देता है। इसलिये विज्ञान की पहली संस्कृति उसे अव जहा ले जा चुकी है, वहां से वापिस आना तो मुश्किल है, किन्तु उसका एक विकल्प जरूर है— 'आर्मेडिलो ड्रीम' नामक ऐसे अनेक गांव वसाए जायें, जहा जाकर सभ्यता से ऊबे हुए लोग सुख और शान्ति से जी सकें।

एक आर्मेडिलो से सवाल पूछा गया कि इतनी वड़ी दुनिया मे एक दूसरे के प्रति अविश्वास और हथियारो की होड का जो जवरदस्त माहौल वन गया है, क्या उसे दस वीस गाव वसा कर मिटाया जा सकता है, तो उसने कहा,—"एक शुरूआत तो कीजिये, हो सकता है दो-चार पीढियो के वाद ये गाव ही सभ्यता के विकल्प सावित हों।"

एक अन्य आर्मेडिलो ने कहा,—"अव हो क्या रहा है, हमारे जीवन में? 'नेचर' से हमे तलाक मिला हुआ है। किसी से किसी की दोस्ती रही नही और हम सव अकेले-अकेले अलग-अलग जी रहे है। हमारा सामाजिक जीवन भी मुखौटो वाला हो गया है। पीढिया एक दूसरे को समझने मे असमर्थ हैं। व्यवहारों मे जहर घुला हुआ है, और हम सव एक असहनीय कडुवाहट की दुख भरी जिन्दगी जी रहे हैं। इस तरह तो सभ्यता की सारी उपलब्धियां एक तरह से वेकार ही तो हो गयी। तो हम क्या करें? हम सिर्फ यह करें कि शिकागो की सस्कृति और अट्टालिकाओ से दूर एक ऐसा जगत भी वनाए जहां जाकर कुछ लोगो को सुकून हासिल हो सकें। वह जगत हमारा ही होगा 'चीटीखोरो का सपना।'

और यह सच है कि अमेरिका मे आज इस तरह के न जाने

कितने गाव बस गये हैं । शुरू-शुरू मे तो लोगो ने उनमे कोई विशेष दिलचस्पी नही दिखाई, उन्हे 'पागलो के गाव' कहा, पर धीरे-धीरे वे उनके दार्शनिक पक्ष को समझने लगे । अब अमेरिका मे शायद ही कोई दिन हो जब उन गावो के निवासियो की जीवन शैली पर किसी अखबार मे कोई लेख न छपता हो, या उनके 'नेटवर्क' पर कोई प्रोग्राम न दिखाया जाता हो । लोगो को अब यह भी महसूस होने लगा है कि इन गावो मे रहने वाले लोग झूठे स्वप्नवादी नही, सभ्यता का विकल्प ढूंढ निकालने वाले जागरूक इन्सान हैं । इन गावो के लोग अपने को शहरो की 'पुश बटन' शैली की जिन्दगी से दूर रखते हैं । उनकी अपनी गाये हैं । उनके अपने अनाज के खेत हैं । उनकी डबल-रोटिया उनकी अपनी बेकरियो मे ही बनती हैं । मक्खन वे अपनी गायों के दूध से ही बनाते हैं । बाहर का डिब्बा बन्द खाना वर्जित है । उनके रोज के साथी हैं गाव वालो के अलावा घोडे, कुत्ते सूअर और मुर्गिया, जिन्हे वे पालते है और जिनके साथ उनका व्यवहार बराबरी का है । वे उनके सेवक भी हैं, साथी भी । न उन्हे बिजली की चाह है, न गरम पानी की । तेल के दीपक ही काफी है । रेडियो नही सुनते, टेलीविजन नही देखते, और बाहर की दुनिया से उनके नातों का सिर्फ एक बिन्दु है, अखबार जो डाक से आता है ।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन गावो से आदमी के जीवन और ससार की कोई समस्या हल नही होती, न ही इनसे शहरी सभ्यता को नष्ट कर देने का कोई नारा ही बुलन्द होता है । यह उनका मन्तव्य भी नही, उनका मकसद सिर्फ एक है—यदि आप ऊब गये हैं तो आइये, हमारे साथ रहिये हमेशा के लिये । और हमारे गाव जैसे ही और गाव भी बसाइये । उनका यही सन्देश उभरती पीढ़ी को भी है—क्या यह जरूरी है कि आप बड़े शहरो मे ही रह-कर सुखी रह सकते हैं । याद रखिये, उपभोक्ता सस्कृति की सम्मानहीन चूहा-दौडवाली जीवन शैली आपके बच्चों को भी शायद रास नहीं आयेगी । हो सकता है कि भावनात्मक रूप से वे भी उतने ही अनाथ हो जाये, जितने आज आप हैं । तो उनके सामने पेश कीजिये, चीटी-खोरो का सपना ।'

'हम कोई क्राति, कोई व्यापक परिवर्तन करना नही चाहते। कर भी नही सकते, पर हम यह जरूर कहेगे कि लक्ष्य सुख और शान्ति है तो एक रास्ता सपनो का गाव भी है ।"

समीक्षण ध्यान युग का समाधान

ऐसे एक नही, अनेक तथ्य हैं, जो यह प्रमाणित करते जा रहे हैं कि आज की विकसित सभ्यता अपने विकास के साथ एक तनाव-पूर्ण पर्यावरण का निर्माण करती जा रही है। आज के वायु-मण्डल में एक अन्त.स्पर्शी घुटन उत्पन्न होती जा रही है। किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि इस पर्यावरण अथवा घुटन से बाहर निकलने के लिये जितने प्रयास ऊपरी तौर पर किये जा रहे हैं, वे पूर्णतया सक्षम साबित नही हो रहे हैं।

समस्या तकनीकी—वैज्ञानिक विकास या बाह्य साधनो के अम्बार की ही नही है, जो कि उससे ऊब कर कही जंगलो में भगा जाय, और उनसे मुक्त हो लिया जाय। समस्या है मानसिक अशान्ति, बौद्धिक असन्तुलन एव आध्यात्मिक उलझनों की । तो समाधान भी वैसे ही अपेक्षित है। और वह होगा मानसिक वृत्तियों का समीकरण, सन्तुलन अथवा उदात्तिकरण। मनोवृत्तियो के सन्दर्भ में यही व्यवस्था देता है 'समीक्षण ध्यान'।

समीक्षण ध्यान एक ऐसी परिमार्जित सुलझी हुई साधना पद्धति है कि इसे सहज रूप मे एक सामान्य व्यक्ति से लेकर बड़े से बडा बुद्धिजीवी एवं श्री सम्पन्न व्यक्ति भी कर सकता है। समीक्षण ध्यान आत्म निरीक्षण अथवा अन्तरावलोकन की साधना पद्धति है, जिसके द्वारा साधक पर-द्रष्टा भाव से ऊपर उठ कर स्वद्रष्टा बनता है। अपनी समस्त वृत्तियो के सशोधन की ओर गतिशील होता है।

यह स्मरण रखने का विषय है कि समीक्षण ध्यान साधना केवल उर्ध्वमुखी-चेतना के लिये ही उपयोगी हो, ऐसी बात नही है। यह तो इसका मूलभूत लक्ष्य है, किन्तु इसकी अवान्तर उपलब्धि है व्यावहारिक जीवन का सन्तुलन। जैसे गेहू आदि धान्य की प्राप्ति हेतु खेती की जाती है, किन्तु भूसा-घास आदि अवान्तर उपलब्धियां सहज हो जाती हैं। खेती अवान्तर उपलब्धि के लिये नही, मूल उपलब्धि के लिये की जाती है। ठीक इसी प्रकार समीक्षण ध्यान का केन्द्रीय लक्ष्य है परमात्म भाव की उपलब्धि और उसी के लिये इस ध्यान साधना का निरूपण हुआ है, तथापि मानसिक सन्तुलन, व्यावहारिक जीवन का सन्तुलन आदि अवान्तर उपलब्धिया अयाचित ही प्राप्त हो जाती हैं।

अवान्तर उपलब्धियां

हम यह अच्छी तरह जानते है कि व्यावहारिक दृष्टि मे जीवन सचालन के लिये तन्मयता-एकाग्रता अथवा एकावधानता की कितनी अधिक आवश्यकता होती है ! एक कलाकार क्या बिना एकावधानता के कला मे प्रवीण हो सकता है ? एक डॉक्टर बिना एकाग्रता के ऑपरेशन (शल्य चिकित्सा) का कार्य कैसे सम्पन्न करेगा ? न्यायाधीश विवादास्पद विषयो का सम्यग् निर्णय बिना तन्मयता के कैसे करेगा ? रडार, कम्प्यूटर, रोबोट जैसे यन्त्रो का निर्माण क्या बिना अवधान के हो गया ? एक प्रोफेसर को अपने लेक्चर मे, एक गृहिणी को भोजन-बनाने मे, एक ड्राईवर को गाडी चलाने मे, एक सगीतज्ञ को लय बिठाने मे और एक गणितज्ञ को प्रश्न हल करने मे कितनी तन्मयता-एकाग्रता चाहिये । यह सामान्य व्यक्ति भी समझ सकता है । तात्पर्य यह है कि जीवन के प्रत्येक व्यवहार मे—चाहे वह व्यापार, कृषि या वैज्ञानिक अनुसधान का कार्य हो किसी-न-किसी मात्रा मे ध्यान आवश्यक होता है ।

समीक्षण ध्यान यही एकाग्रता अवान्तर उपलब्धि के रूप में प्रदान करता है । समीक्षण ध्यान अपनी प्रथम उपलब्धि के रूप मे चित्त चाचल्य पर विजय प्राप्त कराने वाला एक अमोघ उपाय है और अपनी परिपूर्णता मे इच्छित फल देने वाला कल्प वृक्ष है । ईश्वरीय शक्ति को अपने भीतर खीच लाने वाला लौह चुम्बक है । समीक्षण ध्यान योग का हृदय, साधना का मूल, ज्ञान की कुञ्जी परमात्म प्रेम का प्रवाह है । ध्यान एक प्रचण्ड ऊर्जा, उद्याम शक्ति का स्रोत है । हमारा निर्णय केवल इतना ही होना है कि इस शक्ति का उपयोग किस दिशा मे हो ।

आज सासारिक क्रियाओ मे जागतिक प्रवृत्तियो मे किसी सीमा तक एकावधानता अवश्य बढी है और उसके द्वारा उस क्षेत्र में उपलब्धियो के अनेक द्वार भी खुले हैं । किन्तु यह बताया जा चुका है कि इस बाह्य प्रवृतियो की अवधानता ने मनः सन्तुलन अथवा आत्म शान्ति के द्वार खोले नही, अवरुद्ध ही किये हैं ।

अब आवश्यकता इतनी ही है कि इस बाह्य एकावधानता

की दिशा को मोड दिया जाये । उसे अन्तरामि मुखी बना दिया जाय, जो व्यावहारिक सन्तुलन बनाने के साथ ही आत्म शान्ति प्रदान कर सके । इसी प्रक्रिया को हम समीक्षण ध्यान की सज्ञा प्रदान कर रहे हैं । यही ध्यान साधना हमे बाहर से भीतर की ओर मोड़ती है । चित्त को परमात्मा के साथ तन्मय बनाती है । स्वय से स्वयं का दर्शन कराती है । जिसे गीताकार ने कहा है—"ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानम् ।" अर्थात्–ध्यान के द्वारा स्वय मे स्वय का दर्शन होता है । वैदिक ग्रन्थ श्रीमद् भागवत् कहता है "ध्याने ध्याने तद्रूपतो ।" अर्थात् ध्यान के द्वारा परमात्म रूप तक पहुचा जाता है ।

एक जैनाचार्य ने अपने मौलिक ग्रन्थ 'योगसार' मे यहा तक कहा है—"वीतराग यतो ध्यामन् वीतरागो भवेत् भवी ।" अर्थात् "वीतराग परमात्मा के ध्यान मे तन्मय भव्यात्मा स्वय वीतरागी हो जाता है ।"

चित्त शक्ति और समीक्षण

इस रूप मे हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि ध्यान हमारी व्यावहारिक उपलब्धियो मे भी उपयोगी सिद्ध होता है और परमात्म दर्शन मे भी । ध्यान से चित्त शान्त-प्रशान्त बनता है, सहज स्थिरता प्राप्त होती है, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उन्नति का आवश्यक अंग है ।

चित्त एक ऐसी शक्ति है जो हमारे जीवन क्रम को एक स्वस्थ-व्यवस्थित दिशा प्रदान करती है । मानव जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में चित्त को स्वीकार किया गया है । यदि चित्त असन्तुलित है तो सारा जीवन क्रम ही अस्त-व्यस्त हो जाता है । अतः चित्त का सुदृढ, निर्मल, शक्तिशाली एव दीर्घकाल तक सत्य स्फुरण युक्त होना जीवन के लिये वरदान सिद्ध होता है ।

एक प्रतिष्ठित उद्योगपति, जिसने अपने जीवन मे लाखो-करोडो कमाए, वडे-वडे कारखाने चलाए, कपडे और चीनी के मिल चलाए और वहुत अधिक सम्मान प्रतिष्ठा प्राप्त की किन्तु इस प्राप्ति की उधेड़बुन अथवा चिन्ता मे उनका चित्त विक्षिप्त हो गया । वे 'मेण्टल केश' से पीड़ित

हो गये। उनकी निद्रा भंग हो गई। वे पागल हो गये। एक चित्त शक्ति के असन्तुलित हो जाने से उनका अस्तित्व ही मिट गया। वे जीते हुए भी मृतवत् जीवन जीने को बाध्य हो गये। यह सब क्यो हुआ ! एक चित्त के असन्तुलित हो जाने से एक चित्त शक्ति के आधार पर, उसी की मित्रता अथवा कृपा से जिसने देश-विदेश मे बहुत बड़ी प्रतिष्ठा के पाशे फेंके थे—व्यापार फैलाया था। उस एक शक्ति के रूठ जाने से सब कुछ चौपट हो गया।

इस रूप में यह समझा जा सकता है, चित्त शक्ति का कितना अधिक महत्त्व है। व्यवस्थित जीवन-क्रम के लिये चित्त ही सब कुछ है। चित्त चेतना की एक महानतम शक्ति है, उसकी मौलिक सम्पदा है। चित्त चेतना का ही अभिन्न रूप है। चित्त को काव्य-सृष्टाओ ने चिन्तामणि की सज्ञा दी है। चिन्तामणि मनोचिन्तित वस्तु प्रदान करने वाला तत्त्व है। इसी प्रकार चित्त हमे चिन्तन के अनुरूप बना देता है। जैसा चिन्तन वैसी जीवन शैली बनती है। मानव चित्त से ही शान्त, चित्त से ही भ्रान्त, चित्त से ही मेधावी, चित्त से ही बुद्धिमान, चित्त से ही कवि, चित्त से ही कलाकार, चित्त से ही सगीतकार, चित्त से ही योगी, चित्त से ही समाधिस्थ होता है। चित्त सकर्म आत्मा की एक नियन्त्रक शक्ति है। इसे साध लेने पर सब कुछ सध जाता है।

समीक्षण ध्यान इस प्रचण्ड शक्तिशाली चित्त को सन्तुलित उर्जस्विल बनाता है। चित्त के सन्तुलित होते ही साधना गहरी होती जाती है। और जागतिक व्यवहार व्यवस्थित हो जाते हैं। व्यवहारों के सन्तुलन के साथ ही जीवन तनाव मुक्ति की ओर अग्रसर हो जाता है। और इस प्रकार समीक्षण ध्यान साधना परमात्म दर्शन की भूमिका का निर्माण भी कर देती है।

सर्वस्व प्रदायी समीक्षण

समीक्षण ध्यान का अवान्तर उपलब्धियो वाला यह पक्ष भी इतना महत्त्वपूर्ण, सशक्त, सटीक एव सचोट है कि यह हमें अनेक विध तनावो से मुक्त रखने के साथ ही बहुत ऊचाइयो तक ले जाता है। यह बौद्धिक विकास के उस चरमान्त तक पहुचा सकता है जहा सभी

विवाद अतर्क्य हो जाते हैं या समाहित हो जाते हैं। यह भावात्मक दृष्टि से उस भावुकता का निर्माण कर देता है कि पारिवारिक, सामाजिक, व्यावसायिक एव राजनैतिक सभी तनावो से मुक्ति दिलाने के साथ ही उन-उन क्षेत्रो मे इतना प्राविण्यपूर्ण सामंजस्य स्थापित कर देता है कि समूचा जीवन आनन्द से भर जाता है।

समीक्षण ध्यान का मनोवैज्ञानिक अध्ययन एवं अनुशीलन एक विद्यार्थी को प्रखर प्रतिभा सम्पन्न बना सकता है, जो उसे सदा सर्वोत्तम-सर्वश्रेष्ठ छात्र के पद तक पहुंचा दे। एक वकील, एक डॉक्टर, एक प्रोफेसर, एक व्यापारी, एक वैज्ञानिक, एक कलाकार एवं एक सगीतज्ञ इस ध्यान विधा के द्वारा अपने-अपने क्षेत्र मे इतनी ऊंचाइयों का स्पर्श कर सकता है कि उसके आगे उसकी महत्त्वाकाक्षा ही नही रहे।

समीक्षण ध्यान वह सर्वस्व प्रदायी साधना है, जो मानव को वह सब कुछ प्रदान कर सकती है, जिसके द्वारा मानव मन परम सन्तुष्टि, परम उपलब्धि एव परम आनन्द को प्राप्त कर लेता है। वास्तव मे चित्त चाचल्य अथवा मानसिक असन्तुलन ही मानव के दुःखों का, तनावो का एव विक्षोभो का मूल कारण है। समीक्षण ध्यान अपने प्रारम्भिक साधना काल मे ही चित्त-चाचल्य एव मानसिक असन्तुलन को समाप्त कर देता है। वह ऐसी जीवन शैली का निर्माण करता है जो परस्पर विरोधी स्थितियो मे सामजस्य स्थापित कर सके। टकरावो-सघर्षों में समन्वय साध सकें और किसी भी प्रकार की अति मे मानसिक सन्तुलन बनाए रखा जा सके।

जीवन क्रम-बद्ध व्यवस्थित एवं सन्तुलित होगा, उसमे कही तनाव-टकराव अथवा विक्षोभकता नही होगी, तो उसमें सहज ही अध्यात्म अथवा धर्म का प्रवेश हो जाएगा। वैचारिक आघात-प्रत्याघातो वाली संघर्षशील जीवन शैली अध्यात्म की ओर उन्मुख नही हो सकती है। वही वह उन आघात-प्रत्याघातो के प्रतिशोध में ही उलझी रहती है। उसे गहराई मे जाने का अथवा अध्यात्म के चिन्तन का अवकाश ही नहीं मिलता है।

इस रूप में समीक्षण ध्यान अपनी अवान्तर उपलब्धियों के रूप में उस परमोच्च अध्यात्म की भूमिका का ही निर्माण करता है, जो कि उसका मूल लक्ष्य है।

हम जरा इस साधना में उतरें, गहराई मे पैठें और फिर अनुभव करे कि यह साधना कितना अह्लाद एवं आनन्द भर देती है अपने भीतर। यह बताया जा चुका है कि समीक्षण ध्यान साधना केवल वैचारिक प्रणाली ही नही है, यह क्रियात्मक विधि है, अनुशीलन की प्रक्रिया है, जिसे अनुभूति के आधार पर ही समझा या आत्मसात किया जा सकता है। प्रस्तुत प्रकरण मे उसके दार्शनिक किंवा वैचारिक पक्ष को ही स्पष्ट किया जा रहा है। अत. यह भ्रान्ति उत्पन्न हो सकती है कि इसके द्वारा इतनी ऊंचाइयों तक पहुचा जा सकता है। किन्तु पहुंचने की प्रक्रिया क्या है ? इस भ्रान्ति का समाधान साधना विधि के अध्ययन-अनुशीलन के द्वारा स्वत. हो जायेगा। प्रस्तुत मे हमारा समीक्षण ध्यान की उपयोगिता एवं महत्ता-मौलिकता को ही समझने का प्रयास है।

समीक्षण ध्यान-अमृत घट

समीक्षण ध्यान वह अमृत का झरना है, जो हमारी जीवन शैली को ही नही, समस्त चेतना को अमरत्व से भर देता है। चारों ओर समस्त वातावरण को अमृतमय बना देता है। आवश्यकता है इस अमृत के सागर में डुबकी लगाने की—अन्तर में पैठने की।

चलें, भ्रान्तियो एव तनावो के इस युग मे स्वयं का समीक्षण करे, स्वयं के भीतर पैठे और अपने हृदय घट मे भरे अमृत का पान कर अमर बन जाए –शरीर की दृष्टि से नही, चैतन्य रमणता की दृष्टि से।

यह स्वयं से स्वयं का समीक्षण ही हमे तनाव मुक्ति व्यावहारिक सन्तुलन और अन्त मे परमात्म मिलन अथवा परमात्म साक्षात्कार तक ले जायेगा।

३ ध्यान: भेद-प्रभेद आगमिक सन्दर्भ में

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि समीक्षण का अर्थ सम्यक् रूप से देखना या समता पूर्वक देखना होता है। देखने का सम्बन्ध दृश्य तत्त्व से ही होता है। दृश्य जैसा होगा, वैसा ही दृष्टि मे आयेगा। शुभ दृश्य अथवा अशुभ दृश्य-दृष्टि मे दोनो आएंगे। उनकी उपयोगिता-अनुपयोगिता का निर्धारण द्रष्टा साधक चेतना पर निर्भर करता है। दर्शन पाप का-अशुभ वृत्तियो का भी होता है और पुण्य—शुभ वृत्तियो का भी। इसी दृष्टि से ध्यान को व्याख्यायित अथवा निरूपित करते हुए आगमकारो ने विचार धारा के केन्द्रिकरण अथवा एक दिग्गामी प्रवाह को ध्यान कहा है। वह केन्द्रिकरण अथवा दिशा प्रवाह शुभत्व मे भी हो सकता है और अशुभत्व मे भी।

इसी दृष्टि से ध्यान की दो मूल धाराए मानी गई है, एक अशुभ और दूसरी शुभ। आत्मा को वन्धन—सकलेशो की ओर ले जाने वाली विचार धारा अशुभ ध्यान है और ससार के वन्धनो से मुक्ति की दिशा मे ले जाने वाली धारा शुभ ध्यान है। यहा एक को अशुभ अथवा बाह्य समीक्षण और दूसरी को शुभ अथवा अन्तर समीक्षण कह सकते हैं।

समीक्षण ध्यान का साधक देखता दोनो को है, किन्तु उसका लक्ष्य अशुभ अथवा बाह्य ध्यान से ऊपर उठ कर अन्तर समीक्षण मे गतिशील होने का रहता है। वह अशुभ से निवृत्त और शुभ मे प्रवृत्त होता है। उसका दृष्टिकोण बाह्य विकास नही, अन्तर प्रकाश होता है। इसी आधार पर वह समीक्षण की पराकाष्ठा परमात्म दर्शन तक पहुचता है।

यहा आगम वर्णित ध्यान की दोनो धाराओ के भेद-प्रभेदों का उनके मूल रूप मे वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसके आधार पर

समीक्षण ध्यान साधक अशुभ धारा से बच कर शुभ धारा मे अवगाहन कर सके । चूकि समीक्षण ध्यान साधना आगमिक ध्यान साधना का ही अग है, अस्तु ध्यान के आगम वर्णित भेद-प्रभेदो द्वारा समीक्षण की ही उभय धाराओ का परिचय प्राप्त होगा ।

आगम एव आगमेतर ग्रन्थो मे ध्यान की विस्तृत भेद प्रभेदात्मक विवेचना स्थानाग सूत्र, उववाई सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, तत्त्वार्थ सूत्र, ज्ञानार्णव, योग सार एवं योग शास्त्र आदि ग्रन्थो मे उपलब्ध होती है । यद्यपि उपर्युक्त ग्रन्थो मे ध्यान की एक रूपात्मक विवेचना अथवा भेद-प्रभेदो की एकरूपता नही मिलती है, तथापि जो कुछ विवेचना उपलब्ध होती है वह ध्यान साधक के लिये अतीव उपयोगी ही नही, सुपर्याप्त भी है ।

प्रकाण्ड विद्वान आचार्य शुभचन्द्र ने अपने आकार ग्रन्थ 'ज्ञानार्णव' मे ध्यान निरूपण प्रारम्भ करते हुए कहा है—"ध्याता ध्यान तथा ध्येय, फल चेति चतुष्टय ।

इति सूत्र समासेन सविकल्पं निगृह्यते ॥१॥

ध्यान साधना मे चार कोटिया अपेक्षित है—१ ध्याता, २ ध्यान, ३ ध्येय और ४ फल ।

१ **ध्याता**—ध्यान करने वाला साधक । जिसके हृदय मे ध्यान साधना का सकल्प उठा है ।

२ **ध्यान**—चित्त स्थिर करके साधनारत बनने की प्रक्रिया अथवा एक दिशा मे चिन्तन का प्रवाहित होना ।

३ **ध्येय**—ध्यान अथवा चिन्तन का विषय भूत पदार्थ—जिस पर चिन्तन केन्द्रित होता है, वह तत्त्व ।

४ **फल**—ध्यान के द्वारा प्राप्त होने वाला एकाग्रता रूप परिणाम ।

उपर्युक्त चारो तत्त्व ध्यान के प्रमुख अग हैं । चूकि एक दिशा प्रवाही चिन्तन धारा का ध्यान कहा गया है, अत. चिन्तन के अनुरूप ही ध्येय, ध्यान क्रिया एव उसकी फल श्रुति होती है ।

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, विचारो का आत्मान्तर्गामी प्रवाह अथवा विचारो का किसी एक विषय मे केन्द्रीकृत होना ध्यान है। तदनुसार ध्यान को दो भागो मे बाटा जा सकता है। प्रशस्त-शुभ एवं अप्रशस्त-अशुभ। विचारो का जो प्रवाह आत्मानुलक्षी अथवा अध्यात्म से अनुप्राणित हो, उसे प्रशस्त ध्यान की कोटि मे और जो विचार शृ खला ससारानुलक्षी अथवा राग-द्वेषादि निम्न वृत्तियो से अनुप्राणित हो, उसे अप्रशस्त ध्यान की कोटि मे लिया जाता है। मुख्यतया विचार दो ही प्रकार के होते है—सत्-असत्, अच्छे-बुरे अथवा शुभ-अशुभ। स्पष्ट शब्दो मे कहे तो विचार ऊर्जा का अध्यात्म-उन्नायक अन्तर्मुखी प्रवाह प्रशस्त ध्यान है, और भौतिकतानुबन्धी बहिर्मुखी प्रवाह अप्रशस्त।

अनन्त द्रष्टा प्रभु महावीर ने ध्यान विवेचना की इन दो वृहत् शाखाओ को चार भागो मे विभक्त कर पुनः एक-एक को अनेकानेक टहनियो के रूप मे विस्तार दिया है—

"चउविहे झाणे पण्णते तंजहा अट्टऽझाणे।
रूद्दज्झाणे धम्मज्झाणे सुक्कज्झाणे ॥"

अर्थात ध्यान के चार प्रकार है—

(१) आर्त्त ध्यान। (२) रौद्रध्यान। (३) धर्म ध्यान। (४) शुक्ल ध्यान।

आपेक्षिक दृष्ट्या आदि के दो अप्रशस्त एव शेष दो प्रशस्त ध्यान की कोटि मे आते हैं।

उपर्युक्त चारो प्रकार के ध्यानो की विस्तृत विवेचना अनेक टीका ग्रन्थो मे उपलब्ध होती है। जिसका सक्षेप सार इस प्रकार है।

आर्त्त ध्यान के भेद

आर्त्त ध्यान के चार भेदो का वर्णन उववाई सूत्र मे निम्न रूप में मिलता है—

अट्टे झाणे चउविहे पण्णते, तजहा—१ अमणुण्णसपओगसंपउत्ते, तस्स विप्पओग सतिसमण्णा गए याविभवति, २ मणुण्णसप्पओग-

सपउत्ते, तस्स अविप्पओग सति समणा गए याविभवति, ३ आयकसपओगसपउत्ते तस्स विप्पओग सतिसमणा गए यावि भवति, ४ परिभूसिया कामभोगसपउत्ते तस्स अविप्पओग सति समणा गए यावि भवति ॥
आर्त्त ध्यान का स्वरूप-निरूपण करते हुए वाचक मुख्य श्री उमास्वाति ने भी कहा है—

आर्त्तम मनोज्ञाना सम्प्रयोगे तद् विप्रयोगाय स्मृति. समन्वाहार । तत्त्वार्थ सूत्र अ. ९ सू. ३१

आर्त्ति का अर्थ है पीडा, सकलेश अथवा दु ख, उससे जो उत्पन्न हो वह है—"आर्त्त" । दु ख जनित सक्लिष्ट परिणामो की जो एकावधानता है, उसे आर्त्तध्यान कहते है । दु ख की उत्पत्ति के मुख्य चार कारण है । अत आर्त्तध्यान जो दु ख निमित्तक है, स्वभावत: चार कारणो पर अवलवित हो जाता है ।

(१) अनिष्ट वस्तु का संयोग ।
(२) इष्ट वस्तु का वियोग ।
(३) प्रतिकूल वेदना ।
(४) काम-भोग अवियोग चिन्ता ।

(१) अनिष्ट वस्तु का संयोग—जब अनिष्ट वस्तु का सयोग हो तब तद् भव दु ख से व्याकुल आत्मा उसे दूर करने के लिये जो निरन्तर चिन्ता करती है, वह अनिष्ट वस्तु का सयोग आर्त्तध्यान है ।

(२) इष्ट वस्तु का वियोग—उक्तरीत्या किसी प्रिय पदार्थ के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति हेतु अनवरत चिन्ता करना इष्ट वियोग आर्त्त-ध्यान है ।

(३) प्रतिकूल वेदना—किसी भी प्रकार की शारीरिक अथवा मानसिक रूग्णता के उत्पन्न होने पर पीडा से व्याकुल होना एव उससे मुक्त होने के लिये सतत् चिन्ता करना, रोग-चिन्ता प्रतिकूल वेदना आर्त्त-ध्यान है ।

(४) काम–भोग अवियोग चिन्ता—इन्द्रियजनित विषय सुख सदाकाल बने रहे, इनका कभी भी वियोग न हो। किन-किन उपायों से ये स्थायी बने रहे, इस विषयक चिन्ता तथा भोगो की उत्कृष्ट लालसा के कारण अप्राप्य योग्य सामग्री को प्राप्त करने की तीव्र अभिप्सा अथवा अपने शुद्ध चारित्रिक अनुष्ठान को भोग प्राप्ति के दांव पर लगा देना, निदान अथवा कामभोग अवियोग चिन्ता आर्त्त-ध्यान है।

आर्त्तध्यान के चार लक्षण

आर्त्त ध्यान के उपर्युक्त भेदो की तरह ही जैन आगमो मे तत्तद् चिन्ता के समय होने वाले दैहिक परिवर्तन रूप लक्षणो का भी विवेचन मिलता है, तदनुसार आर्त्त ध्यान के चार लक्षण बताये गये हैं–

अट्टस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणापण्णत्ता, तजहा—१ कदणया, २ सोयणया, ३ तिप्पणया, ४ विलवणया।

(१) आक्रन्दन करना।

(२) शोचन।

(३) अश्रुपात करना।

(४) क्लेशयुक्त वचन।

(१) आक्रन्दन करना—तीव्र स्वर से रोना, चीखना, चिल्लाना आदि।

(२) शोचन—शोकाकुल होकर चेहरे पर दीन भाव प्रकट करना, किसी चिन्ता मे अत्यन्त व्यग्र हो जाना आदि।

(३) अश्रुपात करना—किसी कष्ट के आ पड़ने पर आखों से आंसू ढलकाना।

(४) क्लेश युक्त वचन—अपने अथवा दूसरे के चित्त मे सक्लेश एव अशान्ति उत्पन्न हो, इस प्रकार के वचनों का प्रयोग करना आर्त्त ध्यान का लक्षण है।

इस प्रकार सक्षेप में इन्द्रियजनित सुख ही आर्त्त ध्यान का

मुख्य कारण बनता है। वैसे आर्त्तध्यान का विषय-क्षेत्र बहुत विस्तृत है। केवल रोना या चिन्तन करना ही आर्त्तध्यान नही है, अपितु भौतिक सुखों के प्रति अति उत्कट लालसा एवं मनोज्ञ वस्त्राभूषण आदि पदार्थों पर मोह, आसक्ति भाव का प्रादुर्भाव भी आर्त्तध्यान ही है।

आर्त्तध्यान का फल

आर्त्तध्यान के भेद-प्रभेद एवं लक्षण के साथ ही उसके फल-परिणाम का विचार भी आवश्यक है। आर्त्तध्यान के चार भेदों के समान उसके फल भी चार ही प्रकार के माने गये हैं।

१. आर्त्तध्यानी व्यक्ति अनवरत अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने के लिये चिंतनशील रहता है। उसी के प्रति तन्मयता रहने से अन्य साधना-संयम-तप आराधना आदि क्रियाए नही हो पाती है। परिणामत उसका समय कर्म बन्धन के असद्विचारो मे ही अधिक लगता है। परिणामत. वह दु ख-सक्लेश को ही प्राप्त करता है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि कामना अथवा चिन्ता करने मात्र से इष्ट वस्तु का सयोग नही हो जाता है। इसी दृष्टि से आगमकारो ने कहा है—

"कामे य पत्थेमाणा अकामा जन्ति दोग्गइ।" अर्थात् अप्राप्त पदार्थो की कामना-कामना मे व्यक्ति उन पदार्थों को प्राप्त किये बिना ही दुर्गति का महमान हो जाता है। कदाचित् पूर्व के सत्कर्मों से मनुष्यादि शुभ-गति भी मिल जाती है तो अगहीनता, दारिद्रय कुरूपता आदि के कारण दुःखी बना रहना पडता है। इस रूप मे अप्राप्त पदार्थ को प्राप्त करने रूप कामना वाला आर्त्तध्यान दुःख चिन्ता एवं तनाव की परम्परा खडी करता है। क्या इसे शुभ फल माना जा सकता है?

२ आर्त्तध्यान का दूसरा फल है—प्राप्त कामभोग समग्री में मूर्छाजन्य वेदना। यद्यपि मानव जन्म मे प्राप्त कामभोग से अनन्त गुणाधिक भौतिक सुख देव योनि मे भोग लिये गए है, किन्तु आर्त्तध्यानी यह सोचता है कि यह योग मुझे बडी कठिनाई से मिला है। और इस रूप में वह बहुत आसक्ति भाव मे जीता है। आसक्ति ही

दुःखो की जननी है । विषय सेवन मे आसक्त जीव इस जन्म में भी शूल, गर्मी, सुजाक, चित्तभ्रम आदि अनेक रोगों से पीडित हो जाता है और आसक्ति के कारण नीची गति का बन्ध कर दु ख की परम्परा को बढ़ाता जाता है । पदार्थों की तीव्र लालसा मे मन के पुनः पुनः दौडते रहने से क्लिष्ट कर्मों का बन्ध हो जाता है । परिणामतः अगले जन्म मे सम्बोधि की प्राप्ति दुर्लभ हो जाती है ।

३ आर्त्तध्यानी व्यक्ति सदा अधिक श्रेष्ठ या सुन्दर वस्तु की खोज में रहता है । उसे अपनी प्राप्ति पर कभी सन्तोष नहीं होता । जो प्राप्त है उससे अधिक सुन्दर-आकर्षक-नयनाभिराम, सुखप्रद पदार्थ कहां मिल सकता है—इस चिन्ता मे उसका मन आकुल व्याकुल बना रहता है । उसके मिल जाने पर भी मन शान्त नही होता । वह उससे भी दर्शनीय-श्रवणीय या भोग्य वस्तु की खोज मे लगा रहता है और इस प्रकार आत्म साधना की ओर उसका कभी ध्यान नही जाता । इस प्रकार आर्त्तध्यान का यह भी फल मिलता है कि वह साधना से वञ्चित होकर सदा तृष्णा से पीडित रहता है ।

४ आर्त्तध्यानी कामभोगों की तीव्र लालसा से पीडित रहता है । वह सदा अनुपम सौन्दर्य की शोध मे लगा रहता है । और अनैतिक आचरणो के कारण लोकनिन्दा एव राजदण्ड का भागी होता है । वह इस जीवन मे भी दु खी होता है और अगले जन्म में भी दु खी ।

निष्कर्ष मे आर्त्तध्यान के द्वारा प्रतिपल नितनूतन दु ख की परम्परा ही बढती है । सुख का लेश भी नही मिलता । इस रूप मे आर्त्तध्यान का परिणाम दु ख, दौर्मनस्य, चिंता एव व्यग्रता के रूप में मिलता है ।

(२) रौद्र ध्यान

रौद्र ध्यान को परिभाषित करते हुए तत्त्वार्थ सूत्रकार ने कहा है ।

"हिंसा अनृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्योरौद्रयविरत देशविरतयोः ।"
तत्त्वार्थ ९-३६

जिसका चित्त क्रूर एवं कठोर हो, वह रूद्र और उस व्यक्ति का ध्यान रौद्र है। जिस विचार परिणति मे क्रोध अथवा क्रूरता का प्राबल्य हो। अथवा दूसरो को मारने, पीटने, लूटने, ठगने एव संत्रस्त करने की भावना जिस चिन्तन के मूल मे हो, ऐसे कुविचार युक्त ध्यान को रौद्रध्यान कहते हैं। आर्त्तध्यान की तरह ही उसके कारणो के आधार पर रौद्रध्यान के भी चार भेद किये गए है। हिंसा करने, असत्य बोलने, चोरी करने व प्राप्त विषयों को सम्भाल कर रखने की वृत्ति से क्रूरता व कठोरता उत्पन्न होती है तथा इन्ही कारणो से जो अनवरत चिन्ता होती है, उसे क्रमश, (१) हिंसानुवन्धी, (२) मृषानुबधी, (३) स्तेयानुवन्धी तथा (४) सरक्षणानुबन्धी रौद्रध्यान कहते हैं।

(१) **हिंसानुबन्धी**—किसी प्राणी को मारने, पीटने, क्रोधावेश मे बाधने, जलाने आदि किसी भी प्रकार से किसी प्राणी को संत्रस्त करने के क्रूर परिणामो का समावेश हिंसानुवन्धी रौद्रध्यान मे होता है।

(२) **मृषानुबन्धी**—कठोर व मर्म भेदक वचनों के प्रयोग द्वारा किसी को अपमानित करना तथा किसी के हृदय को चोट पहुंचाना, सत्य का, वस्तु का अपलाप करना अर्थात् सत्य एव उत्तम सिद्धान्तों को झुठलाने के लिये निरन्तर मिथ्या-भाषण-सम्बन्धी चिन्तन करना तथा असत्य योजनाओ के निर्माण मे विचारो को सलग्न रखना मृषानुबन्धी रौद्रध्यान कहलाता है।

(३) **स्तेयानुवन्धी**—तीव्र आसक्ति अथवा लोभ के वशीभूत होकर किसी की वस्तु को अपहरण करने, चुराने अथवा किसी को लूट कर दुःखी करने सम्बन्धी विचार स्तेयानुवन्धी रौद्रध्यान के अन्तर्गत आते है।

(४) **संरक्षणानुवन्धी** भौतिक सुख एव विषय-भोग के साधन-धन, सम्पत्ति आदि भौतिक पदार्थ तथा मान, पद प्रतिष्ठा आदि की रक्षा का सतत चिन्तन तथा उपर्युक्त साधनो की उपलब्धि मे बाधक तत्त्वो को दबाने, अलग हटाने तथा मारने आदि का चिन्तन संरक्षणानुवन्धी रौद्रध्यान है।

रौद्रध्यान के चार लक्षण—

आर्त्तध्यान के समान ही रौद्रध्यान के भी दैहिक प्रवृत्ति अथवा अभिव्यक्ति रूप चार लक्षणो का विधान है—

(१) ओसन्न दोष । (२) बहुल दोष ।
(३) अज्ञान दोप । (४) आमरणान्त दोष ।

(१) **ओसन्न दोष**–हिंसा मृषा आदि दुष्प्रवृत्तियो में से किसी एक प्रवृत्ति में अत्यधिक तल्लीन रहना ।

(२) **बहुल दोष**–हिंसादि चारो दुष्प्रवृत्तियो मे मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से दत्तचित्त रहना ।

(३) **अज्ञान दोष**–स्वय की अज्ञानता अथवा असत् शास्त्रों के अभिकथको के आधार पर हिंसादि अधार्मिक वृत्तियों की उत्तरोत्तर वृद्धि मे संलग्न रहना ।

(४) **आमरणान्त दोष**-जीवन पर्यन्त क्रूर, रौद्र तथा अनिष्टकारी विचारों मे ही प्रवृत्त रहना ।

सक्षेप मे रौद्रध्यान वह चिन्तन विशेष है, जिसमें दूसरो के सुख-दु:ख की अपेक्षा नही रखते हुए सदा अनिष्ट का ही चिन्तन होता है । यद्यपि रौद्र शब्द क्रूरता का अभिव्यजक है, फिर भी रौद्रध्यान-चारो कषायो से सम्बन्धित है । रौद्रध्यान की भयकरता आर्त्तध्यान से अधिक है । आर्त्तध्यान की निमित्तता भी रौद्रध्यान मे हो सकती है । अनिष्ट सयोग के होने पर अनिष्ट निमित्तक रौद्रध्यान हो सकता है । साथ ही आर्त्तध्यान प्रशस्त भावो मे भी पाया जाता है जबकि रौद्रध्यान मे संक्लिष्ट भावो का प्राबल्य होता है अतएव आर्त्तध्यान के धारक प्राणी आगम की भाषा मे छठवें गुणस्थान तक हो सकते हैं, जबकि रौद्रध्यान पाचवें गुणस्थान तक ही पाया जाता है ।

रौद्रध्यान का फल

चूंकि रौद्रध्यान क्रूरतम विचारो का परिपाक है, अत: उसका फल भी क्रूरतम ही होता है । रौद्रध्यानी सदा हिंसा-असत्य-छल-प्रपंच

आदि कुत्सित विचारो मे ही लीन रहता है--उसका मानस क्रूर परिणामो की कालिख से ही पुता रहता है, अतः उसके प्रतिक्षण उसी प्रकार के कठोर कर्मो का बध होता रहता है।

रौद्रध्यानी अपने क्लिष्ट विचारो के कारण धर्म की ओर अभिमुख नही होता है। कदाचित् लोक लज्जावश धर्म करता भी है, तो वह एक दिखावा मात्र होता है, जिससे उसको शुभ-पुण्य कर्मों का बध नही होता है। पाप कर्मों का ही बन्ध होता है।

यहा भी उसे क्लिष्ट परिणामो से चिंतित पदार्थ नही मिल पाते है, केवल हिसा असत्य जनित क्रूर कर्म ही पल्ले पड़ते हैं। साथ ही हिंसादि करते हुए पकड़ा जाय तो राजदण्ड के रूप मे छेदन-भेदन एव मृत्युदण्ड तक मिलता है। यहा से वच भी जाय तो कर्मोदय पर नरकगामी होता है और वहा पर भयकर यातनाओ को भोगना पड़ता है। स्वय के शरीर का छेदन-भेदन होता है। विविध प्रकार की नारकीय वेदनाओ को भोगना पड़ता है। यह परम्परा फिर जन्म जन्मान्तर तक चलती रहती है। दु.ख भोगते हुए फिर क्लिष्ट विचार उत्पन्न होते हैं और फिर नये अशुभ कर्म बधते चले जाते है। इस प्रकार एक जीवन का रौद्रध्यान अनेक जन्मो की परम्परा को बिगाड़ देता है। उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति भी दुर्लभ हो जाती है। उसका अनन्त ससार बढ जाता है।

उपर्युक्त दोनो प्रकार के ध्यान चूंकि कषायानुबंधित तथा ससार हेतुक हैं, अतएव हेय है, त्याज्य है। किन्तु आर्त्तध्यान के अभिव्यजक लक्षण, रोना आदि आध्यात्मिक भूमिका की प्रारम्भिक स्थिति से ऊपर चढ़ने में कुछ-कुछ आध्यात्मिक भूमिकाओ तथा अपेक्षया उपादेय भी हैं। जैसे कि सुदेव, सुगुरु, सुधर्म के प्रति जो प्रशस्त राग है, वह उनके सुख और कुशल-क्षेम के लिये है और आत्मा को उर्ध्वगामिता की ओर आकर्षित करता है। इसी दृष्टिकोण से श्रावको के विशेषणों मे भी कई स्थानो पर जैनागमो मे "अट्ठिमिज्जा धम्म पेमाणुरागरत्ता", विशेषण उपलब्ध होते हैं।

(३) धर्म ध्यान

धर्म ध्यान की परिभाषा करते हुए तत्त्वार्थ सूत्रकार ने कहा है-

"आज्ञाऽपाय विपाक संस्थान विचयाय धर्म मप्रमत्तसयतस्स ॥" तत्त्वार्थ ६-३७॥

आत्म-धर्म सम्वन्धी एकाग्र चिन्तन धर्मध्यान है। वस्तु के स्वरूप-सम्बन्धी तत्त्व विचारण, वीतराग सर्वज्ञ प्रभु की आज्ञा तथा आत्म-उत्थान सम्वन्धी गूढ चिन्तन धर्मध्यान है। जिस चिन्तन मे श्रुत धर्म व चारित्र धर्म से अनुगत विचारणा हो, आस्रव, वन्ध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष-सम्वन्धी सच्चितन हो तथा हेय, ज्ञेय एव उपादेय का सम्यक् मनन हो, वह धर्मध्यान है। अपने अनन्त आराध्य देव और गुरु के गुण चिन्तन का समावेश भी धर्मध्यान मे ही हो जाता है।

धर्म ध्यान के चार पाये, चार लक्षण, चार अवलम्वन एव चार अनुप्रेक्षा इस प्रकार सोलह भेद किये गये हैं। चार पाये निम्न प्रकार से हैं—

"धम्मे झाणे चउविहे चउप्पडायारे पण्णते तंजहा"—आणा विजए, अवाय विजए, विवागविजए, सठाण विजए।

आगमिक दृष्टि से अध्यात्मोन्मुख चितन धाराओ की अपेक्षा धर्मध्यान को भी चार भागो—पायो मे विभक्त किया गया है—

(१) आज्ञा विचय। (२) अपाय विचय।
(३) विपाक विचय। (४) सस्थान विचय।

(१) **आज्ञा विचय**—इसका आशय है-वीतराग प्रभु द्वारा निर्दिष्ट सिद्धान्तो की आत्मिक उत्थान के लिये जो अनुमति है, उस अनुमति को यथातथ्य उपादेय मानकर उसके प्रति वहुमान की भावना करना तथा यह मानना कि जिनदेव द्वारा कथित तत्त्व विवेचन परम सत्य है। जिनेश्वर प्रभु ने आत्म-साधना के लिये जो द्वादशांगी वाणी का प्रणयन किया, वह पूर्णतया सत्य है। इतनी सूक्ष्म, गूढ एवं तल-स्पर्शी विवेचना अन्य शास्त्रो मे नही मिलती, जितनी कि जिनागमो

में उपलब्ध है । अत: यह स्याद्वाद संयुक्त होने से परमार्थ प्रकाशिका है, इस प्रकार का निरन्तर चिन्तन करना आज्ञा विचय धर्म ध्यान है ।

(२) **अपाय विचय**—अपाय का अर्थ है दोष, अथवा पाप । दोषो के स्वरूप, उनकी उत्पत्ति एव निवारण के लिये मनोयोग देना अर्थात् राग-द्वेष, कषाय, मिथ्यात्व आदि आस्रव और उनके फलस्वरूप प्राप्त होने वाले सासारिक दु:खो की परम्परा का विचार करना तथा दोषों के सेवन से होने वाली आत्म-पतन की परिणति का विचार कर उनसे बचने के उपायो का मनोयोग पूर्वक चिन्तन करना अपाय विचय धर्म ध्यान है ।

(३) **विपाक विचय**—कर्म के शुभाशुभ फल को विपाक कहते हैं, और तत्सम्बन्धी चिन्तन विपाक विचय धर्म ध्यान है। किस कर्म का क्या फल होता है । आत्मा कभी अपने शुभ कर्मों के फलस्वरूप [illegible] ऐश्वर्य एव भौतिक सुख मे किस प्रकार आसक्त हो जाता है [illegible] वही (आत्मा) जीव अशुभ कर्मोदय के कारण नारकीय [illegible] अवस्थाओ को पाकर कितने भयकर दु.खो के दल-दल में [illegible] है । कैसी विचित्र कर्म परिणति है ? यद्यपि आत्मा [illegible] स्वरूप शुद्ध एव निर्मल है, फिर भी अनादि काल [illegible] से मलीन बनी हुई चेतना भी कैसी विकृति [illegible] का अनुभव करती है, आदि कर्म गति पर [illegible] विपाक से कैसे मुक्ति मिल सकती है और [illegible] उपलब्धि कैसे हो सकती है, आदि [illegible] विचय धर्म ध्यान के अन्तर्गत आता है ।

(४) **संस्थान विचय**—[illegible] । जो चिन्तन दैहिक एव सम्पूर्ण [illegible] गतिशील हो, वह संस्थान [illegible] है ।

चेतना के [illegible] विश्लेषण के लिये [illegible] अधो, उर्ध्व तथा [illegible] तिगत स्वरूप का [illegible]

परिभ्रमणशीलता का विचार सम्पूर्ण लोक को अगाध समुद्र के रूप में मानकर धर्म को उत्तरणीय नौका के रूप मे कल्पित कर चिन्तन एव तदनुरूप आचरण रूपी जलयान की सहायता से ससार-समुद्र से पार मुक्ति नगर तक पहुंचा जा सकता है। इस प्रकार का तात्त्विक गूढ चिन्तन संस्थान विचय धर्म ध्यान है।

धर्म ध्यान के चार लक्षण

(१) **आज्ञा रूचि**—जिनागमो के विधि-निषेध परक विविध विधानो पर रूचि होना।

(२) **निसर्ग रूचि**—बिना किसी उपदेश के स्वभाव से ही वीतराग सिद्धात एवं धर्म के प्रति रूचि उत्पन्न होना।

(३) **सूत्र रूचि**—आगमो में प्रतिपादित सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व पर श्रद्धा का जागृत होना।

(४) **अवगाढ़ रूचि**—जैनागमो के तल स्पर्शी अध्ययन के साथ उस पर प्रगाढ़ श्रद्धा का उत्पन्न होना।

धर्मध्यान के चार अवलम्बन

धर्म ध्यान की साधना में प्रवृत्त साधक के लिये चार प्रकार के अवलम्बनो का संकेत भी आगमो मे उपलब्ध होता है। जैसे किसी भवन की दूसरी तीसरी मंजिल पर चढ़ते समय, सीढ़िया पार करते हुए रस्सी का सहारा लिया जाता है, अथवा वृद्ध पुरुष मार्ग मे चलते हुए लकड़ी का अवलम्बन लेते है, उसी प्रकार धर्म ध्यान के साधक के लिये चार अवलम्बन वताए गए है—

धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि आलम्बणा पण्णत्ता तंजहा—वायणा, पुच्छणा, परियट्टणा धम्म कहा।

(१) वाचना, (२) पृच्छना
(३) परावर्तन (४) धर्म कथा।

वाचना—

ध्यान साधना के लिये तत्सम्बन्धी अध्ययन, चिन्तन, मनन की अपेक्षा होती है। अध्ययन जितना गहन होगा ध्यान उतना ही अच्छा लगेगा। अस्तु ध्यान के अवलम्बन के रूप में अध्ययन–वाचन आदि पर बल दिया गया है। यहां चार अवलम्बनो मे प्रथम अवलम्बन है—'वाचना'। वाचना का शाब्दिक अर्थ होता है—किसी भी ग्रन्थ का पठन-पाठन करना। किन्तु यहा वाचना शब्द लाक्षणिक अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है। यहा वाचना शब्द से आत्म साधना के उत्प्रेरक आगम ग्रन्थो का गुरु मुख से अर्थ पूर्ण पठन करना है। ऐसे ग्रन्थो का पठन–पाठन करना जो ध्यान साधना को अधिक से अधिक पुष्टि प्रदान कर सके, 'वाचना' है।

यह वाचना गुरु मुख से अर्थात् आगम ज्ञान के अधिकारी विद्वान साधकों के द्वारा होनी चाहिये। वह भी सूत्र अर्थ और तदुभय रूप। अज्ञानी अथवा अल्पज्ञानी से ली हुई आगम वाचना साधक को अपने विशुद्ध मार्ग से भटका देती है—अर्थ का अनर्थ कर देती है। अतः वाचना योग्य अधिकारी गुरुजनों के श्रीमुख से लेना चाहिये। ऐसी वाचना ही ध्यान साधना का पुष्ट अवलम्बन बन सकती है।

वाचना का दूसरा अर्थ है आगमादि उच्च ग्रन्थो का स्वय पठन-अध्ययन करना। उनके अर्थ पर चिन्तन करना एव जीवन मे अनुशीलन करना और तद् द्वारा ध्यान को पुष्ट करना।

पृच्छना—

आगम अथवा आगमेतर किसी भी ग्रन्थ का मनन पूर्वक अध्ययन करते समय कोई विषय समझ में नही आने पर गुरु अथवा वाचनाचार्य को जिज्ञासा दृष्टि से कुछ पूछना शका—समाधान करना पृच्छना है। शंका–कुशकाओ से परिवृत्त मन ध्यान साधना की गहराई मे प्रवेश नही कर सकता है, अतः जिज्ञासाओ-प्रश्नों के समुचित समाधान हेतु पृच्छना को ध्यान के अवलम्बन के रूप मे स्वीकार किया है।

किन्तु पृच्छना विनय पूर्वक होनी चाहिये और जिज्ञासा वृत्ति के साथ होनी चाहिये । उद्दन्डता पूर्वक अविनय भाव से, अथवा कुतुहल की दृष्टि से की गई पृच्छना ध्यान का अवलम्बन नही, ध्यान विघातक ही होती है ।

परिवर्तना—

सीखे हुए अथवा पढे हुए ज्ञान का पुन: पुन: पुनरावर्तन करना 'परिवर्तना' अथवा 'परावर्तन' है । आधुनिक काल में मतिमान्द्य के कारण ज्ञान का 'रिविजन' पुनरावर्तन नही होता है तो वह बहुत शीघ्र विस्मृत हो जाता है । अत: साधक के लिये यह आवश्यक है कि वह अधीत ग्रन्थों का वार-वार पारायण करे अथवा ध्यान साधना में की उन-उन विधियों-प्रक्रियाओं को दोहराता रहे ।

ज्ञान अथवा ध्यान के पुनरावर्तन से उनका परिपाक तो होता ही है, साथ ही नित नई स्फुरणाएं भी होती है । प्रभु महावीर ने अपनी अन्तिम देशना उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है—

"परियट्टणाए वजणाइं जणयइ,
वजण लद्धि च उप्पाएइ ।"

अर्थात् ज्ञान के पुन: पुन आवर्तन से अक्षरानुसारिणी लब्धि उत्पन्न होती है । उसके प्रभाव से अक्षर या पदो के देखने मात्र से उनसे सम्वन्धित अन्य अनेक अक्षरों या पदो का ज्ञान हो जाता है । विना सीखे ज्ञान मे भी प्रवेश होने लगता है ।

किन्तु यह परावर्तन तोतारटन्त के समान नही होना चाहिये तथा विना उपयोग के शून्य चित्त से नही होना चाहिये । सतत् सावधानी पूर्वक मनन के साथ किया गया परावर्तन ही ध्यान का अवलम्बन वन सकता है ।

धर्म कथा

ध्यान साधना के लिये यह आवश्यक है कि साधक का उपयोग सतत् शुभ कार्यो मे लगा रहे । उसकी मानसिक, वाचिक एवं कायिक सभी क्रियाएं शुभत्व से अनुप्राणित हो । वाणी के शुभ

व्यापार की दृष्टि से निरर्थक वचन प्रयोग नही करके धर्म-चर्चा अथवा धर्म-प्रवचन किया जाय । इसे ही 'धर्म-कथा' कहा गया है । जैन वाङमय मे धर्म कथा का बहुत अधिक महत्त्व माना गया है या यों कहे, धर्म कथा के आधार पर ही वीतराग वाणी हम तक चली आ रही है ।

आगमों में धर्म कथा के चार मुख्य और चार-चार उनके अवान्तर ऐसे सोलह भेद बताए गए हैं । यहा उनका सामान्य स्वरूप ही प्रस्तुत किया जा रहा है ।

(१) आक्षेपणी

"आक्षिप्यते–मोहं निराकृत्य चारित्र प्रति ।
समाकृष्यते श्रोताऽनयेति – आक्षेपणी ।"

"स्थाप्यते सत्पथे श्रोता, ययासाऽऽक्षेपणी कथा ।
यथेषु कारं कमला, वती धर्मेव्यतिष्ठित् ।।१।।"

श्रोता को राग-द्वेष और मोह आदि से हटाकर चारित्र की ओर आकर्षित करने वाली कथा आक्षेपणी कथा कहलाती है । यह कथा इस प्रकार से करनी चाहिये कि श्रोता के मन में हूबहू चित्र अंकित हो जाय और उसका असर जल्दी खत्म न हो । जैसे महारानी कमलावती ने महाराजा इक्षुकार को सम्बोधित किया ।

(२) विक्षेपणी

विक्षिप्यते—सम्यग्वाद गुणोत्कर्ष प्रदर्शनेन मिथ्यावादा दपसा-यति श्रोताऽनयेति विक्षेपणी । उक्तञ्च—

"सम्यग्वाद प्रकर्षेण, मिथ्यावादस्य खण्डनम् ।
यया विक्षेपणी सैव, यथाकेशी प्रदेशिनम्" ।।२।।

श्रोता को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग मे लाने का उपदेश विक्षेपणी कथा कहलाता है । जो श्रद्धा से या चारित्र से चलित परि-णाम वाला हो, उसे पुनः सद्वोध देकर श्रद्धा और सयम मे स्थिर करने के लिये या कुमार्ग में स्थित को सुमार्ग मे लाने के लिये यह

कथा की जाती है। जैसे—केशी श्रमण द्वारा प्रदेशी राजा प्रबुद्ध हुआ।

(३) संवेगनी

संवेद्यते–संसारा सारता प्रदर्शनेन मोक्षाभिलाषा उत्पद्यतेऽनयेति संवेगनी। उक्तञ्च—

यस्याः श्रवण मात्रेण, मुक्ति वाञ्छा प्रजायते।
सवेगनी यथा मल्ली, षड्नृपान प्रत्यबोधयत् ॥३॥

स अर्थात् सीधा और अच्छा वेग उत्पन्न करने वाली अर्थात् श्रोता को वैराग्य की ओर वढाने वाली कथा संवेगनी कथा कहलाती है। जैसे—मल्ली भगवती ने छ. राजाओ को सम्वोधित किया।

(४) निर्वेदनी

निर्वेद्यते–विषयभोगेभ्यो विरज्यते श्रोताऽनयेति निर्वेदनी, उक्तञ्च—

यदाऽऽकर्ण मात्रेण, वैराग्य मुपजायते।
निर्वेदनी यथा शालि-भद्रो वीरेण वोधितः ॥४॥

संसार से उदासीन वनाने वाली कथा निर्वेदनी कथा कहलाती है। संवेगनी कथा मे ससार का यथार्थ स्वरूप दर्शाया था। और निर्वेदनी में संसार से निवृत्त होने की प्रेरणा की जाती है। जैसे—शालिभद्रकुमार वीर प्रभु की देशना से प्रवुद्ध हुआ।

धर्मध्यान की चार भावना

स्वरूपोन्मुख चेतना का ध्यान "धर्मध्यान" होता है। अतः आत्मविकास मे इसकी प्रारम्भिक भूमिका रहती है। धर्म ध्यान की विविध धाराओ व भावनाओ मे वहती हुई चेतना आत्म-सिद्धि के सोपान तक पहुंच जाती है। अतएव धर्मध्यान के विश्लेषण मे उच्च भावनाओ का सहज ही महत्त्वपूर्ण स्थान हो जाता है। धर्मध्यान में प्रवाहित विचार-शृंखला को चार भागो में विभक्त किया गया है, जिन्हें चार भावनाओं के नाम से पुकारा गया है—

(१) अनित्य भावना । (२) अशरण भावना ।
(३) एकत्व भावना । (४) ससार भावना ।

(१) **अनित्य भावना**–ससार के समस्त पदार्थ, गृह, कुटुम्ब, पारिवारिक जन, शरीर एव सम्पत्ति आदि की अनित्यता–नश्वरशीलता का चिन्तन करना । समस्त संयोग, वियोग मूलक होते हैं. अत. जो कुछ उपलब्ध है, उसका वियोग अवश्यभावी है, फिर इन पर ममत्व एव आसक्ति क्यो की जाय, इस प्रकार की भावना के माध्यम से धर्म क्षेत्र मे प्रगति करना "अनित्य भावना" है ।

(२) **अशरण भावना**–ससार का कोई भी पदार्थ आत्मा के लिये शरणभूत नही हो सकता है । जन्म जरा और मृत्यु से भयभीत तथा शारीरिक एव मानसिक रोगो से पीडित प्राणी को इस संसार मे धर्म के अतिरिक्त और कोई आश्रय अथवा शरण नही हो सकता । अतः ससार रूपी समुद्र मे भटकते प्राणी के लिये धर्म ही परित्राता हो सकता है, इस प्रकार धर्म-शरण के अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थ को आश्रय न मानना ही "अशरण भावना" है ।

(३) **एकत्व भावना**–"एगोहं नत्थि में कोई" इस आगम वाक्य के आधार पर अपने एकत्व का अनुचिन्तन तथा इस सम्पूर्ण जगत् मे अपने परिपूर्ण विकास में मुख्यतया अपने आपका योगदान आदि से अन्त तक साथ रहता है । अन्य चैतन्य आत्माओ का अमुक अवस्थान में अमुक सीमा तक सहयोग होने पर भी अन्तिम परिणति की उपलब्धि स्वय की आत्म जागृति पर ही निर्भर है । इस अपेक्षा से मैं अपना आश्रय अकेला ही हूं, यहां मेरा कोई नही है, मैं न किसी का हूं । इस प्रकार परभाव से ऊपर उठकर स्वभावमें रमण करना "एकत्व भावना" है ।

(४) **संसार भावना**—संसार कैसा विचित्र है ? यहा प्रत्येक आत्मा दूसरे आत्माओ के साथ अनन्त वार सम्वन्ध कर चुका है । कभी भाई पुत्र वन जाता है, तो कभी पुत्र पिता की सज्ञा ले लेता है, वहिन-मा वन जाती है तो कभी पत्नि मा का रूप ले लेती है । जो आज प्रिय पुत्र दिखाई दे रहा है, वह कभी जानी दुश्मन भी रह चुका

है । यही नही, जो आज सृष्टि की सुन्दरतम मानवाकृति मे दिखाई दे रहा है वही अनेक बार कीट, पतंग और निगोद-कायिक निकृष्टतम योनियो मे उत्पन्न हो चुका है । इस प्रकार ससार की विचित्रता का धारा प्रवाही चिन्तन और मोक्ष की एकरूपता का चिन्तन "ससार भावना" के अन्तर्गत आता है ।

इस प्रकार धर्म ध्यान को आगम के पृष्ठो पर विविध रूपों मे विविध दृष्टिकोणो से व्याख्यायित किया गया है, चूकि-चेतना के उर्ध्वमुखी प्रवाह का यह प्रमुख सोपान है, अतः मुमुक्षु-साधक के लिये यह नितान्त उपादेय है । धर्म ध्यान की उपादेयता ध्येय के प्रति तदाकारता के लिये भी नितान्त वाछनीय है । साधक धर्म ध्यान की जितनी गहराई में पहुंचता है, वह आत्मा के उतना ही सन्निकट होता हुआ अपने भीतर मे प्रवेश पाता हुआ चला जाता है । इसके लिये आवश्यक है ध्येय के प्रति तल्लीनता ।

धर्म ध्यान का फल

चेतना की ओर उन्मुख धारा ही धर्मध्यान है, अतः इसका सीधा फल है आत्मा मे या आत्मिक आनन्द मे रमण करना । किन्तु वर्तमान साधको का ध्यान जितना चाहिये उतना अधिक निर्मल एव सुदृढ नही होता है, अतः इसके द्वारा आत्मिक आनन्द कम एव भौतिक सुख अधिक मिलता है ।

आत्मिक आनन्द के लिए कर्म-निर्जरा की आवश्यकता होती है, जबकि भौतिक-इन्द्रिय जन्य सुख के लिये पुण्य बन्ध की । चूंकि धर्म ध्यान की सामान्य प्रक्रिया से पुण्य बन्ध अधिक होता है निर्जरा कम, अतः आत्मिक आनन्द के स्थान पर भौतिक सुख-पुण्य फल विशेप मिलता है । तथापि आर्त्त एवं रौद्रध्यान की अपेक्षा यह फल सुख प्रद एव उपादेय माना गया है । यही मोक्ष सुख की भूमिका का निर्माण करता है ।

(४) शुक्लध्यान

जो ध्यान आत्मा की शुक्लता या निर्मलता का प्रेरक हो, अर्थात् आत्मा पर लगे हुए कर्म मैल को नष्ट करके आत्मा को निर्मल

बनाता हो; वह शुक्लध्यान कहलाता है । शुक्लध्यान का प्रारम्भ चेतना के केन्द्रीकरण से होता है । जब चित्त वृत्तिया ध्यान में मुख्य वृत्या बाहर के सभी अवलम्बनो को छोड़कर केवल आत्मानुलक्षी बनती है और स्वात्मलीनता का स्थिरत्व बढ़ने लगता है, उस समय की ध्यान-धारा शुक्ल ध्यान की सज्ञा पाती है ।

आगमों मे कहा है—

'सुक्के झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पन्नत्ते । तजहा—

पुहुत्तवियक्के सवियारी, एगत्तवियक्के अवियारे, सुहुमकिरिय अप्पडिवाई, समुच्छिन्नकिरिए अणियट्टी ।

शुक्ल ध्यान के भी अन्य ध्यानो की तरह चार भेद किये गये है, जो इसके चार पाये भी कहलाते हैं ।

(१) पृथकत्व वितर्क सविचार ।
(२) एकत्व वितर्क अविचार ।
(३) सूक्ष्म क्रियाऽप्रतिपात्ति ।
(४) व्यूपरत क्रिया निवृत्ति या समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति ।

आदि के दो ध्यानो का आधार एक है, अर्थात् प्रथम दो शुक्ल भेदों के आरम्भक पूर्व ज्ञान धर (श्रुतज्ञान विशेष) आत्माए होती है । अतः ये दोनों ध्यान वितर्क अर्थात् श्रुतज्ञान सहित होते हैं । वितर्क की समानता होते हुए भी दोनो मे कुछ वैपम्य भी है । वह यह कि पहले मे पृथकत्व-भेद है, जबकि दूसरे मे एकत्व-अभेद । इसी प्रकार पहला सविचार है, जबकि दूसरा निर्विचार । इसी दृष्टि से इन दोनों के व्युत्पत्तिमूलक नामो मे भी अन्तर पड़ गया है ।

(१) पृथक्त्व वितर्क सविचार[1]

"जब कोई ध्यान करने वाला पूर्वधर हो, तब पूर्वगत श्रुत के आधार पर और जब पूर्वधर नही हो तो अपने मे सम्भावित श्रुत

---

१. तत्त्वार्थ विवेचन–अ ९ सूत्र. ३९—४५

के आधार पर किसी भी परमाणु आदि जड या आत्म रूप-चेतन, ऐसे एक द्रव्य मे उत्पत्ति, स्थिति नाश, मूर्त्तत्व, अमूर्तत्व आदि अनेक पर्यायो का द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक आदि नयो से भेद-प्रधान चिन्तन करता है। और सम्भव श्रुतज्ञान के आधार पर एक द्रव्य रूप अर्थ पर से दूसरे द्रव्य रूप अर्थ पर या द्रव्य रूप, अर्थ पर और शब्द पर से अर्थ पर चिन्तन की प्रवृत्ति करता है, तथा मन आदि किसी भी एक योग को छोड़कर अन्य योग का अवलम्बन ग्रहण करता है, तब यह ध्यान पृथ-कत्व वितर्क सविचार कहलाता है। कारण यह है कि इसमे वितर्क-श्रुतज्ञान का अवलम्बन लेकर किसी भी एक द्रव्य मे उसके पर्यायो का भेद (पृथकत्व) विविध दृष्टियो से चिन्तन किया जाता है और श्रुत-ज्ञान को अवलम्बित करके एक अर्थ पर से दूसरे अर्थ पर, एक शब्द पर से दूसरे शब्द पर, अर्थ पर मे शब्द पर शब्द पर से अर्थ पर तथा एक योग से दूसरे योग पर सयमित-संचारित किया जाता है।"

(२) एकत्व वितर्क अविचार

उपर्युक्त विवेचन से विपरीत किसी भी पर्याय एव द्रव्य में अथवा योग मे परिवर्तन के बिना किसी एक द्रव्य अथवा पर्याय का स्थिरता पूर्वक चिन्तन करना एकत्व वितर्क अविचार "शुक्ल ध्यान" है। इसमें शब्द, अर्थ, व्यजन अथवा योगो से सक्रमण नही होता। इसमें एकत्व, अभेद प्रधान चिन्तन होता है। एकत्व वितर्क अविचार मे प्रवेश के बाद आत्मा मे स्थिरत्व आ जाता है, और फलस्वरूप केव-लज्ञान, केवलदर्शन की उपलब्धि होती है। उक्त दोनों ध्यानो मे चेतना के प्रथम भेद प्रधान ध्यान मे अभ्यस्त हो जाने पर ही द्वितीय अभेद प्रधान ध्यान की योग्यता आती है। जैसे मत्र प्रयोग से मन्त्रवादी, शरीर के विभिन्न भागो मे फैले हुए विष को एकत्र कर पहले डक वाले मुख्य केन्द्र पर ले जाता है, वैसे ही सम्पूर्ण जगत् के विभिन्न विषयो मे भटकते हुए मन को पहले ध्यान के द्वारा एक केन्द्र पर स्थिर किया जाता है। स्थिरता के दृढ हो जाने पर मन की समस्त चचल वृत्तियां एवं विचार स्वत. ही शान्त हो जाते हैं और मन एक दम निष्प्रकम्प बन जाता है, जिसका चरम परिणाम होता है, ज्ञान के सम्पूर्ण आव-रणों का विलय और चेतना के अनन्त ज्ञान-गुण का प्राकट्य अर्थात् सर्वज्ञता की उपलब्धि।

(३) सूक्ष्म क्रियाऽप्रतिपात्ति

शुक्ल ध्यान की उपर्युक्त दोनो प्रक्रियाएं सर्वज्ञता की उपलब्धि के पूर्व की हैं, जबकि अन्तिम दोनो विधियां सर्वज्ञता (केवलज्ञान) की उपलब्धि के पश्चात् ही पायी जाती है। जब सर्वज्ञ प्रभु का निर्वाण-काल निकट होता है, तब अन्तरमुहूर्त पूर्व अर्थात् तेरहवे गुणस्थान के अन्तिम क्षणो मे ध्यान का तीसरा भेद प्राप्त होता है। ध्यान की इसी धारा में योग-निरोध की क्रिया होती है। वस्तुतः जब सर्वज्ञ भगवान योग निरून्धन क्रम के अन्त मे सूक्ष्म शरीर का आश्रय लेकर शेष अन्य योगो का पूर्ण निरोध कर देते है, उस समय की वह ध्यान धारा ही सूक्ष्म क्रिया प्रतिपात्ति ध्यान कहलाती है। चूंकि, उसमे केवल सूक्ष्म योग क्रिया ही शेष रहती है तथा इस ध्यान-धारा से पुन. निवृत्ति-पतन सम्भव नही है, अत. इसका गुण मूलक सूक्ष्म क्रियाऽप्रतिपात्ति नाम सार्थक हो जाता है।

(४) समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति

शैलेशी अर्थात् पर्वत के समान निष्प्रकम्प अवस्था के प्राप्त होने पर जब श्वास-प्रश्वास आदि दैहिक क्रियाएं भी अवरूद्ध हो जाती हैं और आत्म प्रदेश अकम्प बन जाते है, तत्कालीन सहज ध्यान धारा "समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति" ध्यान कहलाती है। इस ध्यान मे मानसिक, वाचिक एव कायिक योग सम्बन्धी स्थूल एव सूक्ष्म सभी क्रियाओं का उच्छेद हो जाता है। अत इसमे सभी आश्रवो का निरोध होकर सर्व कर्मों का क्षय हो जाता है और सर्व सवर-रूप निवृत्ति अर्थात् मुक्ति प्राप्त हो जाती है। उक्त शुक्ल ध्यान के तृतीय चतुर्थ भेद मे किसी भी प्रकार के श्रुतज्ञान का अवलम्बन नही लिया जाता, अतः ये दोनो निरालम्बन भी कहलाते है।

वस्तु तत्त्व मे शुक्ल ध्यान आत्मा की विशुद्धयमान परिणति मे होने वाली सहज धारा है, जिसमे चेतना स्वत ही विकासमान होती है।

उक्त शुक्ल ध्यान के प्रथम भेद मे मानसिक, वाचिक एवं कायिक तीनों योग पाये जाते हैं। द्वितीय भेद मे कोई एक योग पाया जाता है। तृतीय मे केवल काम योग और चतुर्थ मे योग का सर्वथा अभाव पाया जाता है।

शुक्ल ध्यान के चार लक्षण

अन्य ध्यानो की तरह शुक्ल ध्यान के अभिव्यंजक लक्षणो का निर्देश भी आगमो मे मिलता है । शुक्लध्यान का प्रमुख लक्षण है—अविच्युति अर्थात् किसी भी प्रकार के उपसर्गों के आने पर भी ध्यान से विचलित नही होना । चार विशिष्ट अवस्थाओ के आधार पर ध्यान के चार लक्षण बनते है ।

(१) विवेक, (२) व्युत्सर्ग,
(३) अन्यथा और (४) असम्मोह ।

(१) **विवेक**—आत्मा को देहादि समस्त सांसारिक जड सम्वन्धो से भिन्न मानने रूप विवेक की अभिव्यक्ति ।

(२) **व्युत्सर्ग**—शरीर, आदि सभी उपाधि का भावात्मक दृष्टि से सर्वथा त्याग रूप लक्षण का प्राकट्य ।

(३) **अव्यथा**—मानुषिक अथवा दैविक किसी भी प्रकार के परिषह या उपसर्गों के आने पर अविचल अनुद्विग्नता का प्रादुर्भाव ।

(४) **असम्मोह**—गहन विषयो मे अथवा देवादि के द्वारा की जाने वाली छलना मे भी सम्मोहित नही होना ।

शुक्लध्यान के चार आलम्बन

धर्मध्यान के समान शुक्लध्यान के भी चार अवलम्बन बताए गये हैं ।

"सुक्कस्स ण झाणस्स चत्तारि आलम्वणा पण्णता । तंजहा-खंती, मुत्ती, अज्जवे, अद्दवे ।"

शुक्लध्यान के चार आधार हैं—(१) क्षमा, (२) निर्लोभता, (३) सरलता और (४) नम्रता ।

(१) क्षमा

वैसे भी ध्यान साधक का जीवन क्षमा की जीवन्त मूर्ति होता है । तथापि शुक्ल ध्यान की उच्च सावना पर आरोहण करने के लिये क्षमा गुण मौलिक आधार का कार्य करता है । शुक्लध्यान का साधक

कितनी ही विकट-विक्षोभक विद्वेषकारी परिस्थितियो में भी अपने क्षमा गुण से विचलित नही होता हैं। शुक्लध्यानी साधक पुद्गलों के स्व-भाव का चिन्तन करता है कि इनके परिणमन इसी रूप मे होने वाले हैं फिर क्रोध करके आत्मा को क्यो मलिन किया जाय। इस प्रकार शुक्लध्यान-साधक अपनी साधना मे क्षमा को आधार वना कर चलता है।

निर्लोभता

शुक्लध्यान का द्वितीय आलम्बन है निर्लोभता। लोभवृत्ति ही संसार बन्धन का मूल कारण है। शुक्लध्यानी मुक्ति साधना का सजग प्रहरी होता है। वह लोभवृत्ति से सदा दूर रहता है। वह सोचता है कि यह आत्मा अनेक वार अनन्त ऐश्वर्य का स्वामी बन चुकी है। वडे-वडे राज्य एव दैविक सुखो की अधिकारी वन चुकी है फिर भी इसे तृप्ति नही हुई। अतः लोभ कभी सुख नही दे सकता। लोभ-ममत्व-मूर्च्छा का परित्याग ही आत्मिक आनन्द के द्वार तक पहुं-चाता है। शुक्लध्यानी इस निर्लोभ वृत्ति को अवलम्बन वनाता है।

आर्जव

आर्जव का अर्थ है ऋजुता—सरलता। शुक्लध्यानी सहज स्व-भाव से ही सरल होते हैं। प्रभु महावीर ने अपनी अन्तिम देशना मे कहा है—

'सोही उज्जुय भूयस्स, धम्मो शुद्धस्स चिट्ठइ।" अर्थात् ऋजु-भूत-सरल आत्मा मे ही धर्म टिकता है। शुक्ल ध्यान की साधना उच्च साधना है। छल-कपट अथवा माया के जाल विछाने वाला धर्म साधना नही कर सकता। छल तो एक प्रकार का शल्य है—काटा है, जो वार-वार हृदय मे चुभन पैदा करता रहता है। वह ध्यान साधना में नही जाने देता है। अत शुक्लध्यानी आर्जव—ऋजुता को साधना के अवलम्बन के रूप मे स्वीकार करता है।

मार्दव

मार्दव का अर्थ है मृदुता अथवा नम्रता। अहकार साधना ही नही, प्रत्येक विकास का वाधक है। अतः साधना के लिये अथवा

शुक्ल ध्यान की साधना मे गति करने के लिये अहंकार विजय की प्रथम आवश्यकता होती है । शुक्ल ध्यान साधक विचार करता कि इस संसार मे अहंकार करने जैसा है ही क्या ? जितने गुण अथवा जितनी विशेषताएं हम में हैं, जिनके लिये हम अहकार करते हैं, उनसे अनन्त गुणाधिक विशेषताओं वाली महान आत्माएं ससार मे भरी पड़ी है। अभियान ही तो हमे विकास के मार्ग में बढने से रोक देता है। शुक्ल ध्यानी तो आत्म विकास का उच्चतम पथिक होता है । वह अभिमान नही, विनम्रता एवं कोमलता को ही धारण करके अपनी साधना मे मृदुता-विनयशीलता को आधार बनाता है ।

शुक्ल ध्यान की चार भावनाएं

धर्मध्यान की तरह ही शुक्ल ध्यान मे प्रावीण्य प्राप्त करने के लिये उसकी चार भावनाओ का निर्देश किया गया है—

(१) अपायानुप्रेक्षा । (२) अशुभानुप्रेक्षा ।
(३) अनन्त वर्तितानुप्रेक्षा । (४) विपरिणामानुप्रेक्षा ।

(१) **अपायानुप्रेक्षा**—कपाय एवं आस्रव के दुष्परिणाम तथा उनसे होने वाले दुःखो का चिन्तन करना तथा ससार-वृद्धि के कारण-भूत पाप वृत्तियों के विषय में चिन्तन करना अपायानुप्रेक्षा अथवा आस्रव भावना कहलाती है ।

(२) **अशुभानुप्रेक्षा**—संसार के अशुभ परिणामो एव पदार्थों की निःसत्वता एव मलीनता का विचार करना अशुभानुप्रेक्षा या अशुचि भावना कहलाती है ।

(३) **अनन्त वर्तितानुप्रेक्षा**—अनन्त काल से संसार में विविध स्थानो पर होने वाले अनन्त जन्म-मरण एव भव-भ्रमण का चिंतन करना वर्तितानुप्रेक्षा अथवा लोक स्वरूप भावना कहलाती है ।

(४) **विपरिणामानुप्रेक्षा**—संसार की समस्त वस्तुओ के विविध परिणमन, शुभ से अशुभ, सयोग से वियोग तथा सम्पूर्ण भौतिक सुखो की नश्वरशीलता-अस्थिरता का विचार करना विपरिणामानुप्रेक्षा या अनित्य भावना कहलाती है ।

शुक्ल ध्यान की उपर्युक्त चारो भावनाओ के माध्यम से विचारो की उच्च श्रेणी मे आरूढ आत्मा कर्म मालिन्य को नष्ट करती चली जाय, तो मुहूर्त मात्र मे आराधक से आराध्य, आत्मा से परमात्मा की स्थिति मे परिणत हो, परम आनन्द की अनुभूति का रसास्वादन कर लेती है ।

ध्यान की उपर्युक्त नाति विस्तृत विवेचना का यहा एक ही प्रयोजन है कि आज का मुमुक्षु साधक, साधना की विभिन्न विधियो मे दिग्भ्रान्त न होकर सही दिग्बोध प्राप्त करे । आज अधिकाश साधक साधना के अनेकानेक मार्गों मे से किसी एक समुचित मार्ग के चयन के अभाव मे दिग्मूढ होकर इतस्तत भटक रहे हैं । ऐसी स्थिति मे अनन्त द्रष्टा प्रभु महावीर द्वारा प्रदत्त अनुभूतिमूलक ध्यान मार्ग साधको की दृष्टि-पथावतारी बने तो साधक तद्द्वारा साध्य के सर्वोत्कर्ष को प्राप्त हो, आर्त्त ध्यान, रौद्रध्यान जैसे अप्रशस्त ध्यानो से बचकर धर्म, शुक्ल जैसे प्रशस्त ध्यानो की ओर उन्मुख बने तथा यह बोध हो कि प्रशस्त ध्यानमार्ग ही एक ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा साधक अपनी परम उपलब्धि के द्वार तक यथाशीघ्र पहुच सकता है ।

शुक्ल ध्यान का फल

शुक्ल ध्यान की साधना, ध्यान की सर्वोच्च साधना है अत: उसका परिणाम फल भी सर्वोत्तम ही होता है । शुक्लध्यानी साधक कर्म बन्धनों से मुक्त होकर सदा आत्म रमणता मे आगे गति करता जाता है । और अपनी चरम परिणति मे सर्वथा बन्धन मुक्त होकर अजर-अमरता की स्थिति परम मुक्ति को प्राप्त कर लेता है । सदा-सदा के लिये अनन्त आनन्द-परम शान्ति अथवा अव्याबाध सुख को प्राप्त कर लेता है ।

४ समीक्षण ध्यान आगमिक विधियां

यह सुविदित है कि ध्येय के प्रति तद्रूप अथवा तदाकार होना ध्यान है। समीक्षण ध्यान हमारे समक्ष वही व्यवस्था प्रदान करता है। आगमेतर ग्रन्थो मे ध्यान की पदस्थादि विधिया बताई गई है। वे समीक्षण ध्यान साधना की पद्धति से भिन्न नही है। मन के ध्येय प्रति तल्लीन होने मे गहरे समीक्षण की अपेक्षा होती है। किन्तु-ध्येय के प्रति तद्रूप तदाकार हो जाना सहज नही है। तद्रूप होने के लिये कोई एक निश्चित विधि ही अपनाई जा सकती है। क्योकि ध्यान का किया जाना उतना सगत नही है जितना होना। अर्थात् चेतना की इस अनुभूति जन्य अवस्था मे चित्त वृत्तियो का लीन हो जाना ध्यान है, न कि हम जबरन चित्त वृत्तियो को एक विषय से हटाकर किसी अन्य विषय मे लगा ले। हा, यह सत्य है कि प्रारम्भ मे पर भाव मे अभ्यस्त बिखरी हुई वृत्तियो को इस ओर मोड़ने मे कुछ हद तक बल भी लगाना पडता है। यदि प्रारम्भ मे वैसा बल न लगाया जाय तो वे वृत्तियां अनादिकालीन व्यसनों मे लगी रहने के कारण व्यसनो को ही अपना स्वभाव बना चुकी होती है। यदि उस वक्त बल पूर्वक नही मोडा गया तो वही तल्लीनता की स्थिति चलती रहेगी जो कि अनादिकाल से चलती आई है। सद्विज्ञान के साथ आवश्यकतानुसार बल पूर्वक विकृत वृत्तियो को मोड़ने मे पुरुपार्थ बल अधिक सफल बनता है। जब ये वृत्तियां सही स्वरूप की ओर तीव्र रूप से प्रवाहित हो जाती है, तब फिर ध्यान का होना सहज बन जाता है। उसके पूर्व उतनी सहजता नही आ सकती। इसी दृष्टि से प्राथमिक "ध्यान साधक" के लिये योग शास्त्र, तत्त्वानुशासन तथा ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थों मे पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ एव रूपातीत आदि अनेक ध्यान की सुगम विधियों का निर्देश किया गया है। ये प्रारम्भिक ध्यान-साधक के लिये सुयोग्य मार्ग-दर्शक के निर्देशन मे अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

ध्यान की सागोपाग विवेचना के लिये यहा उपर्युक्त विधियो का सक्षिप्त विवेचन अप्रासगिक नही होगा ।

पदस्थादि ध्यान विधियां

विश्रुत विद्वान, शुभचन्द्राचार्य ने अपने मौलिक ग्रन्थ 'ज्ञानार्णव' मे केवल ज्ञान रूपी सूर्योदय का हेतु बताते हुए कहा है ।

पिण्डस्थञ्च पदस्थञ्च, रूपस्थ रूपवर्जितम् ।
चतुर्धा ध्यानमाम्नात, भव्यराजीवभास्करैः ॥
ज्ञानार्णव अ. ३६

अर्थात्—(१) पिण्डस्थ ध्यान, (२) पदस्थ ध्यान, (३) रूपस्थ ध्यान और (४) रूपातीत ध्यान, यह चार प्रकार के ध्यान माने गये हैं, इनके प्रभाव से भव्य जीवो को केवलज्ञान रूपी भास्कर की प्राप्ति होती है ।

वृहत् द्रव्य सग्रहकार ने उपर्युक्त चारो ध्यानो की व्याख्या करते हुए कहा है—

पदस्थ मन्त्रवाक्यस्थ, पिण्डस्थंस्वात्मचिन्तनम् ।
रूपस्थसर्वचिद्रूपं, रूपातीत निरञ्जनम् ॥

१. मूल मन्त्राक्षरो का स्मरण करना पदस्थ ध्यान कहलाता है ।
२. स्व-आत्मा के पर्यायो का विचार करना पिण्डस्थ ध्यान है ।
३. चित्स्वरूप अर्हन्त भगवान् का ध्यान करना रूपस्थ ध्यान है ।
४. निरञ्जन निराकार सिद्ध परमात्मा का ध्यान करना रूपातीत ध्यान है ।

यहा क्रमश: इन चारो ध्यानो का सामान्य स्वरूप दिखलाया जा रहा है ।

पदस्थ ध्यान—पद समीक्षण

पदस्थ ध्यान का अर्थ है किसी भी मंत्र विशेष के पदो पर मन को केन्द्रित करना । जैनाचार्यो ने पदस्थ ध्यान के लिये अनेक पदो का चयन किया है जिनमें सर्वोत्कृष्ट स्थान नमस्कार महामन्त्र को दिया गया है । नमस्कार महामन्त्र के "णमो अरिहन्ताण" आदि पदो

पर मन को केन्द्रित करने के लिये कई विधियो का निर्माण हुआ है। नमस्कार मंत्र के पाचो पदो का अनुक्रम, व्युत्क्रम एवं अननुक्रम से प्रयोग करते हुए उस पर मन को केन्द्रित किया जाता है जिसे "अनानुपूर्वी ध्यान" की सज्ञा दी जाती है।

द्रव्य सग्रह ग्रन्थ मे नमस्कार महामन्त्र मे आगत पच परमेष्ठी का सक्षेप विस्तार के रूप से अनेक रूपों मे स्मरण का विधान मिलता है—

पणतीससोल छप्पण चतुदुगमेग च जवह झाएह।
परमेट्ठीवायगाणं अण्ण च गुरुवएसेण ॥

—द्रव्यसगह,

अर्थात्—पैंतीस (३५), सोलह(१६), आठ (८), पाच(५), चार (४), दो(२), और एक(१), अक्षरों के स्मरण से पच परमेष्ठी का जप-ध्यान हो सकता है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार से भी, न्यूधिक अक्षरो से ध्यान होता है। जिसे गुरु के उपदेश के अनुसार समझकर करना चाहिये।

३५ अक्षरों का मूल मन्त्र

ण	मो	अ	रि	हं	ता	णं,	ण	मो	सि	द्धा	ण,	ण	मो	आ	य
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
रि	या	णं,	ण	मो	उ	व	ज्झा	या	णं,	ण	मो	लो	ए	स	व्व
१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
सा	हू	णं,													
३३	३४	३५													

१६ अक्षरों का मन्त्र

अ	रि	ह	त	सि	द्ध	आ	चा	र्य	उ	पा	ध्या	य	सा	धु	+
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६

आठ अक्षरों का मन्त्र

अ	रि	हं	त	सि	द्धा	सा	हू,
१	२	३	४	५	६	७	८

पांच अक्षरों का मन्त्र

अ सि आ उ सा
१ २ ३ ४ ५

चार अक्षरों का मन्त्र

सि द्ध सा हू,
१ २ ३ ४

दो अक्षरों का मन्त्र

सि द्ध,
१ २

एक अक्षर का मन्त्र

ॐ

इन मत्रो का स्पष्टीकरण आचार्यो ने निम्न रूप से किया है—

पैंतीस अक्षरो मे पूर्ण महामन्त्र का स्मरण किया गया है, सोलह अक्षरो में पच परमेष्ठी के नाम मात्र हैं।

आठ अक्षरो के मन्त्र मे अरिहन्त और सिद्ध, यह मूल मत्र के दो पद कायम रख कर पीछे के तीन पद 'साहू' शब्द मे लिये हैं, क्योकि आचार्य, उपाध्याय और साधु–यह तीनो साधु है। पाच अक्षरों के मंत्र मे अ अरिहन्त का, सि सिद्ध का, आ आचार्य का, उ उपाध्याय का और सा साहू का सूचक है। इसमे प्रत्येक परमेष्ठी का वाचक आद्य अक्षर लिया गया है।

चार अक्षरो के मन्त्र मे अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठी 'सिद्ध' पद मे लिये गये है, क्योकि अरिहन्त भी निश्चय से उसी भव मे सिद्ध होने वाले हैं। अत उन्हे सिद्ध कहने मे कोई हानि नही। बाद के तीनो पद साधु मे अन्तर्गत किये हैं।

दो अक्षरो के मत्र मे आगे के चारो परमेष्ठियो को सिद्ध पद में ही गर्भित कर दिया है, क्योकि चारो की इच्छा सिद्ध पद प्राप्त करने की है।

एकाक्षर मंत्र ॐ मे पांचो परमेष्ठी समाविष्ट हैं । वह इस प्रकार हैं:—

अरिहन्ता असरीरा, आयरिया उवज्झाया मुणिणो ।
पढमक्खर निप्फराणो, ओंकारो पच पर मिट्ठी ।।

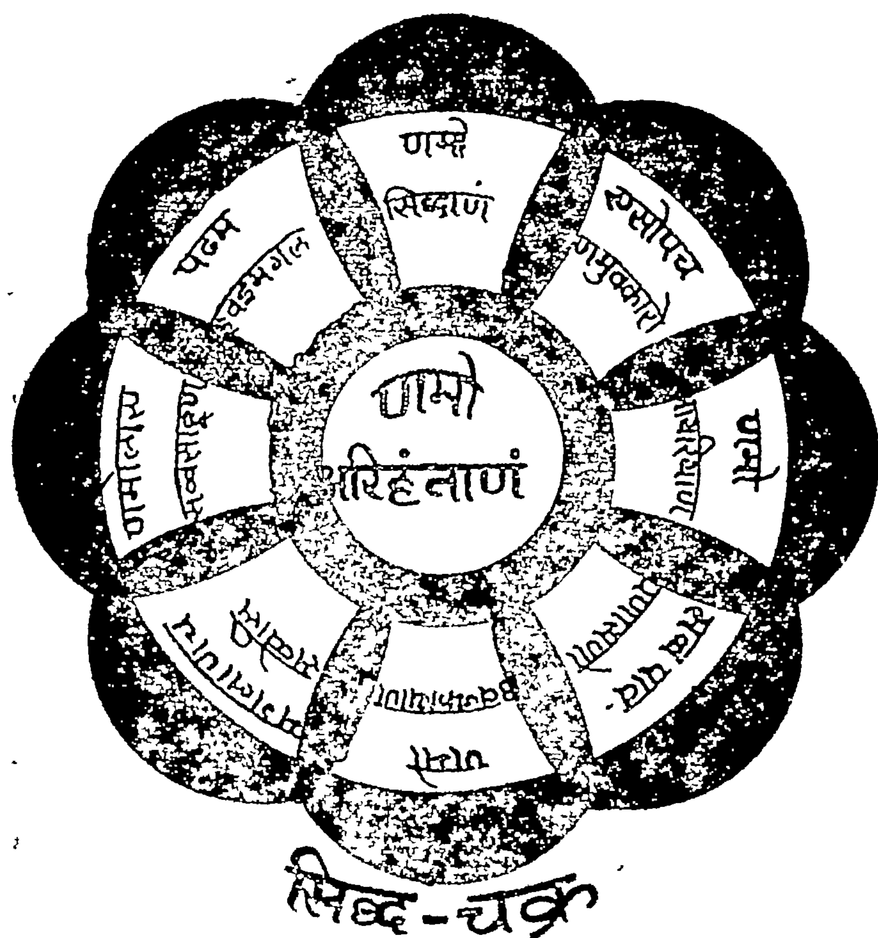
अरिहन्त के आदि का 'अ' । सिद्धो को अशरीरी कहा जाता है अतः अशरीरी का 'अ' । सस्कृत मे 'अ' और अमिल कर 'आ' होता है । आचार्य का आदि अक्षर 'आ' । 'आ' और 'आ' मिलकर व्याकरण के अनुसार 'आ' ही होता है । उपाध्याय का 'उ' लेने से गुण सन्धि के आधार पर 'आ' और 'उ' मिलकर 'ओ' होता है । साधु को मुनि कहा जाता है । अतः मुनि शब्द का आदि 'म्' लेने से ओइम् शब्द निष्पन्न होता है । इस प्रकार ओ में पच परमेष्ठी का समावेश हो जाता है ।

नमस्कार मन्त्र के अतिरिक्त लोगस्स, नमोत्थूणं एव किसी भी आगम के पाठ का पदस्थ ध्यान किवा पद समीक्षण मे उपयोग किया जा सकता है ।

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्र ने अपने योग शास्त्र (८, ३३, ३४) मे एक अन्य विधि का निर्देश किया है, जिसे जैन-योग-साधना मे "सिद्ध चक्र" के नाम से पुकारा जाता है । ध्यान की इस विधि मे सर्व प्रथम एकान्त, निरवद्य, शान्त स्थान मे ध्यान-योग्य किसी आसन मे स्थिर बैठकर हृदय-मनोवर पर अष्ट दल श्वेत कमल की कल्पना की जाती है । जब हृदय के केन्द्र पर अष्टमुखी कमल स्पष्ट झलकने लगे, और मन उस पर स्थिर हो जाय तब कमल के मध्य देश (कर्णिका) बीज कोष पर "णमो अरिहन्ताण" की कल्पना को स्थिर किया जाता है । तत्पश्चात् कमल की पूर्वादि चारो दिशाओ की पखुडियो पर क्रमश णमो, सिद्धाण, णमो, आयरियाण, णमो उवज्झायाण एव णमो लोए सव्व साहूण की कल्पना करते हुए चित्त को उस पर केन्द्रित किया जाता है । चारो दिशाओं मे ध्यान के कुछ क्षणो तक सक्रिय होने पर मन को ईशान कोण आदि चार विदिशाओं को चार पखुडियो पर घुमाया जाता है और वहा क्रमशः एसो पच णमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो मगलाणच सव्वेसिं, पढम हवई मगलं आदि चूलिका पदो की कल्पना करते हुए ध्यान को केन्द्रित किया जाता है । कुछ विद्वान् साधक एसो पच णमुक्कारो आदि पदों के स्थान पर क्रमशः "णमोनाणस्स," "णमो दसणस्स," "णमो चरित्तस्स' एव "णमो तवस्स" की निर्धारणा भी करते है ।

कहा जा चुका है कि पदस्थ ध्यान की कई विधियां प्रचलित है। केवल उदाहरण स्वरूप दो विधियो का सकेत ऊपर किया गया है। उपर्युक्त प्रक्रिया का मुख्य प्रयोजन यही है कि मन अपने मुख्य-कमल केन्द्र से नही हटता हुआ उपकेन्द्रो मे पुनः-पुन आवर्तन-प्रत्यावर्तन करता रहे जिससे मन की गति अन्य विषयो पर न जाय अर्थात् अन्य विषयो के प्रति उसकी पकड कुछ शिथिल हो और मन स्वचालित चक्र की भाति केवल निश्चित् केन्द्रो पर ही गति करता रहे। यह पदस्थ ध्यान की एक काल्पनिक रूपरेखा है। इसका प्रयोजन मन के केन्द्रीकरण तक ही सीमित है।

उपर्युक्त सिद्ध चक्र को निम्नाकित चित्र के माध्यम से भली प्रकार समझा जा सकता है।



सिद्ध-चक्र

पिण्डस्थ ध्यान—देहांग समीक्षण

पिण्ड का अर्थ है शरीर, चैतन्य युक्त शरीर पिण्ड, अतः पिण्ड ध्यान का अर्थ हुआ पिण्ड अर्थात् देह के प्रमुख अंग—ललाट, आज्ञा चक्र, ब्रह्मरन्ध्र, नासिकाग्र भाग, कण्ठ तथा नाभि कमल आदि सस्थानों पर मन को केन्द्रित करना।

अन्य साधना—विधियों की तरह पिण्डस्थ ध्यान को किसी शान्त-प्रशान्त एकान्त स्थान मे पद्मासन, सिद्धासन आदि किसी उत्तम आसन से स्थिर होकर किया जाता है।

शरीर के विभिन्न उत्तमागों पर मन की स्थिरता के कुछ बढने पर "यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे" के अनुसार देह के पिण्ड में ही यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे की साकार कल्पना की जाती है। कटि प्रदेश पर हाथ स्थिर करके नृत्य करते हुए मानव की आकृति ही सम्पूर्ण लोक-ब्रह्माण्ड की आकृति है। अत. देह के साथ ब्रह्माण्ड की तुलना मे क्षुद्रता एव विराटता की कल्पना की जाती है।

पंच धारणाएं

कुछ प्राचीन आचार्यो ने पिण्डस्थ ध्यान के क्रम में पांच धारणाओ का विवेचन भी किया है, जिनके माध्यम से लोकस्थित महत् तत्वो का चिन्तन करते हुए उत्तरोत्तर मन को आतम केन्द्र के निकट लाया जाता है। वे पाच धारणाए हैं, पार्थिवी, आग्नेयी, मारुति, वारुणी एव तत्त्ववती।

पार्थिव समीक्षण

उपर्युक्त पाच धारणाओ मे प्रथम है पार्थिवी धारणा। इसे ही पार्थिव समीक्षण कहा जाता है। इसमे स्वय की चेतना का पृथ्वी अचलता निश्चलता के साथ चिन्तन किया जाता हैं। आत्मा की अडोलता के इस समीक्षण मे अपनी चेतना को सहस्र पंखुरी कमल पर समासीन मानकर यह समीक्षण किया जाता है कि जैसे पृथ्वी अचल-अकम्प एव क्षमा गुण धारक है, उसकी कोई कितनी ही निन्दा करे, उस पर कचरा-गन्दगी डाले फिर भी वह क्षुब्ध नही होती है, उसी प्रकार आत्म समीक्षण की इन घड़ियो मे हमारी चेतना भी अचल-अटल एव अक्षुब्ध बन गई है। निन्दा-प्रशसा के सभी प्रसंग इसे चलित अथवा क्षुब्ध नही कर सकते हैं।

आग्नेय समीक्षण

दूसरी आग्नेयी धारणा अथवा आग्नेय समीक्षण मे उसी परम सुचिर स्थिरता के साथ यह कल्पना की जाती है कि अपने चारो ओर आग लग रही है और वह आत्मा के आवारक कर्मो को जलाकर राख बना रही है। आत्मा तो अदाह्य होने से एक दम सुरक्षित है—उसका यह अग्नि कुछ भी नही बिगाड सकती है, किन्तु उसे बन्धन मे डालने वाले कर्म एव देहादि भाव जल रहे है। आत्मा आनन्द घन-पिण्ड के रूप मे स्वरूप मे स्थित है।

वायवी समीक्षण

तीसरे वायवी समीक्षण मे यह चिन्तन मुखरित होता है कि अग्नि के द्वारा जले हुए कर्म परमाणुओ एवं देहाध्यास की राख तेज हवा के द्वारा इधर-उधर उड रही है। कर्म एव आशक्ति भाव की राख उड़-उड़ कर बहुत दूर चली गई है।

वारुणी समीक्षण

चतुर्थ वारुणी समीक्षण समता भाव का समीक्षण है अर्थात् आधी से राख के उड जाने पर भी जो प्रकृति मे चचलता बनी रह जाती है वह समता की सरस फुहारो के छिडकाव से स्थिर-शान्त एव सौम्य बन जाती है। इस समीक्षण में आत्मा को अपने चारो ओर समता की सौम्यता एव पवित्रता ही दिखाई देती है।

तत्त्ववत् समीक्षण

अन्तिम एवं पाचवें तत्त्ववत् समीक्षण मे समीक्षण ध्यान साधक आत्मा के मूल अभौतिक स्वरूप का चिन्तन करता है। अनन्त ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अडोलता मे लीन होता हुआ निरन्तर आत्म स्वरूप के निकट पहुचने का प्रयत्न करता चला जाता है।

इन पंच समीक्षणों की प्रक्रिया प्रयोगात्मक प्रक्रिया है। साधक को पिण्डस्थ ध्यान अथवा पिण्ड समीक्षण में इन प्रक्रियाओं से से गुजरते हुए अपूर्व उल्लास एव आनन्द का अनुभव होता है।

यह बताया जा चुका है कि पिण्ड समीक्षण मे साधक देह के उत्तमांगो पर ध्यान केन्द्रित करता है और देह के विभिन्न उत्तमागों में साधना के लिये "आज्ञा चक्र" का विशेप महत्त्व होता है। अतः यहा आज्ञा चक्र का सक्षिप्त प्रतिपादन अप्रासगिक नही होगा।

आज्ञा चक्र समीक्षण

मन की एकाग्रता की साधना के लिये साधन-विधि मे "आज्ञा-चक्र" का अपना विशिष्ट एव महत्त्वपूर्ण स्थान है । "आज्ञा चक्र" एक ऐसा सबल साधन है कि मन के सारे भटकाव अल्प समय मे ही अवरूद्ध हो जाते हैं और मन एक निश्चित् चिन्तन-धारा मे प्रवाहमान हो जाता है ।

भ्रूमध्य को ही योग की भापा मे आज्ञा चक्र, दिव्य चक्षु अथवा तृतीय नेत्र के नाम से पुकारा जाता है ।

"आज्ञा चक्र" की ध्यान-विधि मे सिद्धासन आदि किसी दृढ आसन से मेरूदण्ड (रीढ की हड्डी) को सीधा करके बैठ जाता है और ध्यान मुद्रा स्थिर की जाती है । फिर मानस चक्षु अर्थात् दोनो भृकुटियो के बीच मे देखने का प्रयास किया जाता है । इस मानस-दर्शन मे नेत्र बन्द होने चाहिये और केवल कल्पना से ही भ्रूमध्य को देखना चाहिये । ध्यान की अधिक स्थिरता की दृष्टि से भ्रूमध्य केन्द्र मे "अर्हं" अथवा "ॐ" की आकृति को समक्ष रख कर इसके स्वरूप का चिन्तन किया जा सकता है ।

"आज्ञा चक्र" की साधना आरम्भ मे कुछ दुरूह प्रतीत होती है । किन्तु सतत अभ्यास इसे सुबोध एवं सरल बना देता है । अनुभूति के आधार पर कहा जा सकता है कि कुछ दिनो की निरन्तर साधना के पश्चात् मन की वृत्तिया बहुत कुछ स्थिर होने लगती हैं और वैकारिक सकल्प-विकल्पो से रहित अवस्था प्राप्त होने लगती है। मन सहज ही स्थिर होने लगता है । इस मानसिक स्थिरत्व के द्वारा आन्तरिक प्रसन्नता, आनन्द एव उल्लास वृद्धिगत होते है । हा, एक बात अवश्य इस विषय मे ध्यान देने योग्य है कि इसमे हठयोग की प्रवृत्ति अर्थात् चित्तवृत्तियो के साथ शीघ्रता का हठ नही होना चाहिये ।

श्वास समीक्षण

"आज्ञा चक्र" की साधना-विधि की तरह ही श्वासानुसन्धान की ध्यान विधि का भी अनूठा महत्त्व है । आज्ञा चक्र की साधना मे

प्रारम्भिक साधक के लिये "श्वासानुसन्धान की ध्यान-विधि के द्वारा आज्ञा चक्र की दुरूह ध्यान-विधि को सुगम बनाया जा सकता है और पिण्डस्थ ध्यान की गहराई में पहुंचा जा सकता है।

श्वास समीक्षण की ध्यान-प्रक्रिया मे मन को अपने श्वासोच्छ्वास पर केन्द्रित किया जाता है। आसन की स्थिरता पूर्वक साधक अपनी मनोवृत्तियोएव समस्त कल्पनाओ को श्वास पर केन्द्रित करके उसी मे लीनता प्राप्त करता है। इस प्रक्रिया मे प्राणायाम की भाति खूब गहरे सास लिये जाते हैं। सास इतने गहरे हों कि वे सीधे नाभि-मण्डल पर चोट करें। इससे पहला लाभ तो यह होगा कि प्राण वायु अधिक मात्रा मे देह के भीतर जायेगी और भीतर से दूषित वायु बाहर निकलेगी, फलत कुछ ताजगी का अनुभव होगा। इस प्रक्रिया मे कुछ स्थिरत्व लाने के लिये श्वासो की गणना भी की जा सकती है और कुछ समय श्वास को भीतर रोके रखकर धीरे-धीरे छोडा जा सकता है। कुछ अधिक प्रगति के लिये गहरे श्वास भीतर लेने और बाहर निकालने मे मूलाधार चक्र अथवा नाभि कमल से श्वास का सम्वन्ध जोडा जा सकता है। अर्थात् यह कल्पना की जा सकती है कि श्वास मूलाधार चक्र अथवा नाभि कमल से प्रवल वेग के साथ उठ रहा है और उर्ध्वगामी वन कर ऊपर के सभी चक्रो को पार करता हुआ मेरू दण्ड (रीढ की हड्डी) के माध्यम से आज्ञा चक्र तक पहुच रहा है और आज्ञा चक्र के इर्द-गिर्द उद्दीपक, तेज अथवा वहुत अधिक मात्रा मे प्राण वायु का सचार अथवा संग्रह हो रहा है। श्वास की उर्ध्वमुखी अवस्था मे मूलाधार से मेरूदण्ड मे होकर आज्ञा चक्र के निकट शक्ति के उर्ध्वगमन की कल्पना भी की जा सकती है। इस प्रक्रिया द्वारा आज्ञा चक्र की साधना भी सवल एव सशक्त वनती है। अनुभूति जन्य आलोक से कहा जा सकता है कि इस विधि के द्वारा मन को वहुत अविक समय तक एक विषय पर स्थिर किया जा सकता है। इस स्थिरत्व से सकल्प वल तीव्र होता है। और एकाग्रता की साधना सुगम व दृढ हो जाती है।

श्वासानुसंधान की एक सुगम विधि और भी है। उसमे किसी भी आसन विशेष का आग्रह नही होता है। किसी भी मुद्रा में सुखासन से वैठकर अथवा शवासन से सोकर ध्यान को श्वास पर केन्द्रित

किया जाता है। शरीर को ढीला, तनाव रहित बनाकर सहज वृत्या केवल श्वास के गमनागमन का अवलोकन भर किया जाता है। इसमे श्वास को रोकना और गणना करना भी आवश्यक नही, क्योकि गणना करने और श्वास को रोकने में भी कुछ न कुछ तनाव बनता ही है। अतः तनाव से सर्वथा मुक्त होकर इस प्रक्रिया मे एक ही अनुभूति शेष बच जाती है कि श्वास आ रहा है, और श्वास जा रहा है। पूरा ध्यान श्वास पर ही केन्द्रित किया जाता है। प्रारम्भिक साधक के लिये यह प्रक्रिया उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

रूपस्थ ध्यान परमात्मरूप समीक्षण

जैसा कि शब्द से ही स्पष्ट है कि ध्यान की इस प्रक्रिया मे साधक किसी दिव्य रूप पर चित्त को स्थिर करता है। इस साधना मे आगे बढता हुआ साधक अपने प्राणवान देह पिण्ड मे ही परमात्मा को चित्रित कर दिव्यता की कल्पना करने लगता है। कभी आगमोल्लिखित तीर्थंकर के स्वरूप की साकार कल्पना करता हुआ उसके विविध आयामी चिन्तन मे खो जाता है। तीर्थंकर के स्वरूप चिन्तन मे अरिहन्त महाप्रभु के अतिशयो पर अध्यात्मोन्मुख भाव प्रवाही चिन्तन किया जा सकता है। यथा-अरिहन्त महाप्रभु ने किस प्रकार अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र एव अनन्त वीर्य रूप अनन्त चतुष्टय की सर्वोच्च सत्ता प्राप्त कर ली। इन आध्यात्मिक उपलब्धियो का प्रभाव उनकी दैहिक क्रान्ति पर भी कितना अनूठा पड़ता है, कितनी भावपूर्ण अनुपम मुद्रा है तीर्थंकर महाप्रभु की! अत्यन्त मनोहर शान्त, गम्भीर, एक हजार आठ उत्तम लक्षणों से विभूषित परम दीप्तिमान् मुद्रा का दर्शन कर सुरेन्द्रादि भी स्तुति मुखर हो उठते हैं, आदि सोपानो पर ध्यान उत्तरोत्तर दृढीभूत बनता जाता है।

इतनी भौतिक एव अभौतिक सम्पदा से घिरे हुए भी कितना अपूर्व वैराग्य रस टपक रहा है, महाप्रभु के अणु-अणु से। कैसा शान्ति का निर्झर फूट रहा है इस महाचेतना के अन्त: स्थल से। इसी प्रकार कभी गुरु, आदि किसी लोकोत्तर महापुरुष के दृष्टिगम अथवा श्रुतानुगत रूपो को अपने मानस-चक्षु के समक्ष कल्पना-लोक मे अंकित किया जा सकता है।

सक्षेप मे रूपस्थ ध्यान में चक्षु का पदार्थ के साथ और मन

का चक्षु के साथ केन्द्रीकरण का श्रभ्यास किया जाता है अथवा कल्पना-जगत मे किसी चेतना युक्त देह-पिण्ड मे परमात्मा के दिव्य रूप को कल्पित कर उस पर ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है। इस विधि मे तीर्थंकर प्रभु की समवसरण रचना उसमें उन्हे श्रमृतोपदेश देते हुए देखना तथा आध्यात्मिक उत्क्रान्ति के मार्ग की श्रागमोक्त विधि की कल्पना की जा सकती है अथवा भगवान् महावीर की श्रागमोल्लिखित श्ररण्यों में की जाने वाली ध्यान-साधना की निष्कंप एवं श्रडोल मुद्रा का चिन्तन श्रौर उस मानसिक चित्र पर ध्यान को केन्द्रित करने का प्रयत्न भी किया जा सकता है।

इस प्रकार विराट् व्यक्तित्व के जीवन पर किया जाने वाला बहुश्रायामी चिन्तन मन के भटकाव को प्रतिवधित कर उसे सही दिशा प्रदान करता है। फलत: वह एक विशुद्धतम केन्द्र पर स्थिर हो जाता है श्रौर उसकी प्रवृत्ति शुभत्व से शुद्धत्व की श्रोर गतिमान होती है। इस प्रक्रिया से श्रन्य श्रनेक उपलब्धियों के साथ सकल्प-शक्ति की स्थिरता एव पवित्रता वृद्धिगत होती है।

रूपातीत ध्यान श्रात्म समीक्षण

रूपातीत ध्यान का अर्थ है—रूप, रग श्रर्थात् किसी भी प्रकार की श्राकृति से श्रतीत निराकर, शुद्ध चैतन्य का चिन्तन करते हुए उसमे लीन हो जाना।

पदस्थ एवं पिण्डस्थ ध्यान मे किसी शब्द विशेष श्रथवा केवल ज्ञान सम्पन्न श्रात्मा श्राकृति विशेष जिस शरीर मे हो वैसी की कल्पना करके उसमे मन को स्थिर किया जाता है, जबकि रूपातीत ध्यान विधि में समस्त साकार कल्पनाश्रों से ऊपर उठकर केवल श्रात्म-केन्द्रित होने की साधना की जाती है। इसमे समस्त चिन्तन अमूर्त श्रात्मादि पदार्थों पर केन्द्रित हो जाता है। उदाहरण स्वरूप यह चिन्तन हो कि श्रात्मा का कोई रूप नही होता, न उसकी कोई जडा श्राकृति होती है, श्रागम के श्रनुसार—

न सद्दे, न रूवे, न गन्धे, न रसे, न फासे—श्रर्थात् न शब्द श्रात्मा है, न रूप, रस गन्ध श्रौर स्पर्श ही श्रात्मा है। श्रापेक्षिक दृष्टि

से चेतना रहित इन्द्रिय, देह और मन भी आत्मा नहीं है। ये सब भौतिक पदार्थों के गुण अथवा पर्याय हैं। आत्मा इन सबसे अतीत अभौतिक एवं अमूर्त है। वह तो ज्ञाता, दृष्टा एवं चेतना स्वरूप है। "ज्ञानमयोहि आत्मा" के अनुसार वह ज्ञाता-दृष्टा है, वह जगत के समस्त पदार्थों, दृश्यों का दृष्टा है। यह चिन्तन रूपातीत ध्यान के अन्तर्गत आता है। आत्मा के साथ इस दृष्टा एवं ज्ञानमय स्वरूप का चिन्तन भी इसी मे समाविष्ट होता है। आत्मा की सर्वोच्च एवं सर्वोत्कृष्ट अवस्था ही परमात्मदशा है और वही सिद्ध अवस्था कही जाती है। अतः सिद्धों के अगम्य एवं अगोचर स्वरूप के भावात्मक चिन्तन को रूपातीत ध्यान कहा जाता है।

अन्य ध्यानो से रूपातीत ध्यान की विशिष्टता का आधार यह है कि इसमे सभी प्रकार के बाह्य अवलम्बन छूट जाते हैं, मन की समस्त प्रवृत्तिया बाहर से सिमट कर आत्म स्वरूप पर केन्द्रित हो जाती है और मन स्वय आत्म स्वरूप की खोज मे लीन हो जाता है। यह आत्मलीनता अगर कुछ गहरी हो जाये तो विचारातीत-सी लगती है, किन्तु इसे विचारातीत अवस्था नही मान लेना चाहिये। इसमे मन की सक्रियता बराबर बनी रहती है और जब तक मन सक्रिय रहता है विचारातीत अथवा विचार शून्य अवस्था नही आ सकती। वह तो ध्यान की चरम एव परम अवस्था होती है, जहा द्रव्य मन की वृत्तियो का समूल विलय हो जाता है। लीनता और विलीनता अथवा लय और विलय मे यही अन्तर है। लय अवस्था मन के अस्तित्व पूर्वक केन्द्रीकरण की अवस्था है, किन्तु विलय अवस्था मे असद् मनोवृत्तियो को पूर्णतः अवरूद्ध कर मन को ध्यान की पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया जाता है। रूपातीत ध्यान के साधको के लिये लय अवस्था को ही महत्त्वपूर्ण माना गया है अतः उनके लिये मन को लय अर्थात् किसी अमूर्त सत्ता पर केन्द्रित करने की साधना ही उपादेय मानी गयी हैं, ताकि वे साकार ध्यान की स्थूल प्रक्रिया से ऊपर उठकर निराकर में लीन हो सकें।

अनुप्रेक्षा समीक्षण

समीक्षण ध्यान ही नहीं, ध्यान साधना की किसी भी विधि मे विचार, चिन्तन अथवा भावनाओ का सर्वाधिक महत्त्व माना गया

है। विचारों अथवा भावनाओं का साधक-चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ता है। दैनन्दिन जीवन मे जिन भावनाओ का प्राबल्य रहता है, वे ही ध्यान के क्षणो में भी पुनः पुनः उभर कर सामने आती हैं। यदि भावनाएं प्रशस्त हों, बन्धन-मुक्ति की दिशा में चैतन्य को प्रेरित करती हों तो ध्यान शीघ्र बनेगा, उसमे कोई व्यवधान उपस्थित नहीं होगा। किन्तु यदि भावनाएं अप्रशस्त चल रही हों—प्रतिक्षण अशुभ चिन्तन चलता हो, तो वह ध्यान साधना में पुनः पुनः विक्षेप–व्यवधान उपस्थित करेगा। चित्त को बार–बार उद्वेलित करता हुआ, अशुभ की ओर ही सासारिक बन्धनो की ओर ही खीचेगा।

समीक्षण ध्यान की साधना अन्तर समीक्षण अथवा आत्म-सामिप्य प्राप्त करने की साधना है। आत्म-सामिप्य की प्राप्ति के लिये समस्त बाह्य विकल्पो से ऊपर उठना आवश्यक होता है। चित्त को ऊर्ध्व दिशा देना होता है, अत इसमे चित्त का प्रतिपल प्रशस्त दिशा में प्रवाहित होना नितान्त वाञ्छनीय है। सख्यातीत दिशाओ में प्रवाहित भाव धाराओ को जैनागमो एवं जैनाचार्यों ने बारह धाराओं में समीकृत अथवा प्रतिवन्धित किया है, जिन्हें द्वादस भावना अथवा द्वादस अनुप्रेक्षा की संज्ञा दी गई है। ये द्वादस अनुप्रेक्षाए समीक्षण ध्यान की महत्तम भूमिका का निर्माण करती हैं। एक-एक अनुप्रेक्षा का तन्मयता पूर्वक धारा प्रवाही चिन्तन ही अनुप्रेक्षा समीक्षण कहलाता है। वे द्वादस अनुप्रेक्षाए, जिनका निरन्तर समीक्षण हमे आत्म समाधि के प्रवेश द्वार तक ले जाता है, वाचक मुख्य उमास्वाति के द्वारा निम्न रूप से वर्णित हुई है—

"अनित्याशरण संसारैकत्वान्यत्वा शुचित्वास्रव सवर निर्जरा लोक वोधि दुर्लभ धर्मस्वाख्या तत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः" । त. सू॰ ६-७१

१. अनित्य, २ अशरण, ३. ससार, ४. एकत्व, ५. अन्यत्व, ६. अशुचि, ७ आस्रव, ८. संवर, ९ निर्जरा, १०. लोक, ११. वोधि दुर्लभत्व, १२. धर्म का स्वाख्या तत्त्व–इनका अनुचिन्तन ही अनुप्रेक्षाएं हैं।



वाल्यकाल मे पराधीनता वश कितने कष्ट सहे। फिर भी इसका परिवर्तन रूका नही। यह अनित्य जो ठहरा—बदलता गया—बढता गया और यौवन मे पहुच गया। वहां इस पर भोगो की मस्ती छा गई। पत्नी के प्यार मे और परिवार के भरण-पोषण मे तारुण्य भी गलता चला गया। शक्ति क्षीण हो गई और बुढापा आ धमका। यौवन की सारी चमक-दमक समाप्त हो गई। चेहरे पर सैकड़ो झुरियां पड गई। अंग-अंग ढीला पडकर कांपने लगा। दृष्टि क्षीण हो गई। दांत गिर गये। नाक झरने लगी। मुह पोपला हो गया। जीभ लड़खड़ाने लगी। स्वर भग होने लगा। जठराग्नि मन्द हो गई—पाचन तन्त्र बिगड गया। कमर झुक गई। टागे थक गई। लठिया का सहारा ले लिया। अनेक व्याधियो ने घेर लिया और खटिया पकडनी पड़ी। अब सभी प्रियजन पराये हो गये। कोई भी सीधे मुह वात नही करता। यौवन की मस्ती न जाने कहा चली गयी! सारी अकड निकल गई और एक दिन वह आया कि सारी आयु क्षीण हो गई। और परिजनो ने मिलकर किसी समय अत्यन्त सुन्दर-रमणीय दिखने वाले इस शरीर को चिता पर चढा दिया। इसकी राख हो गई और सारा खेल खत्म हो गया।

यही कहानी है इस शरीर की। यह स्पष्ट ही दिखाई देता है कि यह शरीर कितना अस्थिर है। कितनी अवस्थाएं बदलता जाता है। प्रतिक्षण कितने नये-नये रूप धारण करता रहता है। वाल्यकाल को तरुणाई निगल जाती है और तारुण्य को बुढापा चट कर जाता है। अन्त मे मौत मे आकर बुढापे को गिटक जाती है। कितनी अनित्यता शरीर की!

और हे चेतन्य! यह भी तो समीक्षण कर कि इस अस्थिर-अनित्य माया जाल मे वाल्यकाल के वाद तारुण्य और तरुणाई के वाद वार्द्धक्य आएगा ही? क्या श्वास का कोई विश्वास है? क्या काल—मृत्यु वालक को नही ले जाती है? अरे! मृत्यु तो 'समदर्शी' कही जाती है, उसके लिये वालक-युवक और वृद्ध मे कोई अन्तर नही है। वह किसी को भी किसी भी क्षण ले जा सकती है। फिर कैसे समझा जाय कि यौवन आएगा ही और यह मौज मस्ती भरी जवानी हमे सुख देती ही रहेगी?

यह शरीर तो औदारिक पुद्गलो का बना है, जिनका स्वभाव ही गलन-सडन और विध्वंसन है। जिसका स्वभाव ही नष्ट होने का है, उसे स्थाई मानकर जगत व्यापार चलाना कितना हास्यास्पद है ! यहां निरन्तर रात और दिन रूपी दो पाटो की काल रूपी चक्की चल रही है। इसमे जो शरीर आयुष्य रूपी कील से लगे हैं, वे बचे हुए हैं और जो वहा से हटे कि काल की चक्की उन्हे पीस देती है। क्षण भर मे इस सुन्दर-सलोना दिखने वाले शरीर का आटा (राख) बन जाता है।

हे चैतन्य ! तू यह समीक्षण कर कि इस जन्म मे प्राप्त तुम्हारा यह शरीर औदारिक कहलाता है। औदारिक शब्द का आगमिक एव लाक्षणिक दो अर्थों मे प्रयोग हो सकता है। औदारिक का आगमिक अर्थ है—उदार अर्थात् प्रधान–विशेष प्रकार के उत्तम पुद्गलो से बना हुआ। इस अर्थ मे यह शरीर अनन्त पुण्य के उदय से प्राप्त हुआ है और इसी के द्वारा तीर्थंकर जैसी महानता प्राप्त की जा सकती है। धर्म आराधना की जा सकती है और मोक्ष तक पहुचा जा सकता है, अत· यह महान् है। किन्तु औदारिक शब्द का दूसरा अर्थ है—उदार या उधार अर्थात् मागकर लिया हुआ, जैसे कोई विवाहादि के प्रसग पर धर्मशाला या किसी अन्य व्यक्ति का मकान मागकर–उधार लिया जाता है। उसी प्रकार यह शरीर भी उधार लिया हुआ है। जैसे उस मकान की साफ-सफाई करवा कर उसे सजाया जाता है, किन्तु कदाचित् उसके उपयोग के पूर्व ही निश्चित् तारीख आ जाए तो धर्मशाला का मालिक उसे जबरन खाली करवा लेता है। उसी प्रकार इस शरीर को कितना ही सजाया जाय आखिर उधार लिया हुआ पदार्थ कब तक अपना बना रहेगा ? इसे खाली करना ही पड़ेगा। फिर इस शरीर को नित्य मान कर इस पर मोहित होना—आसक्त होना कहा तक उचित है ? चेतन ! समझ-समझ, इस शरीर की नश्वरता अनित्यता का समीक्षण कर।

यह शरीर उपयोगी है तो इसका एक ही उपयोग है कि इससे जितना हो सके, धर्माचरण करले। यही इस शरीर का वास्तविक उपयोग है। भोगादि तो देव एवं पशु शरीर मे भी अनेक बार भोगे जा चुके हैं। मानवीय तन भोग के लिये नहीं, योग के लिये

प्राप्त हुआ, अत· इसे साधना में लगाना ही श्रेयस्कर है अन्यथा यह किराये का मकान खाली करवा लिया जायेगा। हे चैतन्य! आत्म समीक्षण कर और इस अनित्य तन का भी सही सार निकाल ले। आत्मा की शाश्वत् शान्ति को प्राप्त करने मे इसे लगा दें। फिर भले ही यह नष्ट हो जाय, तुझ से सदा-सदा के लिये छूट जाए तो भी तुझे पश्चाताप नही होगा। इस तन का सर्व तो महत्त्वपूर्ण उपयोग है—इससे ही परम मुक्ति मिल जाए।

धन–अनित्यत्व समीक्षण

यह तो हुआ शरीर की अनित्यता का समीक्षण। अब जरा जिस धन के पीछे यह तन रात-दिन दौडता है, उसकी अनित्यता का भी तो समीक्षण कर। यह धन क्या कभी किसी के पास टिका है? लक्ष्मी का नाम भी तो चचला है। वह स्थिर रह भी कैसे सकती है। आज जो लक्ष्मी पति है, कल वह कगाल दर-दर की ठोकर खाने वाला भिखारी बन सकता है।

इस धन को दौलत भी कहते हैं यह दो लाते मारता है—आते समय अहकार की और जाते समय दीनता की। फिर इस धन को नित्यमान कर जो सुखी रहने का प्रयास करते है वे सुखी कहा होते हैं?

नीतिकार कहते है—

"अर्जने दु:खं रक्षणे दु:ख, दु.ख व्यये सर्वात्मना।"

धन की प्राप्ति बड़ी कठिनाई–अनेक कष्टो के द्वारा होती है, अत: कहा गया है—'अर्जने दु:ख'। धनार्जन दु:ख से परिपूर्ण है। धनोपार्जन के लिये इन्सान प्राणप्रिय पत्नी को छोड कर अपनी जन्म भूमि से हजारों किलोमीटर दूर परदेश मे चला जाता है। लू-लपट-ठण्ड और वर्षा की, यातायात के खतरो की परवाह किये बिना रात-दिन दौड़ता रहता है। क्या यह कम कष्ट है!!

कदाचित् दु:खो को पार करते या सहन करते हुए धन कमा लिया तो फिर क्या व्यक्ति सुखी हो जाता है? नही, अब उसे इस

धन की रक्षा की चिन्ता सताती है। कहीं चोर, लुटेरे, डाकुओं की दृष्टि इस पर नही पड जाय। कहीं इसे कोई हडप न ले। रात्रि में सोते हुए कही चूहा भी खटा-खट करे तो नीद हराम हो जाती है। इस प्रकार धन कमाकर इकट्ठा करने वाला, उसका उपभोक्ता नही, केवल चौकीदार बनकर रह जाता है। फिर इस धन से सुख कहा मिला ?

जैसे-तैसे पाप की प्रवृत्तियो से धन इकट्ठा किया, उसकी रक्षा के लिये जान की बाजी लगाई, पिता-पुत्र-मा-बहिन-पति-पत्नी तक की हत्या की किन्तु जब उसको व्यय करने का प्रसंग आता है तो भी मन को कितनी पीडा होती है। तृष्णावान् कजूस-लोभी मनुष्य चमडी चली पर दमड़ी नही जाने देता। एक-एक पैसा खर्च करते समय लाख विचार करता है। ठीक से खा-पी और पहन तक नही सकता। न अपने हाथों से उस पाप की कमाई को सत्कर्म-पुण्योपार्जन मे लगा सकता है। और अन्त मे यह धन धरा मे ही पडा रह जाता है। इसीलिये कहा है -

"इस धन की गति तीन है, दान भोग और नाश।
दान भोग यदि ना हुआ, तो निश्चित् होगा नाश ॥"

धन का उपयोग दान या भोग मे हो सकता है। यदि ये दोनो नही हुए तो नाश निश्चित् होगा ही। धन व्यय मे कृपण व्यक्ति न तो दान कर पाता है, और न ही उपभोग। उसका धन तिजोरियो में पड़ा रह जाता है, और यदि उस धन की ममता मे ही मर जाता है, तो उसी तिजोरी के पास सांप, बिच्छू या चूहा बन जाता है। कभी कुत्ता बन कर उसकी रक्षा करता रहता है, किन्तु यह अनित्य धन कहां उसके साथ जाता है ? या उसकी रक्षा करता है ?

हे चैतन्य ! जरा तो आत्म समीक्षण कर कि जिस धन को तू अविनाशी समझकर रात-दिन उसके पीछे दौडता रहता है, क्या वह स्थाई रहने वाला है ? नही, कदापि नही। यह धन नित्य कभी नहीं हो सकता और न कभी एक जगह टिक कर रह सकता है।

परिवार-अनित्यत्व समीक्षरण

हे चैतन्य यह समीक्षण कर कि जिस परिवार के लिये इतनी

दौड़-धूप करके धन कमाया जाता है, क्या वह परिवार सदा स्थिर रहने वाला है ? जैसे तुम्हारा शरीर अनित्य है, वैसे ही पारिवारिक-जनों का शरीर भी तो औदारिक ही है। जो दशा तुम्हारे शरीर की होने वाली है, वही उनके शरीर की भी तो होने वाली है। जिन माता-पिता, पुत्र-पौत्रो को देखकर तू खुशी मनाता है, क्या वे सदा स्थाई रूप से तेरे साथ रहने वाले है ? तुम्हारे से पहले आए माता-पिता, काका-काकी एवं भाई वहिन तुम्हारे देखते-देखते चले जाते हैं। यही नही तुम्हारे साथ आए भाई-बहिन और बाद में आए पुत्र-पौत्रादि भी तुम्हारे पहले जाते हैं और तू उनके लिये विलाप करता ही रह जाता है।

अरे ! चैतन्य ! कुछ तो सोच कि यह आयु सभी को निगलती जाती है। तेरा कोई भी परिजन यहां अमर-स्थायी रहने वाला है। इन परिजनों के साथ तेरा सम्वन्ध केवल एक धर्मशाला या सराय में दो-चार दिन के लिये ठहरे यात्रियो जैसा है।

अरे ! आज जिसे तू अपना समझ रहा है, वही थोडी भी स्वार्थ मे बाधा पडने पर कल पराया हो जाता है। तू अपनी आंखों से ऐसी घटनाएं देखता है और कानो सुनता है कि बेटे तुच्छ स्वार्थों के पीछे सगे वाप को घर से धक्का देकर बाहर निकाल देते हैं। फिर तू किस परिवार को नित्य मान रहा है और अपना मान रहा है ?

ये पारिवारिक जन भी, जो तुझे अपना मान रहे हैं, वे कव तक के लिये ? जव तक इनका स्वार्थ सधता है तव तक ही तेरे आस-पास मंडराते रहते है। जैसे पुष्प में सुगन्ध एवं पराग हो तव तक ही मधुकर आकर वहां मंडराते हैं, उसके सूख जाने पर वहा कोई भ्रमर गुंजारव नही करता है। यही दशा तेरी भी है। जव तक तेरे पास परिजनों के लिये कुछ देय है, उन्हे तुम्हारे द्वारा कुछ स्वार्थ पोषक तत्त्व मिल रहा है, तभी तक वे तुम्हारे हैं। स्वार्थ मे जरा-सी वाधा उपस्थित हुई कि वे सभी पराये हो जाते है।

और हे चैतन्य देव! ये रिश्ते भी तो तैंने कोई एक-दो वार नही अनन्त वार वना लिये है। आज का पिता किसी समय पुत्र वनकर रहा और वही

किसी समय मा, पत्नी, पुत्री और बहिन बनकर भी रहा है। ये रिश्ते अनेक जन्मो में नही, कई बार एक ही जन्म मे अनेक रूप धारण कर लेते हैं और काल परिपाक से विशीर्ण भी हो जाते हैं। अतः परिवार या कुटुम्ब को भी नित्य मानना एक बहुत बड़ी भ्रान्ति है।

अनेक बार वृद्ध माता-पिता बैठे रह जाते हैं और जवान पुत्र उनकी आखों का तारा, देखते-देखते चला जाता है। जिस पर माता-पिता अनेक आशाओ के स्वप्न सजाते है। उन सभी आशाओं के स्वप्न-स्वप्न ही रह जाते हैं और पुत्र चले जाते है। इस रूप में हे चैतन्य! यह अन्तर-समीक्षण कर कि यह कुटुम्ब भी सर्वथा अनित्य है। यह सब नष्ट होने वाला है, अतः इनमे होने वाली नित्यत्व बुद्धि का परित्याग कर।

आवासीय अनित्यत्व समीक्षण

धन एवं परिवार के समान ही परिवार का आवास केन्द्र मकान-भवन भी तो अनित्य ही है। क्या किसी भी भवन का सौन्दर्य अपने निर्माण काल जैसा ही सदा बना रहता है? अरे! आज जो भवन भव्य-मनोहर दिखाई दे रहा है, कल वही खण्डहर-पक्षियो का आवास बन जाता है। आज जिस पर मानव मन अहंकार कर रहा है—इठला रहा है कि कैसा भव्य भवन बनाया है मैंने! कितनी सजावट की है इसकी! कितना सुन्दर नयनाभिराम फर्नीचर लगाया है। किन्तु कुछ ही दिनो मे उस भवन की ओर देखने की भी इच्छा नही होती है। अपने ही द्वारा बनाये गये भवन अपने देखते-देखते धराशायी हो जाते हैं। फिर इन पत्थर—ईंटें और चूना, सीमेन्ट के भवनो को नित्य कैसे माना जाय?

हे चैतन्य! तेरे सामने बडे-बड़े नगरो के प्राचीन ध्वसावशेष, विशालकाय महलों के खण्डहर इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि वास्तु-कलाएं कितनी क्षण भगुर—अशाश्वत् हैं। अरे! उन्हे बनाते समय निर्माताओ एवं शिल्पकारो ने कितनी क्या उमंगे सजाई होगी कि ये भव्य निर्माण हजारों—लाखो वर्षो तक हमारा नाम रोशन करेंगे। किन्तु, हन्त! उनके सामने ही वे निर्माण मलिन-जीर्ण-शीर्ण होने लग

गए । उनके देखते-देखते ही उनकी नित्यता का अभिमान विगलित हो गया ।

पदार्थ मात्र में अनित्यत्व समीक्षण

अरे ! मकान ही क्या, संसार में भोग-उपभोग की प्रत्येक वस्तु अनित्य है—क्षणिक है । आज का अन्न कल खाद बन जाता है और वही कुछ दिनों मे स्वादिष्ट—सुन्दर सुरभित फल-फूल बनकर इन्द्रियों का आकर्षण केन्द्र बन जाता है ।

हे चैतन्य ! तेरा प्रतिपल-प्रतिक्षण का समीक्षण यह साफ जता रहा है कि जीव जब उत्पन्न होता है, तो अपने साथ क्या लेकर आता है ? केवल-पुण्य पाप । और पुण्य के संयोग से ही उसे यहा शरीर मन—इन्द्रियां स्वस्थ मिलती है । सम्पत्ति-पद-प्रतिष्ठा सभी कुछ मिलता है । किन्तु क्या ये सब भी नित्य है । अरे, पुण्य भी तो क्षीण होता जाता है और पुण्य क्षीण हुआ नही कि शरीर रोगी हो जाता है, इन्द्रियां अक्षम वन जाती है, मन अस्वस्थ वन जाता है और सम्पत्ति-पद-प्रतिष्ठा सभी कुछ उसी प्रकार से गायव हो जाते हैं—जैसे वृक्ष के सूख जाने पर उस पर रहने वाले पक्षी ।

और यह क्रम कोई एक—दो वार ही नही होता है । अनादि-अनन्त काल से यही क्रम चल रहा है । अरे ! पुद्गलों का तो यह स्वभाव ही है कि मिलना, कुछ नूतन रूप धारण करना और फिर विछुड़ जाना । नये का पुराना और पुराने का नया । अच्छे का बुरा और बुरे को अच्छा वनते रहना ही तो पुद्गलों का स्वरूप है । यह सब कुछ प्रत्यक्ष दिखाई देते हुए भी इन पुद्गलो मे नित्यत्व बुद्धि को धारण कर इनके पीछे चैतन्य सत्ता का मोहग्रस्त वन जाना कितना आश्चर्य का विषय है !!!

हे चैतन्य ! अज्ञान की इससे अधिक और क्या स्थिति हो सकती है कि मानव स्वय अपने शरीर की अनित्यता का आभास करता हुआ भी, निरन्तर आयु क्षय के साथ वचपन से यौवन और यौवन से बुढ़ापे की ओर वढता हुआ भी इन वाह्य पदार्थों मे नित्यत्व

पूर्ण ममत्व का भाव बनाए रहता है । यही नही, ज्यों-ज्यो वृद्ध होता है, त्यो-त्यो इनमे अधिक से अधिक आसक्त होता चला जाता है । यह तो ठीक वैसा ही है जैसे अग्नि स्नान से शीतलता की कामना करना या विषपान करके अमर बनने की इच्छा करना । अरे ! जिन पुद्गलों का स्वभाव ही विनश्वरशीलता है, वे स्थाई-शान्ति स्थाई आनन्द कैसे दे सकते हैं ।

अनित्यत्व समीक्षण के कुछ सूत्र

ससार के अनित्यत्व का समीक्षण करने के लिये कुछ व्यावरिक सूत्रो को दिशा सूचक बनाया जा सकता है ।

(१) इन्द्र धनुप की छटा कितनी मनमोहक, नयनाभिराम रग-बिरगी लगती है, किन्तु क्या वह स्थायी रहती है ? अरे ! चन्द क्षणो में ही इन्द्र धनुष के सभी दर्शनीय रग विखर कर अन्त में आकाश में विलीन हो जाते है । क्या यही दशा पौद्गलिक सौन्दर्य की नही है ?

(२) सूर्यास्त के समय पश्चिम दिशा कितनी आह्लादक रक्तिम आभा लिये होती है, किन्तु चन्द क्षणो मे ही इसके पीछे रात्रि का सघन अन्धकार नही घिर जाता है ? यही स्थिति पौद्गलिक सुख की है, जो अपने पीछे दुःख का सघन अन्धकार छिपाए रहता है ।

(३) विवाह या किसी उत्सव के समय कितने रिश्तेदार-ज्ञातिजन एकत्रित होते है मकान आदि कितने सुसज्ज होते हैं । पूरा वातावरण ही चित्ताकर्षक छटाओ एव विनोदपूर्ण किलकारियो से व्याप्त होता है । किन्तु दो दिन की इस चहल-पहल के बाद उस भवन की क्या दुर्दशा हो जाती है । गृह स्वामी अकेला ही अपने फैलाव को समेटने मे लगा रहता है । सारे परिजन और वह स्मरणीय दृश्य कहा खो जाते हैं ? यही तो स्थिति है पुद्गलो की । जो आज रमणीय दिख रहे है, वे ही चन्द क्षणो मे अरमणीय हो जाते हैं ।

(४) अरे, आज अपनी बसावट की शैली मे बेजोड नगर एक आंधी या तूफान के उठने पर या एक बम के गिर जाने पर क्या

शमशान भूमि जैसा भयंकर नही बन जाता है ? जिसके सौन्दर्य को वड़े-वड़े ख्याति प्राप्त शिल्पियो ने सजाया वही क्षण भर में राख का ढेर बन जाता है ।

(५) अनेक ऐसे स्थल हैं, जहा विविध प्रसगो पर मेले भरते है, बाजार लगते हैं, और हजारो लोग इकट्ठे होते हैं । किन्तु मेला बिखरते ही क्या सुनसान जगल नही रह जाता है ?

(६) प्रतिदिन सन्ध्या के समय पक्षियो का समूह वृक्षो की टहनियो पर या अट्टालिकाओ की सुरक्षित दरारो एव छज्जो पर इकट्ठे-एकत्रित होते हैं और स्थान के लिये बहुत झगड़ते हैं । पहले बैठने वाला प्रत्येक पक्षी उस स्थान पर अपना अधिकार मान लेता है । किन्तु क्या प्रात. होते ही वे सभी पक्षी अपनी-अपनी राह नही उड़ जाते हैं ? क्या पेड़ का एक पत्ता भी अपने साथ ले जाते हैं ? यही दशा तो इस चैतन्य की है । यह इस शरीर रूपी वृक्ष पर आकर बैठता है और काल रूपी सूर्योदय के होते ही उड़ जाता है ।

(७) ग्राम या नगर के चौराहे पर मदारी अपनी डुगडुगी बजाता है और भीड़ एकत्रित हो जाती है, किन्तु खेल समाप्त होते हुए ही भीड़ विखर जाती है और मदारी अपने सामान के साथ अकेला ही रह जाता है । क्या यही स्थिति जीवात्मा की नही है ? उसके पुण्य शेष हैं तब तक परिवारजनो की भीड़ लगी रहती है और पुण्य क्षीण होते ही सभी बिखर जाते हैं ।

(८) अधिक क्या कहा जाय, जहां राज्याभिषेक की तैयारिया हो रही हो अथवा विवाह महोत्सव की धूम मच रही हो और वही राजकुमार अथवा दुल्हा राजा मौत का शिकार हो जाता है और जहा शहनाइयां बज रही थी वहां हाहाकार मच जाता है, मातम छा जाता है, श्मशान यात्रा की तैयारिया होने लगती हैं ।

(९) अरे, चैतन्य ! इन पुद्‌गलो का तो स्वभाव ही ऐसा है-जिन परमाणुओ से आज तेरा शरीर बना है । उन्ही से कभी तेरे शत्रुओ के शरीर भी बने हैं । इन्ही परमाणुओ से तूने अपने ही अनन्त शरीरो को नष्ट किया था, जिन पर आज तू नित्यत्व का अभिमान कर रहा है ।

महान आगम ग्रन्थ भगवती सूत्र में आविचिमरण का उल्लेख मिलता है जो प्राणी मात्र को क्षण-क्षण मे मृत्यु की ओर खीचता चला जा रहा है और इस रूप मे यह जीवन प्रतिपल बदल रहा है। मृत्यु की ओर दौड़ा जा रहा है ।

मेघो का स्वभाव—समूह, बिजली की चमक, स्वप्न का साम्राज्य, इन्द्र धनुष्य की माया एव ऐश्वर्यादि सभी अनित्यता का ही तो सकेत सन्देश दे रहे हैं ।

अतः हे चैतन्य ! तू जरा इस अनित्यता का गहराई से समीक्षण कर । भगवान महावीर ने कहा है—

"अधुवे असासयम्मि ससारम्मि"

यह संसार अध्रुव, अशाश्वत् है । और दुःखो से परिपूर्ण है । तू इसकी अनित्यता को समझ और ममत्व बन्धनो से ऊपर उठकर परमात्मभाव की शाश्वतता मे लीन हो जा । वही एक ऐसा स्थान या भाव है जहां पर्याय परिवर्तन होते हुए भी सब कुछ स्वरूप मे ही रमण होता है ।

इस प्रकार अनित्यानुप्रेक्षा का समीक्षण साधक को परम नित्यानन्द की ओर बढने की प्रेरणा देता है ।



६ अशरणत्व समीक्षण

जैन दर्शन अनेकान्त दर्शन भी कहलाता है। यहां वस्तु स्वरूप का चिन्तन अनेकान्त अथवा स्याद्वाद-शैली से किया जाता है। प्रत्येक पदार्थ मे अनन्त धर्म हैं और वे सभी हर पदार्थ मे अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं।

अनेकान्त दर्शन की दो दृष्टिया हैं—एक नैश्चयिक और दूसरी व्यावहारिक। नैश्चयिक दृष्टि से प्रत्येक पदार्थ मे विद्यमान प्रत्येक धर्म अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। वह किसी दूसरे तत्त्व अथवा धर्म पर अवलम्बित नही होता। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से एक पदार्थ दूसरे के सहयोग–सहकार की अपेक्षा रखता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के सहकार्य के बिना कार्यकारी नही होता है।

यह जीवत्मा अनादि अनन्त काल से कर्माधीन होकर ससार मे परिभ्रमण कर रहा है। जन्म-मरण की इस अविच्छन्न परम्परा मे यह ऐसा दीन-हीन बन गया है कि अपने ही अन्दर छिपे अनन्त ऐश्वर्य, अपरिमित सामर्थ्य को भूलकर अनाथ सा बन गया है। और ऐसी स्थिति मे यह अपने ऊपर किसी नाथ की खोज करता रहता है, अपने से किसी अधिक शक्ति सम्पन्न व्यक्ति की शरण चाहता है।

आगमिक दृष्टि से उसकी यह याचना व्यावहारिक दृष्टि की माग है। क्योकि निश्चयनय की दृष्टि से यहां कोई किसी को शरण देने वाला नही है। बस यही चिन्तन अशरणत्व समीक्षण का विषय है। अशरणत्व समीक्षण साधक के लिये यह चिन्तन अपेक्षित है कि हे चैतन्य! तू समीक्षण कर कि इस ससार मे तू स्वय अनन्त शक्ति का स्वामी है, फिर किसकी शरण तू चाह रहा है, और जिन नाशवान पदार्थों की शरण तू चाह रहा है, क्या ये तुझे शरण देने में समर्थ हैं?

अरे ! अपने सुख-दुःख का कर्त्ता तो तू स्वयं है ! जिसे तू इनका कर्त्ता-हर्त्ता मान रहा है, वे तो केवल निमित्त मात्र हैं। वे तुझे सुख-दुःख नही दे रहे हैं। तेरे कर्म ही तेरे सुख-दु.ख के मूल कारण हैं। अतः दूसरो की शरण खोजने की क्या आवश्यकता है ? अपनी मानसिक, वाचिक एव कायिक प्रवृत्तियो को नियंत्रित कर और कर्म परम्परा का विच्छेद कर दे, फिर सुख-दुःख कहां से आएंगे ?

और जिन्हे तू शरण दाता या शरणागत-प्रतिपाल समझ रहा है, जरा समीक्षण कर कि क्या वे स्वय अपनी सुरक्षा करने मे सक्षम है ? क्या वे मृत्यु के भय से मुक्त हो गये हैं ? यदि, नही तो वे तुम्हारी रक्षा कैसे करेंगे ? जो स्वय की रक्षा नही कर सकता वह शरणागत प्रतिपालक कैसे हो सकता है ? फिर उसकी शरण ग्रहण करना कहा तक उचित है ?

शरीर शरण दाता नहीं

हे चैतन्य ! सर्व प्रथम तू इस शरीर को आश्रय प्रदाता, शरणागत-रक्षक मानता है, किन्तु जरा अन्तर समीक्षण कर कि यह शरीर तो औदारिक पुद्गलो का पिण्ड है, जो क्षण-क्षण मे स्वय ही नष्ट होता जा रहा है ? यह तुम्हारा रक्षक कैसे होगा ? अरे ! यह तो स्वय अनेक प्रकार की आधि-व्याधि एव उपाधियो से ग्रस्त है। इसमे बार-बार अनेक रोगो की उत्पत्ति होती रहती है। यह स्वयं प्रतिक्षण जरा की ओर बढता चला जाता है। अरे, इसे तो मृत्यु अपनी शरण में ले जाती है। जो स्वय मृत्यु की शरण मे चला जा रहा है, उसकी शरण तू चाहता है, इससे बढ कर अज्ञानता और क्या हो सकती है !

नीतिकारो ने कहा है—

"शरीर खलु व्याधि मन्दिर।"

यह व्याधि मन्दिर, रोगों का घर शरीर तेरी रक्षा कैसे करेगा ? यह तो अपनी सुरक्षा के लिये बार-बार डॉक्टरो, वैद्यों एवं हकीमो की ओर ताकता रहता है। अपने रुप को यथावत् बनाए रखने या अधिक

सुन्दर और परिष्कृत करने के लिये कितनी शक्ति वर्धक औषधियों एवं कितने शृंगारिक प्रसाधनों की शरण खोजता फिरता है। फिर हे चैतन्य ! यह तुम्हारी रक्षा करने में या तुम्हे शरण देने में कैसे समर्थ हो सकता है ?

हां एक रूप मे यह अवश्य तुम्हारा सहयोगी बन सकता है, वह रूप है धर्म साधना का। किन्तु उस रूप मे भी वह सहयोगी भर बन सकता है, शरण दाता नही, और वह भी तू स्वयं उसे सहयोगी बनावे तो। हे चैतन्य ! इस शरीर को तू इन्द्रिय रमणता से बचाकर परमात्मभाव की ओर मोड़ दे, इसकी प्रवृत्तियों को बन्धन की ओर से हटा कर मुक्ति की ओर मोड़ दे तो यह तुम्हारा सहयोगी हो सकता है। अन्यथा विषय वासना की आंधी मे दौड़ता हुआ यह शरीर ही तुम्हें नरक के घनघोर कष्टों में धकेल देता है।

अतः हे चैतन्य ! तू शरीर की शरण की ओर मत ताक, तू स्वयं अपनी ही शरण में जा। स्वयं की शरण ही शरण हो सकती है। शरीर की शरण तो दुर्गति के द्वार ही खोलती है, सद्गति के नहीं। यदि तुझे आनन्द की कामना है तो अपनी आत्मा की शरण की ओर गतिशील हो जा।

धनादि भी शरण दाता नहीं

हे चैतन्य ! यह शरीर जिसे तू अत्यन्त प्रिय और निकटतम समझता है, वह भी शरण दाता नही बनता है, तो क्या इसी के द्वारा उपार्जित धन वैभव शरण दाता बन सकता है ? नही, कदापि नही। अरे ! यह धन तो जड़ है। जड़ नाशवान धन शरण दाता कैसे हो सकता है ? यह धन तो और तुझे अशरण बना देता है। धन ही तुझसे न जाने कितनो की चाटुकारिता करवाता है। धर्म पथ से भी विचलित कर अधर्म की ओर दौड़ाता है। अरे ! इस धन के लिये ही तुझे हजारो सकटो का सामना करना पडता है, और हजारो कि. मी. की यात्रा करनी पड़ती है।

यह धन ही है जो भाई-भाई में, पिता-पुत्र में, मित्र-मित्र मे और पति-पत्नी तक में भेद डलवा देता है। यह धन ही तो अशरणता की जड़ है। इसी के कारण यह चैतन्य न जाने कितना नाच

नाचता है । कितने दरवाजे खटखटाता है और कितनों को चरण-धूलि चाटता है । और तारीफ यह है कि इतने दरवाजों की धूलि चाटने के बाद या हजारों देवी-देवताओं की मिन्नतो के बाद भी यह मिलता कहां है ? और मिल भी जाय तो टिकता कहां है ? यह क्षण भर में तो करोडोंपति बना कर राजा-महाराजा या नरनाथ बना देता है और क्षण भर मे पुनः अनाथ बना देता है । जो स्वयं इतना अस्थिर जड़ एव अशरण है, उस धन की शरण चाहना या उसे शरणदाता मानना कहां की बुद्धिमत्ता है ? अतः हे चैतन्य ! यह धन त्रिकाल में भी आश्रयदाता या शरण प्रदाता नही बन सकता है ।

परिवार भी शरण प्रदाता नहीं

हे चैतन्य ! कदाचित् तू यह सोचता हो कि धन-सम्पत्ति जड है, वह शरण दाता नही है तो क्या हुआ ? परिवार तो चैतन्य है, वह तो शरणागत वत्सल होगा ? अत मैं परिवार की ही शरण ग्रहण कर लूं । किन्तु यह भी तेरी ना समझी है । जरा तू निर्मोही बनकर समीक्षण कर, तुझे स्पष्ट ज्ञात होगा कि पारिवारिक जन अथवा मित्रादि ज्ञातिजन भी सब स्वार्थ से अनुबन्धित है । जब तक तू उन्हें कमाकर देता है, उनके स्वार्थों की पूर्ति करता है तब तक पिता-माता कहेगे—'हमारा बेटा कमाऊ है—गुणवान है । भाई कहेगा 'हमारी भुजा है' और बहिन कहेगी—'हमारा वीरा है ।' पत्नी कहेगी—'हमारे प्राणनाथ हैं ।' इस प्रकार पूरा परिवार खूब प्रशंसा करेगा और सिर आंखो पर बिठाए रखेगा । तेरी हर तरह इच्छा पूरी करेंगे और तेरी हर बात मे हां में हा मिलाएंगे ।

किन्तु यदि तू उनके स्वार्थों की पूर्ति करने वाला नही है, धनोपार्जन की कला नही जानता है या सम्पत्ति उडाने वाला है, तो वे ही माता-पिता, भाई-बहिन, मित्र एव पत्नी भी तुझे फूटी आंखों भी देखना पसन्द नही करेंगे । वे तुम्हे शरण नही देगे पर घर से धक्का तो अवश्य दे देंगे । कुपूत, उड़ाऊ पूत, मक्कार आदि अनेक अभद्र अशोभनीय शब्दों की शरण मे अवश्य डाल देंगे ।

कदाचित् तू कमाऊ रहा और परिवार वाले सिर आंखो पर

रखने वाले हुए, फिर भी क्या वे शरण प्रदाता बन सकते हैं ? अरे, चैतन्य ! जरा तो विचार कर जो स्वयं अशरण हैं, अनाथ हैं, वे तुम्हारे नाथ अथवा तुम्हें शरण देने वाले कैसे हो सकते है ? क्या वे स्वयं जन्म, जरा, रोग एवं मृत्यु के दुःखो से बचे हुए हैं ? क्या वे समस्त सांसारिक बन्धनों से मुक्त हैं ? क्या उन्होंने स्वयं अपना शरण स्थल ढूंढ लिया है ? यदि नहीं, तो वे तुम्हे शरण देने वाले कौन होते हैं ? अरे, चैतन्य ! पारिवारिकजन कोई भी तुझे शरण नही दे सकते । तेरे दु खों को बटा नही सकते । तेरे कर्मों का हिस्सा नहीं ले सकते ! तेरा शरण तुझे स्वयं मे ही ढूढना होगा । तू स्वय की शरण मे जा, वही सच्चा शरण स्थल है ।

भगवान महावीर ने अपनी चरम देशना में कहा है—"माया-पियाण्हुसा भाया, भज्जा-पुत्ताय ओरसा । णालं ते तव ताणाय, लुप्पतस्स सकम्मुणा ॥"

अर्थात्—कर्माधीन होकर परलोक जाते हुए तुम्हारे लिये माता-पिता, पुत्री, पत्नी, पुत्र एवं बहिन आदि कोई भी शरण दाता—रक्षक नही हो सकते हैं ।

इसके विपरीत ऐसे हजारों उदाहरण मिलेंगे, जिनमें प्रिय जनो ने ही अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये अपने प्रिय पिता-पुत्र, पत्नी आदि को मौत की शरण मे भेज दिया । निकट इतिहास को देखें तो औरंगजेब, हुमायूं, श्रेणिक और कोणिक के कारनामे हमारे सामने हैं। क्या कोणिक ने अपने स्वार्थ पूर्ति के लिये प्राण दाता पिता को ही जेल की सीकचों मे बन्द करके बेमौत मरने को विवश नही कर दिया था ? ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की विषयासक्त मां ने अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु लाल को ही मरवाने का षड़यन्त्र नही किया था ? क्या सगे भाई भरत—बाहुबली राज्य लिप्सा हेतु नही लड़े थे ? क्या दुर्योधन की कुत्सित सत्ता लिप्सा ने सारे कुटुम्ब को मौत के मुंह में नही धकेल दिया था ? सूर्यकान्ता महारानी ने अपने ही प्रियतम महाराजा प्रदेशी को अपने भोगो की अतृप्ति के कारण जहर देकर मौत के आगोस मे नहीं छिपा दिया ? अरे ! आज भी तो ऐसे हजारो घटना क्रम बनते

दिखाई देते हैं; जिनमे अत्यन्त प्रियजन ही अपने प्रिय पात्रों को सामान्य से स्वार्थों की पूर्ति हेतु मौत की शरण मे पहुचा देते हैं।

हे चैतन्य ! यह सब देखते हुए भी परिवार या परिजनो को शरण रूप मानना क्या बहुत बड़ी मूढता या आत्म प्रवचना नही है ? अतः तू परिवार की शरण की कामना छोड़ और स्वय आत्म समीक्षण के द्वारा अपनी ही शरण ग्रहण कर—जिसे शास्त्रकारो ने कहा है—

"अप्पाण सरणं गच्छ"

अपनी आत्मा की ही शरण मे जाओ। वही त्राता-परित्राता-भय त्राता या मोक्ष दाता है।

सभी काल की शरण

इस प्रकार दिवा लोक की तरह यह सुस्पष्ट है कि शरीर, धन एव पारिवारिक जन कोई भी इस आत्मा को शाश्वत शरण देने वाले नही है। क्योकि ये सब भी तो स्वयं अशरण है तो अन्य के लिये शरण भूत कैसे बन सकते है ? अरे, काल वैताल ने भी किसी को छोडा है क्या ? चक्रवर्ती सम्राट, नरेन्द्र, देवेन्द्र, सुरेन्द्र, शक्रेन्द्र आदि देव, बडे-बडे शक्तिशाली दैत्य, शस्त्रधारी क्षत्रिय, वेद पाठी ब्राह्मण, जमीदार, जागीरदार, श्रीमन्त सेठ-साहूकार, हजारो विद्याओ के जानकार विद्याधर, चतुर्दश पूर्वधर मुनिप्रवर, सिंहादि वनराज एवं सर्पादि उर परिसर्प आदि किसी का भी जोर चला है काल-वेताल के आगे ? क्या इस संसार मे आज तक किसी ने भी अमरता प्राप्त की है ? क्या गुफा, कन्दरा, गर्भ गृह, पहाड़, समुद्र आदि ऐसा कोई स्थान है इस भू-मण्डल पर, जहा काल की पहुंच न हो ? अरे ! यह काल तो जड़ चेतन सभी को निगलता जा रहा है। अमृत और अमर घूंटी नाम घटाने वाली औषधिया भी काल के सामने मृत प्रायः हो जाती हैं—धरी रह जाती हैं।

अरे ! सभी प्रकार के मन्त्र-तन्त्र एव रोहिणी, प्रज्ञप्ति आदि विधाएं भी काल के आगे परास्त हो जाती हैं। सभी रिद्धि-सिद्धिया मुंह ताकती रह जाती हैं। संसार मे ऐसा कोई शस्त्र भी तो नही है, जिससे काल को भयभीत किया जा सके, डराया जा सके ! अरे !

रखने वाले हुए, फिर भी क्या वे शरण प्रदाता बन सकते हैं ? अरे, चैतन्य ! जरा तो विचार कर जो स्वयं अशरण हैं, अनाथ हैं, वे तुम्हारे नाथ अथवा तुम्हे शरण देने वाले कैसे हो सकते हैं ? क्या वे स्वयं जन्म, जरा, रोग एवं मृत्यु के दुःखों से बचे हुए हैं ? क्या वे समस्त सांसारिक बन्धनों से मुक्त है ? क्या उन्होंने स्वय अपना शरण स्थल ढूंढ लिया है ? यदि नही, तो वे तुम्हे शरण देने वाले कौन होते हैं ? अरे, चैतन्य ! पारिवारिकजन कोई भी तुझे शरण नही दे सकते । तेरे दु.खों को बटा नही सकते । तेरे कर्मों का हिस्सा नहीं ले सकते ! तेरा शरण तुझे स्वयं मे ही ढूंढना होगा । तू स्वयं की शरण में जा, वही सच्चा शरण स्थल है ।

भगवान महावीर ने अपनी चरम देशना में कहा है—"माया-पियाण्हुसा भाया, भज्जा-पुत्ताय ओरसा । णालं ते तव ताणाय, लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥"

अर्थात्—कर्माधीन होकर परलोक जाते हुए तुम्हारे लिये माता-पिता, पुत्री, पत्नी, पुत्र एवं बहिन आदि कोई भी शरण दाता—रक्षक नही हो सकते हैं ।

इसके विपरीत ऐसे हजारों उदाहरण मिलेंगे, जिनमें प्रिय जनों ने ही अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये अपने प्रिय पिता-पुत्र, पत्नी आदि को मौत की शरण मे भेज दिया । निकट इतिहास को देखें तो औरंगजेब, हुमायूं, श्रेणिक और कोणिक के कारनामे हमारे सामने हैं। क्या कोणिक ने अपने स्वार्थ पूर्ति के लिये प्राण दाता पिता को ही जेल की सीकचो मे वन्द करके वेमौत मरने को विवश नही कर दिया था ? ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की विषयासक्त मां ने अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु लाल को ही मरवाने का षड़यन्त्र नही किया था ? क्या सगे भाई भरत—वाहुवली राज्य लिप्सा हेतु नही लड़े थे ? क्या दुर्योधन की कुत्सित सत्ता लिप्सा ने सारे कुटुम्ब को मौत के मुंह में नही धकेल दिया था ? सूर्यकान्ता महारानी ने अपने ही प्रियतम महाराजा प्रदेशी को अपने भोगो की अतृप्ति के कारण जहर देकर मौत के आगोस में नही छिपा दिया ? अरे ! आज भी तो ऐसे हजारों घटना क्रम वनते

दिखाई देते हैं, जिनमे अत्यन्त प्रियजन ही अपने प्रिय पात्रो को सामान्य से स्वार्थों की पूर्ति हेतु मौत की शरण मे पहुचा देते हैं।

हे चैतन्य ! यह सब देखते हुए भी परिवार या परिजनो को शरण रूप मानना क्या बहुत बड़ी मूढता या आत्म प्रवचना नही है ? अतः तू परिवार की शरण की कामना छोड और स्वय आत्म समीक्षण के द्वारा अपनी ही शरण ग्रहण कर—जिसे शास्त्रकारो ने कहा है—

"अप्पाण सरणं गच्छ"

अपनी आत्मा की ही शरण मे जाओ। वही त्राता-परित्राता-भय त्राता या मोक्ष दाता है।

सभी काल की शरण

इस प्रकार दिवा लोक की तरह यह सुस्पष्ट है कि शरीर, धन एवं पारिवारिक जन कोई भी इस आत्मा को शाश्वत शरण देने वाले नही है। क्योंकि ये सब भी तो स्वय अशरण है तो अन्य के लिये शरण भूत कैसे बन सकते है ? अरे, काल वैताल ने भी किसी को छोडा है क्या ? चक्रवर्ती सम्राट, नरेन्द्र, देवेन्द्र, सुरेन्द्र, शक्रेन्द्र आदि देव, बडे-बडे शक्तिशाली दैत्य, शस्त्रधारी क्षत्रिय, वेद पाठी ब्राह्मण, जमीदार, जागीरदार, श्रीमन्त सेठ-साहूकार, हजारों विद्याओ के जानकार विद्याधर, चतुर्दश पूर्वधर मुनिप्रवर, सिंहादि वनराज एव सर्पादि उर परिसर्प आदि किसी का भी जोर चला है काल-वेताल के आगे ? क्या इस संसार मे आज तक किसी ने भी अमरता प्राप्त की है ? क्या गुफा, कन्दरा, गर्भ गृह, पहाड़,समुद्र आदि ऐसा कोई स्थान है इस भू-मण्डल पर, जहा काल की पहुंच न हो ? अरे ! यह काल तो जड चेतन सभी को निगलता जा रहा है। अमृत और अमर घूटी नाम धटाने वाली औषधिया भी काल के सामने मृत प्रायः हो जाती हैं—धरी रह जाती हैं।

अरे ! सभी प्रकार के मन्त्र-तन्त्र एवं रोहिणी, प्रज्ञप्ति आदि विधाएं भी काल के आगे परास्त हो जाती है। सभी रिद्धि-सिद्धियां मुह ताकती रह जाती हैं। संसार मे ऐसा कोई शस्त्र भी तो नही है, जिससे काल को भयभीत किया जा सके, डराया जा सके। अरे !

सभी शस्त्र तो काल के ही सहयोगी हैं, उनसे काल कैसे डरेगा ? काल की शक्ति अनूठी है–पानी, अग्नि, हवा और वज्रमय दिवारें भी उसे रोक नही सकते । उसे कोई भी किसी भी रूप मे प्रतिवन्धित नही करता है ।

और फिर इस काल को दया, करुणा का कोई विचार भी तो नही उठता है । वह किसी को कुछ नही गिनता और किसी मे कोई भेद नही करता । वाल, जवान, नवविवाहित, वृद्ध, धनी, निर्धन, राजा, रक, सुखी-दुःखी किसी को भी किसी समय उठाकर ले जाता है । यह होली, दीपमालिका या रक्षावन्धन के त्यौहारो को भी नही देखता कि आज तो प्रमोद का दिन है, आज की तो सरकारी ऑफिसो की तरह सार्वजनिक छुट्टी कर दूं । इसको न जाति कुल से मतलव है और न किसी के अधूरे कामो से । उसके लिये दिन-रात, देव, नारक या पशु मनुष्य मे भी कोई अन्तर नही ।

यह तो प्रत्येक प्राणी एव प्रत्येक पदार्थ पर ऐसा झपट्टा मारता है कि सारे काम अधूरे रह जाते है, सारे मनसूबे धरे रह जाते हैं । अनन्त अनन्त काल से यह प्रतिक्षण अपनी खुराक ले रहा है, फिर भी इसे कभी तृप्ति नही होती, यह अतृप्ति का महासागर है । आज जिसको चट किया, तुरन्त दूसरे ही क्षण से फिर उसे प्रतिक्षण चट करता जाता है । इसीलिये तो वड़े-वड़े योद्धा, राजा-महाराजा एवं देवेन्द्र-नरेन्द्र भी इस काल के सामने थर-थर कांपने लगते है ।

ऐसे निर्लज्ज क्रूर काल के वशीभूत है यह ससार ! यहां की जड चेतन समस्त चराचर सृष्टि ! फिर कौन किसको शरण दे सकता है ? अरे ! चैतन्य ! जिसकी तू शरण खोज रहा है, उनको भी तो काल ने अपनी क्रूर शरण मे ले रखा है । फिर स्वय अशरण की शरण लेकर तू सुखी होना चाहता है क्या यह वज्र मूर्खता नही है ? क्या यह मृगतृष्णा के जल से प्यास वुझाना एवं कल्पना के कुसुमों से शृंगार सजाना नही है ? अरे ! वन्ध्या पुत्र को कभी किसी ने खाना खिलाया है ? जैसे यह कार्य असम्भव है, उसी प्रकार काल की चपेट मे पिसते तत्त्वो एव प्राणियो से शरण प्राप्त करना असम्भव है ।

हे चैतन्य ! आत्म समीक्षण की गहराई मे जाने पर तुझ स्वत. ज्ञात हो जायेगा कि तुम्हारे लिये केवल एक ही शरणभूत है, और वह है धर्म । महारानी कमलावती अपने पति इक्षुकार नृप को समझाते हुए कहती है कि—

"इक्को हु धम्मो नर देव ! ताण ।"

हे नरनाथ एक धर्म ही ऐसा है, जो तुम्हारी रक्षा कर सकता है, तुम्हारे लिये शरण प्रदाता बन सकता है ।

प्रभु महावीर ने धर्म को एक द्वीप की उपमा देते हुए कहा है—

"धम्मो दीवो पइट्ठाय गईसरणमुत्तम ।" अर्थात् धर्म ही सर्वोत्तम द्वीप और शरण प्रदाता है, जिसकी शरण मे यह आत्मा सदा-सदा के लिये परमानन्द-परम शान्ति के शाश्वत् स्थान मे प्रतिष्ठित हो जाता है ।

अत समीक्षण ध्यान के साधक का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वह ससार के स्वय अशरणभूत पदार्थों की शरण की आशाओ का परित्याग करके एक आत्म धर्म की शरण ग्रहण करे । अपनी समस्त चिन्तन धारा को इस अशरणत्व समीक्षण मे लगाकर शरण-अशरण भूत पदार्थो का निर्णय कर सच्ची शरण ग्रहण कर आत्म कल्याण का पथिक बने ।



७ | संसार समीक्षण

विभिन्न दृष्टियो से ससार के स्वरूप का चिन्तन करना ससारानुप्रेक्षा अथवा संसार समीक्षण है । "संसरन्ति अस्मिन् जीवा इति ससार:" । इस निर्युक्ति के अनुसार जीवो के ससरण-परिभ्रमण क्षेत्र को संसार कहा जाता है ।

ससार समीक्षण मूल में चार प्रकार से किया जा सकता है, जिसे चार पुद्गल परावर्तन भी कहते हैं । चारो पुद्गल परावर्तनो मे इस जीवात्मा के परिभ्रमण का चिन्तन करना, इसका विविध रूपो में समीक्षण करना ससार समीक्षण है । इस समीक्षण के द्वारा चेतन्य अपने दु.ख, सघर्ष एव तनावमय ससरण से ऊपर उठकर आत्म रमणता की ओर गतिशील होता है । वे चार पुद्गल परावर्तन निम्न है—

(१) द्रव्य संसार समीक्षण

इस आत्मा ने ससार के समस्त द्रव्यो पुद्गलो को ज्ञानावरणीयादि आठो कर्मों के कारण शरीरादि रूप मे अनन्त वार ग्रहण करके छोड दिये है । सभी द्रव्यो को अन्न, जल, श्वासोच्छवास आदि के रूप मे, इन्द्रियो के रूप मे एव अन्य समस्त शारीरिक परिणतियो के रूप मे ग्रहण करके, एक वार नही अनन्त वार ग्रहण करके छोड़ दिये हैं । ये सभी पुद्गल इसी जीवात्मा के अनन्त वार उच्छिष्ट हो चुके हैं । अव जो कुछ यह ग्रहण करता है, वह अनन्त जीवो की और स्वय इस जीवात्मा की झूठन ही झूठन है । यहा नया कुछ भी नहीं है । आज जो नया दिख रहा है, वह अनन्त वार वैसा का वैसा वन चुका है । फिर यह मूढ चेतना इन पुद्गलों मे ही रची-पची रहती है । यह इन पुद्गलो के आकर्षण वन्धन से कव अलग हो—कव इन द्रव्यो के उपभोग-परिभोग जन्य दु:खो से मुक्त हो, ऐसा चिन्तन द्रव्य संसार समीक्षण है ।

द्रव्य संसार समीक्षण मे द्रव्य पुद्गल परावर्तन के साथ द्रव्यों की विविध पर्यायों एव उनके जीवात्मा के साथ हुए अनन्त सम्बन्धों का भी चिन्तन किया जा सकता है । एक-एक द्रव्य की अनन्त अनन्त पर्यायें होती हैं और उन सभी पर्यायो को यह आत्मा अनन्त-अनन्त वार ग्रहण कर चुकी हैं । संसार मे २६ वर्गणायें हैं, उनमे जीव प्रायोग्य आठ (८) वर्गणाएं है । औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, श्वासोच्छ्वास, भाषा-मन और कार्मण वर्गणा । इन आठ वर्गणाओं मे से एक आहारक वर्गणा को छोडकर शेष सात वर्गणाओ के रूप मे ससार के समस्त द्रव्य-पुद्गलो को इस आत्मा ने अनन्त वार अपने शरीरादि के रूप मे परिणत करके छोड दिये हैं ।

इस प्रकार द्रव्य अथवा पुद्गलो के उपभोग-परिभोग सम्बन्धी चिन्तन के द्वारा अपनी चेतना को इस अनादि पुद्गलानन्द से अनासक्त-वन्धन मुक्त वनाने सम्वन्धी चिन्तन को द्रव्य ससार समीक्षण कहा जाता है ।

(२) क्षेत्र संसार समीक्षण

क्षेत्र ससार समीक्षण में समस्त लोकाकाश के प्रदेशों पर आत्मा के मरण का समीक्षण किया जाता है । यह समस्त लोक असख्य प्रदेशात्मक है । इसमे एक-एक प्रदेश पर इस आत्मा ने अनन्त-अनन्त वार मरण कर लिये हैं । ऐसा एक भी लोकाकाश का प्रदेश नही है जिस पर कि इस जीव ने मरण नही किया हो । जिन क्षेत्रो, भवनो, आवासो एवं नगरो मे रह रहे हैं, उनमे हम नये ही रहने को नही आये है । ऐसे भवन नगर एव आवास क्षेत्र अनन्त वार वन चुके है । यही नही, स्वर्ग, नरक-पाताल भूमियो एव इस विशाल आकाश की पोलार मे भी वायुकाय आदि के रूप मे हम अनन्त वार जन्म-मरण कर चुके हैं ।

सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्तन का स्वरूप भी तो यही है कि एक आत्मा मेरु पर्वत के मध्यवर्ती आठ रुचक प्रदेशो मे से एक प्रदेश पर मरण ग्रहण करें । फिर अनन्त काल मे परिभ्रमण करते हुए कभी ऐसा प्रसंग आवे कि उसी के निकटवर्ती दूसरे आकाश प्रदेश पर मरण ग्रहण करें । इस प्रकार क्रमशः पूरे आकाश प्रदेशो पर मरण ग्रहण

करने पर एक सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्तन होता है। स्मरणीय है कि प्रथम आकाश प्रदेश के निकटवर्ती आकाश प्रदेश का नम्बर आने मे अनन्त काल भी लग सकता है। दूसरे आकाश प्रदेश, जिन पर बीच-बीच मे जन्म लिये वे गणना मे नही आते हैं। क्रमबद्धता मे ही उनका नम्बर आएगा तभी वे गणना में आएंगे। ऐसे अनन्त क्षेत्र पुद्गल परावर्तन पूरे कर लिये हैं हमारी इस आत्मा ने।

सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त के सम्बन्ध मे एक बात और जानना चाहिए कि एक जीव की जघन्य अवगाहना लोक के असंख्यातवे भाग बतलाई है, जिससे एक जीव यद्यपि लोकाकाश के एक प्रदेश मे नही रह सकता तथापि किसी एक देश मे मरण करने पर उस देश का कोई एक प्रदेश आधार मान लिया जाता है। जिससे यदि उस विवक्षित प्रदेश से दूरवर्ती किन्ही प्रदेशों में मरण होता है तो वे गणना में नही लिये जाते हैं किन्तु अनन्तकाल बीत जाने पर जब कभी विवक्षित प्रदेश के अनन्तर का जो प्रदेश है, उसमे मरण करता है तो वह गणना मे लिया जाता है।

प्रदेशों को ग्रहण करने के बारे मे किन्ही-किन्ही आचार्यों का मत है कि लोकाकाश के जिन प्रदेशो में मरण करता है वे सभी प्रदेश ग्रहण किये जाते है, उनका मध्यवर्ती कोई विवक्षित प्रदेश ग्रहण नही किया जाता है—

अन्ये तु व्याचक्षते—येष्वाकाशप्रदेशेष्ववगाढो जीवो मृतस्ते सर्वेऽपि आकाशप्रदेशाः गण्यन्ते, न पुनस्तन्मध्यवर्ती विवक्षितः कश्चिदेक एवाकाश प्रदेश इति —प्रवचन टीका पृ. ३०९ उ०

समीक्षण ध्यान साधक ससार समीक्षण के क्षणो में यह चिंतन करता है कि इस ससार के अणु-अणु पर मैंने अनन्त बार जन्म ग्रहण कर लिये हैं। और अभी भी यह परम्परा बराबर चल रही है। इस रूप मे इस आत्मा को कही भी विश्रान्ति—आनन्द या शान्ति प्राप्त नही हुई।

भव्य भवनों के सौन्दर्य नयनाभिराम भवनों की सजावट एवं रूप छटा के आकर्षक म्यूजियम अनन्त बार देख-भोग लेने के बाद भी

इस आत्मा को तृप्ति नही दे सके । दैविक भवनों के ऐश्वर्य नन्दनवन की रमणीयता, भव्य पुष्करणियो की आरामदेयी एवं वातानुकूलित प्रासादो का प्रचूर वैभव इस चैतन्य ने अनन्त बार भोग लिया है; फिर भी यह कहां तृप्त हुआ है । अतः हे चैतन्य ! संसार समीक्षण की यह धारा तुझे जगाने के लिये पर्याप्त है । तू ससार के अणु-अणु को अनन्त बार देख भोग चुका है, अब इससे उपरत होजा ।

(३) काल संसार समीक्षण

काल ससार समीक्षण का अर्थ है—चेतना के संसार परिभ्रमण के काल का विचार करना । अनादि अनन्त काल से यह आत्मा ससार में परिभ्रमण कर रही है । द्रव्य एव क्षेत्र के समान काल के पुद्गल परावर्तन का अर्थ है—उत्सर्पिणी एव अवसर्पिणी काल के प्रत्येक समय में जीव का जन्म ग्रहण करना । इसके दो रूप हैं—बादर और सूक्ष्म । बादर काल पुद्गल परावर्तन मे क्रम—व्युत्क्रम किसी भी रूप से प्रत्येक समय मे जन्म लेकर उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल के समयो को पूरा करना, जबकि सूक्ष्म काल पुद्गल परावर्तन में क्रम वद्धता अनिवार्य है । अर्थात् उत्सर्पिणी काल के प्रथम समय मे जन्म ग्रहण किया फिर कभी अनन्त काल मे भटकते-भटकते उत्सर्पिणी काल के द्वितीय समय मे जन्म लिया । इसी प्रकार तृतीय-चतुर्थ आदि समयों में जन्म-मरण करते हुए उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी के सभी समयों को पूरा करना सूक्ष्म काल पुद्गल परावर्तन है । स्मरणीय है कि आंख की एक पलक झपकने मे असंख्य समय व्यतीत हो जाते हैं तो पूरे काल चक्र (उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी) मे कितने समय होते होगे । जबकि (२०) बीस कोडा-कोडी सागरोपम का एक काल चक्र होता है । और (२०) कोडा कोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है ।

पल्योपम के कास को समझने के लिये शास्त्रकारो ने असत्कल्पना का उदाहरण देते हुए कहा है—

८ मील लम्बा, ८ मील चौडा और ८ मील गहरा कुआ हो, उसे यौगलिको के सूक्ष्म बालो को छोटे-छोटे टुकडे करके उनसे भर दिया जाय । फिर सौ-सौ वर्षों मे एक बाल का टुकड़ा निकाला जाय । जब वह कुआ खाली हो जाय, उतने काल को एक (अद्धा) पल्योपम

कहते हैं। ऐसे दस कोड़ा कोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। और ऐसे बीस कोडा कोडी सागरोपम का एक काल चक्र होता है। उसके समयों का क्या अनुमान लगाया जा सकता है ? इन समयो मे क्रमवद्धता से जन्म-मरण ग्रहण करने का अर्थ है—अनन्त काल तक अनन्त जन्म ग्रहण करते जाना।

काल संसार समीक्षण में साधक का चिन्तन इस रूप में स्थिर होता है कि इस आत्मा ने ऐसे अनन्त काल चक्र जन्म और मरण करते-करते पूरे कर दिये हैं, फिर भी इसे इस परिभ्रमण से सन्तुष्टि नही हुई। यह प्रत्येक वार जन्म-मरण की बेला मे असह्य यातना सहन करती रही, किन्तु सम्यग् ज्ञान-दर्शन चारित्र की आराधना के बिना दुःखों से मुक्त नही हो सकी। अनन्त काल से अनन्त दुःखों का भार ढोती चली आ रही है।

अब काल परिपाक से अनन्त पुण्यो के उदय से पुनः आत्म-कल्याण के योग्य मानव तन प्राप्त हुआ है। हे आत्मन् ! अब तो जागृत हो जा ! अब तो साधना का मार्ग पकड कर इस काल कराल रूपी संसार से मुक्त हो जा ! यह अवसर चूका कि फिर इस काल की चक्की मे पिसता चला जायेगा। हे चैतन्य ! यह स्वर्णावसर तुम्हारे हाथ लगा है। इस काल चक्र से अनादि के भव भ्रमण से छुटकारा पा ले। अनन्त-अनन्त काल के लिये शाश्वत मुक्ति धाम मे पहुंच जा। अन्यथा, नही सम्भलने पर कितने काल पुद्गल परावर्तन और करने पड़ेंगे, कुछ कहा नही जा सकता ! समझ ! समझ ! चैतन्य ! काल की दुरूहता को समझ और इस चक्र से मुक्ति प्राप्त कर।

(४) भाव संसार समीक्षण

भाव संसार समीक्षण मे आत्मा के अध्यवसायो के आधार पर चिन्तन चलता है। आत्मा के अध्यवसायो के असंख्य स्थान हैं। अध्यवसायो का अर्थ है–आत्म में होने वाला पर्याय परिणमन। पर्याय परिणमन मुख्यतः दो प्रकार का होता है—(१) स्वभाव पर्याय परिण-मन एवं (२) विभाव पर्याय परिणमन। आत्मा का ज्ञान-दर्शन चारित्र रूप निज गुणो मे परिणमन स्वभाव पर्याय परिणमन है और कषाय

और योग के निमित्त से होने वाला परिणमन विभाव पर्याय परिणमन है।

यहा भाव ससार समीक्षण मे भाव पुद्गल परावर्तन का सम्बन्ध है और वह विभाव पर्याय परिणमन से सम्बन्धित है।

भाव पुद्गल परावर्तन का अर्थ है–आत्मा के असंख्यात् अध्यवसाय स्थानो मे से प्रत्येक अध्यवसाय स्थान पर जीव का जन्म-मरण होना। आत्मा के अध्यवसाय स्थानो को योग और कषाय की तारतम्यता के आधार पर षड्स्थान पतित कहा गया है। कुछ अध्यवसाय स्थान अपनी जघन्य सामान्य स्थिति वाले होते हैं। कुछ उनसे संख्यात गुण अधिक, असख्यात गुण अधिक और अनन्त गुण अधिक होते हैं। इसी प्रकार कुछ सख्यात गुण हीन, असख्यात गुण हीन और अनन्त गुण हीन होते है। इस तारतम्य को ही आगमिक भाषा मे 'षट् स्थान पतित' अथवा ६ छट्ठाणवड़िया' कहा जाता है।

तात्पर्य यह है कि क्रोधादि कषायो के असख्य प्रकार हैं। सबमे कम और फिर उनसे एकाधिक द्वि-अधिक आदि करते हुए असख्यात गुण अधिक और पुन इसके विपरीत असख्यात अनन्त गुण-हीन क्रोधादि कषायो के भेद होते है। यह आत्मा विभाव पर्यायो मे परिणमन करती हुई इन अध्यवसाय स्थानो का स्पर्श करती रहती है। इनमे से प्रत्येक अध्यवसाय स्थान पर इस आत्मा का जन्म-मरण होना भाव पुद्गल परावर्तन कहलाता है। और इस आत्मा ने ऐसे अनन्त भाव पुद्गल परावर्तन पूरे कर लिये हैं।

समीक्षण ध्यान साधना का साधक भाव ससार समीक्षण की इस प्रक्रिया मे यह चिन्तन करता है कि मेरी इस आत्मा ने कितनी बार क्रोधादि अध्यवसाय स्थानो का स्पर्श किया है। कितनी बार विभाव परिणतियो मे दौड़ती रही है, किन्तु इसमे एक बार भी अपने स्वरूप की जागृति नही हुई है। योग और कषायो के वशीभूत हुई यह चेतना अनन्त अनन्त कर्म स्कन्धो को दूध पानी की तरह अपने साथ मिलाती रही और नये-नये जन्म-मरण के बीजो का वपन करती रही। यह परम्परा आज से नही, अनादि काल से चली आ रही है।

वैभाविक दशा मे रममाण मेरी इस चेतना ने विभाव-पर्याय जनित अनन्त दु.ख सहन किये है, फिर भी इसमे स्वरूप की समझ उत्पन्न नही हुई । अरे, आत्मन् ! क्रोधादि कषायो मे रमण करते हुए भी क्या कभी किसी ने शान्ति प्राप्ति की है ? क्रोध, मान, माया और लोभ ही तो सभी प्राणियों को दुःख के दल-दल में फसा रहे हैं। इन्ही के कारण तो यह आत्मा जन्म-मरण के चक्कर मे उलझी हुई है । फिर ये शान्ति अथवा आनन्ददायी कैसे हो सकते हैं ! अरे, इन कषायो के कारण ही तो पारिवारिक, सामाजिक एव राजनैतिक जीवन मे अनेक सघर्ष खडे होते हैं ! क्रोध, मान, माया, लोभ ही तो प्राणी-प्राणी को एक दूसरे का शत्रु बनाकर युद्ध खडे करवा देते हैं और लाखो वेमौत मारे जाते हैं ।

अरे चेतन ! तू समीक्षण कर कि यह आत्मा अनादि काल से इन कषाय स्थानो के वशवर्ती होकर ही जन्म-मरण कर रही है । इसने अनन्त भाव पुद्गल परावर्तन पूरे कर दिये हैं । अब इसे महापुण्य के योग मे यह मानव जीवन का सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ है । अब भी यदि यह सम्भल जाती है तो इसके सारे चक्कर मिट सकते है । यह सभी पुद्गल परावर्तनो से बचकर सदा-सदा के लिये शाश्वत शान्ति मे लीन हो सकती है । आवश्यकता है कि यह अध्यवसायो की षट् स्थान पतित स्थिति को समझकर उनसे ऊपर उठे और प्रशस्तम अध्य-वसायों की ओर गतिशील बने ।

दूसरी दृष्टि से संसार समीक्षण

संसार समीक्षण का एक दूसरा प्रकार भी है, जिसमे गति-जाति आदि जीव वर्गों मे जन्म-मरण का विचार किया जाता है ।

इस संसार मे चार गतियां हैं—(१) नरक, (२) तिर्यंच, (३) मनुष्य, (४) देव ।

समीक्षण ध्यान साधक ससार समीक्षण मे यह समीक्षण करता है कि इस आत्मा ने इन चारो गतियो मे अनन्त अनन्त बार जन्म-मरण लेकर परिभ्रमण कर लिया है । अनन्त यातनाओ से यह अनन्त बार गुजर चुका है ।

नारकीय यातनाये—प्रथम नरक गति है, जिसमे इस जीव ने अनन्त जन्म-मरण किये और अगणित प्रकार की वेदनाए-यातनाए भोगी हैं। नरक भूमिया सात हैं, जिनमे एक-एक से अनन्तगुण अधिक दुःखो का भोग करना पडता है। वहां मुख्यत तीन प्रकार की वेदना है। परमाधामी देव कृत २ परस्पर कृत और ३ क्षेत्र जनित आदि की तीन नरक भूमियो में ही परमाधामी देवकृत वेदना होती है। क्योकि इसके आगे परमाधामी देव नही जाते हैं। ये परमाधामी देव १५ प्रकार के हैं और नारकी जीवो को विघ प्रकार की यातना देने मे इन्हें आनन्द आता है।

(१) परमाधामी देव नारकीय जीवो को अधिकाशतया उनके कर्मों के अनुसार फल देते हैं। जैसे किसी ने पूर्व जन्म मे मास भक्षण किया हो तो उसे उसी के शरीर को काटकर खिलाते है। शराबी को उसी का खून (वैक्रिय रचना का) निकालकर अथवा सीसा गर्म करके पिलाते हैं। परस्त्री लम्पट को लोहे की उष्ण पुतली का स्पर्श कर-वाते हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार की असह्य वेदनाए परमाधामी देव देते हैं और नारकी जीव पराधीन होकर सब कुछ सहन करते जाते है।

(२) नरक मे दूसरी वेदना आपस की है। तीसरे नरक से आगे परमाधामी देव नही जाते किन्तु वहा के नारकी तरह-तरह के विकराल भयकर रूप बना कर परस्पर लडते है, मारते हैं और हाय-हाय करते रहते हैं। जैसे नये आये कुत्ते पर पुराने कुत्ते टूट पड़ते हैं, उसी प्रकार वे एक दूसरे पर सदैव टूटते रहते हैं। एक दूसरे को काटते मारते रहते हैं।

नरक की तीसरी क्षेत्र जनित वेदना है। यह वेदना प्रधान रूप से दस प्रकार की है, जो सदैव बनी रहती है।

(१) अनन्त क्षुधा नारकी जीव को इतनी भूख लगती है कि तीन लोक के समस्त भक्ष्य पदार्थ एक को खिला दिये जाये तो भी तृप्ति न हो, परन्तु जीवन पर्यन्त उन्हे एक दाना भी खाने को नही मिलता।

(२) अनन्त तृषा—इतनी प्यास सताती है कि संसार भर का पानी पी लेने पर भी न बुझे, परन्तु उन्हे एक बून्द भी कभी नसीब नही होती ।

(३) अनन्त शीत—शीत योनि वाले नरको मे इतनी सर्दी पड़ती है कि लाख मन का लोहे गोला भी बिखर जाय ।

(४) अनन्त उष्णता - उष्ण योनि वाले नरकों में इतनी गर्मी पड़ती है कि लाख मन का लोहे का गोला भी गलकर पानी हो जाय ।

(५) अनन्त दाहज्वर । नारकी जीवो के शरीर में अनन्त जलन होती रहती है ।

(६) अनन्त रोग—नारको का शरीर सभी महान रोगों से व्याप्त रहता है ।

(७) अनन्त खाज (खुजली) उसके शरीर मे भयंकर खुजली चलती है ।

(८) अनन्त निराधारता—नारकियो के लिये कोई शरण नही वे सदा अनाथ बने रहते हैं ।

(९) अनन्त शोक—(चिन्ता) वे क्षण भर भी चिन्ता मुक्त नही होते ।

(१०) अनन्त भय—सदैव भयभीत रहते हैं ।

ऐसी नारकीय यातनाओ को यह आत्मा अनन्त अनन्त बार भोग चुकी है । फिर भी इसे पाप से विरक्ति नही हुई है ।

तिर्यन्च के दुःख

नारकीय यातनाओ के समान ही तिर्यन्च गति के दु.ख भी कुछ कम नहीं होते हैं । यहा तिर्यंच गति का इतना ही अर्थ समझ लें कि संसार में नारक, देवता एवं मनुष्य के अतिरिक्त जितने भी जीव है—एकेन्द्रिय से लेकर पशु-पक्षी आदि पचेन्द्रिय तक वे सब तिर्यंच हैं ।

एकेन्द्रिय प्राणियों मे पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा और वनस्पति के जीव आते है तथा अन्य चलने-फिरने वाले बेइन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक सभी प्राणी त्रस सज्ञा प्राप्त करते हैं। उनमें वर्तमान काल मे दिखाई देने वाले मनुष्य के अतिरिक्त सभी प्राणी तिर्यंच त्रस हैं।

प्राय: ये सभी प्राणी कर्मोदय के कारण पराधीन बने रहते हैं और विविध प्रकार की यातनाएं भोगते रहते है।

पृथ्वी को खोदने, फोडने, मिट्टी मे गोवर आदि के मिलाने खदानें खोदने आदि कार्यों से पृथ्वीकायिक जीवो को विविध प्रकार के कष्ट भोगने पडते हैं।

इसी प्रकार पानी को गर्म करने, नहाने-धोने, खेती आदि के उपयोग में एवं क्षार पदार्थ आदि मिलाकर पानी को निर्जीव बनाने की प्रक्रिया मे अप्कायिक जीवो को कष्ट होता है, वे मारे जाते हैं। अग्नि प्रज्वलित करने, बुझाने, उस पर पानी डालने, मिट्टी डालने आदि से अग्निकायिक, पखा चलाने, कपडा आदि झटकने, खुदाई, पिटाई, झटकने, फटकने, खुले मुंह बोलने, वाहनो, जहाजो आदि चलने से वायुकायिक जीवो की तथा वृक्ष, फल-फूल, पौधे, अनाज आदि के काटने, तोडने, छेदन-भेदन करने, पकाने, ममाला आदि मिलाने से वनस्पति के जीवो को असह्य वेदना प्राप्त होती है। फिर निगोद कायिक जीवो की अनन्त कालीन अनन्त वेदना के विषय मे तो कहना ही क्या ?

बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय एव चतुरिन्द्रिय आदि जीव तो खेती, कारखानो एव वाहनो आदि मे कुचले जाते हुए एव पाव आदि के नीचे आकर अग्नि आदि मे जाकर अनेक प्रकार की वेदनाए भोगते है, जो उन लघुकाय जीवो के लिये असह्य पीड़ा होती है। बहुत बार शहद आदि प्राप्त करने के लिये तथा शृंगारिक प्रसाधनो के लिये भी इन द्विइन्द्रियादिक प्राणियो को भयंकर पीडा भोगनी पडती है।

पंचेन्द्रिय जीवो की यातना तो हम आखो के सामने देखते हैं। मांसादि प्राप्त करने के लिये, मुलायम चर्म प्राप्ति हेतु, शृंगारिक साधनों की उपलब्धि के लिये, खेती, माल ढोने में तो इन प्राणियो को

प्रवलतम पीडा मिलती ही है, किन्तु पराधीनता के कारण शीत-उष्ण, क्षुधा-तृषा की वेदना तो इन्हे प्रकृति से ही सहन करनी पड़ती है।

आजकल औषधियों एवं शृंगार प्रसाधनों के आविष्कार एवं उनके प्रयोग के लिये चूहे, खरगोश आदि प्राणियों को जान-बूझकर विविध प्रकार की वेदना-पीडा दी जाती है।

तिर्यंच योनी सम्वन्धी इन पीड़ाओ को भी यह आत्मा अनन्त-वार सहन कर चुकी है। अनन्त काल तक तो यह निगोद में दुःख भोगती रही फिर वेइन्द्रिय आदि मे इसने अगणित असह्य यातनाएं सहन की और पचेन्द्रिय मे भी इन्हे सुख कहां मिला ? इस रूप मे तिर्यंच गति भी दुःख भोग का ही स्थान है।

मनुष्य भी दुःखी

मनुष्य गति या मनुष्य योनि यद्यपि सर्वोत्तम मानी जाती है किन्तु इस योनि मे भी अधिकाश मनुष्य किस यातना पूर्ण तनावग्रस्त जीवन से गुजरते हैं—यह सर्व विदित है।

सीधे शाब्दिक व्याख्या के अनुसार "मननात् मनुः मनोरपत्यो मनुष्य।" मनन करने की क्षमता रखने वाले प्राणी को मनुष्य कहा जाता है। जो अपने हिताहित का विवेक कर सकता हो, मुक्ति मार्ग की साधना कर सकता हो, उसे मनुष्य कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार मनुष्य जीवन का वहुत अधिक मूल्य है। महर्षि वेदव्यास के अनुसार—

"नहि मानुसात् श्रेष्ठ तर हि किंचित्।" अर्थात् मनुष्य से वढकर इस संसार मे और कोई श्रेष्ठ तत्त्व नही है। जो श्रेष्ठ होता है, वही तो वहुमूल्य और दुर्लभ होता है, अतएव प्रभु महावीर ने कहा है--

"मानुस्सं खु सुदुल्लह।"

मनुष्यत्व की प्राप्ति अति दुर्लभ है। यह दुर्लभ, वहुमूल्य एव सर्वोत्तम जीवन है अवश्य, किन्तु आज के मानवों की दीन-हीन, दुर्भाग्य-

पूर्ण दुर्दशा देखते हुए स्पष्ट लगता है कि यह जीवन भी निकृष्ट पाप फल भोग का जीवन ही है। हजारो-लाखो मनुष्यो मे इने-गिने व्यक्ति ही कुछ सुख की सास लेते हुए दिखाई देते हैं। अधिकाश मानव आर्थिक अभावो के कारण अथवा कर्म की परणति के कारण नौकरी आदि की पराधीनता के दु.ख भोगते दिखाई देते हैं। शारीरिक-मानसिक संक्लेशो मे तो अधिकाश मानव उलझे ही हैं, उन्हे क्षण भर को भी शान्ति नही मिलती है। ससार मे ऐसे मनुष्य का मिलना कठिन है, जो किसी भी प्रकार के दु.ख से पीड़ित न हो। किसी को परिवार का सुख है तो वह अर्थाभाव से पीडित है, और जिसके पास सम्पन्नता है—वह सतान के अभाव मे झूरता रहता है। किसी के संतान है तो वह आज्ञाकारी नही है किसी के धन-वैभव अठखेलिया कर रहा है और परिवार वडा है तो परस्पर तनावो-संघर्षों मे एवं लडाई-झगड़ों मे ही उलझे है। कोई रोगो के कारण ठीक से खा पी नहीं सकता है। कोई अपनी इज्जत प्रतिष्ठा को वचाये रखने के लिये दु खी रहता है, तो किसी को पेट भर खाने को नही मिलता है।

अनेक व्यक्ति अ गोपाग हीन, लंगडे-लूले, वहरे, अन्धे एवं गू गे होते हैं, जो किसी भी प्रकार के इन्द्रिय सुख से वचित होते है। बहुत से अनार्यदेशो मे उत्पन्न होती है, जिन्हे कर्म वन्धन मे ही लिप्त रहना पडता है। वे धर्म-कर्म कुछ भी नही समझते हैं। हिसा, असत्य, व्यभिचार आदि दुष्प्रवृत्तियो मे ही आनन्द मानते हैं और फिर नाना दुःखों का भोग कर यहा मे मर कर भी आगे नरक के दु खो में संतप्त होते है।

वहुत से मनुष्य, मनुष्य तन पाकर भी पशु जैसा जीवन व्यतीत करते हैं। जगलो मे घूमते रहते हैं। नग्न तन रहते हैं। वनोपज फलादि से अपना निर्वाह करते है। धर्म तो क्या मानव जीवन के महत्त्व को नही समझ पाते हैं।

सज्ञी पचेन्द्रिय मननशील मनुष्य की यह दशा है। फिर असज्ञी-समुर्च्छिम मनुष्य के दुःखो का तो कहना ही क्या ? वे तो अन्तर्मुहूर्त में ही जन्म-मरण की भयकर वेदना सहन करते रहते हैं।

इस प्रकार संसार समीक्षण में साधक का यह चिन्तन बनता है कि मनुष्य जीवन भी, जिसे अनन्त सुखों का केन्द्र होना चाहिये, दुःख भरा सागर ही है। फिर भी इसे महत्वपूर्ण मानने का एक ही आधार है कि यही एक ऐसी योनि है, जिसमे साधुत्व व्रत स्वीकार किया जा सकता है। मुक्ति मार्ग की आराधना की जा सकती है। तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि पद प्राप्त किये जा सकते हैं। किन्तु यह तभी सम्भव है जबकि इस मानव जीवन की महत्ता को समझा जाए एवं इसका अध्यात्म साधना के क्षेत्र में उपयोग किया जाय। वह तभी बन सकता है जब कि प्रबल पुरुषार्थ के साथ पुण्योदय से आर्य क्षेत्र, उच्च कुल, परिपूर्ण इन्द्रियां आदि संयोग प्राप्त हो।

अत' ससार समीक्षण मे साधक यह चिन्तन स्थिर करता है कि मुझे ये सब संयोग अनन्त पुण्य के योग से प्राप्त हुए हैं। अब मुझे सद्पुरुषार्थ के द्वारा इस दु.खमय संसार से मुक्त हो जाना है।

देव गति में भी स्थायी सुख नहीं

देव गति अथवा देव योनि को सुखोपभोग की योनि कहा गया है। किसी सीमा तक यह सत्य भी है। देव गति मे अपार ऐश्वर्य होता है। भौतिक सुख-सुविधाओं की कोई कोई कमी नही होती है। देवगति मे उत्पन्न होने मात्र से ही अवधिज्ञान या विभग ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, जिसके द्वारा वे मर्यादित क्षेत्र के सभी रूपी पुद्गलों को देख सकते हैं। इसी प्रकार देवगति मे उत्पन्न होने भर से वैक्रिय शरीर की प्राप्ति हो जाती है, जिससे देव मन चाहा रूप बना सकते हैं। छोटे से बडा और बडे मे छोटा–कैसा भी रूप धारण कर सकते है।

देवलोक मे उत्पन्न होते ही ३२ वर्ष के परम यौवन मे प्रवेश कर जाते हैं, और वह यौवन उनका सदा बना रहना है। देवों को न तो कभी कोई रोग सताता है और न बुढापा ही। वे सदा आजन्म तरुण ही बने रहते हैं। उनका शरीर दिव्य कान्ति वाला होता है। इसीलिये तो उन्हे देव कहा जाता है। 'दिव्यति इति देवः।' जो प्रतिक्षण समान दीप्ति को धारण करता है वह देव है। देवताओ की वह दिव्यता भी जीवन पर्यन्त बनी रहती है।

उनकी उम्र भी तो कम से कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट ३३ (तेतीस) सागरोपम की होती हैं। उत्कृष्ट रूप से इन्हे सैकड़ों-हजारो वर्षो मे क्षुधा-भूख लगती है और सहज ही चारो दिशाओं से वैक्रिय पुद्गलों के ग्रहण करने से तृप्त भी हो जाती है।

इन्द्रिय भोग्य सुख-समृद्धि की भी वहा कोई कमी नही है। वहा एक छोटा-सा नाटक देखने मे दो हजार वर्ष और बड़ा नाटक देखने में दस हजार वर्ष व्यतीत हो जाते है। वहा पाचो इन्द्रियों के विषयो की प्रचुरता है। वहा सदा प्रकाश ही प्रकाश बना रहता है, रात्रि या अन्धकार वहा होता ही नही है।

इतना सब कुछ भौतिक सुख होने पर भी देवताओ को परिपूर्ण रूप से सर्वथा सुखी नही कहा जा सकता है। क्योकि उनमे भी यह भय तो सदा बना रहता है कि निश्चित अवधि (उम्र) के बाद तो यह सब ऐश्वर्य छूट जायेगा। यह सब शाश्वत् तो नही है। देव लोक की आयु पूरी होते ही यथा-कर्म गति मे जाना पड़ेगा। वहां फिर दुख भोग करना ही पडेगा।

इस आगामी दुःख के भय के साथ ही देवताओ मे ऊच-नीच जनित भेद-भाव भी होता है। वहां कोई इन्द्र है तो कोई सामानिक देव है। अर्थात् कोई राजा के समान है और कोई सत्ताधिकारी राजा है। कोई त्रायस्त्रिंसत्–राज पुरोहित के समान है तो कोई आत्मरक्षक-द्वारपाल या चौकीदार के समान हैं। कोई गाने बजाने वाले हैं तो कोई नृत्य करने वाले। कोई नौकर हैं तो कोई साफ-सफाई करने वाले। इस प्रकार देवो के कर्म जनित अनेक भेद-प्रभेद हैं। यद्यपि ये भेद बारह देवलोको तक ही हैं, किन्तु इस भेद के कारण उन्हे दुःख और पश्चाताप तो होता ही है। जो उच्च पद के धारक हैं, वे अधिक ऋद्धि सम्पन्न हैं और जो चौकीदार आदि हैं, वे कम-ऋद्धि के स्वामी हैं। यद्यपि जिसके पास जितनी ऋद्धि है, वह उनके लिये कम नही है, फिर भी तृष्णावश ईर्ष्या तो फैलती ही है। जिन्हे अधिक ऊंचा पद एव सम्पन्नता मिली है वे गर्व-अहकार करके कर्म बन्धन करते हैं तो जिन्हें छोटा पद और कम ऋद्धि मिली है वे ईर्ष्या के द्वारा कर्म बन्ध करते हैं और साथ ही पश्चाताप भी करते हैं कि हमे यह लघुता क्यों

प्राप्त हुई ? हम भी इतने उच्च पद एवं ऋद्धि के भोक्ता क्यों न बने ? हम क्यों इनके आधीन रहकर परतन्त्रता का दु.ख भोग रहे है ?

इस भेदभाव जनित दु ख के अतिरिक्त कोई व्याभिचारी देव अन्य देवो की सुरूपा देवी को उठाकर ले जाता है—अपहरण कर लेता है अथवा वस्त्राभूषण की चोरी कर लेता है तो उसे इन्द्र दण्ड के रूप मे वज्र से मारता है । वज्र प्रहार से उसे इतनी तीव्र–महावेदना होती है कि वह ६ माह तक चिल्लाता रहता है । जैसा कि ऊपर कहा गया है—देवता भी मृत्यु को तो प्राप्त होते ही है । यह दुःख तो उनका सबसे बड़ा दु.ख है । क्योकि जब देवता की उम्र ६ माह शेष रहती है तभी उन्हे आलस्य आने लगता है । चित्त भ्रमित होने लगता है और माला कुम्हलाने लगती है । ऐसी स्थिति मे उन्हे विचार होता है कि अब इन दैविक सुखों को छोडकर अशुचि स्थानो मे उत्पन्न होना पडेगा । इस चिन्ता के महासागर मे डूबे हुए देवो को कैसी सुखी कहा जा सकता है ।

यद्यपि बारह देव लोक से ऊपर नवग्रैवेषक एव उनुत्तर विमान वासी देवों मे सभी अहं इन्द्र हैं । वहां भेद-भावजनित दु.ख नही है । फिर भी क्षुधा–तृषा और मृत्यु–चिन्ता का दु.ख तो वहां भी है हीं ?

इस प्रकार समीक्षण ध्यान साधक देव योनि के दुःखो का चिन्तन करता हुआ इस गहराई मे पहुंचने का प्रयास करता है कि मैं कब इस दु खमयी योनि से मुक्त बनूं ?

संसार समीक्षण मे समीक्षण ध्यान साधक अपनी चेतना को इस प्रकार विरक्ति भाव से भावित करता है कि पाच उनुत्तर विमान को छोड़कर मेरी आत्मा अन्य सभी स्थानों पर अनन्त बार जन्म-मरण ग्रहण कर चुकी है । अब इसे सुर दुर्लभ मानव तन प्राप्त हुआ है । इसके द्वारा ही आत्म समीक्षण करके परमात्म भाव को प्राप्त किया जा सकता है । भक्ति तक पहुंचा जा सकता है । अतः अब मुझे ससार समीक्षण से आत्म समीक्षण ही करना है और जीवन के चरम एव परम लक्ष्य को प्राप्त करना है । इस आत्मा को पुद्गल परावर्तन रूप चतुर्गति के परिभ्रमण से बचाकर सदा-सदा के लिये मुक्ति एवं परम शान्ति मे प्रतिष्ठित करना है ।

८ एकत्व समीक्षण

हमारा यह वर्तमान जीवन अनेक प्रकार के सम्बन्धो से अनुबद्ध है। पारिवारिक, सामाजिक, नागरिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय-अनेक प्रकार के सम्बन्ध इस जीवन के साथ जुड़े हुए हैं। किन्तु ये सब सम्बन्ध व्यवहारिक एव औपाधिक है। नैश्चयिक दृष्टि से आत्मा असंग है—एकाकी है, इसका ससार की किसी आत्मा से कोई सम्बन्ध नही है। जो भी सम्बन्ध बने हैं वे आगन्तुक हैं और उनका मूल कारण है आत्मा का अनादि काल से कर्मों के साथ बन्ध जाना। जीव के परम एकत्व भाव को नष्ट करने वाले कर्म ही हैं। यदि कर्म नष्ट हो जावें—आत्मा कर्म हो जावे तो फिर उसकी द्वैतता—अनेकता खडित हो जाएगी, उसका परम एकत्व सदा-सदा के लिये अविच्छिन्न हो जाएगा।

अतः समीक्षण ध्यान साधना का साधक एकत्व समीक्षण मे यह चिन्तन करता है कि "एगोऽहं णत्थि मे कोई" मैं अकेला हूं, मेरा यहा कोई स्वजन सम्बन्धी नही है। उसका मूल चिन्तन आत्मा की एकाकी स्थिति पर होता है। आगमिक दृष्टि से "एगे आया" का निर्देश एकत्व समीक्षण का आधार होता है।

वास्तव मे यदि हम परम आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करें तो ज्ञात होगा कि इस जीवात्मा का किसी अन्य आत्मा या पदार्थ से स्थायी सम्बन्ध हो ही कैसे सकता है? इसीलिये तो कहा जाता है—

आप अकेला अवतरे मरे अकेला होय।
यो कबहुं या जीव को साथी सगो न कोय॥

जीव इस ससार मे जन्म लेते समय अकेला ही आता है, और मृत्यु के समय भी परलोक मे अकेला ही चला जाता है। फिर इसका साथी-सगाती किसको माना जाय।

कोई नहीं अपना

एकत्व समीक्षण का साधक यह चिन्तन करता है कि हे चेतन्य ! तू किसे अपना सगा संबधी समझ रहा है ? क्या ये रिश्ते स्वार्थ पोषी रिश्ते नही हैं ? क्या इनमे किञ्चित् मात्र भी स्थायित्व है ? क्या ये रिश्तेदार इस आत्मा का कुछ भी साथ दे सकते हैं ? यदि नही, तो क्या तेरी यह भूल नही है कि तू इनको अपना मानकर इनके साथ ममत्ववान् बना फिरता है ? अरे ! जरा तो तू विचार कर कि यह शरीर भी तुम्हारा अपना नही है तो शरीर के साथ जुड़े हुए ये संबध तुम्हारे कैसे हो सकते है ? महान् साधक आचार्य अमित गति ने अपनी द्वात्रिंसिका में ठीक ही तो कहा है—

विभाव से स्वभाव मे

यस्यास्ति नैक्यं वपुसाऽपिसार्थ,
तस्यास्ति किं पुत्र-कलत्र-मित्रैः ।
पृथक्कुरुते चर्मणि रोम कूपा,
कुतोहि तिष्ठन्ति शरीर मध्ये ???

अर्थात् शरीर पर से चर्म-चमडी के उतर जाने के बाद जैसे वहा रोम कूप-बाल नही ठहर सकते हैं, उसी प्रकार जिस आत्मा की शरीर के साथ भी एकता नही है तो उस शरीर से अनुबंधित पुत्र, पत्नी, माता-पिता और मित्रादि की एकता कैसे हो सकती है ?

अत: हे चेतन्य ! तू यह समीक्षण कर कि यह आत्मा नितान्त एकाकी और असग है । यद्यपि यह विभाव दशा के कारण द्वैत भाव मे–जड पदार्थों मे अपनत्व स्थापित कर चुकी है, किन्तु यह उसका स्वभाव किंवा मौलिक भाव नही है । इसे विभाव से स्वभाव मे लाने के लिये स्वरूप बोध की आवश्यकता है । स्वरूप बोध के बाद अनादि सबध को भी तोड़ा जा सकता है । जैसे दूध मे घृत मिला हुआ होता है । किन्तु उसे खटाई (छाछ-जावन) खाई, दही मथने-बिलौने का भाजन एवं दही मथने वाला इन चार साधनो से अलग किया जा

सकता है। इन चारो का योग मिलने पर घृत छाछ रूप संयोग को छोड़कर अपने मूल रूप मे अलग हो जाता है।

ठीक इसी प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप चार साधनो के द्वारा आत्मा को कर्म मैल से अलग करके इस अनादि संबध को तोडा जा सकता है और आत्मा को एकत्व भाव मे प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

जैसे स्वर्ण और मिट्टी का संबध अनादि है। मिट्टी मे मिला हुआ स्वर्ण मिट्टी रूप ही दिखाई देता है, किन्तु हैं तो दोनो भिन्न ही। यदि दोनो एक रूप होते तो स्वर्ण को मिट्टी से कभी भी अलग नही किया जा सकता। किन्तु स्वर्ण को मिट्टी से मूल, अग्नि, सुहागा और क्षार की चतुष्पुटी के द्वारा अलग कर दिया जाता है।

इसी प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप रूप साधना आत्म रूप स्वर्ण मे कर्म मैल रूप मिट्टी को जला देते हैं।

अनादि सम्बन्ध का विच्छेद

अतः हे चेतन्य ! तू यह न समझ कि ये कर्म और अन्य औपाधिक संबध आत्मा मे अलग नही हो सकते। जीवात्मा मे ज्यो ही सम्यग्ज्ञान का आलोक फैलता है कि वह अपने रूप को समझ लेती है और उस रूप को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील बन जाती है। किन्तु जब तक इस चेतना पर अज्ञान का नशा छाया रहता है तब तक यह बेभान बनी रहती है और उसे संसार के क्षण भंगुर संबंध स्थायी और प्रिय लगते हैं।

अज्ञान और मोह का नशा

जैसे कोई व्यक्ति प्रकाण्ड विद्वान् है, उच्च कुलीन है, सदा स्वच्छ एव पवित्र बने रहना चाहता है, किन्तु यदि उसने खूब मदिरा पी ली हो, शराब के नशे मे बेभान बन गया हो तो उसे गन्दी गटर की नालियों में लोटने मे बड़ा आनन्द आता है। वह उस गटर के गन्दे-कीचड़ को मखमल्ल के गलीचे समझता है, और उस गन्दे पानी को

सुगन्धित जल समझता है । यदि उसे कोई समझदार व्यक्ति वहा से हटने का कहे तो वह उसे ना समझ और मूर्ख समझता है, गालियां देने लगता है । किन्तु जब उस शराबी का नशा उतर जाता है तो अपनी स्थिति पर स्वय लज्जित होता है, पश्चाताप करता है और विना किसी के कहे उस गटर से उठकर चला जाता है ।

ठीक यही दशा जीव रूप ज्ञानी पुरुष की होती है । अज्ञान और मोह के नशे में वह विषय वासना और ममत्त्व की गन्दी गटर को ही सब कुछ समझ बैठता है और सदुपदेश देने वाले को ही मूर्ख मानकर गालिया देता है । किन्तु जब उसका अज्ञान और मोह का नशा उतरता है तो वह स्वय अपनी भूल पर पश्चाताप करता है और संसार के सारे सम्बन्धो को स्वार्थी-क्षण भगुर मानकर एकत्व भाव में लीन हो जाता है । वैभाविक सम्बन्धो से मुक्त होकर अनासक्त भाव मे रमण करने लगता है ।

मेरा मौलिक रूप

एकत्व भाग का समीक्षण करने वाला साधक यह चिन्तन करता है कि "मैं कौन हूं ?" क्या मैं साधारण शक्ति सम्पन्न मानव मात्र हूं ? कुछ परिजनो से घिरा हुआ एक प्राणीमात्र हूं ? नही, मेरा यह चिन्तन तो उस सिह शावक के समान होगा जो बचपन से ही बकरियो के साथ रहकर अपने आप को बकरा समझने लग गया। अपने वनराज रूप-सिह स्वरूप को भूल गया । किन्तु उसके मान लेने मात्र से वह बकरा कहलाएगा ? नही, ज्यो ही वह अपनी आकृति वाले विक्रान्त सिह को देखता है कि अपने असली स्वरूप को पहचान लेता है ।

ठीक इसी प्रकार से हमारा चिन्तन यह होना चाहिये कि हमारी यह आत्मा भी कर्म के संग रहने के कारण अपने आप को दीन-हीन मान बैठी है । आत्मा दीन-हीन नही है । अनन्त-अनन्त सामर्थ्य छिपा है इसके अन्दर, यह इसकी भूल है कि इन जड़ के प्रभाव में आकर यह अपने आपको दीन-हीन मान रहा है । जब भी इस जीव को अपने स्वरूप का बोध होता है–अपनी शक्ति का परिज्ञान होता है, वह यह समझने लगता है कि "मैं अपने मूल रूप में जड़

तत्त्व से भिन्न चैतन्य स्वरूप हूं । ये वाहर के जितने सम्बन्ध हैं वे औपाधिक है । मैं तो सव प्रकार की आधि-व्याधि और उपाधियों से परे सच्चिदानन्द स्वरूप हूं । यह शरीर और यह परिजन-परिकर मेरा नही है । यह धन भी तो मुझे विपत्तियो-संघर्षों में झोकने वाला है । मैं तो अपने शुद्ध रूप में इन सवसे भिन्न निराकार हूं । ये सारे पदार्थ अशुचि रूप है, अपवित्र हैं, मैं शुद्ध, शुचि रूप हूं । ये सव नाशवान हैं, मै अविनाशी हूं । ये क्षण भंगुर हैं, मै अजर-अमर हूं । मैं अनंत ज्ञानादि शक्ति सम्पन्न सिद्ध-बुद्ध स्वरूपी हूं, ये सभी जड़ हैं । इस प्रकार मेरा और इनका कोई साम्य नही, कोई संवंध नही । इनसे अपने आपको सवंधित मानने की महाभूल के कारण ही मुझे चार गति, चौवीस दण्डक एव चौरासी लाख योनियों मे अनंत काल से परिभ्रमण करना पड रहा है । इनका संसर्ग ही मेरे लिये अनत यातनाओं-दु'खों का कारण वना है । फिर क्यो मैं अव जान-बूझकर स्वरूप वोध को प्राप्त करके भी इनके साथ सवधित वना रहू ? क्यो नही इनके संसर्ग का परित्याग कर एकत्व समीक्षण के द्वारा अपने आप मे स्थिर होने का प्रयास करूं ?

एकत्व समीक्षक-आत्म केन्द्रित

इस प्रकार के चिन्तन के द्वारा एकत्व समीक्षण का साधक अपने आप को पर तत्त्वो से भिन्न मान कर आत्म केन्द्रित होने का अभ्यास करता है । यद्यपि जिन सवधो को उसने अपनत्व प्रदान कर रखा है, वे सहजतया नही छूट पाते हैं, तथापि समीक्षण ध्यान का साधक एकत्व भाव की साधना का निरन्तर अभ्यास करता रहे तो उसकी चेतना मे अनासक्त भाव का प्रकाश फैलता जायेगा और एक दिन वही प्रकाश उसे सव कुछ छोड देने को वाध्य कर देगा ।

मै एक हूं या अनेक

एकत्व समीक्षण का साधक अपने एकत्व-अनेकत्व के चिन्तन मे यह भी विचार कर सकता है कि 'मैं एक हू या अनेक" यदि मैं अपने आपको एक कहूं तो कर्मों के कारण जो मेरे विविध पर्याएं वनी हुई हैं वे कैसे घटित होंगी ? जीव की कर्मजनित वैभाविक अगणित पर्यायो के चिन्तन को क्षण भर के लिये गौण भी कर दू तो भी वर्तमान जीवन से सम्वन्धित परिजनो मे जुड़े हुए रिश्ते कैसे घटित होंगे?

सुगन्धित जल समझता है। यदि उसे कोई समझदार व्यक्ति वहां से हटने का कहे तो वह उसे ना समझ और मूर्ख समझता है, गालिया देने लगता है। किन्तु जब उस शराबी का नशा उतर जाता है तो अपनी स्थिति पर स्वय लज्जित होता है, पश्चाताप करता है और बिना किसी के कहे उस गटर से उठकर चला जाता है।

ठीक यही दशा जीव रूप ज्ञानी पुरुष की होती है। अज्ञान और मोह के नशे में वह विषय वासना और ममत्त्व की गन्दी गटर को ही सब कुछ समझ बैठता है और सदुपदेश देने वाले को ही मूर्ख मानकर गालिया देता है। किन्तु जब उसका अज्ञान और मोह का नशा उतरता है तो वह स्वय अपनी भूल पर पश्चाताप करता है और संसार के सारे सम्बन्धो को स्वार्थी-क्षरण भंगुर मानकर एकत्व भाव में लीन हो जाता है। वैभाविक सम्बन्धो से मुक्त होकर अनासक्त भाव में रमरण करने लगता है।

मेरा मौलिक रूप

एकत्व भाग का समीक्षण करने वाला साधक यह चिन्तन करता है कि "मैं कौन हूं ?" क्या मैं साधारण शक्ति सम्पन्न मानव मात्र हूं ? कुछ परिजनो से घिरा हुआ एक प्राणीमात्र हू ? नही, मेरा यह चिन्तन तो उस सिह शावक के समान होगा जो बचपन से ही बकरियो के साथ रहकर अपने आप को बकरा समझने लग गया। अपने वनराज रूप-सिह स्वरूप को भूल गया। किन्तु उसके मान लेने मात्र से वह बकरा कहलाएगा ? नही, ज्यो ही वह अपनी आकृति वाले विक्रान्त सिह को देखता है कि अपने असली स्वरूप को पहचान लेता है।

ठीक इसी प्रकार से हमारा चिन्तन यह होना चाहिये कि हमारी यह आत्मा भी कर्म के संग रहने के कारण अपने आप को दीन-हीन मान बैठी है। आत्मा दीन-हीन नही है। अनन्त-अनन्त सामर्थ्य छिपा है इसके अन्दर, यह इसकी भूल है कि इन जड़ के प्रभाव में आकर यह अपने आपको दीन-हीन मान रहा है। जब भी इस जीव को अपने स्वरूप का बोध होता है—अपनी शक्ति का परिज्ञान होता है, वह यह समझने लगता है कि "मैं अपने मूल रूप मे जड़

तत्त्व से भिन्न चैतन्य स्वरूप हूं। ये बाहर के जितने सम्बन्ध हैं वे औपाधिक हैं। मैं तो सब प्रकार की आधि-व्याधि और उपाधियों से परे सच्चिदानन्द स्वरूप हूं। यह शरीर और यह परिजन-परिकर मेरा नही है। यह धन भी तो मुझे विपत्तियों-संघर्षों में झोंकने वाला है। मैं तो अपने शुद्ध रूप में इन सबसे भिन्न निराकार हूं। ये सारे पदार्थ अशुचि रूप है, अपवित्र हैं, मैं शुद्ध, शुचि रूप हूं। ये सब नाशवान हैं, मैं अविनाशी हूं। ये क्षण भंगुर हैं, मैं अजर-अमर हूं। मैं अनंत ज्ञानादि शक्ति सम्पन्न सिद्ध-बुद्ध स्वरूपी हूं, ये सभी जड़ हैं। इस प्रकार मेरा और इनका कोई साम्य नही, कोई संबंध नहीं। इनसे अपने आपको संबंधित मानने की महाभूल के कारण ही मुझे चार गति, चौबीस दण्डक एव चौरासी लाख योनियो मे अनंत काल से परिभ्रमण करना पड रहा है। इनका संसर्ग ही मेरे लिये अनत यातनाओं-दुःखों का कारण बना है। फिर क्यो मै अब जान-बूझकर स्वरूप बोध को प्राप्त करके भी इनके साथ सबधित बना रहू ? क्यो नही इनके संसर्ग का परित्याग कर एकत्व समीक्षण के द्वारा अपने आप में स्थिर होने का प्रयास करूं ?

एकत्व समीक्षक-आत्म केन्द्रित

इस प्रकार के चिन्तन के द्वारा एकत्व समीक्षण का साधक अपने आप को पर तत्त्वो से भिन्न मान कर आत्म केन्द्रित होने का अभ्यास करता है। यद्यपि जिन संबधों को उसने अपनत्व प्रदान कर रखा है, वे सहजतया नही छूट पाते हैं, तथापि समीक्षण ध्यान का साधक एकत्व भाव की साधना का निरन्तर अभ्यास करता रहे तो उसकी चेतना मे अनासक्त भाव का प्रकाश फैलता जायेगा और एक दिन वही प्रकाश उसे सब कुछ छोड देने को बाध्य कर देगा।

मैं एक हूं या अनेक

एकत्व समीक्षण का साधक अपने एकत्व-अनेकत्व के चिन्तन में यह भी विचार कर सकता है कि 'मैं एक हूं या अनेक" यदि मैं अपने आपको एक कहूं तो कर्मों के कारण जो मेरे विविध पर्याएं बनी हुई हैं वे कैसे घटित होगी ? जीव की कर्मजनित वैभाविक अगणित पर्यायों के चिन्तन को क्षण भर के लिये गौण भी कर दूं तो भी वर्तमान जीवन से सम्बन्धित परिजनों से जुड़े हुए रिश्ते कैसे [illegible]ंगे?

चूंकि दिखने मे तो मैं व्यक्ति रूप से एक ही दिखाई देता हूं, किन्तु इन अनेक रिश्तो मे उलझा मेरा व्यक्तित्व मेरे एकत्व को अखण्डित कहां रहने देता है ? माता-पिता कहते हैं—हमारा पुत्र है। भाई-वहिन कहते हैं—हमारा भाई है। काका कहते हैं—मेरा भतीजा है। मामा कहता है—मेरा भानेज है। इसी प्रकार कोई काका, कोई मामा, कोई पिता और कोई अन्य-अन्य रिश्तो से पुकारता है। तो क्या मैं पुत्र हूं ? भाई हूं ? भतीजा हूं ? भानेज हूं ? काका हूं ? मामा हूं ? या और कोई हूं ? अहा ! ! मेरे एकत्व मे कितनी अनेकता प्रविष्ट हो गई है ? अरे ! आश्चर्य है ! महाआश्चर्य है ! मैं स्वयं ही अपना कोई एक परिचय नही दे पाता हू कि मैं कौन हूं ? मैं किसका हूं ? मैं कितने नामो-रूपों वाला हूं ?

नही, नही ये सव रूप मेरे निजी रूप नही हैं। निश्चय नय की दृष्टि से तो ये सम्बन्ध उपरी हैं—आगन्तुक हैं और हैं कर्म परिणति का खेल। मैं अपने विशुद्ध रूप में न पुत्र हूं, न पिता हूं, न भाई हूं, न काका या मामा हूं। न कोई यहां मेरा है और न मैं किसी का हूं। मैं तो इन सव से अलग एक शुद्ध चैतन्य हूं।

इन औपाधिक पर्यायो को छोडकर मैं अपनी कर्म जनित पर्यायों का समीक्षण करूं तो भी मैं इन विविधताओ मे अपने एकत्व को नही खोज पाता हूं। मैं पुरुष हूं या स्त्री हू ? दिखने को मैं पुरुप दिखाई देता हू किन्तु कई जन्मो मे मैंने स्त्री रूप भी तो धारण किया है। फिर मैं पुरुषत्व से ही अपना परिचय कैसे दे सकता हूं ?

अनेकत्व का भाव भ्रम पूर्ण

इस प्रकार मेरा एकत्व आत्म समीक्षण यह सिद्ध कर रहा है कि यह समस्त अनेकत्व मिथ्या है—भ्रम है। यह मेरे मोह और अज्ञान की विडम्बना है। एक अभिनेता अभिनय के समय राजा-रानी, स्त्री-पुरुप या और कोई रूप धारण कर लेता हैं, किन्तु अन्तरंग में वह समझता है कि मैं न तो राजा हूं और न रानी। न स्त्री हूं न और कोई। मेरा मूल रूप इन अभिनयो से भिन्न है।

इसी प्रकार संसार रूपी नाट्य गृह मे यह चैतन्य रूपी अभिनेता कर्मों के कारण विभिन्न रूपो को धारण करता रहता है, किन्तु

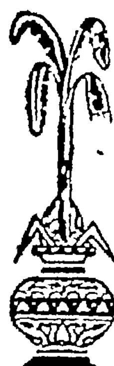
उनमे एक भी रूप उसका अपना स्थायी रूप नही होता । वह एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक तथा चाण्डाल से चक्रवर्ती तक के रूप धारण कर लेता है और एक सीमित अवधि के वाद उन्हे छोड़ता चला जाता है। तो फिर जिस वर्तमान मानवीय तन की पर्याय मे हम हैं, क्या यह पर्याय भी एक अभिनय मात्र नही है ? क्या इसे भी छोड़कर आत्मा मुक्त होते समय एकाकी नही हो जाती है ?

एकत्व समीक्षण का केन्द्रिय भाव

एकत्व समीक्षण के साधक का आत्म चिन्तन यही आकर केन्द्रित होता है कि आत्मा कर्म के कारण द्वैत भाव मे उलझी हुई है, अन्यथा वह एकाकी स्वरूप रमण स्वभाव वाली ही है । अतः हे चेतन्य! तू अपने एकत्व का समीक्षण कर कि जन्म लेते समय तू एक था या अनेक ? गर्भ से वाहर आते समय क्या तेरे साथ और भी कोई आया था ? यदि नही तो तू अनेक कैसे हो गया ? अतः यह चिन्तन स्थिर कर कि मैं तो अकेला ही आया हू और मृत्यु के क्षणो मे अकेला ही चला जाऊगा । यहा जितने भी रिश्ते-नाते हुए हैं, जिन के कारण मेरा अनेकत्व रूप स्थिर हुआ है, वे सव औपाधिक हैं—ऊपर से आगन्तुक हैं । मेरे परलोक गमन के समय इन परिजनों मे से कोई भी मेरे साथ जाने वाला नही है । कर्म विवश मे अकेला ही अगली यात्रा पर–यथा कर्म योनियो मे चला जाऊगा, मेरे अपने वने हुए सभी स्वजन पीछे छूट जाएगे । धन-वैभव, पद-प्रतिष्ठा सभी यही रह जायेगे । साथ आने वाला कोई नही होगा ।

हे चैतन्य ! तुम्हारा एकत्व समीक्षण यह होना चाहिये कि इस अनादि कालीन जन्म-मरण के चक्कर मे मैंने अनन्त जीवों के साथ सम्वन्ध वनाए हैं । अनेको वार मै पुत्र वना हू, तो अनेकों वार उसी का पिता वना हू । अनेको वार मां का पार्ट अदा किया है तो अनेको वार पुत्री का अभिनय भी प्रस्तुत किया । यही नही, जिसका पति वन कर रहा, उसी का पिता-पुत्र और भाई वनकर भी रहा हूं । कहां तक गणना की जाय ! ससार के जीवों के साथ इस आत्मा ने जो-जो सम्वन्ध वनाए वे अगणित है—अनन्त हैं । वे सव इस समय भुलाए जा चुके है । अभी भले ही मैं उन्हे नहीं पहचानता हूं और वे मुझे पहचानते हो, किन्तु सम्वन्ध तो निश्चित हुए ही हैं ।

अत: हे आत्मन् ! यह समीक्षण कर कि जगत के समस्त पदार्थ तुझसे भिन्न हैं । तू उन सब से भिन्न है । ये जितने भी तेरे परिजन हैं, वे तेरे अपने नही हैं, तू इन सबसे भिन्न है । तू अपने स्वरूप का बोध कर, तू एकाकी, शुद्ध-बुद्ध-सच्चिदानन्द स्वरूपी आत्मा है । तू सिद्ध स्वरूपी स्वभाव के रूप मे एकाकी ही है । तू निरन्तर अपने विशुद्ध आत्म स्वरूप का समीक्षण कर ताकि तेरा यह अनेकत्व का भ्रम टूट जाए, तू अपने एकत्व रूप में प्रतिष्ठित होकर आत्म लीन बन जाए । इस प्रकार एकत्व भावना के समीक्षण मे साधक अपने आत्म केन्द्रित होने के विचारो को प्रधानता प्रदान करता हुआ संसार के विनाशी–सामयिक–क्षण जीवी सम्बन्धो की अस्थिरता का विचार करता है और द्वन्द्व मुक्त होने का प्रयास करता है । ससार मे जितने भी संघर्ष और द्वन्द्व या विवाद खड़े होते हैं, उनका मूल कारण द्वैत भाव ही है । जब आत्मा अपने आपको एकाकी–कर्म और शरीर से भी अलग अनुभव करने लगेगी तो फिर संघर्ष और द्वन्द्व का निमित्त ही क्या रहेगा ? जहा शरीर पर ही ममत्व भाव नही रहेगा तो आत्मा के अन्य सम्बन्ध कायम ही किसके साथ होगे ? अस्तु, एकत्व भाव की पवित्र समीक्षण धारा में निमग्न समीक्षण ध्यान का साधक समस्त संघर्षों, तनावो और द्वन्द्वो से मुक्त होकर परम विशुद्ध चेतना का साक्षात्कार कर लेता है और अन्त में अपने परिपूर्ण सिद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ।



९ | अन्यत्व-समीक्षरण

एकत्व समीक्षण के समान अन्यत्व समीक्षरण भी समीक्षण ध्यान साधक के लिये साधना की महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अन्यत्व समीक्षरण साधक को अनेकत्व में रहते हुए भी उनसे भिन्न वनकर रहने की प्रेरणा देता है।

एकत्व समीक्षरण में साधक अपने आपको एकाकी अनुभव करके आत्म केन्द्रित होने की साधना करता है और यही स्थिति अन्यत्व समीक्षण में भी होती है। अन्तर केवल इतना ही होता है कि एकत्व समीक्षण मे व्यक्ति अपने आपको अकेला मानता है—केवल चेतना को अविनाशी मानकर वाकी के अन्य तत्वों को क्षरण भंगुर मान लेता है। जवकि अन्यत्व समीक्षण मे साधक अपने आपको अनेकों से घिरा हुआ देखते हुए भी उन सव से भिन्न मानता है।

एगो मे सासओ, अप्पा

आगमिक दृष्टि से समीक्षण ध्यान साधक का चिन्तन होता है कि—

एगो मे सासओ अप्पा, नाण दंसरण संजुओ।
सेसा मे वाहिरा भावा, सव्वेसंजोग लक्खणा॥

मेरा अपना यहां एक आत्म तत्त्व ही है। जो कि ज्ञान-दर्शन से युक्त है। शेष सभी वाह्य भाव हैं जो सयोग लक्षण वाले हैं, ऊपर से आगन्तुक हैं—औपाधिक हैं। इन औपाधिक सम्वन्धों के साथ मेरा सम्वन्ध कैसे हो सकता है? यह जो सम्वन्ध मैंने मान रखा है, वह सांयोगिक सम्वन्ध है। नैश्चयिक दृष्टि से तो मेरा अन्य सभी द्रव्यों या पदार्थों से भिन्न स्वरूप है। न मैं किसी अपने से भिन्न द्रव्य से उत्पन्न हुआ हूं और न कोई द्रव्य मुझसे उत्पन्न हुआ है। न और

कोई द्रव्य मेरा कर्त्ता है और न मैं किसी का कर्त्ता हूं, न मैं किसी के द्वारा नष्ट हो सकता हूं—न मुझे अन्य कोई द्रव्य नष्ट कर सकते हैं और न मैं किसी को नष्ट कर सकता हू । क्योंकि मेरी आत्मा अन्य सभी द्रव्यो से भिन्न अनादि-अनन्त-अविनाशी स्वभाव वाली है। मुझ में जो कर्त्ता और भोक्ता भाव आ गया है, वह सांयोगिक है—कर्म द्रव्य के सयोग से आ गया है। यदि इस अनादि कर्म संयोग का विच्छेद हो जाय तो मै इन समस्त पदार्थों और अपने से भिन्न सभी प्राणियो से भिन्न बना रहूगा।

चूकि मै अपने विशुद्ध रूप में समस्त द्रव्यों से असंग हूं, अपने चैतन्य-आनन्दमय गुण में रमण करने वाला हूं। अत: मै किसी का कर्त्ता-भोक्ता कैसे हो सकता हूं ? यह मेरा कर्त्तापन का झूठा अह ही मुझे इन पदार्थों से जोड़े हुए है और इसी पदार्थों के प्रति अपनत्व की भ्रान्ति के कारण ही मेरी यह आत्मा ससार के चक्रव्यूह मे उलझ रही है, दु:खो और संघर्षों के दावानल मे झुलस रही है।

अकर्त्ता भाव का समीक्षण

"मैंने यह किया, मै यह कर रहा हूं और मै यह कर लेता हूं"—यह कथन संसार के पदार्थों के साथ आत्मा के एकीभाव का सकेत करता है। जव कि इन पदार्थों एवं आत्मा के मूल स्वभाव का कोई तालमेल ही नही वैठता है। आत्मा का मूल स्वभाव तो अनन्त-ज्ञान-अनन्तदर्शन-अनन्त वीर्य और अव्यावाघ सुख-अनन्त आनन्दमय है। इन पदार्थों के सम्पर्क-संयोग से तो यह अपने मूल स्वभाव को भूल कर दु.ख द्वन्द्वो में उलझ गई है। इसका अनन्त ज्ञान, ज्ञानावरणीय कर्म पुद्गलों के संयोग-आवरण के नीचे दव गया है। इसी प्रकार इसकी अनन्त दर्शन शक्ति दर्शनावरणीय कर्म पुद्गलों के सयोग से और अनन्त वीर्य एवं अनन्त अव्यावाघ आनन्द अन्तराय कर्म एवं वेदनीय-मोहनीयादि कर्म पुद्गलो के सयोग के कारण दव गए हैं। इन्ही संयोगो के कारण यह आत्मा दीन-हीन वनकर दर-दर की ठोकर खाती फिर रही है। विभिन्न गतियो एवं योनियो में परिभ्रमण करती आ रही है।

संयोगों का समीक्षण

यह संयोग—पर द्रव्यों का संयोग ही तो इस एकाकी आत्मा को अन्यत्व से अनुबन्धित कर देता है । अतः अन्यत्व समीक्षण का साधक इन संयोगो की भिन्नता का चिन्तन करता है कि संसार के दृश्यमान-धन-धान्य-भवन-परिजन आदि पदार्थ एवं अदृश्यमान राग-द्वेषादि भाव-सभी मेरी इस आत्मा से भिन्न हैं । जिन पदार्थों को मैंने छल-कपट, झूठ-फरेब करके एकत्रित किया, उन पर अपना स्वामित्व स्थापित किया वे सब मेरा किसी प्रकार का सहयोग करने वाले नही है । वे मेरे हैं ही नही तो मेरा सहयोग कर ही कैसे सकते है ? जिन पुत्र कलत्रादि के लिये मैंने रात-दिन एक करके सुख जुटाए, उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनेक अशुभ कार्य किये, कर्मों का भार अपने ऊपर लादा, वे सभी परिजन भी मेरे अपने नही है । यहां का प्रायः समस्त व्यवहार स्वार्थ पूर्ति तक का व्यवहार है । अपनी आवश्यकताओ-कामनाओं की पूर्ति करता रहे तभी तक पति, पति है अन्यथा वही आंख का काटा प्रतीत होने लगता है । जब तक घर की देख-भाल एव बेटे-बेटियो की सेवा करता रहे तभी तक पिता, पिता है, अन्यथा बूढा होते ही वह घर का चौकीदार बना दिया जाता है । इसी प्रकार संसार के जितने भी सायोगिक-औपाधिक सम्बन्ध हैं, वे सब इस आत्मा को बन्धन मे जकडने वाले है ।

इन सभी सयोगो मे अपने आपको भिन्न समझकर इनसे मुक्त होने का प्रयास अन्यत्व समीक्षण ध्यान कहलाता है । अन्यत्व समीक्षण ध्यान का साधक केवल वैभव और परिजनो को ही नही, आत्मा के समस्त वैभाविक भावों को राग-द्वेष रूप दूषित परिणामो को भी आत्मा से भिन्न मानता है और इन्हे आत्मा को मलिन बनाने वाले जान कर इनके परित्याग के प्रति सजग बना रहता है । उसका चिन्तन होता है कि ये सभी पदार्थ एव परिजन स्वयं अपने ही नही हो सकते तो वे मेरे कैसे हो सकेंगे ? जो स्वयं को सुखी नही बना सकते, वे मुझे कैसे सुखी बनाएगे ? जो स्वयं असुरक्षित हैं, वे मेरी रक्षा कैसे कर पायेंगे ? जो स्वय विनाश की ओर गतिशील हैं, वे मुझे कैसे बचा पायेंगे ? बचाना सुरक्षा करना या सुखी बनाना है तो दूर, मेरी आत्मा जो अनन्त-अनन्त काल से दुःख भोग रही है, वह इन्ही पदार्थ

और परिजनों के संयोग के कारण से भोग रही है। मुझे इस संसार के जन्म-मरण रूप चक्कर मे परिभ्रमण करवाने वाले ये संयोग ही तो हैं। अतः मेरी आत्मा के लिये यही हितकर है कि मैं अपने आपको इन सब जड़-चेतन द्रव्यों से भिन्न अनुभव करूं जो कि एक यथार्थ है। मैं तो शुद्ध चैतन्य स्वरूपी आनन्दघन स्वभावी आत्मा हूं। मैं दृश्य-अदृश्य सभी पदार्थों से भिन्न हूं। ये मेरे नहीं हैं और मैं इनका नही हूं। इस प्रकार अन्य तत्वो से अपनी आत्मा के भिन्नत्व का समीक्षण ही अन्यत्व समीक्षण है।

यहां न अपनो कोय

अन्यत्व समीक्षण का साधक जब साधना की पराकाष्ठा पर पहुचता है तो वह देहातीत अवस्था को किंवा वैदेही स्थिति को प्राप्त हो जाता है। वह शरीर के प्रति अनाशक्त हो जाता है। उसका चिन्तन इस रूप में पल्लवित होता है कि—

जहां देह अपनी नही, तहां न अपनो कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय ।।

अर्थात्—जहां यह देह-शरीर ही अपना नही है, तो इससे सम्बन्धित जड़ चेतन पदार्थ घर-मकान जमीन जायदाद या स्नेही स्वजन अपने कैसे हो सकते हैं? और ऐसी स्थिति मे शरीर का नाश या ह्रास उसकी आत्मा को उद्वेलित नही करता। वह आत्मा की अजर-अमरता के प्रति निष्ठावान बन जाता है। वह शरीर को क्षण भंगुर नश्वर मानकर उसकी अपेक्षा कर देता है और आत्मा की अविनश्वरता को अपनी साधना का आधार बना लेता है। आत्मा की अविनश्वरता का उसका समीक्षण इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि श्रीमदाचाराग सूत्र में उल्लिखित आत्म स्वरूप उसके जीवन में साकार हो उठता है। किसी प्रहारक के उपस्थित होने पर वह सोचता है—

"णत्थि जीवस्स णासोत्ति"

इस जीवात्मा का तो कभी नाश नही हो सकता। जैसा कि गीता में भी इसे स्वीकार किया गया है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ।।

किसी प्रकार का शस्त्र इस आत्मा का छेदन-भेदन नही कर सकता, अग्नि इसे जला नही सकती, पानी इसे गला नही सकता और हवा इसे सुखा नहीं सकती ।

अतः जो शस्त्रों से छेदित-भेदित हो जाता है, अग्नि मे जलकर राख बन जाता है, पानी में पड़ा रहकर सड-गल जाता है और हवा के अभाव मे रह नही सकता या सूख जाता है, वह नाशवान शरीर मेरा कैसे हो सकता है ? और इस रूप मे वह देह के प्रति भी इतना अनासक्त हो जाता है कि शरीर पर होने वाले अग्नि एवं शस्त्रादि के प्रहार भी उसकी आत्मा को विचलित नहीं करते हैं ।

आगमो के हजारों पृष्ठ ऐसे महिमाशाली लोकोत्तर पुरुषों का जय गान करते हुए देखे जा सकते हैं जिनमें अन्यत्व समीक्षण-देहातीत अवस्था से भावित आत्माओं का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत हुआ है ।

देहातीत अवस्था का समीक्षण

हम जरा सवेदनशील बन कर उस क्षमा मूर्ति महामुनि गजसुकुमाल के उस प्रसग का समीक्षण करे—आज का मुण्डित सिर, खैर की लकडी के अगारे उस सिर रखे जा रहे हैं...सिर पर चारो ओर गीली मिट्टी की पाल बनाई हुई है... और....खोपडी खिचड़ी के समान तड़-तड और खदबद करती हुई सीज रही है । ओफ ...कितनी वेदना.... कितनी पीडा....किन्तु क्या उस महान् आत्मा ने उफ तक किया ? कही उसका रोम तक कम्पित हुआ ? अरे ! मस्तिष्क की उस अपार-असह्य वेदना के क्षणो में भी कितना धैर्य.......कितनी क्षमा... कितनी सहनशीलता और कितनी सहज सौम्यता ! !

इसे कहते हैं देहातीत अवस्था अथवा अन्यत्व समीक्षण की गहनता में प्रवेश कर जाना । जहा शरीर के प्रति सम्पूर्ण लगाव ही समाप्त हो जाता है—आसक्ति का भाव तो तिरोहित ही हो जाता है । वहां आत्मा केवल द्रष्टा भाव मे किंवा स्वरूप रमणता की स्थिति में पहुंच जाती है ।

उस ऋषिराज खन्दक के जीवन का भी तो समीक्षण करें! कितनी और कैसी उच्च कोटि की देहातीत अवस्था में पहुंच गई थी उनकी आत्मा !!! जैसे मरे हुए पशु के शरीर से चर्म उधेड़ा जाता है, ठीक उसी प्रकार समता की साकार मूर्ति खन्दक मुनि के शरीर से जल्लादों ने चमड़ी उधेड़ने का कार्य किया। उस भयकर वेदना के क्षणो में आह और उफ करना तो दूर रहा, वे महामुनि जल्लादों से कहते हैं कि—"तुम कहो तो उस करवट सो जाऊं ताकि तुम्हे चमड़ी उतारने मे किसी प्रकार का कष्ट न हो।"

यह है देह के प्रति द्रष्टा भाव का जागरण। समीक्षण ध्यान का साधक अन्यत्व समीक्षण में इसी द्रष्टा भाव का वरण करता है।

ऐसे एक नही अनेकों उदाहरण हैं। देहातीत मे रमण करने वाले साधकों के। मैतार्य मुनि की अकम्पता और खन्दक मुनि के पाच सौ शिष्यों—जो कोल्हू में पिले जाते हुए भी जरा भी विचलित नहीं हुए, अपनी आत्म समाधि मे अडोल अकम्प बने रहे, की स्थिति भी कम मार्मिक नही है। इस स्थिति में ही साधक देहाध्यास से मुक्त कहलाता है, वहीं पर उसे भेद विज्ञान—देहात्म भिन्नता का बोध होता है।

मोहोत्पादक तत्वों का समीक्षण

अन्यत्व समीक्षण ध्यान का साधक जब देह को भी अपने से भिन्न-अलग या अन्य मानता है तो अन्य इन्द्रियाकर्षण वाले-मोहोत्पादक तत्त्वों से तो सहज ही दूर हो जाता है। जब देह के प्रति होने वाला राग भाव रूप मोह ही नष्ट हो जाता है तो देह को सजाने एवं इन्द्रियो को आकर्षित करने वाले भूषण, नृत्य, गान आदि तत्त्व उसे कैसे अच्छे लग सकते हैं?

अन्यत्व समीक्षण ध्यान का साधक मोहोत्पाद तत्त्वो के सन्दर्भ मे प्रभु महावीर की निम्न देशना का अनुचिन्तन एवं अनुशीलन करता है—

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विड़वियं।
सव्वे आभरण भारा, सव्वे कामा दुहावहा॥

गीत–विलाप

अर्थात् संसार के सभी गीत-गायन विलाप के तुल्य हैं । क्योंकि गीतों के शब्दो एवं विलाप के शब्दो में शब्दत्व की दृष्टि से अन्तर ही क्या है ? दोनो प्रकार के शब्द जिह्वा, तालु और औष्ठादि से उत्पन्न होते हैं और कान में पहुचते हैं । शब्दों के द्वारा जो प्रीति और अप्रीति-राग द्वेषात्मकता उत्पन्न होती है, वह तो ग्रहण कर्त्ता के भावों के आधार पर उत्पन्न होती है । वैसे गीत-सगीत भी तो हंसाने वाले एवं रूलाने वाले, रागोत्पादक और द्वेषोत्पादक दोनो प्रकार के होते हैं । उसी प्रकार विलापया रुदन भी द्वेष प्रदर्शक और प्रेम प्रदर्शक दोनों प्रकार का होता है । फिर गीत और विलाप में अन्तर ही क्या रह जाता है ।

इसके अतिरिक्त अधिकांश गीत मोहोत्पादक एव राग भाव की वृद्धि करने वाले होते हैं, अत. वे कर्म वन्धन के ही कारण वनते हैं । वे चित्त मे चचलता उत्पन्न करके काम राग को उत्तेजित करते हैं, ऐसी स्थिति में साधक की दृष्टि में गीत विलाप रूप क्यों नहीं होंगे ? और साधक इन गीत-विलापो की वन्धनात्मक स्थिति का चिन्तन करके अपने आपको इनसे बचाने का प्रयास क्यो नही करेगा?

नृत्य नाटक-विडम्बना

इसी प्रकार जगत के समस्त नृत्य-नाटक भी विडम्बना रूप ही होते हैं । चू कि नृत्य एवं नाटकों के द्वारा इन्द्रियो का पोषण किया जाता है और वह इन्द्रिय पोषण कर्म वन्धन एव मोह वृद्धि का कारण होता है, अतः वह इस चैतन्य को विडम्बना में डाल देता है अर्थात् नृत्य अभिनयादि के द्वारा इस प्रकार के हास्य मोहनीय, शोक मोहनीय आदि कर्मों का वन्ध हो जाता है कि आत्मा को विविध योनियों में स्त्री, पुरुष, विदूषक एवं हास्य, रुदन आदि के द्वारा मनोरंजन करने वाली हल्की देव जातियों एवं वहुरूपिये आदि के रूप में संसार में विड़म्वित परिभ्रमित होना पड़ता है ।

अतः अन्यत्व समीक्षण ध्यान का साधक इस प्रवृत्ति से मोह वर्धक क्रिया से अपने आप को अलग रखता है । वह इस समस्त संसार

को ही एक नाटक के रूप मे देखता है, जहां अगणित जीव अपने-अपने कर्मो के अनुसार खाने-पीने, रोने-हंसने, लड़ने-झगड़ने, प्रेम करने एवं अन्य अनेक अभिनयों से गुजर रहे हैं। वह साधक इन सब दृश्यों का-संसार की रंग भूमि का द्रष्टा मात्र होता है, भोक्ता नहीं।

साधक चेतना को संसार के सभी वस्त्राभूषण-श्रृंगार-प्रसाधन भार रूप ही प्रतीत होते हैं। उसकी दृष्टि मे कंकर-पत्थर और स्वर्ण-रजत या मणि-माणिक्य मे मूल स्वरूप-पार्थिवत्व की दृष्टि से कोई अन्तर नही होता है। वह इन सभी उच्च-मूल्यवान् माने जाने वाले पदार्थों को राग-द्वेष का निमित्त मानता है, ससार के सभी सघर्षों का मूल एव विवादो या कर्म वन्धन की जननी मानता है।

काम भोग दुःख प्रद

इस प्रकार उस अन्यत्व समीक्षण ध्यान साधक का चिन्तन यहां आकर स्थिर होता है कि ये जितने भी इन्द्रियाकर्षण वाले पदार्थ हैं, जितने भी काम भोग है, वे सभी दुःख प्रद हैं, आत्मा को अनन्त दुःखों मे धकेलने वाले हैं। काम भोगों की प्राप्ति तो दूर उनकी कामना ही दुःखो की जननी है।

समीक्षण ध्यान का साधक संसार के समस्त पदार्थों एवं प्राणियो की विचित्रता देख कर विचार करता है—अहा ! कितना दुःखमय है यह संसार ! कितने दुःख प्रद हैं यहां के सभी तत्त्व ! इन दुःख प्रद पदार्थों एवं प्राणी संयोगों से मेरी आत्मा का क्या सम्बन्ध हो सकता है ? नही, नही, संसार के किसी भी तत्त्व या पदार्थ से मेरा कोई सम्बन्ध नही है। मैं इनका नही हूं और ये मेरे नही हैं। मेरी आत्मा अन्य सभी द्रव्यों से भिन्न, स्वरूप में रमण करने के स्वभाव वाली है।

यही अन्यत्व समीक्षण तो नमि राजर्षि ने किया था। कितना सामान्य सा झटका लगा था उनके चिन्तन को ! कंकणो की आवाज का ! अरे ! वे कंकण भी किनके थे, और क्यो आवाज कर रहे थे? वे एक सम्राट थे। वड़ा विशाल उनका अन्तःपुर था। (१००८) एक हजार आठ उनकी रानियां थी। जिन क्षणो सम्राट को भयकर

पीड़ोत्पादक दाह ज्वर था और वैद्यों ने उस वेदना की उपशान्ति के लिये गोशीर्ष-वावना चन्दन घिस कर लेप करने का सुझाव दिया था, तो उनकी रानियो ने अपने स्वामी की सेवा का यह लाभ स्वयं लेना चाहा था और वे चन्दन घिसने का कार्य करने लगी । रानियो के हाथो से चन्दन घिसने का कार्य हो रहा था तो उनके हाथो मे पहनें हुए कंकण खनखनाने लगे, और वह कंकणो की आवाज ही नमि राजर्षि की वेदना को उदीप्त करने मे इन्धन का कार्य करने लगी। उनकी वेदना वृद्धि के साथ ही वेचैनी एव कराहट वढ गई । उन्होंने कर्मचारियो को संकेत किया—"यह आवाज शोर-गुल कहा से आ रहा है ? यह मेरे लिये असह्य है ।"

नमिराज का अन्यत्व समीक्षण

सूचना-सकेत प्राप्त करते ही रानियो ने एक-एक सौभाग्य सूचक कंकण हाथो मे रखकर शेष ककण हाथों से निकालकर अलग रख दिये । शोरगुल वन्द हो गया । महाराजा नमिराज ने कर्मचारियो को पूछा—"क्या चन्दन घिसाई का कार्य पूर्ण हो गया ?"

कर्मचारियों ने कहा—"नही, अभी तो चन्दन घिसा जा रहा है ।"

राजा ने पुनः जिज्ञासा प्रस्तुत की—"तो फिर यह आवाज कैसे वन्द हो गई है ?"

स्थिति को स्पष्ट करते हुए कर्मचारियो ने कहा—"रानियो के कंकणो की आवाज हो रही थी । अव रानियो ने अपने हाथो में एक-एक सौभाग्य सूचक कंकण रख कर अन्य सभी ककण वाहर निकाल दिये है, अतः वह चूड़ियो की खनखनाहट वन्द हो गई है ।"

यह सुनते ही नमिराजा की चिन्तन धारा आत्म केन्द्रित हो गई । वे चिन्तन करने लगे "कितना भावोद्बोधक एवं मार्मिक प्रसंग है यह अनेक चूडियां-ककण थी तो शोरगुल था, अशान्ति थी और एक चूड़ी के रह जाते ही शान्ति छा गई । वास्तव मे जहां अनेको का संयोग है वही अशान्ति है, वेदना है, पीड़ा है । जहा एकत्व होता है अन्यत्व होता

है वहां अशान्ति का संघर्षों का कोई कारण नहीं रहता है। मेरी इस वेदना का कारण भी तो अन्यत्व का—कर्मों का संयोग ही तो है। क्यों नही मैं इस अन्यत्व से मुक्त होकर स्वरूप में लीन हो जाऊ ?"

और इस छोटे-से निमित्त ने नमिराजा को जागृत कर दिया, उनके भीतर वैराग्य का सागर उमड़ने लगा। उन्होने निश्चय कर लिया कि मुझे भी अब इन संयोगों से मुक्त हो जाना है, तभी मैं इन वेदना जनित दुःखो से एव जन्म-मरणादि सभी दुःखो से मुक्त हो सकूंगा। यदि यह मेरी वेदना शान्त हो जाती है तो मैं संसार के समस्त संयोगो का परित्याग कर एकत्व किंवा आत्म अन्यत्व का आश्रय ग्रहण कर लूंगा।

इस प्रकार की अन्यत्व भावना का चिन्तन होते ही उनके भीतर देहातीत अवस्था का जागरण हो गया, उन्हें शरीर से आत्मा की भिन्नता का वोध हो गया। अब उन्हे आराम की नीद आ गई। नीद में स्वप्न मे सप्तम देव लोक देखा और जागृत होते ही उस पर चिन्तन करते हुए उन्हे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। प्रातः काल अपने पुत्र को राज्य सौप कर उन्होने चरित्र धर्म स्वीकार कर लिया—दीक्षा ग्रहण कर ली।

नमिराजा का प्रव्रजित हो जाना सम्पूर्ण नगरवासियो के लिये दुःख का, विलाप का कारण बन गया, क्योकि उनका एक सशक्त आश्रय छिन गया था। सारे नगर-निवासी विलाप करने लगे। इसकी जानकारी प्राप्त ही होते देवेन्द्र स्वयं ब्राह्मण का रूप लेकर राजर्षि नमि की परीक्षा लेने उपस्थित हो जाता है और उन्हे राज्य व्यवस्था सुदृढ़ करने की प्रेरणा देता है। नमि राजर्षि उन्हें समाधान देते हैं कि ये मेरे वियोग से दुःखी नही हैं, इनके दुःख का कारण इनके स्वार्थों में व्यवधान पड़ना है। इन्द्र ने नमि राजर्षि से ग्यारह प्रश्न पूछे और नमि राजर्षि ने सभी का सचोट उत्तर दिया। अन्त में इन्द्र अपने मूल रूप मे प्रस्तुत होकर उनसे क्षमायाचना करता है।

यह है अन्यत्व भाव का समीक्षण, जहां साधक समस्त संयोगों से ऊपर उठकर केवल आत्मा का द्रष्टा बन जाता है। वह इसी

चिन्तन धारा को समीक्षण का आधार बनाता है कि इस संसार के देहादि एवं परिवारादि सभी सयोग आत्मा को बन्धन में डालने वाले हैं, और बन्धन ही सभी दुःखो का मूल है, अतः मुझे इन बन्धनो से सदा-सदा के लिये मुक्त होने के लिये सयोग का त्याग करना ही होगा। वही क्षण मेरे कल्याण का—आनन्द की सर्जना का होगा, जब मैं इन संयोगों से मुक्त होकर स्वरूप में स्थिर होकर परम मुक्ति के द्वार तक पहुंच सकूंगा।



१० अशुचित्व समीक्षण

समीक्षण ध्यान साधना आत्म दर्शन की साधना है, देहाध्यास से ऊपर उठ कर देहातीत स्थिति मे पहुचने की साधना है। इस स्थिति का साक्षात्कार तभी सम्भव है जब हम देह की नश्वरता एवं उसकी मूल रचना की अशौचता को समझ लें, अतः अशुचित्व समीक्षण मे समीक्षण ध्यान साधक शरीर की विविध आयामी पर्यायों पर चिन्तन करता है। आगमिक दृष्टि से उसका चिन्तन होता—

"इमं शरीर अणिच्चं, असुइं असुइ सम्भवं।"

अर्थात् यह शरीर अनित्य है, अशुचि-अपवित्र है और अशुचि से ही उत्पन्न हुआ है। जिस शरीर को शुद्ध-पवित्र या शौच बनाने के लिये हम पानी से नित्य धोते हैं मल-मल कर नहाते हैं, किन्तु क्या यह शौच निवृत्ति हेतु ले जाये जाने वाले पानी के लोटा आदि बर्तन के समान कितना ही मांजने धोने के बाद भी अशौच ही नही बना रहता है ?

शरीर के सम्पर्क में आने वाले सभी तत्त्व अशौच

जिस शरीर को अनेक प्रकार के शृंगार प्रसाधनो से सजाया जाता है, तेल, उबटन, इत्र आदि द्रव्यो से सुवासित किया जाता है, क्या वे सभी पदार्थ शरीर का सयोग प्राप्त करके कुछ ही काल में मैल-स्वेद आदि के द्वारा अशौच नही कर दिये जाते हैं ? यदि नही तो दुबारा पुनः पुनः इन पदार्थों का उपयोग क्यों किया जाता है ? क्यो नही शरीर उन्हे पवित्र बने रहने देता है ? भला, जो स्वय अपवित्र है—अशुचिमय है वह अपने संयोग में आने वाले तत्त्वो को पवित्र या शुचि रूप कैसे रहने दे सकता है ?

ये ऊपर के शृंगार प्रसादन ही नहीं, अच्छे से अच्छे सुस्वादिष्ट पकवान, बादाम का हलवा भी क्या शरीर के साथ मिलकर अशौच नही बन जाता है ? अरे, जो पदार्थ बाहर डिब्बो में पड़ा रहता है तब तक तो सुन्दर-स्वादिष्ट एव प्रिय दिखाई देता है और शरीर में जाकर मल रूप में परिणत होकर बाहर आते ही घृणित अशौच बन जाता है। तो फिर किस आधार पर इस शरीर को प्रिय, सुन्दर और आकर्षण का केन्द्र माना जाय ?

ममत्व जनित भूल

इसी आधार पर समीक्षण ध्यान का साधक अशुचित्व-समीक्षण में सर्वप्रथम इस शरीर की अशौचता का चिन्तन करता है। यद्यपि उसकी दृष्टि में ससार के सभी पदार्थ जो आज पवित्र और सुन्दर दिखाई देते हैं, वे ही कुछ काल में ही-काल के थपेडो से अपवित्र एवं असुन्दर हो जाते हैं, किन्तु चूंकि उसका शरीर के साथ जो सम्बन्ध है वह अत्यन्त निकटता का सम्बन्ध है। अतः वह प्राथमिक तौर पर शरीर की अपवित्रता पर ही अपना चिन्तन केन्द्रित करता हुआ सोचता है कि जिस शरीर की उत्पत्ति ही शुक्र-शोणित अथवा वीर्य और रज जैसे घृणित पदार्थों मे हुई, घृणित पदार्थों की परिणति से ही जिसकी वृद्धि हुई और अत्यन्त सुगन्धित पदार्थ भी जिसके संयोग से दुर्गन्धमय बन जाते है, वह शरीर स्वय पवित्र कैसे हो सकता है ? यह मेरी आत्मा की भूल ही है, जो ऐसे घृणित पदार्थों को निकालने वाले इस शरीर को यह अपना आत्मीय, अत्यन्त प्रिय मान बैठी है।

अरे आत्मन्! जरा तो विचार कर कि अच्छे से अच्छे तत्त्वो का उपभोग करके भी यह शरीर उन्हे किन रूपो मे परिणत कर देता है? यह उन सुन्दर सुस्वादु पदार्थो का सेवन करके बदले में क्या देता है ? मल-मूत्र, स्वेद-पसीना ही नही आख, कान और नाक से निकलने वाला मैल भी तो अशौच और घृणित ही माना जाता है। जो शरीर अनवरत ऐसे घृणित पदार्थो का वमन विरेचन करता रहता है—शौच माने जाने वाले तत्त्वो को अशौच बना देता है, उसे किस आधार पर पवित्र माना जाय ? हे चैतन्य ! जरा आत्म समीक्षण कर कि जब तू इस शरीर को छोड़कर किसी दूसरे जन्म मे अन्य शरीर मे चला जाता है,

उसके पश्चात् इस शरीर की क्या दशा होती है ? जिसे तू इतना सजाता-संवारता था उसे तेरे स्वजन-सम्बन्धी कुछ समय के लिये भी घर में रखना पसन्द करते हैं ? यदि वे रखने का प्रयास भी करेंगे तो क्या इसमें कीड़े नहीं बुलबुलाने लगेंगे ? बदबू नही आने लगेगी ?और क्या इसे जलाकर राख नही बना दिया जायेगा ?

इस प्रकार यह दिवालोक की तरह स्पष्ट है कि इस देह के मृत्पिण्ड में जो कुछ भी अच्छाई या उपयोगिता दिखाई देती है वह आत्मा चैतन्य के कारण ही है। अन्यथा तो यह दो कोड़ी के मोल का भी नही है। अत: इसके प्रति आसक्ति रख कर स्वयं आत्मा को मलिन बनाने या बन्धन में डालने की भूल करना कहां तक उचित है ? अरे ! यह अपवित्र शरीर के प्रति होने वाली आसक्ति ही तो इस अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्मा को जन्म-मरण के दु:खो में उलझाए हुए हैं। दु:ख द्वन्द्वों और सघर्षों का मूल उद्गम यह देहासक्ति का भाव ही तो है।

शरीर-रचना अभद्र प्रक्रिया और अभद्र पुद्गलों से

अत: इस देहासक्ति से मुक्त होने के लिये अशुचित्व समीक्षण आवश्यक माना गया है। अशुचित्व समीक्षण में साधक अपनी ही चेतना को शरीर से भिन्नता का बोध कराता है। उस भिन्नता बोध में देह की नश्वरता, अपवित्रता एवं गलन-सड़न शीलता का चिन्तन करते हुए शरीर की अन्तर-बाह्य रचना और उस रचना मे प्रयुक्त अभद्र पुद्गलों का विचार करते हुए आत्मा को सम्बोधित करता है–हे आत्मन् जिस शरीर पर तुझे गर्व है, जिसे तू अपना अनन्य स्नेही मान रहा है, जिसके जरा-से रुग्ण हो जाने पर तू अत्यन्त विचलित हो जाता है, उस देह की रचना प्रक्रिया पर तो चिन्तन कर कि यह किस पदार्थ के सयोग से और किस महापाप की प्रवृत्ति से निर्मित हुई है ?

जब स्त्री-पुरुष रति क्रिया-सेक्स के दौर से गुजरते हैं तो असंख्य असज्ञी-अमनस्क एवं लाखों संज्ञी-समनस्क जीवो का उपमर्दन वध होता है, तब कही जाकर यदा-कदा उन लाखों समनस्क जीवों में

से एक दो जीव शुक्र-शोणित के संयोग से देह रचना कार्य आरम्भ करते हैं। अर्थात् एक अभद्रतम-घृणित प्रक्रिया के द्वारा माता के शोणित–रक्त और पिता के शुक्र-वीर्य से शरीर का वनना प्रारम्भ होता है। और यह दोनों ही पदार्थ अशौच माने जाते हैं। इसीलिये रजस्वला स्त्री को अशौच के रूप मे देखा जाता है।

इस प्रकार इस शरीर रचना की प्रक्रिया ही अशौच है। फिर जहा यह अपना विकास प्रारम्भ करता है, क्या वह स्थान भी अभद्र या अशौच नही है? अरे! माता का उदर, जहां कितना मल-मूत्र आदि अशौचतत्त्व भरा रहता है? कितनी सकुचित काल कोठरी जैसी जगह होती है वह? किस प्रकार मल-मूल मे ही लिपटे रहना पडता है इसे वहा? जव यह माता के उदर से वाहर आता है तव भी माता के दूध पर ही पलता है और दूध भी तो शरीर में रासायनिक प्रक्रिया से वनता है। दुग्धाहार से ऊपर उठकर वह अनाज खाने लगता है तो अनाज भी तो सडे-गले-मल-मूत्र एवं गोवर आदि पदार्थों के खाद से उत्पन्न होता है। भला उस खेत को किसने पवित्र वनाया, जिसमे यह अन्न उत्पन्न होता है? इस प्रकार हम शरीर रचना की प्रक्रिया मे कही भी शुचि-पवित्रता का दर्शन नही कर पाते हैं।

शरीर की आन्तरिक रचना का समीक्षण

अव जरा शरीर की आन्तरिक रचना को भी देख लें? शरीर विज्ञान की दृष्टि से इस शरीर मे सात धातु वताई गई हैं—(१) रस, (२) रक्त, (३) मांस, (४) मेद, (५) हड्डिया, (६) मज्जा और (७) शुक्र। इन सातो के निर्माण की भी एक व्यवस्थित प्रक्रिया है। आहार–भोजन खाने के वाद वह तेजस शरीर कि वा पित्त के प्रभाव से पक कर रस के रूप मे परिणत होता है और इस परिणति मे उसे न्यूनतम चार दिन लगते हैं। फिर अगले चार दिनों मे उस रस के सार तत्त्व से रक्त वनता है। अनन्तर चार-चार दिनो में क्रमशः मांस, मेद, हाड़ मज्जा और शुक्र धातु का निर्माण होता है। इस प्रकार एक माह मे वीर्य वनता है। हे आत्मन्! क्या ये सभी धातुएं पवित्र हैं? स्पष्ट है कि शरीर की समस्त आंतरिक रचना अपवित्र या

घृणित हैं। फिर शरीर का मैल, जीभ का मैल, दांतों का मैल, नेत्र का मैल, गले का मैल, आंख और कान का मैल आदि सभी तो अशौच एव अपवित्र माने जाते हैं।

शरीर की आंतरिक रचना की सूक्ष्मता मे प्रवेश करे तो इसके भीतर अनेको नाडियो के साथ वात-पित्त और कफ भरा हुआ है। मल-मूत्र जैसे अपवित्र तत्त्वो का भण्डार है इसमे। अरे! इसकी सुन्दर-गौरी-गौरी और मुलायम चमड़ी पर इन्सान मुग्ध होता है, अपने आपको सुन्दर मानता है, किन्तु क्या इस सुन्दरता के भीतर भी वासना की असुन्दरता या वीभत्सता नही छुपी हुई है? और यह चमड़ी भी तो उन अशौच पदार्थों की ही तो बनी हुई है? यह भी तो दागो और झरियो से वीभत्स बन जाती है।

अशुचि द्वारों का समीक्षण

अरे चैतन्य! इस शरीर का कौन-सा अग है जिसे तू पवित्र कह सकता है और शुचि रूप मान सकता है? आपेक्षिक दृष्टि से शरीर मे नौ द्वार माने गये हैं—दो कानों के छिद्र, दो नाक के छिद्र, दो आंखो के छिद्र दो मल-मूत्र त्यागने के छिद्र और एक मुख द्वार—इन नौ ही द्वारों से अशुचिमय पदार्थ-मैलादि निकलते रहते है। इनके अलावा पूरे शरीर मे साढ़े तीन करोड़ रोम कूप हैं। जिनमें दो करोड़ इक्यावन लाख गले के नीचे हैं और नन्याणवें लाख गले के ऊपर हैं, जिनसे स्वेद-पसीना बहता रहता है।

इस प्रकार यदि सूक्ष्म दृष्टि से समीक्षण किया जाय तो यह शरीर अनेक प्रकार की अशुचि एव अपवित्रता का केन्द्र है, विविध प्रकार की आधि-व्याधि और उपाधियों से आक्रात है। फिर इस शरीर पर ममत्त्व किस आधार पर किया जा सकता है? हा, जब तक शुभ-पुण्य कर्मों का उदय रहता है तब तक इसकी सारी अपवित्रता इस चमड़ी की चादर के नीचे दबी-छुपी रहती है। किन्तु पाप का उदय आते ही इस शरीर मे अपवित्रता के आने मे क्या समय लगता हैं? कुष्ट रोग आदि भयकर बीमारियां इसकी अशौचता को प्रकट कर देता हैं।

अतः हे आत्मन् ! तू यह समीक्षण कर कि—

दीपे चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह ।
भीतर या सम जगत में, और नही घिन गेह ।।

अर्थात् इस हड्डियों के पंजर पर एक चमकदार चादर मढ दी गई है, किन्तु इस ससार मे इस देह से वढकर और कोई घृणित तत्त्व नही है । इसके भीतर अशुचि ही अशुचि है । इसकी उत्पत्ति और इसका विनाश भी अशुचि रूप ही है, अतः मेरा इसके प्रति मोहित होना निरी अज्ञानता है । यह मेरा भ्रम है कि यह शरीर सुन्दर है—आकर्षक है और ऐसा ही आकर्षक-प्रियपात्र बना रहेगा । अतः मुझे इसके मोह ममत्त्व से मुक्त होकर इसका सदुपयोग करने के लिये उसी प्रकार सजग हो जाना चाहिये जिस प्रकार सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति छः खण्ड के सम्राट चक्रवर्ती सनत्कुमार जागृत होकर देह के प्रति पूर्ण अनासक्त बन गए थे ।

चक्रवर्ती सम्राट सनत्कुमार का अशुचित्व समीक्षण

छः खण्ड के एक छत्र शासक चक्रवर्ती सम्राट सनत्कुमार अत्यन्त रूपवान-सौन्दर्य सम्पदा के धारक थे । उनकी राजधानी अयोध्या नगरी थी । अपने सौन्दर्य पर उन्हे गर्व था ।

एक बार प्रथम देवलोक के स्वामी इन्द्र ने अपनी देव सभा में सनत्कुमार के सौन्दर्य की प्रशसा करते हुए कहा कि इस समय भू–मण्डल पर सनत्कुमार चक्रवर्ती जैसा सुन्दर और कोई व्यक्ति नहीं है । यहा तक कि अनेको देवो से भी बढ़कर है उनकी दैहिक सुन्दरता ।

एक देव को इस प्रशंसा पर विश्वास नही हुआ था, वह हाड-मास के पुतले मनुष्य की प्रशसा सहन नही कर सका और एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके सनत्कुमार के रूप का दर्शन करने चला आया । साथ ही उनके सौन्दर्य भावो की परीक्षा भी वह कर लेना चाहता था ।

जिस समय वह ब्राह्मण रूपधारी देव सनत्कुमार चक्रवर्ती के

यहा पहुंचा, वे स्नान कर रहे थे । देव ने आग्रह किया कि मैं पहले महाराजा के सौन्दर्य का दर्शन करूगा, उसके बाद ही कुछ खाऊंगा, क्योकि अनेको वर्षों से और हजारो कोस चलकर मैं केवल दर्शन के लिये यहां आया हू ।

चक्रवर्ती सम्राट स्नान घर से बाहर आए और ब्राह्मण रूपधारी देव से कहने लगे—"विप्रवर ! कहा से और क्यों आए हो ?"

देव ने कहा—आप देख रहे हैं, मेरे सिर पर जो यह पोटली-गठरी रखी हुई है, इसमे घिसे हुए जूते हैं । मैंने बचपन में ही आपके सौन्दर्य की प्रशंसा सुनी थी कि इस पृथ्वी पर आपके जैसा सुन्दर और कोई व्यक्ति नही है । तब से मैं आपकी सुन्दरता-पराग का मधुकर बनकर चल पड़ा । चलते-चलते इतने जूते घिस गए और मेरे चेहरे पर बुढापे की झुरिया पड़ गई है । इसी से आप अनुमान कर सकते हैं कि मैं कितनी दूर से और किस अरमान को संजोकर यहां आया हूं । किन्तु आज मेरी सारी थकान दूर हो गई, क्योकि जैसा मैंने सुना था उससे भी बढकर सुन्दर है आपका रूप । मेरी मनोकामना सफल हो गई, इसकी मुझे प्रसन्नता है ।"

सनत्कुमार चक्रवर्ती ने ब्राह्मण रूपधारी देव का उत्तर सुना तो हर्ष से गद्गद् हो गए । वे सोचने लगे—अहा ! मेरे सौन्दर्य की ख्याति कितनी दूर तक फैली हुई है ! उन्होने देव से अहंकार के स्वरों में कहा—विप्रवर ! अभी आप मेरा रूप क्या देख रहे हैं, अभी तो मैं स्नान कर रहा हूं । जब मैं सोलह शृंगार करके अपने समस्त वैभव-परिवार के साथ राज सभा मे बैठूं तब देखना मेरी सुन्दरता । उस समय तुम्हारे आश्चर्य का कोई पार नहीं रहेगा ।"

यह सुनकर देव विचार में पड़ गया । इन्हे अपने सौन्दर्य का अत्यधिक अहकार हो गया है और अहंकार ही तो जीवन विकास की सबसे बडी बाधा है । देव ने सनत्कुमार के अहकार को विगलित करने का विचार किया और जब सनत्कुमार शृंगार साधनो से पूर्णतया सज्जित होकर विप्रदेव के समक्ष खडे होकर सगर्व कहने लगे—"देखो जरा अब मेरे सौन्दर्य को ।"

विप्रदेव ने नाक-भौ सिकोडते हुए चेहरे के इशारे से ही उत्तर दिया—'नही, अब वह मौलिकता नही है।" यह देखकर चक्रवर्ती सनत्कुमार विचार मे पड़ गये–भला अब क्या कमी रह गई है मेरी शारीरिक साज-सज्जा में ? वे दर्पण मंगवाकर उसमे अपना रूप देखने लगे तो विप्रदेव ने कहा—"अब बाहर के सौन्दर्य को नही, अपने शरीर के अन्दर की विकृति को देखिये—जरा अपने मुंह का थूक पीकदानी में लेकर देखिये।"

और सनत्कुमार ने अपने थूक में देखा तो उसमें अनेकों कीडे कुलबुला रहे हैं। यही नही, उन्हे लगा कि उनका पूरा शरीर ही विकृत हो रहा है, उसमे कीड़े पड गये हैं। अपने शरीर की ऐसी विकृत दशा देखकर सम्राट सनत्कुमार के विचारो को एक झटका लगा। वे सोचने लगे—"ऊपर से सुन्दर दिखाई देने वाले शरीर की आन्तरिक स्थिति इतनी विकृत है ! अहो ! महाश्चर्य है, जिस शरीर को मैं सदा अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट पकवान खिलाता रहा, अनेक प्रकार के शृंगार प्रसाधनों से सजाता रहा, जिसे किसी प्रकार का दु:ख नही होने दिया, वही शरीर अन्दर से इतना वीभत्स है और आज मुझे यह धोखा दे रहा है। अरे ! कीडे तो मल-मूत्र और अशुचि मे पैदा होते हैं, तो क्या यह शरीर भी अशुचि रूप ही है। मैं तो समझता था मेरा यह शरीर अत्यन्त सुन्दर-सुडोल और स्वस्थ है, किन्तु यह तो अशुचि का भण्डार ही निकला। इस सुन्दर चमडी के भीतर जो कुछ छुपा है क्या वह अशुचि रूप नही है ?"

नही, नही, यह शरीर धोखेबाज है। और जब शरीर ही धोखा दे देता है तो परिजनो और दास-दासियो पर तो विश्वास किया ही कैसे जा सकता है ?

इस प्रकार अशुचित्व भावना का चिन्तन करते हुए चक्रवर्ती सम्राट सनत्कुमार की आत्मा मे वैराग्य का सागर तरगायित होने लगा। वे शरीर के अशुचिरूप को समझ गये और साथ ही आत्मा और शरीर के सम्बन्ध को भी समझ कर चल पडे सदा-सदा के लिये शरीर से आत्मा को मुक्त कर देने के लिये।

उन्होंने क्षण भर में चक्रवर्ती पद के समस्त वैभव का परित्याग कर दिया और संयम मार्ग स्वीकार कर लिया। यद्यपि वह रोग उनके शरीर में ७०० वर्षों तक बना रहा किन्तु अब वे देहातीत अवस्था में प्रवेश कर चुके थे। यहां तक कि उनकी आत्मा में अनेक प्रकार की लब्धियों का प्रादुर्भाव हो चुका था, किन्तु वे उनसे भी अनासक्त होकर आत्म साधना में लीन रहते थे। यहां तक कि उनके थूक मे वह शक्ति थी कि यदि उसे शरीर के किसी भी अंग पर लगा दिया जाता तो वह तुरन्त रोग मुक्त हो जाता, किन्तु उन्हें तो आत्मा के रोग-कर्म बन्धन से मुक्त होना था और वह अनासक्ति भाव के जागरण के बिना नही हो सकता था, अतः वे सदा शरीर के प्रति अनासक्त ही बने रहते।

यह था अशुचित्व–समीक्षण, जिसमे शरीर ही नहीं संसार के सभी पदार्थ अशुचिरूप घृणित दिखाई देने लगते हैं। अशुचित्व समीक्षण का साधक शरीर की वीभत्सता एवं विनश्वरता को समझकर उसके प्रति निर्ममत्व बनने का प्रयास करता है और आत्मा के अनन्त सौन्दर्य एवं उसकी अविनाशिता के प्रति सजग समर्पित होता है।



११ आश्रव-समीक्षण

आत्मा के संसार परिभ्रमण का कारण है कर्म । और आत्मा में कर्म का आगमन होता है आश्रव से । अतः कर्म का या संसार परिभ्रमण का मूल कारण हुआ आश्रव । जब तक आश्रव के द्वार खुले हैं तब तक परम मुक्ति, परम आनन्द अथवा परम शान्ति की प्राप्ति की कल्पना निरर्थक सिद्ध होती है । अस्तु, मुक्ति के लिये आश्रव निरोध का कार्य नितान्त आवश्यक हो जाता है ।

चूंकि समीक्षण ध्यान का साधक मुक्ति साधना का ही अनुशीलन करता है, अतः समीक्षण ध्यान साधक के लिये यह समझ लेना आवश्यक है कि आश्रव क्या है, और वह आत्मा को ध्यान से–स्व केन्द्र से बाहर कैसे ले जाता है । वाचक मुख्य उमास्वाति ने आश्रव को परिभाषित करते हुए कहा है—

काय वाड्मनः कर्म योग, स आश्रव. शुभ. पुण्यस्य, अशुभः पापस्य ।

अर्थात् मन, वचन और काया-शरीर की प्रवृत्ति योग है, और वही आश्रव है । शुभ योग पुण्य का आश्रव है और अशुभ योग पाप का आश्रव है । यहा कारण मे कार्य का उपचार किया गया है । मूल मे योग आश्रव नही, आश्रव का कारण है । मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्ति कर्म के आगमन का मूल हेतु है । जब तक यह प्रवृत्ति रहती है, आत्मा मे प्रकम्पन बना रहता है और वह प्रकम्पन अपने आस-पास रहे कर्म पुद्गलो को अपनी ओर आकर्षित करता रहता है । इसी आकर्षण को शास्त्रीय दृष्टि से आश्रव कहा जाता है । आश्रव समीक्षण में साधक आश्रव के विविध आयामी भेद-प्रभेदो का उसके मूल स्वरूप का एव उसके परिणामों का समीक्षण करता है ।

आश्रव तत्त्व-स्वरूप समीक्षण

समीक्षण ध्यान साधक कर्म मुक्ति की साधना के पूर्व कर्म बन्धन के मूल कारणो का समीक्षण करता है और यह चिन्तन करता है कि मेरी आत्मा संसार में कब से और क्यो जन्म-मरण के चक्कर मे उलझी हुई है ? अपनी आत्मा की इस बन्धन पूर्ण स्थिति का अवलोकन करने के लिये साधक अतीत, सुदीर्घ अतीत की ओर देखता है, किन्तु उसे आत्मा और कर्म के बन्धन के प्रारम्भ का कही भी ओर-छोर दिखाई नही देता है । उसे दिखाई देती है केवल अनन्त-अनन्त जन्मों की शृंखला, जिसका प्रारम्भ भी अज्ञात के महासागर मे डूबा हुआ ही दिखाई देता है । और अन्त में उसे यह स्वीकार करना पड़ता है कि मेरी आत्मा के साथ कर्म का यह सम्बन्ध अनादि है— इसकी कोई आदि नही बताई जा सकती है । अनादि काल से आत्मा और कर्म परस्पर अनुबद्ध है और इस बन्धन मे आवरणों की न्यूनाधिकता बनती रहती है । कभी वे आवरण सघन बन जाते हैं तो कभी विरल । आवरणों की इस सघनता और विरलता का मूल हेतु है आश्रव ।

आश्रव का सीधा सा पारिभाषिक अर्थ है—कर्मों का आना । आत्मा की योग जनित प्रवृति से कर्म पुद्गल आत्मा की ओर आकृष्ट होते हैं । निम्न सुबोध उदाहरण के द्वारा इसका समीक्षण किया जा सकता है—

एक नौका सरोवर में तैर रही है, किन्तु उसमे कुछ छिद्र हो गये हैं, जिनसे नौका में पानी भर रहा है । जब तक नौका के छिद्रों को बन्द नहीं कर दिया जाता, पानी आता रहेगा । और एक क्षण वह आएगा कि नौका डूब जाएगी । ठीक यही स्थिति इस आत्मा रूपी नौका की है । इसके भी मानसिक, वाचिक एव कायिक प्रवृत्ति रूप छिद्र हो रहे हैं, जिनसे कर्म रूपी जल इसमें प्रविष्ट होकर इसे संसार सागर मे डुबो देता है ।

जैसे एक तालाब में नगर की गन्दी नालियों-गटरों का पानी आता रहता हो और दूसरी ओर से कुछ पानी निकाल कर उसे खाली करने का प्रयास किया जाता हो, किन्तु वह प्रयास हास्यास्पद ही सिद्ध

होता है, क्योकि जब तक गन्दे पानी का आगमन अवरुद्ध नही किया जायेगा, तालाब खाली नही हो सकता है ।

इस आत्म-तड़ाग मे भी आश्रव रूप गन्दे नालो से कर्म रूप पानी का आना जब तक रुक नही जाता, यह विशुद्ध नही बन सकती है । अतः यह आवश्यक है कि आत्म शुद्धि के लिये सर्व प्रथम आश्रव द्वारों को अवरुद्ध किया जाय और फिर तप साधना के द्वारा पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा की जाय ।

आश्रव के विविध रूपों-भेदो का समीक्षण

चूंकि यह आश्रव ही इस आत्मा को दुर्गति के भयंकर गर्त मे गिराने वाला है, दुःख के महासागर मे गोते लगवाने वाला है, अतः साधक के लिये इसका सूक्ष्म समीक्षण आवश्यक हो जाता है । साधक आत्मा का चिन्तन होता है कि मेरी इस आत्मा ने कितने दुःखों का पहाड़ अपने सिर पर ढ़ोया है । कितनी विपत्तियों की आधी में यह आत्मा डोलती रही है । इसका मूल कारण आश्रव ही तो है । अरे ! यह आश्रव कितने सूक्ष्मतम रूपों मे और कितने स्थूल रूपो में आत्मा पर हमला करता रहता है । इसका सब से भयंकर विकटतम एव प्रबलतम रूप है–मिथ्यात्व–अज्ञानता या मिथ्या श्रद्धान् । इस मिथ्या श्रद्धान् ने ही तो मुझे अपना बोध तक नही होने दिया । इसीके कारण तो मैं हेय को उपादेय और उपादेय को हेय समझता रहा—सत् को असत् और असत् को सत् मानता रहा । ओहो ! यह मिथ्यात्व ही तो मेरी आत्मा का प्रबलतम शत्रु है जो आत्म कल्याण के शब्द को ही नही सुनने देता है । सदा कुदेव, कुगुरु और कुधर्म के चक्कर मे उलझा रहा हूं ।

जब तक यह मिथ्यात्व आश्रव मेरी आत्मा पर हावी रहेगा, यह आत्मा संसार के दुःखो में परिभ्रमण करती रहेगी । और इस आश्रव के समाप्त हुए बिना दूसरे आश्रव भी तो इस आत्मा को मलिन बनाते ही रहेगे ? नही, नही, अब मैं इस मिथ्यात्व आश्रव को जड़ मूल से उखाड़ फेंकूंगा । अब मैं इसकी एक न चलने दूंगा । अब मैं स्वरूप का, शुद्ध चेतना का दर्शन अवश्य कर लूंगा । यह मेरी अज्ञा-

नता ही रही कि मैं इस आश्रव को अब तक समझ नहीं पाया और यह मुझ पर हावी बना रहा। अहा ! अब तो मेरे भीतर सम्यग् दर्शन का सूर्योदय हो रहा है—मिथ्यात्व का सघनतम अन्धकार दूर-सुदूर भाग रहा है।

इस प्रकार प्रबलतम आश्रव द्वार मिथ्यात्व के क्षीण होते ही चेतना को स्वरूप बोध किं वा बोधि लाभ की प्राप्ति हो जाती है। एक बार बोधि लाभ होने के पश्चात् इस आत्मा का संसार परिभ्रमण सीमित हो जाता है। वह एक-न-एक दिन अवश्य मुक्तिगामी बन जाती है और समीक्षण ध्यान साधक को अपना चरम अभिप्रेत प्राप्त हो ही जाता है।

अव्रत—आश्रव समीक्षण

मिथ्यात्व आश्रव के समाप्त हो जाने पर भी जब तक जीवन में त्याग भावना का जागरण नही होता, मुक्ति मार्ग की साधना नही बन सकती है। और इस त्याग साधना मे बाधक अव्रत आश्रव है—समीक्षण ध्यान साधक अव्रत आश्रव के सन्दर्भ में आत्म-चिन्तन करता है कि जिस प्रकार मेरी आत्मा को मिथ्यात्व आश्रव ने स्वरूप बोध से वञ्चित कर रखा था, उसी प्रकार इस अव्रत आश्रव ने मुझे साधना के पथ पर कदम ही नही बढाने दिये। देश चारित्र एव सर्व चारित्र का प्रतिबन्धक यह अव्रत आश्रव भी मेरी आत्मा को अनादिकाल से भटका रहा है। ओहो ! कैसी विचित्र दशा बना दी इस अव्रत आश्रव ने मेरी ! इसके कारण मुझे त्याग का नाम ही अच्छा नहीं लगता। पदार्थों की अनासक्ति ही नही छूटती। व्रत और प्रत्याख्यान् ही हेय लगते हैं, और इस रूप मे मेरी यह आत्मा अनन्त-अनन्त काल से भोगों में आसक्त होकर मोहनीय कर्मों का बन्धन करती रही, और यह मोह बन्धन मुझे विविध दुःखो मे धकेलता रहा है। अरे ! इस आसक्ति जनित मोह ने कैसी दयनीय दशा बना दी है मेरी ! न मैं देश विरति अपना सका, और न सर्व विरति-न शुद्ध श्रावक बन सका और न शुद्ध साधु।

अहा ! आज मैंने अव्रत् आश्रव का समीक्षण कर लिया है। अब मैं इस आश्रव को अपनी आत्मा मे नही रहने दूंगा। मिथ्यात्व

समान मै इसे भी उखाड़ फेंकू गा । अरे ! रे ! फेकूंगा क्या, इसी क्षण मैं विरति धर्म स्वीकार कर रहा हूं, जीवन को त्याग भावनाओं से सजा रहा हू देश विरति ही नही, मैं इन क्षणो सर्व विरति के पवित्र भावो में अवगाहन कर रहा हूं । मैं परिपूर्ण चारित्र-साधु जीवन की उच्च भावना की सरिता मे वहता जा रहा हूं । और इस प्रकार अव मेरा अव्रत आश्रव समाप्त हो गया है । इसके कारण जो मोह कर्म आत्मा पर छा रहा था या निरन्तर वन्धता रहता था वह क्षीण होता जा रहा है ।

अहा ! आत्मा में यह कैसी उज्ज्वलता छाती जा रही है ! कैसा हल्कापन व्याप्त हो रहा है, अपनी इस भारी भरकम चेतना मे! इन दो बड़े-वडे आश्रव द्वारो के अवरुद्ध होते ही कर्म वन्धन एकदम हल्का हो गया है । अरे ! आश्रव के मुख्य द्वार भी तो ये दो ही हैं। १२३४५ की संख्या में से एक और दो को हटा देने से वच ही क्या जाता है ? यही (३४५) तीन सौ पैंतालीस ही तो। इसी प्रकार (१) मिथ्यात्व, (२) अव्रत, (३) प्रमाद, (४) कषाय और (५) योग–इन पाचो मे से प्रथम दो के चले जाने पर सिर्फ ३४५ जितना हल्का कर्म वन्धन ही वच गया है । हजारों जितना कम होकर सैकड़ों ही रह गया है ।

अहा ! अव तो मेरी चेतना का ऊर्ध्वारोहण हो रहा है, यह अत्यन्त शुभ्र, शुभ्रतर और शुभ्रतम होती जा रही है । यह चारित्र रमणता की उज्ज्वल धारा मे वहती जा रही है । कितना आनन्द भरा है, इस शुभ्रता-उज्ज्वलता मे ! विरक्ति का भाव ही कितना आनन्द प्रद होता है ? क्योकि वहां सभी आसक्तियां टूटती जाती हैं, और आसक्ति ही तो समस्त दु खो–सघर्षो की जननी है । दु.खो की जननी किंवा जड़ ही समाप्त हो गई तो फिर दुःख रहेगा कहां से ? फिर तो चेतना का विशुद्ध रूप आनन्द ही आनन्द वचता है । वही आनन्द अव्रत की क्रिया के समाप्त होते ही मेरी आत्मा मे गहराता जा रहा है ।

प्रमादादि आश्रवो का, समीक्षण

आश्रव समीक्षण के इन अनुपम क्षणो मे कर्म के आगमन

के द्वार वन्द होते जा रहे हैं। मुख्य दो द्वारों के बन्द हो जाने पर आत्मा मे जो जागरण आता है उनसे अन्य आश्रव द्वार सहज ही सामान्य से सकल्पो से अवरुद्ध होते जाते है।

जब अव्रत का आश्रव द्वार बन्द हो जाता है और आत्मा में सर्व विरति का भाव आविर्भूत होता है तो आत्मा पष्ठम गुणस्थान में प्रवेश कर जाती है। षष्ठम गुणस्थान का नाम है, प्रमत्त सयत गुणस्थान। प्रमत्त संयत गुणस्थान मे स्थित आत्मा मे जब आत्म जागरण के भाव प्रस्फुटित होते हैं तो वह अप्रमत्त भाव की ओर गति करती है। अप्रमाद की ओर गति होते ही प्रमाद आश्रव भी अवरुद्ध हो जाता है, और इस प्रकार कर्मो के आश्रवों का एक बहुत बड़ा भाग रूक जाता है।

चूकि आत्म जागरण के द्वारा अव्रत आश्रव के बन्द होते ही अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण एवं प्रत्याख्यानावरण कषाय तो अपने आप ही क्षीण हो जाते हैं, अतः कपाय आश्रव भी अति सूक्ष्म संज्ज्वलन कषाय के रूप मे ही बचता है, वह भी जब आत्मा विचारों की उच्चतम श्रेणी पर आरोहण करती है, तो क्षीण होता चला जाता है। फिर तो योग जनित सामान्य-अत्यल्प आश्रव ही वच जाता है। वह भी कषाय की चिकनाई के अभाव मे अकिञ्चित् कर होता है।

हिंसादि आश्रवों का समीक्षण

समीक्षण ध्यान साधक आश्रव समीक्षण की इस भावनात्मक प्रक्रिया में आश्रव के सूक्ष्मतम निमित्तो पर भी अपना चिन्तन केन्द्रित करता है। आश्रव के उपर्युक्त पाचो द्वार जिन वृत्तियो-प्रवृत्तियो द्वारा उत्प्रेरित होते हैं, वे निमित्त है—हिसा, असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह, पांचो इन्द्रिय और मन, वचन एव कायायोग का अनिग्रह, भण्डोपकरण तथा सूचकादि पदार्थों का अविवेक से रखना-उठाना। चूकि ये सभी निमित्त आश्रवोद्दीपक है, अतः इन्हे भी आश्रव ही कहा गया है। आश्रव की परिभाषा के अनुसार हम यह समझ चुके है कि आत्मा की वे सभी प्रकियाए आश्रव है, जो आत्मा के साथ कर्मो को खीच कर लाती हैं।

हिंसा, असत्य, चौर्य कर्म, मैथुन एव परिग्रह की तृष्णा—ये सभी प्रवृतियां आत्मा के अशुभ योगों से एवं विभाव से उत्पन्न होने वाली हैं, अतः ये कर्म बन्धन या कर्माश्रव की मूल हेतु हैं। समीक्षण ध्यान का साधक इनकी वैभाविकता का चिन्तन करता हुआ स्वय को इन आश्रवो से बचाने का प्रयास करता है। उसका मौलिक चिन्तन होता है कि जैसे मेरे साथ कोई हिंसा, असत्य या चोरी आदि की प्रवृत्ति करता है तो वह मुझे अच्छी नही लगती, ठीक वैसे ही मैं दूसरों के साथ ये प्रवृत्तियां करूंगा तो उन्हे अच्छी कैसे लगेगी ? मुझे अहिंसा–मेरी कोई हिंसा न करे, मुझे कोई कष्ट न दे, प्रिय है। मुझे सत्य प्रिय है अर्थात् मेरे साथ कोई असत्य व्यवहार न करे यह मुझे अच्छा लगता है, तो मेरा भी यही कर्त्तव्य होता है कि मैं भी इस प्रकार के व्यवहार ही दूसरो के साथ करू।

आश्रव समीक्षण का साधक इस प्रकार विश्व वात्सल्य या वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का सृजन करता है। राग-द्वेष की परिणतियो से ऊपर उठता है और इस रूप मे आश्रवो के द्वार बन्द करता चला जाता है।

इन्द्रिय एवं योग जनित आश्रव का समीक्षण

आश्रव के निमित्तो मे पाचो इन्द्रियो का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है, या यो कहे इन्द्रियो के विषयो की पूर्ति हेतु ही जीव की प्रवृत्ति आश्रव मे होती है। समीक्षण ध्यान का साधक इन्द्रिय विषयो का द्रष्टा बन जाता है, वह विषयो के प्रति रागभाव से ऊपर उठता जाता है। उमका समीक्षण होता है कि मेरी इस आत्मा ने इन्द्रियों के वश मे होकर न जाने कितने कर्मो का बन्ध किया है ! सुन्दर, सुवासित एव सुस्वादु पदार्थो की लालसा–तृष्णा ने इस चैतन्य के द्वारा कितने जीवों का उपमर्दन करवाया है। अहा ! ये इन्द्रिया ही तो विषयो मे आसक्त होकर जन्म-मरण के चक्कर में इस आत्मा को उलझा रही है। नही, नही, अब मैं इस इन्द्रियासक्ति से ऊपर उठूंगा-इस आश्रव के प्रबल निमित्त को छिन्न-भिन्न कर दूंगा। अब ये इन्द्रियां कर्म बन्धन का कारण नही रहकर निर्जरा की निमित्त बन गई हैं। तत्त्वज्ञो ने कहा ही है—

दुद्दन्ता इंदिया पंच, संसाराय शरीरीणं ।
ते चेव णियमिया सम्मं, णिव्वाणाय भवंतिहि ।।

पांचों इन्द्रियां जब दुर्दान्त होकर विषयों में दौड़ती हैं तो इस आत्मा के लिये ससार की हेतु बन जाती है—अश्रव की प्रबलतम कारण बन जाती हैं। किन्तु जब वे ही इन्द्रियां सम्यक् प्रकार से संयमित कर ली जाती हैं तो संवर, निर्जरा या परम निर्वाण की निमित्त बन जाती है।

चूंकि मेरी आत्मा ने अब इन इन्द्रियों को संयमित कर लिया है—विषयो की ओर दौड़ने से रोक दिया है अतः अब ये आश्रव की निमित्त नही, निर्जरा या संवर की संवाहक बन गई हैं।

अरे! ये इन्द्रियां तो बेचारी एक शक्ति के रूप में है। शक्ति अपने आप मे शक्ति ही होती है—अच्छी या बुरी नही। अच्छे या बुरे रूप मे तो उसका उपयोग होता है। शक्ति कोई भी हो, उसका दोनों दिशाओ में उपयोग किया जा सकता है। तलवार से किसी की रक्षा भी जा सकती है और संहार भी किया जा सकता है। तो इन इन्द्रियों का उपयोग करने वाली तो मेरी आत्मा है। चूंकि मेरी आत्मा ने इन्द्रियों की शक्ति का समीक्षण कर लिया है, अत अब ये कर्माश्रव की निमित्त नहीं रहकर निर्जरा की निमित्त बन गई हैं।

इसी प्रकार मानसिक, वाचिक एवं कायिक योग की प्रवृत्ति भी कर्माश्रव की मूल हेतु है। मूल परिभाषा के अनुसार तो मन, वचन और काया की प्रवृत्ति योग है। और वही आश्रव है। अतः इन तीनों प्रमुख शक्तियो का समीक्षण पूर्वक सयमन आश्रव निरोध का हेतु वन सकता है। इस योगजनित वृत्ति के कारण भी तो मेरी आत्मा संसार रूपी अटवी में भटक रही है। योगों का संयमन ही इस भटकाव से आत्मा की सुरक्षा कर सकता है।

अब मैंने आश्रवो द्वारा होने वाली आत्मा की दुर्दशा का समीक्षण कर लिया है। अव मैं योगों को दुष्प्रवृत्ति में नही भटकने दूंगा। अब मैं योग सयमन के द्वारा आश्रव को खदेड़ दूंगा और

आत्म विशुद्धि के द्वारा मुक्ति मार्ग की ओर गतिशील बना रहूंगा। अब मेरा विवेक जागृत हो गया है। अब जीवन की प्रत्येक क्रिया—चाहे वह मानसिक हो, वाचिक हो या कायिक हो, अत्यन्त सजगता-पूर्वक होगी। अब मेरे जीवन का कोई भी लघु से लघुतम कार्य आन्तरिक विवेक पूर्वक होगा।

अरे ! अश्व जब तक शिक्षित और अनुशासित नही होते हैं तभी तक तो सारथी को उत्पथ पर ले जा सकते हैं। जब अश्वों को शिक्षित कर दिया जाय और उनकी लगाम सजगता पूर्वक सम्भाल ली जाए तो अश्वो के विपरीत दिशा मे जाने का क्या कारण बच जाता है ?

ठीक यही स्थिति है मन, वचन और तन के योग रूप अश्व की। समीक्षण ध्यान साधना रूप लगाम से जब इसे वश में कर लिया गया है तो यह अब अश्रवों की ओर आत्मा को (मुझे) बन्धन में डालने की दिशा मे नही भाग सकता है।

समुद्रपाल का आश्रव समीक्षण

इस प्रकार समीक्षण ध्यान साधना का साधक आश्रव समीक्षण के द्वारा आश्रवों से होने वाली आत्म मलिनता से बचकर आत्म निर्मलता की ओर उसी प्रकार गति कर देता है जिस प्रकार श्रावक श्रेष्ठ समुद्रपाल ने आश्रव समीक्षण करके साधना का पथ स्वीकार कर लिया था।

युवक समुद्रपाल अपनी अर्धांगिनी के साथ अपने भवन के झरोखे (गेलरी) मे बैठा नगर की—बाजार की शोभा का अवलोकन कर रहा था। सहसा उसकी दृष्टि उस अपराधी चोर पर पड़ी, जो राज पुरुषो द्वारा बडी मजबूती से बाधकर वध स्थान की ओर ले जाया जा रहा था। युवा हृदय समुद्रपाल का चिन्तन कर्म बन्धन की गहराई में पहुंच गया—"अहा ! अशुभ कर्मों का उदय कैसा भयंकर परिणाम लाता है। अरे ! यह चोर भी तो मेरे जैसा मनुष्य है। क्या कर्मों के कारण एक दिन मेरी भी यह दशा नही हो सकती है ? और मैं भी कभी ऐसे ही बन्धनो मे नही बध सकता हूं ? अहो ! यह कर्म....

यह कर्मों का आश्रव इस आत्मा को कहां-कहां और किस-किस रूप में भटकाता है ? ठीक ही तो कहा है—

जगवासी घूमें सदा, मोह नीन्द के जोर ।
सब लूटे नहीं दीसता, कर्म चोर चहुं ओर ।।

अरे ! मेरी आत्मा ही नही, संसार के सभी प्राणी मोह की नींद में भ्रमण कर रहे हैं । और कर्म चोर उन्हें चारों तरफ से लूट रहे हैं ।

भला इस मोह नींद को उड़ाये विना और कर्माश्रव को रोके बिना क्या आत्म शान्ति प्राप्त हो सकती है ? नही, नही, इस मोह वन्धन को तोडना ही होगा । मुझे आत्म शान्ति के लिये आश्रवों के द्वारों को अवरुद्ध करना ही होगा ।

आश्रव समीक्षण आत्मा को परमोच्च दशा पर पहुंचाने का मूल द्वार है । इस समीक्षण ध्यान के द्वारा ही आत्म मलिनता से बचकर परम शुद्धि रूप सिद्धालय को प्राप्त किया जा सकता है । सम्पूर्ण आश्रवो का निरोध सर्व संवर बन जाता है और वही परिनिवार्ण या मोक्ष है ।



१२ संवर समीक्षण

आश्रव समीक्षण में साधक कर्मों के आगमन द्वारो का समीक्षण करता है, किन्तु आगमन द्वारो के समीक्षण मात्र से मुक्ति नहीं हो जाती है। कोई रोगी रोग के कारणों का परिज्ञान कर लेता है, किन्तु उन कारणो को प्रतिवन्धित नही करता है तो क्या वह रोग मुक्त हो सकता है ? ठीक, इसी प्रकार कर्म वन्ध के कारणो का परिज्ञान ही पर्याप्त नही है, उन कारणो का निरोध भी आवश्यक है और वह निरोध है 'सवर'। संवर को परिभाषित करते हुए वाचक मुख्य उमास्वाति ने अपने मौलिक ग्रन्थ तत्त्वार्थ सूत्र मे कहा है—

"आश्रव निरोधः सवरः"

आश्रव का निरोध करना सवर है। चूकि आश्रव और संवर एक दूसरे के विरोधी हैं, अतः जो-जो आश्रव के निमित्त हैं, वे सभी अपने विपरीत रूप मे सवर के निमित्त वन जाते हैं। इसी दृष्टि से प्रभु महावीर ने कहा है—

जे आसवा ते परिसवा,
जे परिसवा ते आसवा।

आश्रव है कर्मों का आना और संवर है कर्मों का रुक जाना या कर्मागमन के द्वारो का अवरुद्ध हो जाना। जिन-जिन प्रवृत्तियो से कर्मों का आना होता है, उन-उन प्रवृत्तियो का निरोध करते जाना संवर वनता जाता है। समीक्षण ध्यान का साधक आत्मा की परम विशुद्धि सर्वोच्च दशा का पथिक होता है। उस मार्ग पर गति करने के लिये आत्मा को मलिन वनाने वाली सभी प्रवृत्तियो का अवरोध करना आवश्यक हो जाता है, अतः वह साधक सवर समीक्षण की ओर चरण वढाता है। सवर समीक्षण मे साधक का चिन्तन आश्रवों की विपरीत दिशा में होता है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद आदि आश्रव हैं, तो इसके विपरीत

सम्यक्त्व, व्रत-प्रत्याख्यान, अप्रमाद, कषाय विजय आदि सवर हैं। आश्रव समीक्षण में साधक मिथ्यात्वादि की अशुभता-भयंकरता का चिन्तन-समीक्षण करता है तो संवर समीक्षण मे सम्यग्दर्शन व्रत-प्रत्याख्यान आदि से होने वाली आत्म उज्ज्वलता का समीक्षण करता है और आत्मा की उज्ज्वलता को प्राप्त करता चला जाता है।

सम्यक्त्व संवर समीक्षण

आत्मा का प्रबल शत्रु मिथ्यात्व है, यही इस चैतन्य को अनादि काल से जन्म-मरण के चक्कर में डाले हुए है। कर्माश्रव का मूल हेतु है मिथ्यात्व। इस मिथ्यात्व का अवरोधक तत्व है सम्यग्दर्शन सवर। सम्यग्दर्शन किंवा समकित संवर चेतना का विशुद्ध भाव है। जब चैतन्य देव अपने विशुद्ध भाव-समकित में स्थिर हो जाता है तो मिथ्यात्व आश्रव सहज ही अवरुद्ध हो जाता है। सम्यग्दृष्टि भाव के जागरण के साथ ही आत्मा मे एक अपूर्व आनन्द का आविर्भाव होता है। अनादि कालीन मिथ्यात्व का पर्दा हटता है कि स्वरूप दर्शन हो जाता है। अज्ञान की पर्तें हट जाती हैं तो तत्त्वातत्त्व का सम्यग्बोध हो जाता है। तत्त्व की सम्यग् जानकारी भी तो आनन्द के द्वार उद्-घाटित कर देती है। और यह आनन्द उपलब्ध होता है सम्यक्त्व संवर के द्वारा।

सम्यक्त्व संवर समीक्षण मे साधक भाव-विभोर होता हुआ आत्मा की मूल स्थिति का अथवा उसके मूल स्वरूप का चिन्तन करता है—अहो ! आज तक मैं अपने ही दर्शन से वञ्चित रहा ! इस मिथ्यात्व ने मुझे अपना ही रूप नही देखने दिया। कैसा अद्भुत प्रकाश है मेरी इस चेतना मे ! आनन्द के कितने सागर उमड़ रहे हैं इस आत्मा मे। ये अनुपम क्षण मुझे इस सम्यग्दर्शन के द्वारा ही देखने को मिल रहे हैं। आज पहली बार मेरी आत्मा में तत्त्वातत्त्व का बोध जागृत हुआ है। इस सम्यक्त्व संवर के प्रकाश मे ही मैं हेय, ज्ञेय और उपादेय को समझ पा रहा हूं।

अरे ! इस एक संवर की प्राप्ति के साथ ही मेरे जन्मों—जन्मो के वन्धन खुलते जा रहे हैं। मुझे अपने अज्ञानता या मिथ्यात्व जनित भटकाव का अनन्त अतीत स्पष्ट दिखाई दे रहा है। किन्तु

अब मेरे इस भटकाव का अन्त आ गया है । अनन्त काल तक संसार मे भटकाने वाला अनन्तानुबन्धी कषाय का चतुष्क अब मेरी आत्मा से निकलकर भाग रहा है । अब तो इस चेतना मे अपूर्व करण और अनिवृत्तिकरण के उज्ज्वलतम भाव जागृत हो रहे हैं । अहा ! यह विचारो-अध्यवसायो की विशुद्धि अभूतपूर्व है । मेरे कर्माश्रव एवं कर्म बन्ध एकदम हल्के हो गये हैं । प्रगाढतम-निकाचित कर्म बन्धन का कारण मिथ्यात्व आश्रव ही तो था । अब वह क्षीण हो गया है तो आत्मोज्ज्वलता का विकास सहज ही हो रहा है । आत्मा की मलिनता बहुत अधिक अ शों मे रूक गई है । अब तो सामान्य रूप से ही कर्माश्रव एव कर्म बन्धन हो रहा है, वह भी अल्पकालीन स्थिति वाला ।

विरति से हेय-त्याग का समीक्षण

जैसे किसी तालाब मे गन्दे पानी के आने के अनेक नाले हो और उस तालाब को खाली करना हो, स्वच्छ करना हो तो पहले उन नालो को अवरुद्ध करना पड़ता है । उनमे भी प्रमुख एव बडे नाले को पहले अवरुद्ध करना पडता है । ठीक उसी प्रकार आत्म-तालाब को मलिन बनाने वाले सबसे बडे नाले मिथ्यात्व आश्रव का अवरोध सम्यक्त्व सवर के द्वारा हो जाने से आत्मा की मिथ्यात्व जनित मलिनता स्वत. ही रूक गई है । और सम्यक्त्व सवर के आने पर जब आत्मा की उज्ज्वलता बढने लगी तो हेय को त्यागने एव उपादेय को ग्रहण करने का भाव निर्मित होने लगा और इस प्रकार विरति रूप सवर का भाव आत्मा मे जागृत हो गया ।

जो हेय था उसे आज तक यह आत्मा उपादेय ग्राह्य मानती चली आयी । मानती ही नही आयी, गहण करती रही और जो उपादेय था उसे छोडती चली आयी । अहो ! अब तो हेय-ज्ञेय और उपादेय का सम्यग्बोध हेय को छोडने के लिये प्रेरित कर रहा है । उपादेय को ग्रहण करने की प्रेरणा दे रहा है। ससार के समस्त पदार्थ, जो आत्मा मे राग-द्वेषात्मक वृत्तियो को उत्पन्न करके आश्रव के निमित्त बनते हैं, वे सभी हेय हैं । अविरति का भाव मात्र हेय है । मेरा सवर समीक्षण यह प्रेरणा दे रहा है कि मुझे अविरति एव प्रमादादि भावो का परित्याग कर देना है ।

भावों की इस विशुद्धि के साथ ही मेरी आत्मा मे विवेक का जागरण हो गया है, अविरति और प्रमाद का भाव छूटता जा रहा है और संयम-साधना की सहज प्रवृत्ति का विकास होता चला जा रहा है। अब इस चित्त की रमणता महाव्रतो की विशुद्ध परिपालना एव पांच समिति तीन गुप्ति की आराधना में बढती जा रही है।

विरतिरूप सवर का मुख्य आधार भी तो महाव्रतो एवं समिति-गुप्ति आराधन, परीषहो पर विजय एवं भावनाओ का विशुद्धिमय प्रकर्ष ही तो है। हिसा, असत्य, चौर्यकर्म आदि से पूर्णतया निवृत्त हो जाना ही तो आश्रव निरोध है, और वही महाव्रत रूप सवर बन जाता है और महाव्रतों की परिपालना तभी शुद्ध रूप से हो सकती है जबकि समिति-गुप्ति का सम्यक् रूप से आराधन—अनुपालन हो।

समिति संवर—समीक्षण

सवर समीक्षण का साधक भाव विशुद्धि के उस प्रकर्ष पर पहुंचता है कि उसे विरति भावो मे एव विरति भावों की पोषक सम्यक् क्रियाओ मे ही आनन्द आता है। उसका सम्पूर्ण चिन्तन अपनी आत्मा को मलिन बनाने वाले कर्माश्रव द्वारों को अवरुद्ध करने पर ही केन्द्रित हो जाता है। वह जीवन की प्रत्येक गतिविधि पर सजगता पूर्वक दृष्टि रखता है कि कौन-कौन सी प्रवृत्तिया आश्रव रूप हैं—आत्मा को बन्धन मे डालने वाली है और किन-किन क्रिया विधियो के द्वारा उन प्रवृत्तियो को प्रतिबन्धित किया जा सकता है? इस सजगता के आधार पर ही साधक का चलना-फिरना, के उठना-बैठना, बोलना, भिक्षावृत्ति करना आदि प्रवृत्तियां संयमित हो जाती है और इन प्रवृत्तियो का सयमित हो जाना ही समिति रूप सवर बन जाता है।

गतिक्रिया अर्थात् चलने-फिरने की सम्यक् प्रवृत्ति को ही आगमिक भाषा मे ईर्या समिति कहा गया है। जब यह आत्मा कर्माश्रव से बचने के लिये प्रथम महाव्रत की परिपालना करती है तो यह आवश्यक हो जाता है कि इसके द्वारा किसी प्रकार से जीव हिंसा न हो, इसकी प्रत्येक प्रवृत्ति ऐसी हो कि उसके द्वारा किसी भी प्राणी को सकलेश उत्पन्न न हो। उन्ही प्रवृत्तियो मे ईर्या समिति की प्रवृत्ति भी समाविष्ट है।

आत्म जागरण की इस स्थिति में साधक स्वतः ही इतना संवेदनशील हो जाता है कि कही मेरे द्वारा चलते-फिरते जीव हिंसा जनित कर्म न बांध लिये जायें। उसका चिन्तन होता है कि कोई व्यक्ति चलते हुए यदि मुझे जरा-सी ठोकर मार दे तो मुझे कितना बुरा लगता है ? जब एक ठोकर को भी मैं सहन नही कर सकता हूं, तो मेरे द्वारा किसी के प्राणो का हनन हो जाना किसी को कैसे सह्य हो सकता है ? और इस प्रकार साधक सवर समीक्षण के प्रति सजग-संवेदनशील बनकर अपने आपको कर्माश्रव से बचाने का प्रयास करता है। वह सवर समीक्षण के गहनतम क्षणों में अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति के प्रति सजगतापूर्ण चिन्तन करता है—क्या मुझे संवर साधना का अथवा विरतिभाव में रमण करने का जो यह अवसर मिला है, वह पुनः-पुनः मिलने वाला है। यदि नही, तो इस अवसर पर आत्म साधना नहीं करके मुझे फिर पश्चाताप नही करना पडेगा ? नही, नही, यह अनुपम अवसर मुझे खोना नही है। मुझे आत्मा को कर्म मैल से बचाने की संवर साधना के प्रति अत्यन्त सजग रहना है। ईर्या समिति ही नही, अन्य समितियो के प्रति भी मुझे अत्यन्त जागरूक रहना है। मेरे द्वारा कही ऐसे निश्चयकारी, मर्मस्पर्शी, छेद-भेदकारी अथवा कर्कश-कठोर शब्दो का प्रयोग न हो जाये कि जिससे दूसरों का दिल खेदित हो जाये और कर्माश्रव के द्वारा मेरी आत्मा मलिन हो जाए ? मुझे यदि संवरात्मक वृत्ति मे सुस्थिर रहना है तो अपनी भाषा समिति के प्रति पूर्णतया सजग रहना होगा।

इसी प्रकार भिक्षावृत्ति एव भोजन करने की प्रवृत्ति भी तो आश्रव और सवर दोनो की निमित्त बन सकती है। यदि मुझे आश्रव द्वारो को अवरुद्ध करना है तो भिक्षा ग्रहण एव भोजन ग्रहण के प्रति सजग रहना होगा। मुझे निर्दोष किसी भी प्रकार की जीव हिंसा से रहित भिक्षा ग्रहण करनी होगी। यह न हो कि मैं जिह्वा की आसक्ति मे आकर सदोष भिक्षा ग्रहण करलू। मेरी भिक्षा वृत्ति में किसी भी सूक्ष्मतम प्राणी को भी किसी प्रकार का किञ्चित् मात्र सक्लेश उत्पन्न न हो तथा मेरे भोजन करते समय भी सयम बना रहे सुस्वादिष्ट पदार्थो के प्रति राग भाव एवं स्वादहीन पदार्थो के प्रति द्वेष भाव उत्पन्न न हो, यही तो एषणासमिति है। चू कि मुझे अपने समस्त आश्रव द्वारो को पूर्णतया अवरुद्ध करना है अतः अब मैं अपने जीवन

की उन सभी क्रियाओं के प्रति सजग रहूंगा जो राग-द्वेष की निमित्त बनकर आश्रव के द्वारों को खोल देती है तथा इस आत्मा को संवर की ओर नही बढने देती है ।

जीवन की सभी क्रियाएं चाहे वे शुभ हो या अशुभ, आपेक्षिक दृष्टि से आश्रव की निमित्त बन जाती हैं, अतः इस आत्मा की सूक्ष्मतम क्रियाओ के प्रति भी सजगता संवर की ओर बढ़ा सकती है। इसी दृष्टि से चतुर्थ और पंचम समिति में वस्तु मात्र का रखना – उठाना एव विसर्जित या उत्सर्जित करना भी सजग–विवेक के साथ होना चाहिये । सवर समीक्षण ध्यान साधक की सजगता सयमनता-लघु से लघुतम जीवो के प्रति भी सवेदनशीलता इतनी वढ जाती है कि वह प्रत्येक पदार्थ को अत्यन्त विवेक से उठाता है, विवेक से रखता है । यहां तक कि मल-मूत्र का त्याग एव अन्य पदार्थों का उत्सर्जन-विसर्जन भी इस रूप से करता है कि उनके द्वारा कही किसी भी प्राणी का हनन न हो जाए । और इस प्रकार वह कर्म के आगमन के द्वारों को रोक कर सवरभाव मे प्रतिष्ठित होता जाता है ।

गुप्ति एवं इन्द्रिय विजय समीक्षण

सम्यक् प्रवृत्ति से भी शुभाश्रव भी होता रहता है, किन्तु समिति से संवर भी होता है ।

अतः यहां जो समिति-सम्यक् प्रवृत्ति को आश्रव कहा गया है वह आपेक्षिक दृष्टि का प्रतिपादन है । इस सम्यक् प्रवृत्ति मे जितनी मात्रा मे हिंसा, असत्य आदि दूपित प्रवृत्तियों से वचा जाता है, उतना सवर माना जाता है । अन्यथा परिपूर्ण सवर तो गुप्ति, मानसिक, वाचिक एव कायिक प्रवृत्ति से निवृत्ति को कहा जा सकता है । जहा योग जन्य प्रवृत्ति का अवरोध होता है वहा विशुद्ध सवर प्रतिफलित होता है ।

इसी दृष्टि से गुप्ति अर्थात् मन, वचन और काया के व्यापार के निरोध को संवर का प्रमुख आधार माना गया है । संवर समीक्षण ध्यान का साधक सभी प्रवृत्तियों से ऊपर उठने का प्रयास करता है । वह मनसा, वाचा, कर्मणा, अत्यन्त सयमित हो जाता है । उसकी मानसिक, वाचिक एवं कायिक वृत्तियां स्वोन्मुखी अथवा आत्म केन्द्रित

हो जाती है। उसका चित्त बहिर्द्रष्टा नहीं स्वद्रष्टा बन जाता है और यही संवर की उच्चतम स्थिति बनती है जहां आकर आत्मा कर्माश्रवों के द्वारों को अवरुद्ध करके अपनी सुरक्षा का प्रवन्ध कर लेती है।

इस संवर समीक्षण की उच्च दशा में आत्मा को जो आनन्द उपलब्ध होता है वह इन्द्रिय जन्य विषयो से कथमपि उपलब्ध नही हो सकता है। अतएव साधक चित्त इन्द्रिय-विषयों के प्रति अनासक्त होता जाता है। वह इन्द्रिय-विषयो की दासता से मुक्त हो जाता है। उसका समीक्षण होता है कि यह इन्द्रिय-विपयों की गुलामी ही तो आश्रवों के द्वार उद्घाटित करती है। मनोज्ञ शब्द, सुन्दर रूप, सुवासित गन्ध, मधुर स्वादिष्ट पदार्थ एवं मनोभिराम कोमल–गुदगुदी भरे स्पर्श राग भाव उत्पन्न करते हैं तो इसके विपरीत अमनोज्ञ शब्दादि द्वेष के निमित्त बन जाते हैं, और राग-द्वेष ही बन्ध के कारण हैं। जब इन्द्रियों की विपयों की ओर दौड रूक जाती है ती वे स्वप्रतिष्ठ हो जाती है, कहा भी है।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।

अर्थात् अपनी इन्द्रियो को जो सयमित कर लेता है, उसकी प्रज्ञा आत्म प्रतिष्ठ हो जाती है। चूंकि मेरी इन्द्रिया सवरित हो गई हैं, अतः ये अव विषयो मे आश्रवकारक प्रवृत्तियो में नही दौड सकती हैं। अरे ! अव इनके विषयो में दौडने का कारण ही क्या वच जाता है ? जव ऐन्द्रियक विषयो से अनन्त गुणा अधिक आनन्द विषयो से निवृत्त होने से प्राप्त हो रहा है तो यह आत्मा उधर दौड़ेगी ही क्यो? क्षीर समुद्र का मधुर जल सामने होते हुए लवण समुद्र के खारे पानी के लिये कोई मूर्ख ही दौड लगाएगा। नही, नही मेरी आत्मा इतनी मूर्ख नही है, इसे स्वरूप वोध हो गया है, यह जड़-चेतन की भिन्नता को समझ गई है, अव यह जड़ पदार्थों के आकर्पण मे विषयो की आसक्ति मे नही दौड़ सकती है। इसे अव इन्द्रियातीत अद्भुत आनन्द के द्वार सवर साधना के रूप मे प्राप्त हो गये हैं। अहा ! इन्द्रियातीत विषयो मे कितना आनन्द है ! कितनी रमणीय आह्लादकता है ! कितनी शान्ति है !!!

अरे ! अशान्ति तो कर्म वन्धन के कारण होती है, जव

बन्धन रूक गया—आश्रव रूक गया, आत्मा संवर में प्रतिष्ठित हो गई तो फिर दु:ख आएगा कहां से ? फिर तो आनन्द और शान्ति ही बचते हैं। अहा ! यह सवर समीक्षरण कितना आनन्दप्रद है ! कितना विवेक जागृत हो जाता है इसके द्वारा आत्मा में ! वह प्रत्येक असत्प्रवृत्ति से वची रहती है। बची ही नहीं रहती, वह विकट से विकटतम परिस्थितियो में भी भयंकर उपसर्गों के उपस्थित होने पर विचलित नही होती—आत्मस्थ वनी रहती है। यही नहीं, वह सदा भावनाओं की उज्ज्वलता में ही बढती जाती है। वह चरित्र धर्म की उच्च से उच्चतम आराधना में गति करती जाती है।

हरिकेशी मुनि एवं ब्राह्मणों का सवर समीक्षरण

अहा ! इसी संवर भावना की उच्चतम स्थिति का अनुशीलन तो किया था चाण्डाल कुलोत्पन्न अणगार हरिकेशी एवं उनके द्वारा उपदिष्ट ब्राह्मणो ने।

हरिकेशी मुनि ने अपने पूर्व भव मे जाति संबंधी एवं रूप सम्बन्धी अहकार किया। परिणामत:उन्हे चाण्डाल जैसे हीन कुल में उत्पन्न होना पड़ा एवं उनका चेहरा भी वेडौल-कुरूप हो गया। उनके वेडौल चेहरे के कारण कही भी उनका आदर नही होता। जहां कहीं जाते उन्हे तिरस्कार एवं उपहास का पात्र होना पडता। सब ओर से होने वाली अपनी अवमानना के कारण वे जीवन से ऊब गये।

एक दिन वसंतोत्सव के अवसर पर सभी लोग एकत्रित हुए। अनेक वालक खेल खेलने मे लगे हुए थे। उपद्रवी हरिकेशवल जब वालकों के उस खेल मे सम्मिलित होने लगा तो वृद्धों ने उसे खेलने नही दिया। इससे गुस्से मे आकर वह सबको गालिया देने लगा। सबने उसे वहां से निकालकर दूर वैठा दिया। अपमानित हरिकेशबल अकेला लाचार और दु खित होकर बैठ गया। इतने मे ही वहां एक भयंकर काला विषधर निकला। चाण्डालो ने उसे 'दुष्टसर्प है' यह कह मार डाला। थोडी देर वाद एक अलशिक (दुमुंही) जाति का निर्विष सर्प निकला। लोगो ने उसे विषरहित कह कर छोड दिया। इन दोनों घटनाओ को दूर वैठे हरिकेशवल ने देखा। उसने चिन्तन किया कि "प्राणी अपने ही दोषो से दु:ख पाता है, अपने ही गुणों से प्रीति-

भाजन बनता है । मेरे सामने ही मेरे बन्धुजनो ने विषैले साप को मार दिया और निर्विष की रक्षा की, नही मारा । मेरे बन्धुजन मेरे दोष युक्त व्यवहार के कारण ही मुझसे घृणा करते हैं । मैं सबका अप्रीतिभाजन बना हुआ हू । यदि मैं भी दोषरहित बन जाऊ तो सबका प्रीतिभाजन बन सकता हू ।" यों विचार करते-करते उसे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ । उसके समक्ष मनुष्यभव मे कृत जातिमद एवं रूपमद का चित्र तैरने लगा । उसी समय उसे विरक्ति हो गई और उसने भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली । उसकी धर्म साधना मे जाति अवरोध नही डाल सकी । दीक्षा ग्रहण करके अपने आश्रवो को सर्वथा अवरुद्ध करने के लिए एव संचित कर्मों की निर्जरा के लिये उग्र तपश्चरण मास-मास खमण की तपश्चर्या करने लगे ।

एक बार वे तपोमूर्ति हरिकेशी अणगार बनारस नगरी के बाहर एक यक्षायतन मे ठहरे हुए थे । वे अडोल ध्यान साधना लीन थे, उस समय वहा के राजा की राजकुमारी यक्षायतन मे गई । वहा उन मुनिवर की कुरूपता को देख कर उनसे घृणा करती हुई उन पर थूक दिया । मुनि पर थूकते ही राजकुमारी का मुह एक दम टेढा हो गया ।

जब राजा को इस बात की जानकारी मिली तो राजा चिन्तित हुआ और इस डर से कि ये मुनि और कोई शाप न दे दें, उसने अपनी उस कन्या को ध्यानस्थ मुनि को ही समर्पित कर दिया । जब हरिकेशी मुनि का ध्यान पूरा हुआ तो वे राजा से कहने लगे—"राजन्! हम ब्रह्मचारी सन्त है, हम तो मन से भी स्त्री की इच्छा नही करते हैं । तुम सम्भालो अपनी कन्या को ।"

यह सुनकर राजा और अधिक चिंतित हो उठा । वह चिन्तन करने लगा कि अब इस कन्या का क्या होगा ? इसका पाणिग्रहण किसके साथ होगा ? उसने पुरोहित को बुलाकर पूछा तो पुरोहित ने कहा—"राजन् ! चू कि आपने इसे ऋषि को अर्पित कर दिया है, अतः अब यह ऋषि पत्नी हो गई है, आप इसे किसी ब्राह्मण को भेंट करदें ।"

भयभीत नृप ने सहज-सरलता में अपनी कन्या का पाणिग्रहण उसी पुरोहित के साथ कर दिया । विवाह के प्रसंग पर एक यज्ञ का

प्रारम्भ किया गया। संयोगतः उसी यज्ञ स्थल पर अपने मासखमरण के पारणे पर हरिकेशी मुनि भिक्षा हेतु पहुंच गये। यज्ञ स्थान पर उपस्थित अनेक ब्राह्मण कुमार एव क्षत्रिय कुमार मुनि हरिकेशी के वीभत्स रूप को देखकर उन्हें पीटने लगे, तब राजकुमारी ने उन्हे रोकते हुए कहा "अरे ! तुम लोग यह क्या कर रहे हो ? क्या तुम्हारे सिर पर मौत मण्डरा रही है। ये महान तपस्वी ब्रह्मचारी मुनि हैं। मुझे मेरे पिता इन्हे भेंट कर रहे थे, किन्तु इन्होने मुझे अस्वीकार कर दिया। यदि ये कुपित हो जावें तो न जाने कितने लोगो भस्म कर सकते हैं।

राजकुमारी यह समझा ही रही थी कि सभी ब्राह्मण एव क्षत्रिय कुमार, जो मुनि को पीटने को दौड़े थे, निर्गत जीभ एव वक्र मुंह होकर भूमि पर अचेत हो गिर पडे। उसी समय प्रमुख ब्राह्मणादि दौड़कर आए और बालको द्वारा कृत अपराध के लिये मुनि से क्षमा याचना करने लगे।

हरिकेशी मुनि ने वड़े शान्त स्वरो मे कहा—"हम साधु मन से भी किसी का बुरा नही चाहते है। चाहे हमे कोई कितना ही कष्ट दे—मारे, पीटे, प्रताड़ित करे, हम उसका भी भला चाहते है। लगता है बालकों को अचेत करने का कार्य तिन्दुक नामक यक्ष ने किया है।

मुनि प्रवर द्वारा अभयदान के साथ ही तिन्दुक यक्ष ने कुमारो को पुनः स्वस्थ कर दिया।

अनन्तर अत्यन्त श्रद्धा एव सद्भावना के साथ ब्राह्मणो ने मुनि को आहार दान दिया और मुनि ने उन्हे यज्ञ का सम्यक् स्वरूप बताते हुए कहा—"आप लोग जिस यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे हैं, वह वास्तव में यज्ञ नहीं है। यज्ञ तो हिंसक होने से कर्माश्रव का द्वार खोलता है। यज्ञ ऐसा होना चाहिये जो आत्मा में आने वाले कर्मों को रोक दे एवं आत्म शुद्धि का निमित्त बने। वह यज्ञ होगा—जीव रूप कुण्ड में तपरूपी अग्नि प्रज्ज्वलित करके कर्मरूपी इन्धन को जलाया जाय। इस यज्ञ के द्वारा कर्मों की निर्जरा तो होगी ही, नूतन कर्मों का आगमन भी रूक जायेगा। यही यज्ञ सवर रूप होगा, जो आत्मा को परम शरणरूप होगा।"

ब्राह्मण कुमारो ने हरिकेशी के उपदेश से प्रभावित होकर हिंसक यज्ञ का परित्याग करके संवर समीक्षण रूप साधना पथ स्वीकार किया ।

इस प्रकार सवर समीक्षण के द्वारा उनकी आत्मा में अभूत-पूर्व जागरण का सचार हो गया, उन्हे लगा कि हमे आज सम्यग् मार्ग दृष्टा सद्गुरु प्राप्त हो गए हैं । अब हमारा मोह शिथिल हो गया है, अब तो मुक्ति साधना का उपाय बन जाएगा । क्योकि कहा गया है—

मोह नीद जब उपशमे, सद्गुरु देय जगाय ।
कर्म चोर आवत रूकें, जब कुछ बने उपाय ।।

समीक्षण ध्यान साधक सवर समीक्षण के द्वारा मोह का उप-शमन या क्षय करता हुआ कर्माश्रव को अवरुद्ध करके अपनी परम मुक्ति श्री तक पहुंच जाता है । अपने चरम एव परम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है । जिसे सर्व सवर अवस्था कहा जाता है, वही तो आत्मा की सर्वोच्च स्थिति है ।



१३ निर्जरा समीक्षण

मोक्ष को पारिभाषित करते हुए कहा गया है—

बन्ध हेत्वाभाव निर्जराभ्याम् कृत्सन कर्म क्षयो मोक्षः !!

अर्थात् मुक्ति प्राप्ति के लिये दो प्रमुख तत्त्वो की अपेक्षा होती है (१) कर्म बन्ध के हेतुओं का अभाव अर्थात् संवर और (२) निर्जरा।

मुक्ति के लिये केवल सवर ही पर्याप्त नही है, क्योकि सवर के द्वारा केवल नवीन कर्मो का आगमन ही रुकता है, किन्तु जब तक आत्मा में पूर्व बद्ध कर्म बने रहेगे, मुक्ति असम्भव है। अतः ध्यान साधना में संवर समीक्षण का जितना महत्त्व है, उतना ही या उससे अधिक निर्जरा समीक्षण की आवश्यकता है। यहा यह स्मरणीय है कि संवर और निर्जरा श्रुत धर्म एवं चारित्र धर्म के परिणाम है, स्वतन्त्र धर्म नही।

जैसे गन्दे तालाब मे नये आने वाले गन्दे नालो को तो रोक दिया जाय, किन्तु पूर्व से भरा हुआ गन्दा पानी न निकाला जाय तो वह तालाव कभी खाली नही हो सकता है। अतः पानी के आने के द्वारों को रोकने के साथ ही पूर्व के पानी को निकालने का उपक्रम भी आवश्यक होता है।

ठीक इसी प्रकार से आत्मा की परिपूर्ण विशुद्धि-कर्म-मुक्ति के लिये संवर और निर्जरा दोनों की अपेक्षा रहती है। संवर समीक्षण में हमने कर्म के आगमन द्वारो को अवरुद्ध करने का समीक्षण किया था तो अब निर्जरा समीक्षण में यह चिन्तन समीक्षण करेंगे कि पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा किन-किन उपायो से की जा सकती है।

निर्जरा आत्म शुद्धि का प्रमुख साधन

निर्जरा समीक्षण मे साधक का चिन्तन होता है—मेरी आत्मा को संसार में भटकाने वाले, दुःखो के सागर में डुवोने वाले कर्म ही हैं। यद्यपि ये कर्म इस आत्मा के साथ अनादिकाल से लग रहे हैं, किन्तु मेरी समीक्षण साधना इस बात को स्पष्ट कर रही है कि अनादिकालीन कर्म सम्वन्ध को भी तोडा जा सकता है, अनादिकाल से मिट्टी में मिले हुए सोने को वाहर मिट्टी से अलग निकाला जा सकता है।

जव मैंने आश्रव समीक्षण एवं संवर समीक्षण के द्वारा नवीन आते हुए कर्मों के द्वार वन्द कर दिये हैं तो अव मुझे आत्मा के साथ लगे हुए पूर्ववद्ध कर्मों को भी क्षय कर देना है, और यह मेरे उच्चतम संकल्पो के द्वारा एवं आत्म साधना के द्वारा ही सम्भव है। निर्जरा की हेतुभूत उस आत्म साधना के शास्त्रकारों ने वारह भेद वताए है, जो जैन तत्त्वज्ञान में द्वादश तप के रूप मे प्रसिद्ध हैं।

द्वादस तप समीक्षण

निर्जरा का अर्थ है आत्मा पर लगे हुए कर्मों का आंशिक रूप से क्षय होना। वह निर्जरा दो प्रकार की होती है। (१) अकाम निर्जरा और (२) सकाम निर्जरा। अकाम निर्जरा मिथ्या दृष्टि जीवो के होती है। जो कर्म दलिक अपनी अवधि पूरी कर चुके हैं, वे अपना फल देकर स्वतः आत्मा से अलग हो जाते हैं, वह भी अकाम निर्जरा कहलाती है तथा मिथ्यादृष्टि जीवों के द्वारा किये जाने वाले अज्ञान तपादि से भी अकाम निर्जरा होती है। किन्तु सकाम निर्जरा सम्यग्दृष्टि आत्माओ को ही होती है, क्योकि वे निर्जरा—आत्म शुद्धि के उद्देश्य से ही तपादि साधना करते हैं। प्रभु महावीर ने कहा है—

"णणत्थ निज्जरट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा।"

अर्थात् केवल निर्जरा के लिये–आत्म शुद्धि के लिये तप करो। इस लोक की परलोक की अथवा यश-प्रतिष्ठा की कामना से तप मत करो।

इस प्रकार सम्यग्ज्ञान पूर्वक सम्यग्दृष्टि के द्वारा की जाने वाली साधना विशुद्धि आत्म शुद्धि या सकाम निर्जरा की हेतु होती है । चूंकि समीक्षण ध्यान का साधक आत्म शुद्धि का पथिक होता है, अतः वह सकाम निर्जरा ही करता है । सकाम निर्जरा का प्रमुख साधन है तप । अत. समीक्षण ध्यान साधक निर्जरा समीक्षण में तप को ही अपना आधार चुनता है । उसका आत्म-समीक्षण होता है कि इस आत्मा ने सदा-सदा कर्म वन्धन का ही कार्य किया है और इस प्रकार यह अधिकाधिक भारी होती गई है । इस पर कर्मो के लेप चढते गये हैं । जैसे तुम्बी के ऊपर, जिसका स्वभाव पानी के ऊपर तैरने का है, कोई रस्सी की जाली के साथ मिट्टी के लेप चढाकर उसे सुखादे, और इस प्रकार वह आठ लेप चढाकर सुखाता रहे । जब वह वहुत भारी हो जाती है तव उसे पानी मे डालदे तो वह डूब जायेगी । किन्तु ज्यो-ज्यो वह मिट्टी गलती जाएगी, तुम्बा हल्की होती जाएगी और पूरी मिट्टी के हटते ही वह अपने स्वभावानुसार पानी पर तैरने लगेगी ।

ठीक इसी प्रकार मेरी इस आतमा पर आठ कर्मों के लेप लग रहे हैं—प्रतिपल नये-नये रूप में लगते रहते हैं और इस भार के कारण ही यह ससार सागर मे डूव रही है । अव मुझे इस कर्म लेप को गलाना है–हटाना है और इसके लिये तपरूप पानी की आवश्यकता होगी । मैं अपनी आत्मा को तपः साधना के द्वारा एक दम हल्की बना लूंगा, अथवा आत्मरूप स्वर्ण मे लगे कर्म रूप मैल को तपरूप अग्नि से साफ कर लूंगा ।

अनशन–ऊनोदरी तप समीक्षण

आत्म विशुद्धि की इस प्रक्रिया के लिये सर्वप्रथम मुझे आसक्ति भाव को छिन्न-भिन्न करना होगा, क्योकि आसक्ति का भाव ही प्रमुख रूप से आत्मा को वन्धनों मे जकड़े रहता है । अतः वन्धन-मुक्ति के लिये आसक्ति का परित्याग आवश्यक होता है । इस आत्मा की सर्वाधिक आसक्ति अपने शरीर पर होती है । अतः मुझे सर्वप्रथम इस शरीर को ही तपाना होगा । इसके प्रति होने वाले ममत्व से ऊपर उठना होगा ।

शरीर अपनी आसक्ति पोषण की खुराक प्राप्त करता है इन्द्रिय विषयो के माध्यम से । अच्छा खाना, अच्छा पीना, अच्छा सूंघना और अच्छा पहनना आदि शरीर के प्रति आसक्ति बढाने के हेतु होते हैं । मुझे सर्वप्रथम अपने खान-पान पर नियन्त्रण करना होगा । इस तन को तप रूपी अग्नि मे तपाना होगा । यह तपन ही तो अनशन तप है । इस तप मे आत्म उत्पीड़न नहीं, एक अलग ही प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है । यह देहाध्यास से ऊपर उठने का मार्ग प्रशस्त करता है । आगम वाणी के अनुसार "देह दुक्खं महाफल" शरीर को सम्यक्ज्ञान पूर्वक कष्ट देना महाफलप्रद होता है । वह महाफल है—आत्मिक आनन्द । ज्यों-ज्यो इस आनन्द की अभिवृद्धि होती है, शरीर के प्रति ममत्व घटता जाता है और ममत्व के हटने के साथ ही विचारों की विशुद्धता बढती है, तो आत्मा पर लगा कर्म मैल गल-गल कर अलग पडता जाता है अर्थात् कर्मों की निर्जरा होती जाती है । निर्जरा समीक्षण के इन क्षणो मे मेरी आत्मा अपने हल्के-पन का सहज अहसास कर रही है ।

उपवास, बेला (दो दिन का निराहार व्रत) तेला (तीन दिन का निराहार व्रत) एव इसके ऊपर के चार, पांच, छ दिन एव मास-दो मास आदि काल तक निराहार रहना अनशन तप है तो अपनी आवश्यकता से कम खाना, वस्त्रादि उपधि आवश्यकता से कम रखना ऊनोदरी तप है । निर्जरा समीक्षण मे इसका भी कम महत्त्व नही है । अनेकों बार ऐसा होता है कि उपवास आदि कर लेना सरल हो जाता है, किन्तु क्षुधा के छिड़ जाने के बाद तपश्चरण के सकल्प के साथ आधा भोजन करके उठ जाना अत्यन्त कठिन होता है । अतः ऊनोदरी को भी निर्जरा का एक हेतु माना है । इस प्रक्रिया में मन को, तृष्णा को नियन्त्रित करना होता है और मनो नियंत्रण के द्वारा जो इच्छाओं का निरोध होता है वह निर्जरा का निमित्त बन जाता है ।

समीक्षण ध्यान का साधक जब ऊनोदरी तप में लीन होता है तो उसका आत्म समीक्षण उसे अनासक्ति योग में ले जाता है । उसका चिन्तन होता है—इन पदार्थो का भोग-उपभोग करते हुए मुझे अनन्तकाल हो गया है । क्या कभी इन पदार्थों से तृप्ति का अनुभव हुआ है ? अरे ! तृप्ति तो दूर लालसाए निरन्तर बढती ही जाती

हैं। मन इन पदार्थों की ओर दौडता ही जाता है और आसक्ति बढती ही जाती है। नहीं, नही अब मैंने इन पदार्थों की स्थिति का समीक्षण कर लिया है। अब मैं समझ चुका हूं कि ये पदार्थ किंपाक फल के समान क्षणिक सुख देकर अन्त मे इस आत्मा को आसक्ति एवं तृष्णा-जनित भयकर दुःखो के सागर में डाल देते हैं। अरे! श्रोत्रेन्द्रिय के विषय मे पड़कर मेरी इस आत्मा ने मृग के समान बन्धन–वधादि कितने कष्ट सहन नही किये हैं? इसी प्रकार चक्षुइन्द्रिय के विषय रूप मे मुग्ध बन कर क्या मैं अनेको बार पतगे के समान नष्ट नही हुआ हूं। घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय एवं स्पर्शेन्द्रिय के विपयों ने भी मेरी आत्मा को सर्प, मछली और हाथी के वध-बन्धन के समान कितने कष्ट नही दिये है? इन विषयों के द्वारा क्या कभी किञ्चित् भी आत्मिक आनन्द प्राप्त हुआ है?

नही, नही, कदापि नहीं। तो मुझे अब इन विपयों से उप-रत नही हो जाना चाहिये? यदि मैं एक साथ इन स्वादादि पदार्थों का परित्याग नही भी कर सकता हूं तो शनैः-शनैः कुछ-कुछ रूप में तो इनका परित्याग कर ही सकता हू और यही तो ऊनोदरी तप है।

अहा! अब तो मेरी आत्मा इन क्षणो इन्द्रियाकर्षक सभी विषयो के प्रति उपरत होती जा रही है। यह उन विषयों का परित्याग करती जा रही है। अरे! इस परित्याग मे भी कितना सात्विक आनन्द भरा है। विषयो के सेवन मे जो आनन्द नही, वह आनन्द मिल रहा है—उनके परित्याग से। अनशन और ऊनोदरी तप का आनन्द आत्मिक आनन्द है। अनासक्ति भाव-निर्ममत्त्व स्थिति का आनन्द है।

भिक्षाचर्या-समीक्षण

तप साधना की अथवा कर्म निर्जरा की इस प्रक्रिया मे आहा-रादि का परित्याग ही पर्याप्त नही है। आहारादि के परित्याग के साथ आन्तरिक शत्रु अहंकारादि पर विजय प्राप्त करना भी आवश्यक है। अहंकारादि पर विजय होती है अपने आप को लघुभूत बनाने पर। अहकार हमारी इस आत्मा को भारी बना देता

है। उसे झुकने नही देता, नम्र नही बनने देता। अतएव निर्जरा के तृतीय भेद के रूप मे भिक्षाचर्या को स्थान दिया गया है।

प्रभु महावीर ने अपनी अन्तिम देशना में कहा है—

"दुक्ख भिक्खायरिया, जायणाय अलाभया।"

अर्थात् भिक्षावृत्ति एवं याचना करना अत्यन्त कष्टप्रद है।

भिक्षावृत्ति को कष्टप्रद इसलिये माना है कि इसमें अपने आपको विनम्र बनाकर याचक के रूप मे प्रस्तुत करना पड़ता है। भिक्षावृत्ति में देह को जितना कष्ट नही होता है, उतना मन को होता है। मन नही चाहता है कि किसी के द्वार पर जाकर हाथ पसारा जाय।

लाखो की सम्पत्ति, धन जन से परिपूर्ण परिवार का त्याग करके भिक्षावृत्ति हेतु घर-घर भ्रमरण करना अहंकार को कुचले बिना नही हो सकता है। यद्यपि जैन श्रमरण भिखमगों की तरह दीनतापूर्ण भिक्षावृत्ति नही करता है। वह अपने नियमो की परिपालना करता हुआ निर्दोष भिक्षावृत्ति करता है, दीनतापूर्वक याचना नही करता। तथापि उसे द्वार-द्वार पर तो जाना ही पड़ता है और भिक्षा नहीं मिलने पर भी आत्म सन्तोष रखना पड़ता है। इसी दृष्टि से भिक्षा-वृत्ति को कष्ट पूर्ण साधना मानकर तप-निर्जरा में स्थान दिया गया है।

किन्तु समीक्षण ध्यान साधक जब निर्जरा समीक्षरण की पवित्र धारा मे बहता है, तो वह अपने अहं को तिलाञ्जलि दे देता है। वह अपने आपको लघुभूत बनाने मे ही आनन्द का अनुभव करता है। उसे अपने लाखो की सम्पत्ति छोड़ने का अहकार नही होता है। वह समीक्षरण करता है—अरे! मैंने छोड़ा ही क्या है? चक्रवर्ती सम्राट छः खण्ड के वैभव को ठोकर मारकर निकल जाते हैं। अरे! इस भौतिक ऋधि का छोड़ना भी कोई त्याग है? यह तो आत्मा की आन्तरिक सम्पदा की प्राप्ति पर तुच्छ सी प्रतीत होने लगती है। किसी महान् वस्तु को प्राप्त करके छोटी वस्तु का त्याग, त्याग की

कोटि में कैसे आएगा ? तो मैंने त्याग ही क्या किया है ? जब मैंने कोई त्याग ही नही किया तो अपने आपको लाखों की सम्पदा का त्यागी मानकर मैं अपनी आत्मा के साथ छलावा नही कर रहा हू ?

इस प्रकार की उदात्त भावनाओ से प्रेरित होकर साधक अपने आपको विनम्र बनाने हेतु भिक्षावृत्ति तप का अनुशीलन करता है और उसी मे आनन्द की अनुभूति करता है। जहां आंतरिक आनन्द की वृद्धि होगी, कर्म निर्जरा सहजरूप मे होती जाएगी, जो कि निर्जरा समीक्षण साधक का मूल अभिप्रेत है।

रस परित्याग समीक्षण

कर्म बन्धन का मूल कारण आसक्ति भाव माना गया है। आसक्ति मे खान-पान के प्रति आसक्ति सर्वविदित है। जरा सा अस्वादु पदार्थ आते ही हमारी जिह्वा तिलमिला उठती है और स्वादिष्ट पदार्थों को देखते ही लपलपाने लगती है। अत: कर्म बन्धन को रोकने एवं पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा के लिये रसनेन्द्रिय पर संयम करना अत्यन्त आवश्यक होता है। इसी दृष्टि से रस परित्याग को निर्जरा के भेदों में स्थान दिया गया है। एक धारणा है कि चार इन्द्रियों को खुराक देने वाली-परिपुष्ट करने वाली रसनेन्द्रिय ही है। यदि रसना को खुराक न मिले तो अन्य इन्द्रियां सहज ही शक्तिहीन सुस्त हो जाएंगी। इसी आधार पर जहां अन्य चार इन्द्रियों के नियन्त्रण को सामान्य रूप से निर्जरा का हेतु माना है, वहां रसनेन्द्रिय विजय को स्वतन्त्र रूप से निर्जरा का हेतु माना गया है। जब साधक निर्जरा समीक्षण की गहराई मे उतरता है तो कर्म बन्ध के एक-एक कारण को ढूंढ-ढूंढ कर समाप्त करता जाता है और अधिक से अधिक आत्म शुद्धि के मार्ग पर गति करता जाता है।

साधक का समीक्षण होता है कि यह रसनेन्द्रिय मुझसे कितने पाप करवाती है ? स्वादिष्ट व्यंजनो के लिये कितना आरम्भ-समारम्भ, हिंसक कार्य करवाती है ? यही नही, जरा-सी इसकी कामना पूर्ति मे कमी रह जाय तो क्रोधादि के निमित्त से कितने सघर्ष खड़े कर देती है ? कितने कर्मों का वन्धन करवा देती है ? अब तो मैंने इस इन्द्रिय की लालसाओ को समझ लिया है। मैंने इसकी राग-द्वेपात्मक उपयोगिता का समीक्षण कर लिया है। अव मैं रसनेन्द्रिय की इस वन्धनात्मक प्रक्रिया मे नही उलझूगा। अव मैं रस-स्वादिष्ट पदार्थों के प्रति होने वाली आसक्ति का परित्याग करूगा। अपनी जिह्वा को सयमित करूगा। कितना ही कटु पदार्थ भी आ जाये, मै उसके प्रति अपने आप मे द्वेप या घृणा का भाव नही आने दूगा, और मधुर से मधुर पदार्थों के प्रति भी आसक्ति भाव नही आने दूगा। वस यही तो रस परित्याग तप है। इस तप के द्वारा मेरे कर्मों की निर्जरा होती जा रही है। आत्मा मे एक अपूर्व समरसता का सचार होता जा रहा है। अहा ! रस परित्याग मे भी कितनी सहजता जागृत होती है चित्त वृत्तियो मे। रस की आसक्ति के छूटते ही अन्य इन्द्रियां एव मन भी शान्त होते जा रहे है। अपूव आनन्द है इस रस परित्याग समीक्षण मे।

काय क्लेश समीक्षण

आत्म समीक्षण के लिये देहातीत अवस्था तक पहुंचना आवश्यक होता है। जव तक देहाध्यास वना रहता है, आत्मा के प्रति सजगता नही रह पाती है। देहाध्यास से ऊपर उठने का अर्थ है शरीर को होने वाले कष्टो के प्रति द्रष्टा वन जाना—वेखवर वन जाना या सम्यग्ज्ञान पूर्वक कष्टो को आमन्त्रित करना। इसी को आगमिक भाषा मे काय क्लेश तप या काय क्लेश समीक्षण कहते हैं।

निर्जरा समीक्षण ध्यान का साधक अनासक्ति योग मे अधिक से अधिक प्रगति करता जाता है। चूंकि ससार के सभी पदार्थों में सर्वाधिक आसक्ति शरीर के प्रति होती है, अत. उस आसक्ति से मुक्त होने के लिये शरीर को विभिन्न उपायो से सम्यग्ज्ञान पूर्वक तपाना होता है। तपाने का अर्थ यह नही है कि अग्नि के समक्ष वैठ कर साधना की

जाय । शरीर को कष्ट हो, ऐसी साधना से गुजरते हुए भी मन को अनुद्वेलित रखा जाना–तपाने का अर्थ है । विभिन्न प्रकार के आसनों–काय सगोपन, शीतोष्ण–आतापना, केश लुञ्चन, पाद विहार, आदि ऐसी प्रक्रियाए है जिनसे इस तन को पीड़ा होती है । किन्तु साधक इसे काय क्लेश तप मानता है और इस प्रकार देहासक्ति से ऊपर उठने का प्रयास करता है ।

इस शरीर को जितनी सुख-सुविधा दी जाए, मन उतना ही प्रसन्न होता है । इसके प्रति मन का राग भाव बढता जाता है और राग भाव की वृद्धि निर्जरा की नही, बन्धन की हेतु है । अत. शरीर की उपेक्षा करके इसे भौतिक सुख सम्पन्नता से वञ्चित रखा जाना काय क्लेश तप के अन्तर्गत आता है । किन्तु वह तप तभी कहलाता है, जबकि शरीर के कष्टों के प्रति मन उद्वेलित न हो । मन मे हीन भावना के संकल्प–विकल्प न उठें । आह ! उफ, और हाय-हाय न हो । कष्ट आने पर जो साधक हाय-हाय करता है, वह काय क्लेश तप का उपासक नही माना जाता । वह तो और अधिक कर्मों का बन्धन करता जाता है । काय क्लेश तभी निर्जरा का हेतु बनता है, जबकि उसमे समता भाव बना रहे, किञ्चित् मात्र भी द्वेषभाव उत्पन्न न हो । चूंकि समीक्षण ध्यान साधक समता भाव का संवाहक होता है । अतः वह इस काय क्लेश के द्वारा बहुत अधिक कर्म निर्जरा करता जाता है । कष्ट आने पर उन्हे सहना ही नही, नवीन कष्टो को आमन्त्रित करना निर्जरा साधक का उद्देश्य होता है ।

कष्टो के क्षणों में वह समीक्षण करता है कि अरे ! ये भी कोई कष्ट है, इनसे अनन्त गुणा अधिक कष्ट तो मैंने परतन्त्रता पूर्वक तिर्यंच गति में सहन किये हैं और उनसे भी अनन्त गुणाधिक कष्ट दैहिक वेदनाए नरक योनि मे भोगी हैं । इस समीक्षण की वेला में तो मैं इन कष्टो को देहासक्ति से मुक्ति के लिये आमन्त्रित कर रहा हूं । ये कष्ट परवशता से नहीं, स्वाधीनता से सहन किये जा रहे हैं अरे ! पराधीनता पूर्वक कष्ट सहन में तो मानसिक संक्लेश–दु ख बना रहता है, किन्तु इस स्वाधीनता पूर्वक दु ख सहन में कितना आनन्द भरा है । अहा ! आज की यह अनुभूति अजीब है कि दु.ख भी आनन्द का हेतु होता है । हेतु

ही नही, उत्स होता है। दु ख के दलदल में भी कमल का फूल खिलता है।

बस यह आनन्द की अनुभूति ही कर्म निर्जरा की हेतु बन जाती है और साधक के कर्म निर्जरा समीक्षण का उद्देश्य सार्थक हो जाता है।

प्रतिसंलीनता समीक्षण

इन्द्रिय, कषाय एवं योगो की प्रवृत्ति कर्मबन्ध का कारण मानी गई ही। इन्ही सभी प्रवृत्तियो के कारण इस आत्मा का ससार परिभ्रमण चलता रहता है। अतः कर्म निर्जरा हेतु इन सभी वृत्तियों का निरोध आवश्यक है। इन्द्रिय, कषाय एव योग जनित वृत्तियो को सयमित करना ही प्रति सलीनता तप है।

इन्द्रियो की अपने-अपने विषयो के प्रति उद्दाम लालसाए, कषायो की उत्कटता एवं मन, वचन एव काया की असत्-प्रवृत्ति हमे आत्म केन्द्र से भटका कर विभाव की ओर ले जाती है। समीक्षण ध्यान का साधक विभाव से अलग हटकर स्वभाव मे स्थिर होने की साधना करता है। वह अधिक से अधिक आत्म केन्द्रित होने का अभ्यास–प्रयास करता है और इसके लिये प्रति संलीनता समीक्षण आवश्यक हो जाता है।

प्रति संलीनता समीक्षण मे साधक अपनी इन्द्रियो को अपने विषयो से उपरत करता है। अथवा विषयो के कारण होने वाले राग-द्वेष से ऊपर उठता है। उसका आत्म समीक्षण होता है कि इन विषयो में तो मेरी आत्मा अनादि काल से रमण करती चली आ रही है। इन्ही मे सुख की खोज करती चली आ रही है। किन्तु आज तक इन विषयो की रमणता ने सुख की एक झलक भी नही दिखाई है। विपरीत ये विषय स्वयं आत्मा को दु खो के दल-दल मे फसाते चले जाते हैं, जहा से निकलना कठिन हो जाता है। क्षणिक सुख का एक क्षीण सा आभास कराने के साथ ही ये विषय इस आत्मा को चिर दु:ख की परम्परा मे धकेल देते है। ऐसी स्थिति मे इन विषयो के प्रति आसक्ति रखना क्या बुद्धिमत्ता कही जा सकती है ?

नही, कदापि नही । इन विषयो की गुलामी ने मुझे गुलाम वना दिया है—दु खो के दलदल मे फसा दिया है । इनका परित्याग ही सुख के द्वार उद्घाटित कर सकता है । इनकी आसक्ति से मुक्त हो जाने पर ही स्थाई शान्ति प्राप्त हो सकती है । मुझे अब इस विषयासक्ति से मुक्त हो जाना है । अपनी इन्द्रियो एवं मन को प्रतिसंलीन-संयमित कर देना है ।

इसी प्रकार कषायो की उद्दाम वृत्तियो ने भी तो इस आत्मा की अनन्त शक्ति को दबोच रखा है । इसके अनन्त चारित्र—ऐश्वर्य पर अधिकार जमा रखा है । क्रोध, अहंकार, छल-दम्भ एवं लोभ-तृष्णा ये ऐसे भयंकर आत्म शत्रु हैं, जो इस आत्मा को अपने अधिकार मे करके दुःखो के सागर मे डुबो देते हैं । ये ही तो कर्मबन्धन के प्रबलतम हेतु है । यदि कपाय न हो तो कर्मो मे स्थिति एव अनुभाग-फलदायक शक्ति का निर्माण ही नही होगा, और एक सामयिक स्थिति वाला वह कर्म प्रभावहीन ही वना रहेगा । अस्तु, कर्म बन्धन के मूल आधार एव आत्म शक्तियो के मूल अवरोधक कषायो का नियन्त्रण अतिआवश्यक है । समीक्षण ध्यान साधक की साधना का यह एक मूल लक्ष्य होता है कि वह अपनी आत्मा को कषायों की कालिमा से वचाये रखें ।

कषायो के ये आवरण आत्मा को ही मलिन नहीं वनाते, हमारे व्यावहारिक, सामाजिक एव पारिवारिक जीवन को भी असन्तुलित—अव्यवस्थित एवं तनावग्रस्त वना देते हैं । क्रोध की एक चिनगारी परिवार की स्नेह वाटिका मे आग लगा देती है । अहकार का एक झटका ऊ च-नीच या छोटे-वडे के भेद खड़े करके भाई-भाई मे या अत्यन्त प्रेमी-स्नेही मित्रो मे भेद की दीवार खड़ी कर देता है । इसी प्रकार माया और लोभ के द्वारा होने वाले विभाव से कितनी निम्न स्थिति पर यह आत्मा पहुंच जाती है, यह सर्व विदित है ।

इस प्रकार कपायो की भयकर आत्म अहितकर स्थिति का समीक्षण करके ध्यान सावक उनसे अपने आपको बचाने का प्रयास करता है । इसी साधना को कषाय प्रति सलीनता कहा जाता है ।

योग की कर्मवन्धन मे या आश्रव मे हेतुमत्ता को हम पूर्व आश्रव समीक्षण से समझ चुके हैं। मन, वचन और काया की प्रवृत्ति ही प्रमुख या प्राथमिक आश्रव है योगो की अशुभता पाप का आश्रव हैं और शुभत्व पुण्य का आश्रव। योग का निरोध सवर है। किन्तु यही योग की प्रतिसंलीनता निर्जरा की हेतु भी मानी गई है।

इस प्रकार प्रतिसलीनता समीक्षण मे साधक इन्द्रिय कपाय एव योगो को सयमित करता हुआ इनकी अनादि वन्धु हेतुता को समाप्त कर देता है। वह विभाव से स्वभाव मे आ जाता है, जो कि ध्यान साधक का पुनीत उद्देश्य है।

भाव निर्जरा समीक्षण

निर्जरा समीक्षण के इस क्रम मे भाव विशुद्धि का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। चूकि भाव-विचार मुख्य रूप से वन्व के निमित्त वनते हैं। अत: कर्म निर्जरा हेतु भावों की विशुद्धि अत्यन्त आवश्यक मानी गई है, अतएव विचारो की विशुद्धि मे निमित्त भूत प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग भी निर्जरा के प्रमुख आधार माने गये हैं। निर्जरा समीक्षण के साधक को इन विशुद्ध भावो का समीक्षण निर्जरा के लिये विशुद्ध आधार प्रदान करता है।

प्रायश्चित्त समीक्षण

साधना का मार्ग अत्यन्त कठिन, दुरुह एव दुर्गम है। इसमे पद-पद पर स्खलना होने की सम्भावना वनी रहती है। चूकि आत्मा की अनादि कालीन प्रवृत्ति विभाव दिशा मे—विषय वासना मे रही है। उसे हटात् उस वृत्ति से मोड़ने मे अनेक वार फिसलन आ जाती है और अनेक त्रुटिया यह आत्मा कर वैठती है। उन त्रुटियो—स्खलनाओं के परिमार्जन के लिये प्रायश्चित्त समीक्षण का विधान किया गया है।

प्रायश्चित्त का अर्थ है—अपने द्वारा हो जाने वाले अपराधों के प्रति पश्चाताप पूर्वक उन्हे पुन: नही करने को सकल्पित होना एवं समुचित दण्ड स्वीकार करना। प्रायश्चित्त का प्राथमिक विधान हैं,

अपराध की पुनरावृत्ति नही होने का संकल्प । बार-बार अपराध या मर्यादाओं को भग करते जावें और प्रायश्चित्त करलें–पश्चाताप करलें, यह प्रायश्चित्त की मजाक हो जाती है ।

प्रायश्चित्त तभी हो सकता है जबकि अपराध के प्रति मन मे गहरा पश्चाताप हो, अपनी भूल का अहसास हो और उसे सुधारने का दृढ संकल्प हो । इस प्रकार विशुद्ध भावो से जो प्रायश्चित्त किया जाता है, वह आपराधिक वृत्ति को बहुत कमजोर कर देता है, मन में सरलता का निर्माण कर देता है । और सरलता ही तो आत्मिक आनन्द का प्रवेश द्वार है ।

प्रायश्चित्त का सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह है कि उसके द्वारा हमारा मन एकदम निर्भय बन जाता है, मन एकदम हल्का हो जाता है । जहा हल्कापन होगा वहां भावो मे प्रशस्त प्रकर्षता आएगी । भावो की प्रकर्षता ही तो निर्जरा की हेतु बन जाती है ।

इस प्रकार प्रायश्चित्त समीक्षण के द्वारा साधक अपनी आत्मा को लघुभूत करने का प्रयास करता है । उसका चिन्तन होता है कि क्या कृत अपराधों या स्खलनाओं को छिपाने से मेरा पाप छिप जायेगा? क्या इस प्रकार की वृत्ति से मुझे मानसिक शान्ति प्राप्त होगी ? अरे ! मैं इन दोषो को छुपा कैसे पाऊंगा ? सर्वज्ञ प्रभु तो सब जगह देख रहे हैं । अरे, और कोई देखे या न देखे मेरी आत्मा तो देखती जानती ही है । मैं अपने आप से इन दोषो को कब तक छुपाऊंगा ? क्या मेरी अतरंग आवाज मुझे बार-बार नही कोसेगी ?

नही, नही मुझे अपने सभी दोषो, स्खलनाओं या अपराधो का शुद्ध अन्त.करण पूर्वक पश्चाताप एव प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये, तभी मेरी आत्मा इन दोषो से मुक्त हो सकेगी ? दोषो के निमित्त से बन्धे मेरे कर्म इस प्रायश्चित्त के द्वारा ही निर्जरित हो सकेंगे । और इस निर्जरा के द्वारा ही मुझे आत्मिक शान्ति उपलब्ध हो सकेगी । अरे, दोषो का शुद्धिकरण तो दूर प्रायश्चित्त के भाव मात्र से दोष हल्के हो जाते हैं आत्मा एकदम निर्भय, एवं शान्त हो जाती है । इसी दृष्टि से तो प्रायश्चित्त समीक्षण को कर्म निर्जरा का आभ्यन्तर हेतु माना गया है ।

विनय एवं वैयावृत्य समीक्षण

जब आत्मा स्वकृत दोषो को स्वीकार कर लेती है तो उसमे

एक विशेष प्रकार की विनम्रता का भाव प्रादुर्भूत होता है। वह स्वयं को एकदम लघुभूत अनुभव करने लगती है। यही नही, वह अधिकाधिक विनम्र बनने का प्रयास करती है। और अपने से छोटो के प्रति स्नेह की धारा बहाती है, तो अपने से बडो के प्रति अत्यन्त विनम्र भाव से समर्पित होती है। यह समर्पण ही विनय वृत्ति का द्योतक है और इस आधार पर आत्म शुद्धि या कर्म निर्जरा के उपायो मे प्रायश्चित्त समीक्षण के बाद विनय समीक्षण को स्थान प्राप्त हुआ है।

विनय समीक्षण मे साधक अपनी आत्मा को विनम्र बनाने की साधना करता है। वह अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एव सभी गुरुजनो के प्रति विनम्रता पूर्वक समर्पित बना रहता है।

जैसे वृक्ष फल पाकर झुक जाता है, उसी प्रकार विनम्र साधक ज्यो ज्यो साधना की ऊंचाइयो पर चढता है, झुकता–नम्र होता चला जाता है। उसे अपनी उपलब्धियो का अहंकार नही होता है। वह यह समझ लेता है कि इस अहकार ने ही तो मेरे विकास के द्वारो को सदा-सदा से अवरुद्ध कर रखा है। यह अहकार ही मेरे विकास की सबसे बडी बाधा है। आज तक मैं ना कुछ–सामान्य सी उपलब्धियो पर अहकार करता रहा, उन्ही की प्राप्ति पर अपने आपको बहुत बड़ा व्यक्ति मानता रहा और इस प्रकार मैं बहुत बडी उपलब्धियों से वञ्चित होता रहा।

नही, अब मुझे इस अहकार को सदा के लिये बहिष्कृत कर देना है। मुझे अधिकाधिक विनम्र बनकर रहना है। यह विनम्रता ही मेरी आत्म उज्ज्वलता में निमित्त बनेगी और यह आत्म उज्ज्वलता ही तो निर्जरा है।

विनम्र व्यक्ति ही महानता की ऊंचाइयो पर चढता है। चूंकि वह महानता के महत्त्व को समझ लेता है, अत. सदा अपने से महान् व्यक्तियो के प्रति समर्पित बना रहता है, उनकी सेवा मे तन-मन से समर्पित रहता है। उनको मानसिक एवं शारीरिक शान्ति पहुंचाने का प्रयास करता है। यही नही, वह अपने से छोटो के प्रति भी सेवा के भाव से जुड़ा रहता है। वह गुरु की विनय पूर्वक सेवा

तो करता ही है, किन्तु ग्लान, तपस्वी, नवदीक्षित, वृद्ध एवं अपाहिज आदि की भी सेवा के अवसर नही चूकता है। वह इन सब की मानसिक सेवा ही नही, शारीरिक सेवा भी करता है। इसी निष्काम विनम्र सेवावृत्ति को हम वैयावृत्त्य समीक्षण कहते हैं। वैयावृत्त्य समीक्षण कर्म निर्जरा का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। क्योकि वैयावृत्त्य करना कोई सरल कार्य नही है। अपने बड़प्पन के सम्पूर्ण अहकार को विगलित करके ही वैयावृत्त्य किंवा सेवा का कार्य किया जा सकता है। नीतिकारो ने कहा—

"सेवाधर्म परमगहनो, योगिनामप्यगम्य."

अर्थात् सेवा धर्म अत्यन्त गहन है–अतीव कठिन है। बडे-वडे योगी भी सेवाधर्म पर नही टिक पाते हैं। इसी आधार पर तो इसे निर्जरा का एक महत्त्वपूर्ण हेतु माना गया है। गुरु, ग्लान एव वृद्धो की सेवा के द्वारा साधक को जो आनन्द उपलब्ध होता है, वह अनिर्वचनीय होता है। क्योकि सेवा व्यक्तियो की अन्तरग भावना के द्वारा जो शुभाशीर्वाद निकलता है, वह अमूल्य होता है। उनकी मानसिक एव दैहिक शान्ति ही उन्हे अनेकानेक आशीर्वाद देने को बाध्य कर देती है।

वैयावृत्त्य समीक्षण ध्यान के साधक का यह चिन्तन होता है कि इस जीवन मे अनेक उतार–चढाव आते है। कदाचित् मैं रूग्ण हो जाऊ और मेरी कोई वैयावृत्त्य–सेवा करने वाला न हो, तो मेरी आत्मा मे कितना आर्त्तध्यान उत्पन्न होगा ? मैं कितना छटपटाऊगा ? यदि ऐसे क्षणो मे मुझे कोई मधुर आश्वासन के दो शब्द भी बोल देता है, तो मुझे कितनी आत्म शान्ति प्राप्त होती है। ठीक इसी प्रकार जिस रूग्ण या वृद्ध की मैं सेवा कर रहा हू, वह भी तो सेवा के अभाव मे दु.खी होकर आर्त्त ध्यान से परेशान हो सकता है। यदि ऐसे समय मे मैं उनकी किञ्चित् सेवा कर देता हू तो उन्हे कितनी आत्म शान्ति मिलेगी ?

अरे ! उन्हे आत्म शान्ति मिलेगी या नही, यह तो पश्चाताप भावी चिन्तन है, सर्व प्रथम तो मेरी आत्म शान्ति ही वृद्धिगत होगी। उन्हे दु खित देखकर मेरे भीतर जो एक सवेदनात्मक तड़फन उत्पन्न

हुई है, वह तो तभी शान्त हो सकती है, जबकि मैं उनके उस दुःख को मिटा दू । इन अर्थों मे मैं और किसी की सेवा न करके अपनी ही सेवा कर रहा हूं, अपनी आत्मा को ही सन्तुष्ट कर रहा हूं ।

इस प्रकार वैयावृत्त्य समीक्षण के द्वारा साधक विचारो-भावनाओ की विशुद्धि के साथ अपने कायिक योग का भी प्रशस्ततम उपयोग करता है, जो उसके कर्मों की निर्जरा का हेतु बन जाता है और साधक की आत्मा कर्मों के भार से हल्की होती हुई लघुभूत बन जाती है । लघुभूत होना ही तो मुक्ति का प्रवेश द्वार है ।

स्वाध्याय समीक्षण

साधना का मूल आधार है ज्ञान । ज्ञान के बिना ध्यान सम्यग् ध्यान नही हो सकता है, चारित्र सम्यक् चारित्र नही हो सकता है । प्रभु महावीर ने अपनी अन्तिम दिव्य देशना मे कहा है—

"णाणेण विणा ण हुन्तिचरण गुणा ।"

ज्ञान के बिना चारित्रिक गुणो का विकास कथमपि सम्भव नही है । अत· आत्म साधना के लिये ज्ञान को प्रारम्भिक आवश्यक अग माना गया है । किन्तु वह ज्ञान कौनसा ? क्या आगमो का— पुस्तकीय तोता रटन्त ज्ञान ? क्या वेद वेदान्तो का द्रव्यो की विश्लेषणा का ज्ञान ? नही ये ज्ञान तो बाह्य निमित्त मात्र बन सकते हैं । वास्तव मे साधना के लिये जिस ज्ञान की अपेक्षा होती है, वह आत्मज्ञान-स्वरूप बोध, जिसे हम 'स्वाध्याय' कहते है ।

'स्वाध्याय' शब्द का मूल अर्थ ता है—'स्वस्य अध्याय। स्वाध्यायः' अपने आपका अध्ययन । किन्तु उसका रूढार्थ हो गया है शास्त्रादि ग्रन्थो का अध्ययन, अध्यापन । चूंकि आगमो का अथवा वीतराग वाणी का अध्ययन-अध्यापन आत्म ज्ञान मे निमित्त बनता है, अत. उसे भी स्वाध्याय शब्द से पुकारा जाना असगत नही है ।

स्वाध्याय समीक्षण मे साधक अपनी ही आत्मा का चिन्तन करता है, अतः वह अधिक से अधिक अपने ही निकट होता है, पर पदार्थों से अलग रहता है और उस रूप मे वह स्वरूप रमणता मे

पहुंचकर अत्यधिक कर्मों की निर्जरा करता है। चूंकि स्वाध्याय के क्षणों मे साधक का उपयोग-ध्यान नितान्त शुभ रूप मे होता है और वह शुभोपयोग ही निर्जरा का प्रबलतम हेतु बन जाता है।

स्वाध्याय की फलश्रुति का प्रतिपादन करते हुए प्रभु महावीर ने कहा है—

'सज्झाए णं भंते ! जीवे कि जणयइ ?"
"सज्झाएण णाणावरणिज्जं कम्म खवेइ।"

गणधर गौतम प्रभु महावीर से जिज्ञासा करते हैं कि हे भदन्त ! स्वाध्याय करने से इस जीव को क्या लाभ होता है ?

प्रभु महावीर समाधान देते हुए कहते हैं—"स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्मों की निर्जरा होती है।"

तात्पर्य यह है कि स्वाध्याय भी निर्जरा का एक विशिष्ट हेतु होता है। स्वाध्याय समीक्षण मे साधक अनादिकालीन जड़ पदार्थों के प्रति बने हुए समर्पण से ऊपर उठकर अपने आपके प्रति समर्पित होता है। वहा उसका आत्म चिन्तन अथवा स्व समीक्षण होता है कि इन सासारिक नाशवान् पदार्थों की आसक्ति ने तो मुझे अनन्त दुःख ही दिये है। अब मैं अपने आपके प्रति जागृत हो गया हूं और यह अनुभव कर रहा हू कि स्वयं के प्रति जागरण में जो आनन्द है वह इन पदार्थों के प्रति जागरण मे नही है। अहा ! स्व जागरण का आनन्द भी अनूठा है। जहा बाहर के समस्त आकर्षण छूट जाते हैं। आत्मा स्व मे प्रतिष्ठित हो जाती है। और स्व प्रतिष्ठ होना ही परम निर्जरा, परम मोक्ष है।

इस प्रकार स्वाध्याय के द्वारा साधक कर्म निर्जरा के उच्चतम सोपानो पर चढता जाता है। स्वाध्याय के जो वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा एवं धर्मकथा के रूप मे पांच भेद बताए हैं वे भी आत्मा में विशुद्ध अध्यवसायो के निमित्तक होते हैं, अतः अत्यधिक निर्जरा के हेतु बनते हैं। स्वाध्याय समीक्षण का साधक इन पांचो में रमण करता हुआ निरन्तर अशुभ कर्मों के वृन्द के वृन्द उड़ा देता है, प्रतिपल असख्यगुण अधिक निर्जरा करता चला जाता है। इसी दृष्टि

से स्वाध्याय को परम तप कहा गया है। और यही कारण है कि निर्जरा समीक्षण में ही नही, सम्पूर्ण ध्यान साधना मे—चारित्र आराधना में स्वाध्याय का महत्त्वपूर्ण योगदान माना गया है।

स्वाध्याय के द्वारा ही तो साधक को हिताहित का विवेक होता है, हेय, ज्ञेय और उपादेय का बोध होता है, और वह बोध ही निर्जरा की ओर प्रवृत्ति कराता है। इस प्रकार समीक्षण ध्यान साधक निर्जरा समीक्षण मे आत्म विशुद्धि के द्वार खोलता चला जाता है।

ध्यान एवं व्युत्सर्ग समीक्षण

विचारो–अध्यवसायो की निर्मलता, उज्ज्वलता अथवा परमोच्चता का सर्वतो महान् साधन है ध्यान। ध्यान साधना के स्वरूप दर्शन एव विस्तृत व्याख्या के लिये तो प्रस्तुत पूरा ग्रन्थ ही है। यहां तो हम इतना ही समझने का प्रयास करेंगे कि ध्यान के द्वारा कर्मों की निर्जरा किस प्रकार हो सकती है?

ध्यान की परिभाषा करते हुए कहा गया है—

"उत्तम सहननस्यैकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानम्।"

अर्थात् चित्त की एकाग्रता-एकावधानता ध्यान है। जब चित्त विशुद्ध दिशा में एकावधान होता है तो अध्यवसायो की विशुद्धि होती जाती है और वह विशुद्धि ही आत्मा को उच्चतम श्रेणी पर आरोहण करवाती है। जब आत्मा अध्यवसायो की विशुद्धि के प्रकर्ष पर चढती है तो कर्मो की निर्जरा का स्तर असख्य गुण अधिक बढ़ता जाता है। इसी आधार पर तो कहा जाता है कि जब यह आत्मा उपशम श्रेणी या क्षपक श्रेणी आरोहण करती है तब अध्यवसायो की विशुद्धि होती जाती है और वह गुण श्रेणी की प्रक्रिया के द्वारा प्रति समय असंख्य गुण अधिक कर्मों की निर्जरा करती जाती है।

निर्जरा समीक्षण का साधक कर्म निर्जरा अथवा आत्म शुद्धि के मार्ग का पथिक होता है, अत· उसके लिये ध्यान सर्वाधिक उपयोगी साधन होता है। ध्यान की उज्ज्वलतम धारा साधक को बाहर की दुनिया से अलग हटाकर अन्तरयात्रा की ओर ले जाती है, जहा साधक

आत्म केन्द्रित होकर निरन्तर मुक्ति मंजिल की ओर बढता जाता है, जो कि निर्जरा समीक्षण का उद्देश्य है ।

ध्यान साधना पूर्ण रूप से तभी फलित होती है, जबकि आत्मा का देहाध्यास टूटे । आत्मा में देहातीत दशा का जागरण हो, और यह तभी सभव है जबकि देह के प्रति होने वाली आसक्ति से बचा जाये । शरीर के प्रति निर्ममत्व होने की इस प्रक्रिया को व्युत्सर्ग किंवा कायोत्सर्ग समीक्षण कहते हैं ।

जब तक चित्त वृत्तियों का लगाव देह के प्रति बना रहेगा, तब तक ध्यान की गहरी अनुभूतियों तक नही पहुंचा जा सकता है । अत: ध्यानयोग की प्रारम्भिक शर्त है देहातीत अवस्था का अभ्यास । जब ध्यान साधक आत्म विशुद्धि के मार्ग पर गति करता है, तो वह शरीर के प्रति अपना ममत्व छोडता जाता है । जब कायोत्सर्ग किया जाता है, तो उसके पूर्व पाठ मे कहा जाता है—

"ताव काय ठाणेण मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ।"

अर्थात् जब तक मैं ध्यान साधना में हूं, अपने देह जनित समस्त व्यापार का परित्याग करता हूं—मन, वचन और काया की मौन धारण करता हूं ।

इस प्रकार व्युत्सर्ग समीक्षण में साधक देहासक्ति से ऊपर उठने के साथ ही अन्य सभी प्रकार की आसक्तियो से मुक्त हो जाता है, क्योंकि अन्य सभी आसक्तिया इस देहासक्ति से ही तो अनुबन्धित हैं । अत. देहासक्ति के छूटने पर अन्य पदार्थों पर होने वाली आसक्ति अपने आप छूट जाती है ।

व्युत्सर्ग समीक्षण मे साधक देह जनित समस्त व्यापारों से उपरत होकर अपने आप मे लीन हो जाता है । वहा वह निजानन्द मे रमण करने लगता है । उस समय का उसका आनन्द वर्णनातीत होता है । ज्यों-ज्यो अध्यवसायो को धारा विशुद्ध एवं ऊर्ध्वगामी होती जाती है, त्यो-त्यो कर्म निर्जरा की मात्रा असंख्य गुणित क्रम से बढ़ती जाती है और साधक की आत्मा विशुद्ध से विशुद्धतर होती जाती है।

आत्म शुद्धि किं वा कर्म निर्जरा के मूल हार्द को निम्न पंक्तियों मे बहुत सरलता से स्पष्ट किया गया है ।

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोड़ ।
या विधि विन निकसे नही, बैठे पूर्व चोर ॥

पञ्च महाव्रत संचरण, समिति पंच प्रकार ।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार ॥

दीपक के अत्यन्त सुन्दर रूपक के द्वारा समझाया गया है कि ज्ञान रूपदीप ज्योति मे तप रूप तेल भर कर चैतन्य देव की खोज किये विना चोर-पूर्वबद्ध कर्म बाहर नही निकलते हैं । संसार की समस्त भ्रान्तियों का परित्याग करके अपने घर की खोज अर्थात् आत्मा का अन्वेषण करने के लिये कर्म चोर को भगाना आवश्यक है और वह होगा महाव्रतो के आराधन, पाच समिति तीन गुप्ति के परिपालन एवं पचइन्द्रिय के विजय मे ।

अर्जुन मुनि का निर्जरा समीक्षण

इसी निर्जरा समीक्षण का आधार लिया था मुनि अर्जुन मालाकार ने । कितना मर्मस्पर्शी एव रोचक प्रसंग है उसके निर्जरा समीक्षण का ?

वह पुष्पो एव पुष्प मालाओं का व्यवसाय करने वाला अपने बगीचे का मालिक राजगृह का एक श्री सम्पन्न व्यक्ति था । उसकी पत्नी बन्धुमति अत्यन्त रूपवती नारी थी । वह सम्यग्दृष्टि तो नहीं था, पर अपने कुल परम्परा मे आगत धर्म का अनुसरण किया करता था । अपनी परम्परा के अनुसार वह अपने उद्यान के यक्षायतन में प्रतिदिन यक्ष की पूजा किया करता था ।

एक दिन राजगृह के छः दुर्जन युवा मित्रो की गोष्ठी ने उसकी पत्नी के सौन्दर्य को देख लिया और उसके साथ व्यभिचार सेवन की योजना बनाकर, उसी के यक्षायतन मे जा छुपे । प्रातःकाल अर्जुन मालाकार अपनी पत्नी बन्धुमति के साथ ज्यों ही यक्ष-पूजा हेतु यक्षायतन मे प्रवेश करता है कि अन्दर में छुपे हुए छहों

युवकों ने अर्जुन को रस्सी से बांधकर वहीं डाल दिया और बन्धुमति के साथ बलात्कार व्यभिचार का सेवन करने लगे।

अर्जुन की आत्मा तडफ उठी। अपने ही सामने अपनी पत्नी के साथ यह दुर्व्यहार!! उसने अन्तःकरण से यक्ष का स्मरण किया, उसे कुछ बुरा-भला भी कहा। सयोग से यक्ष वही आस-पास भ्रमण कर रहा था। (यक्ष व्यन्तर जाति के देव होते हैं और वे मान-प्रतिष्ठा की भूख में इधर-उधर भ्रमण करते रहते हैं।) अपने स्मरण का ज्ञान होते ही यक्ष ने अपनी शक्ति का प्रभाव अर्जुन मालाकर के शरीर पर डाल दिया। अर्जुन के बन्धन टूट गए। उसमे अपार शक्ति का प्रवेश हो गया। उसने वहां यक्षायतन में पड़े एक हज़ार पल (भार विशेष) का मुद्गर उठा लिया और छहों पुरुषों एवं अपनी पत्नी-सातों को वही मार दिया। यही नही, वह अब राजगृही में ६ पुरुष एव एक नारी की प्रतिदिन हत्या करने लगा और इस प्रकार उसने ११४१ व्यक्तियों की हत्या कर दी। राजगृह नगरी मे हाहाकार मच गया। नगर के दरवाजे बन्द करवा दिये गए।

उन्ही दिनो प्रभु महावीर का पदार्पण राजगृह नगरी के बाहर होता है। समाचार प्राप्त होने के बाद भी मौत के भय से कोई नगरी के बाहर जा ने को तत्पर नही होता है। किन्तु प्रभु महावीर का अनन्य भक्त, युवा हृदय सुदर्शन अपने आपको नही रोक सका। वह किसी तरह अपने माता-पिता एवं सम्राट की अनुमति प्राप्त करके दर्शनार्थ चल पड़ा। नगरी के बाहर निकलते ही यक्ष शक्ति से प्रभावित अर्जुन माली विकराल रूप लिये हुए भयकर दहाड करता हुआ सामने दौड़ा आता है। सुदर्शन सागारी संथारा लेकर ध्यानस्थ हो जाता है। अर्जुन मालाकर ने ज्यों ही अपना मुद्गर ऊपर उठाया कि सुदर्शन के आत्मबल के समक्ष वह यक्ष टिक नही सका। वह अर्जुन के शरीर से अपना प्रभाव खीचकर भाग जाता है और महिनो का भूखा प्यासा अर्जुन सत्त्वहीन होकर नीचे गिर पडता है। भक्त सुदर्शन को जब इस बात का बोध हुआ कि उपसर्ग टल गया है तो उसने अपना सथारा खोला और अर्जुन को अपनी गोदी मे लेकर उस पर हवा करने लगा।

अर्जुन को जब होश आया तो उसने सुदर्शन से परिचय प्राप्त किया और सुदर्शन के साथ ही प्रभु महावीर के दर्शनों को चल पड़ा। अब तो पूरा नगर ही दर्शनो के लिये उमड पड़ा था। दिव्य द्रष्टा प्रभु महावीर ने अर्जुन को आत्म जागृति का सन्देश दिया, जो उसके अन्तरग मे बहुत गहरा पैठ गया और उसने तत्काल दीक्षा ग्रहण करली।

दीक्षित होते ही उन्होंने बेले-बले पारणा अर्थात् दो दिन निराहार और एक दिन आहार का कठोर तपोव्रत स्वीकार कर लिया। अब जब वे अर्जुन मुनि भिक्षा हेतु नगर की वीथियो में जाते, तो नगर जन उन्हे यह कह कर पीटने लगते कि "तुम हत्यारे हो, तुमने मेरे अमुक-अमुक प्रियजन को मार दिया, अब यहा भिक्षा लेने आये हो।"

ऐसे क्षणो मे अर्जुन मुनि समभाव मे लीन होकर कर्मों की निर्जरा करने लगे। वे मारने वालो पर किञ्चित् भी द्वेष नही करते। अपितु बड़ी नम्रता से कहते—"मैंने तो आपके प्रिय जनो को मौत के घाट उतार दिया, आप तो केवल कुछ चोट पहुंचा कर ही छोड़ दे रहे हैं, आप कितने उपकारी हैं आदि।" इस प्रकार छः माह की अल्पावधि मे ही उन्होने समभाव की साधना में रमण करते हुए एवं भिक्षाचर्या तथा अलाभ परीषहो को सहन करते हुए अपने सभी पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा कर दी। उन्हे अधिकांशतया आहार-पानी भी सुलभ नही होता था तो क्षुधा, पिपासा, ताड़ना-तर्जना आदि परीषहो को सहन करके आत्मा को एकदम उज्ज्वल परिणामी बनाए रखा और थोड़े से समय में ही मुक्ति श्री को प्राप्त कर लिया।।

इस प्रकार निर्जरा समीक्षण मे साधक कर्म निर्जरा जनित आनन्द को प्राप्त होता हुआ अन्त मे सम्पूर्ण कर्मो की निर्जरा करके मोक्षगामी हो जाता है।



१४ | लोक-समीक्षण

समीक्षण ध्यान की विभिन्न चिन्तन प्रणालियो मे लोक समीक्षण भी एक चिन्तन प्रणाली है । इस साधना प्रणाली में लोक के स्वरूप का चिन्तन करते हुए उसमे आत्मा के परिभ्रमण का समीक्षण किया जाता है । जैन तत्त्वज्ञान के अनुसार—

"लोकयते इति लोक: ।"

जो दृश्य है—देखा जाता है, वह लोक है । अर्थात् जिस क्षेत्र विशेष मे दृश्यमान पदार्थ हों वह लोक है । पारिभाषिक अर्थों मे यह सम्पूर्ण जगत् जहां जीव, अजीव धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आदि द्रव्य हैं, वह सम्पूर्ण क्षेत्र लोक है । इसके बाहर का क्षेत्र जहा केवल आकाशास्तिकाय मात्र है, अन्य पाच द्रव्य नही, वह अलोक है ।

लोक समीक्षण का साधक लोक के संस्थान-आकार का चिन्तन करता है, उसमें आत्मा किस-किस रूप में कहा-कहा जन्म लेती है तथा कहां-कहां कितनी बार भ्रमण कर चुकी है, आदि का समीक्षण भी किया जाता है ।

लोक: स्वरूप समीक्षण

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अनन्त-अनन्त अलोकाकाश से व्याप्त है । इस अलोकाकाश के मध्य ३४३ घनाकार राजू प्रमाण क्षेत्र मे लोक है । राजू का नाप बताते हुए कहा गया है—

३८ १२७९७० मन लोहे का एक भार होता है, ऐसे हजार भार वजन का गोला कोई शक्तिशाली देव बहुत ऊंचाई से—आकाश में से नीचे फेंके, वह गोला छः मास, छः दिन और छः घडी में जितना क्षेत्र पार करे, वह क्षेत्र की दूरी—लम्बाई एक राजू मानी गई है ।

ऐसे ३४३ घन राजू का यह लोक है। इसके मध्य १४ राजू लम्बी और (१) एक राजू चौडी त्रस नाल मानी गई है। इस त्रस नाल मे ही त्रस एव स्थावर जीव रहे हुए हैं। शेष लोक मे स्थावर जीव ही हैं।

यह लोक नीचे ही नीचे सातवी नरक के अन्तिम छोर पर ७ राजू चौडा है। वहा से ऊपर-ऊपर उठते हुए क्रमश चौडाई घटती जाती है और ७ राजू ऊंचाई तक अर्थात् मध्य लोक पर आते हुए एक राजू जितना चौडा रह जाता है। फिर ऊपर ग्यारह (११) राजू की ऊचाई तक अर्थात् पञ्चम देवलोक तक पहुंचते हुए इसकी चौडाई बढती हुई ५ राजू जितनी हो जाती है। यहा से पुनः ऊपर उठते हुए चौदह राजू की ऊचाई पर अर्थात् अपने ऊपरी छोर पर पहुचकर यह पुनः क्रमश घटते हुए एक राजू जितना चौडा रह जाता है। यही पर मोक्ष स्थान है। लोक की आकृति को उपमित करते हुए कहा जाता है कि कटि पर हाथ रखकर दोनो पैरो को घूमर की मुद्रा मे फैलाए हुए खडे नर्तक के आकार का यह लोक है।

चूकि त्रस जीवो का अवस्थान एक राजू प्रमाण चौडी त्रस नाल मे ही होता है, अतः अधोलोक अर्थात् नीचे के सात राजू लम्बे क्षेत्र मे सात प्रकार के नरक है, जिनमे अत्यन्त क्रूरकर्मा पापी जीव दुःख भोग करते हैं। वहा वे ही जीव जाते हैं, जो अशुभ कर्मों के भार से लदे हुए हो। वहा उन्हे भयकर वेदना भोगनी पडती है। सर्वाधिक वेदना सातवी नरक के जीवो को होती है। फिर क्रमशः ऊपर छठी, पाचवी, चौथी, तीसरी, दूसरी एवं पहली नरक भूमियो के जीवो की स्थिति एवं वेदना कम होती जाती है।

प्रथम नरक के ऊपरी छोर से १८०० योजन प्रमाण ऊचाई का एक राजू चौड़ा–लम्बा गोलाकार मध्य लोक अथवा तिरछा लोक है। यह त्रस नाल के ऊपर-नीचे के मध्य का स्थान है। इस एक राजू वाले गोलाकार मध्य लोक के एकदम मध्य मे एक लाख योजन ऊंचा-महान स्तम्भ के समान आकार वाला सुमेरू पर्वत है। जो नीचे १० दश हजार योजन चौडा है, तथा ऊपर सकीर्ण होता हुआ सर्वोपरि भाग पर एक हजार योजन चौड़ा रह जाता है। इस सुमेरु पर्वत के चारों

ओर चूडी के आकार मे, गोल फैला हुआ एक लाख योजन लम्बा चौडा जम्बू द्वीप है। इसमे एक भरत क्षेत्र एक एरावत क्षेत्र और एक महाविदेह क्षेत्र है।

जम्बू द्वीप को चारो ओर से परिवृत्त करता हुआ चूड़ी के आकार का ही दो लाख योजन की लम्बाई-चौड़ाई वाला लवण समुद्र है। लवण समुद्र से चारों ओर घिरा हुआ चूडी के आकार का ही चार योजन का विस्तृत घातकी खण्ड द्वीप है। इसमे दो भरत क्षेत्र, दो ऐरावत क्षेत्र एव दो महाविदेह क्षेत्र हैं। पुनः इसके चारो ओर आठ लाख योजन मे फैला हुआ कालोदधि समुद्र है। इसके भी चारों ओर गोलाकर मे ही सोलह लाख योजन जितना विस्तृत पुष्कर द्वीप है। पुष्कर द्वीप के ठीक मध्य मे उसके दो भाग करने वाला चूड़ी के आकार का मानुषोत्तर पर्वत है। इस पर्वत के अन्दर वाले अर्ध पुष्कर द्वीप मे दो भरत क्षेत्र, दो ऐरावत क्षेत्र एव दो महाविदेह क्षेत्र है। इस अढाई द्वीप क्षेत्र में ही मनुष्यों का आवास-निवास है। इसी आधार पर इस पर्वत का नाम मानुषोत्तर पर्वत पड़ा है कि इसके उत्तर अर्थात् बाहर मे मनुष्य नही होते।

इस प्रकार पुष्कर द्वीप के बाद उसको चारों ओर से घेरते हुए क्रमश असंख्य द्वीप एव समुद्र हैं, जो पूर्व-पूर्व से उत्तरोत्तर द्विगुणित विस्तार वाले है। उन सबका आकार चूड़ी के समान ही है। सबसे अन्त मे स्वयं भू-रमण समुद्र है, जो अर्धराजू जितना विस्तृत है। अढाई द्वीप के बाहर के सभी द्वीप-समुद्रो मे तिर्यंच प्राणी रहते है।

सुमेरु पर्वत समभूमि भाग से ९०० योजन ऊपर एव ९०० योजन नीचे तक मध्यलोक है। इसके अतिरिक्त ऊपर का क्षेत्र ऊर्ध्व लोक एव नीचे का क्षेत्र अधोलोक कहलाता है। सुमेरु पर्वत के समभूमि भाग से ७९० योजन ऊपर जाने पर तारा-मण्डल के विमान है। उससे १० योजन ऊपर सूर्य विमान एवं उससे ८० योजन ऊपर चन्द्रमा का विमान है। उससे ऊपर के बीस (२०) योजन के क्षेत्र मे शेष सभी ज्योतिष्क देवो के विमान है। ९०० योजन के उपर्युक्त क्षेत्र से ऊपर कुछ न्यून सात राजू का क्षेत्र मृदग के आकार का ऊर्ध्व लोक है। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में प्रायः एक दूसरे से ऊपर १२ देवलोक,

६ लौकान्तिक देव. ६ नवग्रैवेयक देव एव पांच अनुत्तर देवों के विमान हैं, जो लाखो की सख्या मे हैं। इन सव विमानो मे अगणित देव रहते हैं। वे ही आत्माएं इन दैविक विमानों में जन्म लेती हैं, जो अत्यधिक पुण्य संचय करती है। देवलोक के ये स्थान भौतिक सुखोपभोग की प्रचुरता के स्थान हैं। यहा अधिकाशतया पुण्यो का फलोपभोग होता है। नवीन पुण्य संचय नहीवत् ही होता है।

इन देव लोको का सर्वोच्च एवं सर्वाधिक सुखद स्थान है, सर्वार्थ सिद्ध विमान। इस विमान से वारह योजन ऊपर सिद्धालय है। यही पर सिद्धशिला या ईषत् प्राग्भारा नामक पृथ्वी है, जो खुले हुए छत्र के आकार की एव पैंतालीस लाख योजन की लम्बाई-चौड़ाई वाली है। इसके सर्वोपरि भाग के एक योजन के चौवीसवें भाग में अनन्त-अनन्त सिद्ध आत्माएं अनन्त अव्यावाध आत्मानन्द मे लीन, स्थित हैं। इन अनन्त ज्ञानी सिद्ध भगवन्तो के आत्म प्रदेश अरूपी हैं और अलोक को स्पर्श करते हुए स्थित हैं।

लोक समीक्षण से आत्म समीक्षण तक

यह सम्पूर्ण लोक के आकार का सामान्य-सा विवेचन हुआ। लोक समीक्षण ध्यान का साधक लोक के आकार-प्रकार के इस चिन्तन में आत्म समीक्षण करता है कि मेरी इस आत्मा ने इस सम्पूर्ण लोक मे किन-किन स्थानो पर कितने सुख-दुःख भोगे हैं। कहां-कहां जन्म-मरण किये हैं और किन-किन रूपो को धारण किया है।

तत्त्वज्ञो ने वताया है कि यह आत्मा अव्यवहार राशि अर्थात् अनादि निगोद काय से निकलकर व्यवहार राशि मे आयी है। प्रायः संसार की अनन्त आत्माओ ने इस व्यवहार राशि के अनन्त-अनन्त भव कर लिये हैं। इस लोक का कोई भी प्रदेश ऐसा नहीं है जिसे इस आत्मा ने जन्म-मरण के द्वारा स्पर्शित न किया हो। संसार का एक भी परमाणु ऐसा नही है, जिसे इस आत्मा ने औदारिक, वैक्रिय, कार्मण आदि शरीरो के रूप मे ग्रहण न किया हो। इस लोक के समस्त प्रदेशो पर इसने अनेकानेक वार जन्म-मरण प्राप्त किया है। अरे, यह आत्मा अगणित वार नरक भूमि की भयंकर यातनाओ को भोग चुकी है। यह तिर्यंच एवं मनुष्य योनियों में

भी तो अनन्त बार आ-जा चुकी है। इसने दुःखों की सख्यातीत घाटियां पार की है तो सुखो के अगणित साधन भी प्राप्त किये हैं। किन्तु क्या कभी इसे इन भौतिक सुखों से तृप्ति हुई है? क्या कभी दु.खों से पूर्ण रूप से सही अर्थों मे उद्विग्नता आई है ? अरे, यदि सही अर्थों मे दु खो से उद्विग्नता प्राप्त हो जाती तो क्या यह इस दु.खमय ससार से मुक्त नही हो जाती ?

अरे, आत्मन् ! तू लोक समीक्षण के माध्यम से आत्म समीक्षण कर कि मैं अनन्त-अनन्त काल से इस जन्म-मरण के झूले में झूल रहा हू—लोक मे गेंद की भाति ठोकरे खा रहा हू। कभी मनुष्य योनी से ठोकर लगी तो तिर्यंच में चला गया और वायुकाय के तन में लोकान्त तक जा गिरा। फिर वहा से ठोकर लगी तो विभिन्न रूपो को धारण करता हुआ देवलोको मे भी पहुंच गया। वहा भी कौनसा अमर बनकर रहा। वहा से भी फिर ठोकर लगी तो परिभ्रमण चलता रहा और नरक तक चला गया।

यह क्रम मेरी इस आत्मा का अनन्तकाल से चल रहा है। जिन सुख-सुविधा पूर्ण साधनो मे मैं अभी रच–पच रहा हूं, इनसे अनन्त गुणाधिक सुख मैं अनेकों बार भोग चुका हूं। फिर भी क्या मेरी आसक्ति इनसे छूटी है ? अरे ! यह सुख-दुःख तो अनेक बार देखे-भोगे जा चुके हैं जो कि वास्तव में मेरी कल्पना के ही ताने-बाने हैं। अरे, इस लोक मे अच्छा और बुरा है ही क्या, जो कुछ है पदार्थत्वरूप से एक रूप है। अच्छे-बुरे पदार्थो का भण्डार है। इन पदार्थों के प्रति राग-द्वेष के भाव ही मेरी आत्मा को इस संसार मे बाधे हुए हैं। अतः यदि मुझे इस लोक बन्धन से मुक्त होना है तो इस लोक का द्रष्टा बनना पडेगा, भोक्ता नही।

इसी प्रकार लोक समीक्षण मे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के आधार पर लोक स्थिति का चिन्तन भी किया जा सकता है। द्रव्य से लोकवर्ती–समस्त पुद्गल-परमाणुओ का, क्षेत्र से लोकाकाश के समस्त प्रदेशो का, काल से अवसर्पिणी एव उत्सर्पिणी काल के सम्पूर्ण समयो का एवं भाव से समस्त अध्यवसाय स्नानो का स्पर्शन इस आत्मा ने अनेक वार कर लिया है। इस प्रकार यह अनन्त काल से इस लोक मे जन्म-मरण के दु.ख झेलती चली आ रही है। चूंकि अब मैंने लोक

समीक्षण के द्वारा आत्म स्थिति का समीक्षण कर लिया है, अतः अब मैं इस लोक मे जन्म-मरण के चक्रव्यूह मे नही उलझूंगा । अब मैं इस लोक स्थिति से अपनी आत्मा को बाहर निकालकर लोकाग्र स्थित सिद्धालय को ले जाऊंगा ।

आज तक मेरा लोक भ्रमण अज्ञान के कारण ही हो रहा था । मैंने कभी लोक स्वरूप का एवं आत्म-परिभ्रमण का समीक्षण ही नही किया था । इसीलिये तो कहा गया है—

चौदह-राजू उत्तगनभ, लोक-पुरुष-संठान ।
तामे जीव अनादि तें, भरमत है बिन ज्ञान ॥

अर्थात् नृत्य करते हुए नर्तक के आकार वाले चौदह राजू लम्बे इस लोक में जीव अनादि काल से ज्ञान के अभाव मे परिभ्रमण कर रहा है ।

समीक्षण ध्यान का साधक आत्म चिन्तन करता हुआ लोक समीक्षण की घड़ियो मे अपना परिपूर्ण चिन्तन इस बात पर केन्द्रित करता है कि मुझे अब लोक मे नही, लोक के अग्रभाग-सर्वोच्च स्थान, सिद्ध शिला से ऊपर अलोक को स्पर्श–करने वाले स्थान पर पहुचना है और वह भी वायुकाय या और किसी स्थावर काय आदि के रूप में नहीं । मुझे वहा पहुंचना सम्पूर्ण रूप से कर्मो से मुक्त होकर अव्याबाध आनन्द मे सदा-सदा काल तक लीन होने के लिये, जहा से पुनः इस संसार मे जन्म धारण नही करना पड़े ।

शिव राजर्षि का लोक समीक्षण

और यह होगा लोक स्वरूप के सम्यक् समीक्षण के द्वारा । बहुत बार आत्मा लोक स्वरूप के समीक्षण से ही अपने अज्ञान के पर्दो को हटा देती है और अपने मिथ्यात्व पोषित क्षुद्र चिन्तन से ऊपर उठकर विराट लोक का साक्षात्कार कर लेती है, जैसा कि शिव राजर्षि ने किया था ।

चरम तीर्थंकर प्रभु महावीर के समय का यह प्रसंग है । बनारस नगरी के निकटवर्ती वन प्रान्तरो मे अनेको तापस विविध

प्रकार के अज्ञानतापूर्ण तप किया करते थे। उन्ही तापस सन्यासियों में एक शिव राजर्षि भी थे। वे देहदमन के रूप मे अत्यन्त कठोर तपस्या कर रहे थे। तपस्या के प्रभाव से उन्हे विभंग ज्ञान हो गया। (मिथ्यादृष्टि के अवधिज्ञान को विभंग ज्ञान कहा जाता है, जिसमें व्यक्ति मर्यादित क्षेत्र के रूपी पदार्थों को हेय, ज्ञेय और उपादेय की विपरीतता पूर्वक देखता है।) विभग ज्ञान के द्वारा शिवराज तापस सात द्वीप-समुद्रो को देखने-जानने लगे। उन्होने यह मत निश्चित किया कि मुझे ब्रह्मज्ञान हो गया है, जिसके द्वारा मैं सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल को देख रहा हूं। चूंकि मुझे सात द्वीप एव सात समुद्र का ज्ञान हुआ है अतः कुल ब्रह्माण्ड इतना ही विस्तृत है। अपनी इस अवधारणा का प्रचार वे जन सामान्य मे भी करने लगे। वे कहने लगे। "पृथ्वी सात द्वीप समुद्र पर्यन्त ही है। इसके आगे अन्धकार ही अन्धकार है।"

एक बार जब वे भिक्षावृत्ति के लिये नगर मे गए तो उन्होंने लोगों के द्वारा सुना कि भगवान् महावीर तो द्वीप-समुद्रों की सख्या असख्यात् बनाते हैं और शिवराज ऋषि सात-द्वीप और सात समुद्र ही बताते हैं। इनमें किन की बात सत्य मानी जाय, कुछ लोगो ने स्वयं शिवराज ऋषि को भी पूछ लिया, तो शिव राजर्षि ने सगर्व कहा— "मेरी आखा देखी बात असत्य कैसी हो सकती है? मैं स्वय जाकर इस विषय मे महावीर से वाद-विवाद करूंगा। मेरी बात गलत नही हो सकती है।'

अवसर प्राप्त होते ही शिवराज ऋषि प्रभु महावीर के समवसरण में पहुचे। महावीर की दिव्यता–भव्यता को देखते ही उनका अहकार चूर-चूर हो गया। वे मन ही मन उस लोकोत्तर दिव्य विभूति के प्रति अवनत हो गए। उनके अध्यवसायो–विचारों मे विशुद्धि का प्रकर्ष होने लगा और उनका मिथ्याज्ञान सम्यक्त्व में बदल गया। उन्हें बोधि की–सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो गई। अपनी क्षुद्रता का उन्हे वोध हुआ और वह विभग ज्ञान अवधिज्ञान के रूप में बदल गया। यही नही, विचारो की विशुद्धि अधिकाधिक होती गई और उन्हे सात द्वीप-समुद्रों से आगे के द्वीप-समुद्र भी दिखाई देने लगे। धीरे-धीरे

उन्होने असख्यात् द्वीप-समुद्रो को अपने अवधिज्ञान के द्वारा देख लिया। उसी समय वे महावीर के शिष्य बन गए और अन्त मे केवलज्ञान प्राप्त करके मुक्तिगामी बन गए।

इस प्रकार लोक समीक्षण के द्वारा शिवराजर्षि ने आत्मा की चरम एव परम उपलब्धि को प्राप्त कर लिया। लोक समीक्षण की यह विधि अज्ञान के पर्दो को चीरकर फेंक देती है और आत्मा के भीतर लोक के अणु-अणु का अनन्त भूत भविष्य से अनुबन्धित ज्ञान जागृत हो जाता है।



१५ बोधि बीज समीक्षरण

बोधि शब्द जैन तत्त्व ज्ञान का पारिभापिक शब्द है। यहां बोधि शब्द का अर्थ सम्यग्दर्शन किंवा आत्म दर्शन से लिया गया है। बोधि अथवा सबोधि का प्राप्त होना मुक्ति साधना की प्रारम्भिक शर्त है। किन्तु इस शर्त की पूर्ति होना ही सबसे कठिन माना गया है। प्रभु महावीर ने कहा है—

"सद्दा परम दुल्लहा"

श्रद्धा अर्थात् वीतराग वचनो पर श्रद्धा-विशुद्ध विश्वास अथवा तत्त्वातत्त्व का विवेक अत्यन्त दुर्लभ है। चूंकि हमारी आत्मा अनादि काल से मिथ्यात्व-अज्ञान मे रमण करती चली आ रही है—आत्मा के संसार परिभ्रमण का मूल कारण भी मिथ्यात्व ही है। इस आत्मा ने अनादिकाल से विभाव को ही स्वभाव मान लिया है, अतएव इससे बोधि की प्राप्ति दुर्लभ मानी गई है।

आगमिक दृष्टि से संसार में अन्य पदार्थों का प्राप्त होना उतना कठिन नही है, जितना सम्यग्दर्शन का प्राप्त होना माना गया है। इस आत्मा को दैविक ऐश्वर्य अनन्त वार प्राप्त हो चुका है। भौतिक सुख-सुविधाएं अगणित वार प्राप्त हो चुकी हैं, किन्तु सम्यग्ज्ञान तथा सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के अभाव मे यह अनन्तकाल से जन्म-मरण करती आ रही है।

मानवीय तन की दुर्लभता एवं स्वल्पता का समीक्षण

आगमिक एक अवधारणा के अनुसार अनादिकालीन मिथ्यात्व" से मुक्ति एव प्रथम सम्यक्त्व वोधि की प्राप्ति तीर्थंकर पाद मूल में अथवा तीर्थंकर भगवन्त के शासन मे मानव तन मे हो प्राप्त हो सकती

है। हम जरा यह चिन्तन करें कि मानव तन का प्राप्त होना भी अत्यन्त दुर्लभ एवं स्वल्प होता है तो तीर्थंकर देव का शासन प्राप्त करने के लिये कितने पुण्य की आवश्यकता होगी ? मानव जीवन की दुर्लभता एवं स्वल्पता का एक सामान्य विश्लेषण यहां प्रस्तुत है—

यह सम्पूर्ण लोक (ब्रह्माण्ड) ३४३ घनराजू क्षेत्र मे फैला हुआ है। इस लोक मे सर्वत्र जीवों का अस्तित्व है। एक बालाग्र जितना क्षेत्र भी जीव अस्तित्व से रहित नहीं है। अनन्तानन्त जीवों के इस समूह मे मनुष्य हैं ही कितनी संख्या मे ? इस ३४३ राजू जितने क्षेत्र मे त्रस प्राणी केवल चौदह राजू जितने क्षेत्र मे ही हैं। इन चौदह राजू मे अधिसात राजू क्षेत्र मे नीचे नारकीय जीव है तथा भवनपति देव एव अन्य जीव हैं। ऊपर के कुछ न्यून सात राजू क्षेत्र में देवलोक-स्वर्ग है। इन दोनो के मध्य वाले भाग मे जो १८०० योजन ऊचा एवं एक राजू चौडा मध्यलोक है, उसमे असख्यात द्वीप-समुद्र हैं। इन अगणित द्वीप-समुद्रो मे केवल पैतालीस लाख योजन जितने अढाई-द्वीप मे मनुष्य क्षेत्र माना गया है। इन पैतालीस लाख योजन मे भी २० लाख योजन जितना क्षेत्र तो समुद्रो ने रोक लिया है। अवशेष पच्चीस लाख योजन मे भी अनेक नदियां, पर्वत एवं जगल आदि हैं। मनुष्य के तो केवल १०१ क्षेत्र ही हैं। इनमे भी कर्म क्षेत्र भूमि, जहा कि बोधि लाभ सम्भव है, वे तो पन्द्रह ही है। इनमें सभी मे बोधि लाभ नही हो सकता है, क्योकि इनमे आर्य क्षेत्र तो अत्यन्त स्वल्प है। जैसे भरत क्षेत्र के बत्तीस हजार (३२०००) देशो मे केवल २५½ देश ही आर्य हैं। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रो मे भी आर्य भूमियो की अति अल्पता है।

इसके उपरान्त भी, इन पन्द्रह कर्म भूमियों में भी पाच महाविदेह क्षेत्रो मे ही हर समय धर्म आराधना के अवसर उपलब्ध होते हैं। शेष भरत एवं ऐरावत क्षेत्रो मे तो दस कोडाकोडी सागरोपम जितने काल खण्ड मे केवल एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम जितना काल ही बोधि लाभ के योग्य होता है। इनमे भी सभी मनुष्यो को बोधिलाभ नहीं होता है, किन्ही-किन्ही आत्माओं को ही ऐसा महान् अवसर प्राप्त हो सकता है। क्योकि मानवीयतन के प्राप्त हो जाने के बाद भी, आर्य

क्षेत्र, उत्तम कुल, परिपूर्ण इन्द्रियां, स्वस्थ शरीर, दीर्घ आयु, सुख पूर्वक आजीविका का साधन, सद्गुरु का सयोग, आगमवाणी का श्रवण और इस पर चिन्तन-मनन एव आचरण का संयोग अत्यन्त कठिनता से उपलब्ध होता है। कदाचित् इन सभी उपलब्धियों का संयोग मिल भी जाय, किन्तु यदि आत्मा मे भव्यत्व का परिपाक न हो, सुलभ बोधिकता एवं कर्म की स्वल्पता आदि के सयोग न हो तो भी बोधि-लाभ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नही हो पाती है।

बोधि बीज की उपलब्धि का समीक्षण

इस स्थिति से यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि इस विराट विश्व मे मानवीय तनधारी प्राणी हैं ही कितने ? अरे ससार में अन्य सभी योनियो के जीव असख्यात एवं अनन्त माने गये हैं जबकि मनुष्यो की संख्या संख्यात-गणना मे आने जितनी ही मानी गई है।

यह सामान्य विज्ञान का सिद्धान्त है कि जो वस्तु बहुमूल्य एव दुर्लभ होती है, वह स्वल्प ही होती है। संसार मे ककड-पत्थर बहुत होते हैं, जबकि हीरे-पन्ने-मणि-माणिक्य अत्यल्प ही होते हैं।

इसी आधार पर शास्त्रकारो ने कहा है—

"दुल्लहेखलु माण्स्से भवे, चिरकालेण विसव्व पाणीणं।"

अर्थात् सभी प्राणियो के लिये मानवीय भव अत्यन्त दुर्लभ है। चिरकाल तक संसार मे परिभ्रमण करने पर भी यह अत्यम्त कठिनाई से प्राप्त होता है। और उस पर सम्यक्त्व किंवा बोधि बीज की प्राप्ति तो और भी दुर्लभ मानी गई है। अत: बोधि वीज समीक्षण में साधक स्वात्म समीक्षण करता है कि—हे आत्मन् ! अनन्त-अनन्त पुण्य के उदय से ही तुम्हे यह मानवीय तन प्राप्त हुआ है। आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल आदि का सुयोग मिला है। महान समता योगी आत्मनिष्ठ गुरु का सयोग मिला है तथा उन्ही सुगुरु के चरणाश्रय से तुझे वाधि वीज की प्राप्ति हो गई है। अब यदि तुमने इस सम्बोधि को सुरक्षित नहीं रखा तो पुन: यह आत्मा मिथ्यात्व मे भटक जायेगी और उत्कृष्टत. अपार्घ पुद्गल परावर्तन काल तक पुन: इसे जन्म-मरण के चक्कर मे भटकना पड़ेगा।

अतः हे आत्मन् ! तू अपने इस आत्म चैतन्य को परम मुक्ति परम शान्ति के द्वार तक ले जाना चाहती है तो इस आत्म क्षेत्र मे सम्यक्त्व रूप वीज का वपन कर ज्ञान रूप जल से इसका अनवरत सिंचन करके धर्म रूप वृक्ष को पल्लवित करती रहेगी तो तेरा यह भव भ्रमण अवरुद्ध हो जायेगा । तू जन्म-मरण के चक्कर से वच जायेगी । अरे आत्मन, तुम्हारी यह उपलब्धि कोई सामान्य उपलब्धि नही है । कर्मों की सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम की स्थिति न्यून होती हुई जव अन्तः कोटा-कोटि सागरोपम जितनी रह जाती है तभी किसी-किसी आत्मा को यह अवसर प्राप्त होता है । अनन्त-अनन्त पुण्यों का संचय भी इस अवस्था तक नही पहुंचा सकता है । कर्मों की महान निर्जरा के द्वारा ही इस स्थिति तक तू पहुंची है ।

साधना का मूल आधार वोधि समीक्षण

प्रिय आत्मन् ! तू आत्म समीक्षण कर कि तेरे इस जीवन का मूल उद्देश्य क्या है ? क्या अनन्त-अनन्त काल तक इस संसार के जन्म-मरण रूप जाल मे उलझे रहना ही तेरी नियति हैं ? या इससे मुक्त होने की प्रवल भावना तेरे भीतर जागृत हुई हैं ? यदि तू इस दु.खो से परिपूर्ण संसार से मुक्त होना चाहता है तो चिन्तन कर कि इसके लिये सवसे प्रथम किस तत्त्व को आवश्यकता होगी ? तेरा कल्याण किस प्रारम्भिक तत्त्व की उपलब्धि पर हो सकेगा ?

वस इसी का समाधान है प्रस्तुत वोधि वीज समीक्षण । वोधि वीज अर्थात् सम्यग्दर्शन, आत्म दर्शन या स्वरूप वोध के वाद ही सभी प्रकार की धार्मिक क्रियाएं मुक्ति की हेतु वन सकती हैं । वोधि वीज के अभाव मे यह आत्मा अकाम निर्जरा एव पुण्यों के संचय से देवलोकों के भौतिक सुख तो प्राप्त कर सकती है ? नव ग्रैवेयक जैसे उच्च देवलोको मे भी पहु च सकती है, किन्तु मुक्ति मंजिल की ओर एक कदम भी आगे नहीं वढ सकती है । इसी अपेक्षा से तो कहा गया है ।

"दसरण मूलो धम्मो"—

धर्म दर्शन-सम्यग्दर्शन मूलक होता है । सम्यग्दर्शन से रहित

जरा अपने ही वोधि बीज से देख कि जिन पदार्थो को देखकर तू विकारी बनता हैं, वे सभी पदार्थ नाशवान् हैं—कर्म सयोगो से प्राप्त हुए हैं। यहां तुम्हारा कुछ भी नही है। जिसे तू अपना समझता है, वह शरीर भी तुम्हारा नहीं है। न कोई यहा तुम्हारा शत्रु या मित्र है। तू स्वयं ही अपना शत्रु या मित्र है, जैसा कि प्रभु महावीर नें कहा है—

अप्पा कत्ता-विकत्ताय, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिम्र, सुपट्ठिम्रो ॥

सन्मार्ग के प्रति प्रस्थित अपनी आत्मा ही अपना मित्र है और असत्मार्ग की ओर गतिशील आत्मा स्वयं की शत्रु हो जाती है। अतः तू बाहर मे किसी शत्रु या मित्र की कल्पना ही क्यो करता है?

अरे! यह तुम्हारा आज तक का अज्ञान ही था कि तुम बालक के खिलौनों के समान बाह्य····पदार्थों मे ही खेल-क्रीडा करते रहे। अन्यथा तुम तो अनन्त ज्ञान एव अनन्त शक्ति के धारक हो। जरा भेद विज्ञान के प्रकाश में अपने स्वरूप को देखो तो लगेगा कि मैं तो अजर-अमर धर्मा अविनाशी ईश्वर हू। फिर क्यो मैं जन्म–मरण के चक्कर में उलझा हुआ हूं।

नही! नही! अब मैं अपने इस बोधि वीज को खोने वाला नही हूं। अब तो मैं अपने भीतर अपने ईश्वरत्व का दर्शन कर रहा हूं। अरे! जव मैं स्वयं ईश्वर हूं तो अन्य किसी ईश्वर की उपासना क्यों करूंगा? कहा भी तो है—

यः परमात्मा सएवाऽह, योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयाराध्यो, नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ॥

मुझे जव स्वय के भीतर ही देवत्व दिखाई दे गया है, तो मैं स्वयं के लिये स्वय ही आराध्य-उपास्य हो गया हूं। आत्मा का आराध्य आत्मा ही तो है। ससार की सर्वोपरि सत्ता इस आत्मा के लिये दूसरा आराध्य हो ही कौन सकता है? आत्मा की आराधना ही तो परमात्मा वना देती है।

अहा, ! इस बोधि लाभ जनित आत्माराधना मे–आत्म समीक्षण मे कितना आनन्दप्रद अनुभव हो रहा है । संसार के पदार्थों के प्रति सारी आसक्तियां टूटती जा रही है । शरीर के प्रति भी तो अनासक्ति के भाव जागृत हो रहे हैं । वास्तव में यह अनुभूति–यह आत्म ज्ञान की रमणता अद्भुत है, अनिर्वचनीय है, और अत्यन्त दुर्लभ है । इसी दृष्टि से तो कहा गया है—

धन-जन-कंचन-राज सुख, सबहि सुलभ करि जान ।
दुर्लभ है ससार मे, एक यथार्थ ज्ञान ॥

ससार की समस्त सम्पदा यहा तक की चक्रवर्ती का छः खण्ड का वैभव और देवलोको के सुख भी सुलभ हैं, किन्तु यथार्थ ज्ञान अर्थात बोधि बीज की प्राप्ति को दुर्लभ माना गया है ।

यह दुर्लभ बोधि बीज मुझे अनन्त-अनन्त जन्मो के भटकाव बाद प्राप्त हुआ है । क्या यह यो ही सहज में प्राप्त हो गया है ? नही, इसके लिये मेरी इस आत्मा को मिथ्यात्व मोह के साथ कितना संघर्ष करना पड़ा है ? अगणित बार मेरी इस आत्मा के विशुद्ध अध्यवसायो ने मिथ्यात्व एवं उसके सहचर अनन्तानुबन्धी कषायो के साथ सघर्ष किया है । सत्तर (७०) कोटाकोटि सागरोपम की स्थिति वाले इस मिथ्यात्व को घटा कर अन्तः कोटाकोटि सागरोपम जितनी स्थिति मे लाने के बार यथा प्रवृत्तिकरण, अपूर्णकरण एव अनिवृत्ति करण जैसी विचारो की विशुद्धि पर आरोहण करने के पश्चात् कहीं इसे यह बोधिलाभ हुआ है । इतने तुमुल संघर्ष एव महानतम श्रम से उपलब्ध इस सम्यग्दृष्टि बोध को पुनः खो देना क्या बड़ी भारी मूर्खता नही होगी ?

नही, अब यह नहीं हो सकता है । अब तो मेरे अध्यवसायो की धारा-आत्म परिणामों की विशुद्धि बढती ही जा रही है । बोधिलाभ के पश्चात् प्राप्त होने वाली विरति की धारा मेरी चेतना मे गहरा रही है, जो कि बोधि बीज की फल श्रुति है । शास्त्रकार कहते हैं कि—

"णाणस्स फलं विरइ"

ज्ञान का फल विरति मे है—हेय के परित्याग में है । जहाँ

हेय का त्याग होगा वहा त्याग-साधना रूप सयम सहज ही फलित होगा और इस प्रकार यह आत्मा चैतन्य समीक्षण से परमात्म समीक्षण तक पहुंच जाएगी। यह विरति का भाव तो प्राप्त हुआ था बोधि समीक्षण से आदि तीर्थंकर प्रभु ऋषभ देव के १८ पुत्रो को।

प्रभु ऋषभदेव के ९८ पुत्रों का बोधि बीज समीक्षण

आदि तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती सम्राट भरत ने भरत क्षेत्र के छहो खण्ड पर विजय श्री प्राप्त कर ली। दिग्दिगन्त मे अपनी विजय की दुन्दुभि का उद्घोष करते हुए जब वे अपनी राजधानी मे लौट आए, किन्तु उनके चक्ररत्न ने आयुधशाला में प्रवेश नही किया। चक्रवर्ती सम्राट का चक्र रत्न इस बात का प्रतीक होता है, कि छह खण्ड की सम्पूर्ण पृथ्वी पर चक्रवर्ती सम्राट की आज्ञा का अनुशासन पूरा स्वीकृत नही होने तक वह आयुधशाला मे प्रवेश नही करता है, बाहर ही चलता रहता है।

चक्रवर्ती सम्राट भरत ने अपने राजपुरोहित से पूछा कि जब मै छः खण्ड के सम्पूर्ण भरत खण्ड पर विजय श्री प्राप्त करके आ गया हूं तो चक्र रत्न आयुधशाला में प्रवेश क्यो नही कर रहा है ?

राजपुरोहित ने कहा—"सम्राट ! छः खण्डों पर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेने के वाद भी अभी आपने अपने भाइयो पर अपना अनुशासन स्थापित नही किया है। वे आपके ९९ भाई अभी भी आपके अनुशासन को स्वीकार नही करते है। अत. जब तक वे आपके अधीन रहना स्वीकार न करलें, आपकी सम्पूर्ण छह खण्ड की विजय नही मानी जा सकती है और ऐसी स्थिति मे चक्र रत्न आयुधशाला में प्रवेश नही करेगा।"

तत्काल भरत चक्रवर्ती ने दूत के द्वारा अपने ९९ भाइयो को सदेश कहलाया कि तुम अपने पिता श्री द्वारा प्रदत्त राज्य में शासन करो, किन्तु मेरी आज्ञा स्वीकार करलो। इस पर वाहुवली तो युद्ध करने के लिये तत्पर हो गये किन्तु ९८ भाइयों ने कहा कि हमे यह राज्याधिकार पिता श्री ने दिया है, उसमे आपका कोई अधिकार नही

है, फिर भी हम पिता श्री से पूछेंगे वे जैसा कहेगे, वैसा ही हम करेंगे ।

९८ भाई प्रभु ऋषभदेव के चरणो में पहुचे एव प्रभु से निवेदन किया—"भगवन् ! भरत जी अपनी विशाल राज्य सम्पदा से भी सन्तुष्ट नही है और हमारे छोटे-छोटे राज्य भी हड़प लेना चाहते हैं। अब हमे क्या करना चाहिये !"

सर्वज्ञ-सर्वद्रष्टा वीतराग प्रभु ऋषभदेव ने ९८ भाईयो को समझाते हुए कहा—

यद्यपि यह शाश्वत नियम है कि चक्रवर्ती सम्राट जब तक छः खण्डो पर परिपूर्ण शासन नही कर लेता है, तब तक उनका चक्र रत्न आयुधशाला मे प्रवेश नही करता है ।

फिर भी तुम आत्मिक राज्य के लिये विचार करो—समझो

सबुज्झह किं न बुज्झह,
संबोहि खलु पेच्च दुल्लहा ।

अरे राजपुत्रो ! समझो, सम्बोध को प्राप्त करो । तुम यह क्यो नही समझते हो कि यह राज्य तो नश्वर है । इस राज्य के मोह मे जीवन समाप्त हो गया तो, आगामी काल मे सम्बोधि का प्राप्त होना ही कठिन हो जाएगा, क्योकि बोधि बीज की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है । तुम्हारी आत्मा अनादिकाल से मिथ्यात्व मे—मोह मे भटकती आ रही है । अब यह अवसर प्राप्त हुआ है तो इस क्षणिक-अस्थायी राज्य को छोडो और सम्बोधि-सम्यक्त्व एव चारित्र धर्म को स्वीकार करके उस अविनाशी मुक्तिपुरी के राज्य को प्राप्त करो जहां किसी भी चक्रवर्ती का जोर नही चलता है ।

प्रभु ऋषभ देव की इस अमृत देशना से उन ९८ भाइयो ने एक साथ सम्बोधि को प्राप्त कर लिया और समस्त राज्य वैभव को छोड़कर निकल पड़े, अविनाशी राज्य की प्राप्ति के लिये । अरे, निकल

ही नही पड़े, बोधि बीज समीक्षण के द्वारा ऐसी उच्च कोटि की साधना की कि उसी जीवन मे चरम एव परम आनन्द स्वरूप अक्षय साम्राज्य को प्राप्त ही कर लिया।

इस प्रकार बोधि समीक्षण के द्वारा साधक अपने अनादिभव भ्रमण को अवरुद्ध करके जन्म-मरण को अत्यन्त सीमित कर देता है। अपने जीवन के—आत्मा के मूल स्वरूप का बोध प्राप्त करके उसके मूल लक्ष्य के लिये गतिशील हो जाता है।



१६ धर्म तत्त्व-समीक्षण

संसार के समस्त प्राणियों से भिन्नता का मानव के पास यदि कोई आधार है तो, वह है धर्म। यदि मानव जीवन से धर्म को अलग कर दिया जाय—साधना को निकाल दिया जाय तो पशु में और मानव में अथवा देव और मानव में क्या अन्तर रह जाता है? इसी दृष्टि से नीतिकारो ने कहा है—

आहार निद्राभय मैथुनञ्च, सामान्य मेतत् पशुभिः नराणां।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीना पशुभिः समाना॥

भोजन, निद्रा, भय एव मैथुन-सन्तति-प्रजनन का कार्य—ये सभी समस्याएं मानव एवं मानवेतर तिर्यंच प्राणियो मे समान रूप से पायी जाती है। पशु जगत मे भी ये ही समस्याए पायी जाती हैं और मानव मे भी। फिर मानव अपने आपको किस आधार पर श्रेष्ठ मानता है? यदि वह यह सोचे कि अधिक से अधिक भौतिक सुख-सुविधाएं जुटाने में वह सक्षम है, जो कि पशु नही कर पाता है। तो यह विशेषता तो दैविक सृष्टि में उससे कई गुणा अधिक है, बल्कि देवों को तो इसके लिये प्रयास भी नही करना पडता है, उन्हे सारी समृद्धि पूर्व जन्म के पुण्यों से सहज ही प्राप्त हो जाती है। उन्हे अपनी सुख-सुविधाओं के लिये भौतिक साधनो को जुटाने के लिये किसी प्रकार का कोई आविष्कार नही करना पडता। उनके सामान्य से संकल्पो से समृद्धि उनके चरणों में दौडी आती है।

इस आधार पर हम यह अच्छी तरह समझ सकते हैं कि ससार के इतर प्राणियो से मानव के भिन्नता की पहचान केवल धर्म साधना ही है। धर्म तत्त्व ही एक ऐसा तत्त्व है जो मानव को अन्य सभी प्राणियो से श्रेष्ठ स्थापित करता है।

इस प्रकार धर्म तत्त्व की महत्ता पर गहन चिन्तन करना धर्म तत्त्व समीक्षण कहलाता है। समीक्षण ध्यान का साधक धर्म शब्द

की व्याख्या, उसके स्वरूप एव उसके उद्देश्य आदि के विषय मे चिन्तन करता हुआ आत्म समीक्षण करता है ।

धर्म. परिभाषा समीक्षण

यो तो धर्म की अनेक परिभाषाएं की गई हैं, किन्तु उसकी शाब्दिक परिभाषा है—"धारयति इति धर्मः" अर्थात् "दुर्गतौ पततां जनानां सद्गतौ धारयति इति धर्मः ।" दुर्गति में गिरते हुए प्राणियो को जो बचाये रखे—सद्गति में धारण करके रखे वह धर्म है । यहा इस शाब्दिक व्याख्या से धर्म का अर्थ उस भाव विशुद्धि एव क्रिया अनुष्ठान से लिया गया है जो शुभ कर्म या कर्म निर्जरा का हेतुभूत हो । लाक्षणिक परिभाषा के अनुसार तीर्थंकर भगवन्तों ने—"वत्थू सहावो धम्मो" वस्तु के मौलिक स्वभाव को धर्म कहा है । किसी भी पदार्थ का मूल स्वभाव उसका धर्म है । यथा अग्नि का ऊष्णत्व अग्नि का धर्म है, पानी का शीतत्व उसका धर्म है, स्वरूप मे रममाण होना आत्मा का धर्म है ।

धर्म समीक्षण मे साधक केवल धर्म शब्द की परिभाषा पर ही नही अटकता, अपितु धर्म के लाक्षणिक अर्थों का समीक्षण करता है । जब वह वस्तु के स्वभाव का समीक्षण करता है और समीक्षण की गहनता मे प्रवेश करता है, तो उसका चिन्तन आत्म-स्वभाव पर केन्द्रित होता है । वह बहिर्गामी न होकर अन्तर्गामी चिन्तन हो जाता है । साधक धर्म शब्द के मूल लाक्षणिक अर्थ को हृदयंगम करता हुआ स्वरूप रमणता की स्थिति में प्रवेश कर जाता है और जहा स्वरूप रमणता आती है, वहा विश्वोपम्य की भावना सहज बन जाती है । आत्म रमणता के क्षणों में ससार के समस्त प्राणी अपने आत्मीय कि वा आत्मवत् ही दिखाई देने लगते हैं और स्थिति मे अहिंसा सहज ही फलित हो जाती है । इसी आधार पर अहिंसा को धर्म का मूल आधार अथवा प्राण कहा गया है । आत्मोपम्य की भावना वाला चित्त ही अहिंसक चित्त बन सकता है और जिस चित्त मे अहिंसा है, वहां धर्म का आवास होता ही है । क्योकि अहिंसा–दया को धर्म का मूल तत्त्व स्वीकार किया गया है ।

जैनागमो के स्वर हैं—

"धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।"

धर्म उत्कृष्ट मगल रूप है, जो कि अहिंसा, संयम और तप रूप है । सयम और तप तो उपचार से धर्म हैं, वास्तव मे तो धर्म अहिंसा ही है । अहिंसा भगवती मे संयम, तप आदि सभी समाहित हो जाते है । कहा गया है—

"दया धर्म का मूल है"

धर्म का मूल दया-अहिंसा है । जहा अहिंसा है, वहा धर्म है, जहां हिंसा है वहां अधर्म है । इसीलिये तो कहा है—

"हिंसा नाम भवेद्धर्मो न भूतो न भविष्यति ।"

हिंसा मे धर्म हो, यह न कभी हुआ है और न कभी होगा । धर्म अहिंसा मे ही हो सकता है, हिंसा मे नही ।

समीक्षण ध्यान का साधक इस अहिंसा मूलक धर्म के द्वारा अपने से भिन्न प्राणियो पर ही अनुकम्पा दया नही करता है, अपितु इसके माध्यम से वह अपने आपको पाप से बचाकर स्व दया भी करता है । इस अहिंसा रूप धर्म तत्त्व का समीक्षण किया था करुणा मूर्ति धर्मरुचि अणगार ने—

धर्मरुचि अणगार का धर्म-समीक्षण

विश्रुत विद्वान् आचार्य धर्मघोष एक वार भ्रमण करते हुए अपने शिष्य परिकर के साथ चम्पानगरी मे पधारे । उनके साथ उनके उग्र तपस्वी करूणा मूर्ति धर्मरुचि अणगार भी थे । धर्मरुचि अणगार अपने मासखमण के पारणे हेतु भिक्षाटन करते हुए एक ब्राह्मण परिवार के यहां पहुंच गए । उस ब्राह्मण परिवार के तीन भाइयों में यह सामञ्जस्य था कि पारी-पारी से एक-एक के घर तीनो भोजन करेंगे । एक वार वडे भाई की पत्नी नाग श्री की पारी थी । उसने भोजन वनाते समय ध्यान नही रखा और उसके द्वारा कड़वे तुम्बे का शाक वना लिया गया । यद्यपि उसने उसमे घृत एव मशाले आदि वहुत अच्छे डाले कि मैं सबसे अच्छा भोजन वनाकर सबको खिलाऊं, किन्तु उसकी असावधानी से शाक एकदम कड़वा वन गया । भोजन का

समय निकट होने से उसने शीघ्रतापूर्वक दूसरा शाक तो बना लिया, किन्तु उस कटक तुम्बे को फकने का उसे अवसर नही मिला । सयोगत: धर्मरूचि अरणगार वहा पहु च गए और उस विप्र पत्नी नाग श्री ने वह कटुक तुम्बे का शाक पूरा का पूरा धर्मरूचि अरणगार को बहरा दिया ।

धर्मरूचि अणगार उसे लेकर गुरु के चरणो मे उपस्थित हुए एवं भिक्षापात्र उनके समक्ष उपदर्शित किया । गुरु आचार्य धर्मघोष ने उस शाक के गन्धादि से ज्ञात कर लिया कि यह विषैला पदार्थ है और उग्र तपश्चरण के कारण धर्मरूचि अरणगार का पेट एव पाचन संस्थान अत्यन्त कोमल हो गया है, अत: यदि ये इस आहार को ग्रहण करेंगे तो प्राणान्त हो जाएगा । गुरुदेव ने अरणगार धर्मरूचि को निर्देश दिया कि इस आहार को तुम किसी प्रासुक-निर्वद्य (जहा किसी प्राणी की हिंसा न हो) स्थान पर परठ दो(गिरादो) ।

धर्मरूचि अरणगार उस शाक को लेकर जगल मे गए और एक निर्वद्य स्थान देखकर वहा उन्होने उस शाक का एक बून्द डाला और प्रतीक्षा करने लगे कि कही इसके द्वारा यहा जीवो की विराधना-हिंसा तो नही होती है । कुछ ही समय मे उन्होंने देखा कि अनेको चीटियां उस शाक की चिकनाई के कारण वहां चली आयी और शाक खा-खा कर मरने लग गई । यह देखकर उनका करुणापूत हृदय द्रवित हो गया । उन्होने सोचा—जब एक बून्द से इतनी चीटिया मर रही हैं, तो इस पूरी शाक के परठने से कितने प्राणी बेमौत मारे जायेंगे ? ओ हो ! मेरे निमित्त से कितने प्राणियो की हिंसा हो जायेगी । अन्त. समीक्षण करते हुए उन्हे लगा कि गुरुदेव ने इसे निर्वद्य स्थान पर डालने की अनुज्ञा दी है । तो फिर मेरे पेट के अतिरिक्त और कौनसा निर्वद्य स्थान होगा ? बाहर मे तो जहां कही भी डालूंगा अनेको प्राणी मृत्यु को प्राप्त होगे । अरे, मेरा यह शरीर तो नाशवान् है ही, इसका तो एक दिन विनाश होना ही है, फिर क्यो नही जीव रक्षा रूप धर्म मे इसका उपयोग कर लिया जाए ?

यह चिन्तन करके वह कटुक विषमय शाक वे स्वयं खा गए ।

कुछ ही समय में उनके शरीर में वेदना बढ गई । पूरे शरीर में दाह ज्वर होने लगा । किन्तु वे मानसिक समताभाव के साथ धर्म समीक्षण में लीन हो गए विधिपूर्वक संथारा ग्रहण कर लिया और उज्ज्वल भावों मे देहत्याग कर सर्वार्थसिद्ध विमान मे जाकर देवरूप मे उत्पन्न हो गये । वहां से आयुपूर्ण होने पर पुन. मनुष्य बनकर मुक्तिगामी बन जाएगे ।

यह था महामुनि धर्मरुचि का धर्म तत्त्व समीक्षण । उन्होने अहिंसा धर्म को अपने जीवन के आचरण मे ढालकर दिया दिया, यह तन जितना महत्त्वपूर्ण नही है, उतना धर्म लाभप्रद है और उन्होने अपने जीवन-शरीर का उत्सर्ग कर दिया प्राणी रक्षा रूप धर्म साधना के लिये ।

धर्म तत्त्व समीक्षण एक अन्य रूप से

धर्म तत्त्व समीक्षण का एक अन्य रूप है, जिसमें साधक धर्म के भेदों-प्रभेदो का समीक्षण करता है । यो तो धर्म एक भाव विशेष है, जिसका सीधा सम्बन्ध अन्तरंग वृत्तियो से होता है । तथापि चू कि भावो के अगणित स्तर होते हैं अत: धर्म के भी विभिन्न रूप हो जाते हैं । इसी आधार पर धर्म के विविध आयामी भेद-प्रभेद आगमो मे उपलब्ध होते हैं । प्रभु महावीर ने स्थानाग सूत्र मे धर्म के भेदो का विभिन्न अपेक्षाओं से उल्लेख किया है ।

धम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा—सुय धम्मेचेव चरित्त धम्मेचेव ।

धर्म के दो भेद हैं—श्रुत धर्म एवं चरित्र धर्म । ये दोनो ही प्रकार के धर्म आत्मा के भाव विशेष हैं । आत्मा की ज्ञान पर्याय एवं विशुद्ध स्वरूप रमण पर्यायो का समीक्षण एव चारित्र समीक्षण के अन्तर्गत आता है । पुन: धर्म के दो भेद करते हुए कहा गया है—

धम्मे दुविहे पण्णते तजहा आगार धम्मे चेव अणगार धम्मे चेव ।

सापेक्षिक दृष्टि से चारित्र धर्म दो प्रकार का है आगार-गृहस्थ धर्म और अणगार श्रमण धर्म ! आगार एव अणगार अवस्थाएं आत्मा मे त्याग भावनाओं से निर्मित होने वाली भाव दशाए हैं, जो बाहर के व्यवहारो मे भी जुड़ी हुई हैं । समीक्षण ध्यान का साधक आत्म समीक्षण कीदृष्टि से हेय का त्याग करता जाता है और उपादेय को ग्रहण करता जाता है । इस प्रकार आगार और क्रमश: अणगार धर्म की ओर उसके चरण बढते जाते हैं ।

धर्म समीक्षण मे धर्म के दस भेदो का समीक्षण भी किया जाता है, वे हैं—

दस विहे समण धम्मे तजहा—(१) खंत्ति, (२) मुत्ति, (३) अज्जवं, (४) मद्दवं, (५) लाघवं, (६) सच्च, (७) सयम, (८) तवं, (९) चेइयं, (१०) बम्भयेखासं।

क्षमा, निर्लोभता, ऋजुता, मृदुता, लघुता, सत्य, संयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्य—ये श्रमण साधक के प्रमुख आचरणीय धर्म हैं। ध्यान साधक धर्म समीक्षण के क्षणों में अपनी चित्त-वृत्तियो को धर्म की उपर्युक्त दस अवस्थाओ मे ऐसा रचा-पचा लेता है कि उसकी चेतना एकदम हल्की हो जाती है एव समस्त चराचर सृष्टि के प्रति सहज आत्मीय हो जाती है। वह क्रोधोत्पत्ति के प्रबलतम निमित्त के उपस्थित होने पर भी अपने क्षमा स्वभाव से विचलित नही होता। भयकर अपमान करने वाले पर ही नही, प्राणात कर देने वाले व्यक्ति पर भी उसके मन मे शत्रुत्व का भाव निर्मित नही होता। वह क्षमा को अपना अचूक अस्त्र बना लेता है, जहां ससार की सभी आत्माएं उसे अपनी आत्मीय लगने लगती हैं।

इसी प्रकार वह साधक निर्लोभता समीक्षण में समस्त पुद्गलों के प्रति अनासक्ति भाव का चिन्तन करता है। उसकी पुद्गलसक्ति क्षीण हो जाती है। वह तृष्णा के जाल को तोड़कर उससे बाहर निकल जाता है। वह यह समझ लेता है कि यह लोभ-तृष्णा ही तो आत्मा के समस्त सद्गुणो को नष्ट कर देने वाला है। आगमकारों ने ठीक ही तो कहा है—

"सोहो सव्व विणासओ"

लोभ सव सद्वृत्तियो को नष्ट करने वाला होता है।

समीक्षण ध्यान का साधक "मायामिताणि णासेइ" के आगम सूक्त को जीवन में आत्मसात् करता हुआ कुटिलता से बचे रहने का प्रयास करता है। वह आत्मदर्शन का मूलाधार ऋजुता में ही खोजता है। ध्यान का अर्थ ही है सहजता-सरलता। सहज-सरल व्यक्ति ही आत्म साधना की गहराई मे प्रवेश कर सकता है। प्रभु महावीर का कथन है कि—

"सोहि उज्जुय भूयस्स, धम्मो सुद्दस्स चिट्ठइ।"

शुद्ध ऋजुभूत हृदय में ही धर्म ठहर सकता है। अतः आर्जव समीक्षण मे साधक अत्यन्त सरल होने का प्रयास करता है।

इसी प्रकार मृदुता एवं लघुता धर्म समीक्षण मे साधक कठोरता किवा अहंकार एव गुरुता-भारभूत बने रहने से होने वाली हानि का समीक्षण करता है। "माणो विणयणासणो" के अनुसार वह अहंकार अथवा कठोरता को अपने धर्म के मूल गुण विनय को नष्ट करने वाला मानकर उससे बचने का प्रयास करता है। वह अपने बड़ो के प्रति विनम्र एव छोटो के प्रति स्नेहिल बनता जाता है। उसका चिन्तन होता है कि भारी पदार्थ नीचे की ओर जाता है एवं हल्का पदार्थ ऊपर की ओर उठता है, अत: मुझे अपनी आत्मा को लघुभूत बनाना है। मैं उपधि एव कर्म आदि से जितना हल्का बनूंगा उतनी मेरी चेतना ऊर्ध्वगामी बनेगी।

"सच्च लोगम्मि सार भूय" का आगम वाक्य साधक की साधना का मूल आधार होता है। शास्त्रकारो ने सत्य को भगवान् कह कर पुकारा है—सच्च खु भगव।" अतः साधक धर्म समीक्षण मे सत्य धर्म को अपने जीवन का अभिन्न अग बना लेता है। वह असत्य भाषण ही नही, असत्य सकल्प एव असत्य आचरण से भी बचने का प्रयास करता है।

सत्य के साथ ही संयम, तप और त्याग साधक जीवन से सहज ही जुड जाते हैं। मानसिक वाचिक एव कायिक-असत्प्रवृत्तियों को सयमित किये विना सत्य आचरण नही हो सकता है, तो तप और त्याग के बिना सयम भी नही टिक सकता है, अतः धर्म समीक्षण मे साधक सयम, तप और त्याग के उदात्त भावो-व्यवहारो से अपनी आत्मा को सजाता है। वह मन और इन्द्रियो को सयमित करने के लिये तप एव त्याग-भौतिक आकर्षणों के परित्याग को स्वीकार करता है। और ऐसी स्थिति में उसके जीवन मे ब्रह्मचर्य सहज ही फलित हो जाता है। वासना उसके जीवन मे तिरोहित हो जाती है। विकारों की आंधी धर्म समीक्षण-साधक को विचलित नही कर सकती है। चूंकि धर्म तत्त्व का मूल स्वरूप उसकी समझ मे आ जाता है—धर्म के महत्त्व को वह समझ लेता है कि संसार मे धर्म तत्त्व से बढ़कर और कोई तत्त्व नही है। अतः उसकी अविचल आस्था होती है कि—

सुरतरु देय सुख, चिन्तित चिन्ता-रैन ।
बिन याचे बिन चिन्तिये, धर्म सदा सुख दैन ॥

कल्पतरू एवं चिन्तामणि जैसे पदार्थ भी याचना करने पर ही इच्छित वस्तु प्रदान करते हैं, किन्तु धर्म तत्त्व ही ऐसा तत्त्व है जो बिना किसी कामना के अक्षय-अनन्त आनन्द प्रदान करता है ।

इस प्रकार धर्म समीक्षण मे साधक धर्म के स्वरूप एवं भेद-प्रभेदो का समीक्षण करता हुआ परभाव से ऊपर उठकर स्वभाव रूप आत्म धर्म में स्थिर होने का प्रयास करता है, जो कि समीक्षण ध्यान का मूल उद्देश्य है । राग-द्वेष रूप काषायिक परिणतियां आत्मा की वैभाविक वृत्तिया हैं । इन वैभाविक वृत्तियों से अलग हटकर स्वभाव में किंवा स्वरूप मे रमण करना हमारी साधना का मूल लक्ष्य है, और इस लक्ष्य की ओर गति देता है धर्म समीक्षण ।

उपसंहार

इस प्रकार द्वादस भावना अथवा अनुप्रेक्षाओ का समीक्षण साधक को अन्तर्मुखी बना देता है, उसे मुक्ति मार्ग का पथिक ही नही, मुक्ति मंजिल का अधिकारी भी बना देता है । अनित्य, अशरण, ससार एव एकत्व आदि एक-एक भावना का समीक्षण ही साधक को महानता की परमोच्च दशा तक पहुचा सकता है, तो यदि साधक अपने दैनिक साधना क्रम मे द्वादस भावनाओ का समीक्षण करता रहे तो उसके जीवन की उस परमोच्च स्थिति को कौन रोक सकता है ?

ससार की अनेक आत्माओं ने एक-एक भावना के समीक्षण के द्वारा आत्म-दर्शन एव परमात्म दर्शन के द्वार उद्घाटित कर लिये हैं, तो हमारा यह द्वादश अनुप्रेक्षा समीक्षण अवश्य ही हमे अपने चरम लक्ष्य तक पहुचाएगा । यह द्वादस अनुप्रेक्षाओ का चिन्तन हमारे लिये मुक्ति मजिल के द्वादस सोपानों का कार्य करेगा और इन सोपानों पर आरोहण करके हमारी चेतना बिना किसी व्यवधान के अपनी मंजिल तक पहुच जाएगी, जहां जाने के पश्चात् जन्म-मरण-आधि-व्याधि के सभी संक्लेश सदा-सदा के लिये घट जाएगे । हम अजर-अमर स्थिति का वरण कर लेगे ।

द्वादस अनुप्रेक्षा समीक्षण के साथ समीक्षण ध्यान के दार्शनिक एव सैद्धान्तिक पक्ष का विवेचन सम्पन्न होता है। इस विवेचन के आधार पर यह सुस्पष्ट हो जाता है कि समीक्षण ध्यान साधना आगम सम्मत सुपरीक्षित एवं सुव्यवस्थित ध्यान पद्धति है। यह जन जीवन को तनाव मुक्त करके व्यवस्थित जीवन जीने का बोध पाठ तो देती ही है, किन्तु यही इसका अन्तिम उद्देश्य नहीं है। इस साधना पद्धति का मूल उद्देश्य है आत्म साक्षात्कार एव परमात्म भाव का जागरण। जिसके बाद साधक को कुछ भी करना शेष नही रहता। चेतना देहादि कर्तृत्व भाव से सर्वथा मुक्त होकर अकर्तृत्व मे प्रतिष्ठित हो जाती है और "अप्पा सो परमप्पा के स्वर सार्थक या प्रतिफलित हो जाते हैं।"

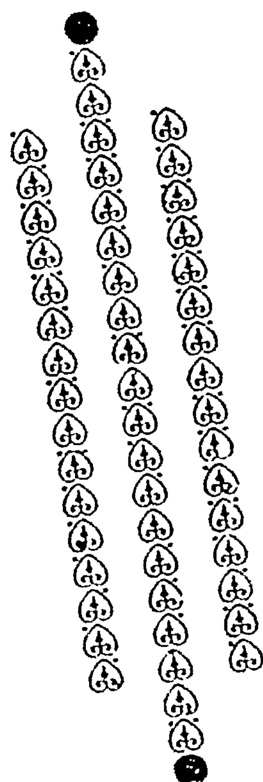
चेतना के इस चरम एवं परम उद्देश्य की उपलब्धि के लिये साधना के सैद्धान्तिक अथवा दार्शनिक पक्ष को जान लेना ही पर्याप्त नही है, उसके साधना के विविध प्रयोगो से गुजरना पडता है। साधना का प्रयोगात्मक अनुशीलन करना होता है। प्रयोग के अभाव मे साधना अथवा ध्यान पद्धति का विवेचन केवल वाणी विलास बन-कर रह जाता है। वह जीवन को रूपान्तरित नही कर सकता। तनावो से मुक्ति नही दिला सकता और उसके अभाव मे आत्म शांति तो कथमपि सम्भव नही है।

अतएव समीक्षण ध्यान के दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक विवेचन के साथ ही अगले द्वितीय खण्ड में समीक्षण ध्यान साधना की प्रयो-गात्मक-प्रेक्टिकल विधियो को सयोजित किया जा रहा है, ताकि समीक्षण ध्यान को सांगोपागता सम्पूर्णता प्राप्त हो सके तथा साधक समीक्षण ध्यान पद्धति को अपने जीवन का अग बना सके। यह हम अच्छी तरह जानते हैं कि साधना चर्चा का विषय नही है, वह अनु-शीलन का विषय है। जब तक साधनात्मक प्रक्रियाओ से गुजरा नहीं जाता-जीवन मे साधना के प्रयोग नही किये जाते तब तक साधना की चर्चा क्षुधित व्यक्ति के द्वारा की जाने वाली मिठाई के स्वाद की चर्चा के समान ही रहती है। वह चर्चा क्षुधाशान्त नहीं करती, अपितु मिठाई के प्रति जिज्ञासा जागृत करके क्षुधा को और अधिक बढ़ा देती है।

ठीक इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि समीक्षण ध्यान की पूर्व पृष्ठो में की गई विवेचना पाठको की क्षुधा शान्ति की निमित्तक नही होकर क्षुधावृद्धि की ही निमित्तक वन गई होगी। पाठकों के मन मे एक जिज्ञासा का भाव अवश्य जागृत हुआ होगा कि आखिर इस विस्तृत चर्चा के अध्ययन से हम साधक तो नही वन सकते। यह ता एक मस्तिष्क की खुराक ही हो पायी है। साधना जीवन का अग किस प्रकार से बन सकती है ? यह समाधान उपर्युक्त विवेचन से नही हो पाता है।

वस इसी जिज्ञासा के समाधान हेतु ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड का आलेखन हुआ है। इसके द्वारा साधना की विविध आयामी प्रयोग पद्धतियो को आत्मसात् करके साधना का वास्तविक आनन्द प्राप्त करने के साथ ही आत्म साक्षात्कार की स्थिति तक भी पहुंचा जा सकता है।





द्वितीय खण्ड

साधना

(विधि-विधान)

सजगता-सतर्कता

कोई कार बडी तेज गति से किसी दिशा में जा रही हो और उसे सहसा पीछे की ओर—ठीक विपरीत दिशा मे मोड़ना हो तो कितनी सजगता एव सतर्कता की आवश्यकता होती है ? ठीक इसी प्रकार आम व्यक्ति की जीवन प्रणाली भौतिकवाद की ओर वड़ी तेजी मे भाग रही हो और उसे साधना के द्वारा अध्यात्म की ओर मोड़ना हो, तो अत्यधिक सजगता-सतर्कता की आवश्यकता होती है ।

इसी दृष्टिकोण को समक्ष रखते हुए समीक्षण ध्यान साधना की प्रयोग पद्धतियो मे पूर्व कुछ सजगता-सतर्कता के सूत्रो पर चिन्तन कर लेना आवश्यक हो जाता है ।

चू कि ध्यान साधना हमारे जीवन की एक बधी-बधाई दिशा से विपरीत दिशा मे गतिशील होने की यात्रा है, अत. इसमे अनेको व्यवधान खड़े हो सकते है, कुछ सकटो का सामना करना पड सकता है, किन्तु यदि उन व्यवधानो एव सकटो के पूर्व हम थोडी सजगता अपनाले एव सतर्कता पूर्वक साधना मार्ग मे गति करे तो सफलता सहजता से हमारा वरण कर लेगी ।

ध्यान साधना मे सजगता दो प्रकार की होती है—एक भावात्मक एव दूसरी विध्यात्मक । भावात्मक सजगता मे प्रमुख है—साधक की अविचल श्रद्धा एवं सुदृढ संकल्पशीलता । जब तक साधना की किसी भी विधि पर विशुद्ध श्रद्धा न हो—अविचल विश्वास न हो और सुदृढ सकल्प न हो, उस विधि मे सफलता सशयास्पद बनी रहती है । साधक की मन.स्थिति मे यह अविचल अवस्था बनी रहनी चाहिये कि मुझे इस साधना मार्ग के द्वारा अवश्य सफलता प्राप्त होगी ।

आचार्य शुभचन्द्र ने अपने विशिष्ट एव मौलिक आकर ग्रन्थ ज्ञानार्णव मे एक अच्छे ध्यान साधक के लक्षण बताते हुए उनके आठ विशिष्ट गुणो की अनिवार्यता पर बल दिया है—

मुमुक्षु र्जन्म निर्विण्ण. शान्त चित्तो वशी स्थिर: ।
जिताक्ष. सवृतो धीरो, ध्याता शास्त्रे प्रशस्यते ॥

ध्यान साधक मे निम्नलिखित आठ गुण आवश्यक माने गए है-

(१) **मुमुक्षु**—ध्यान साधना का प्रमुख लक्ष्य है मुक्ति प्राप्त करना। अत. समीक्षण ध्यान के साधक मे मुमुक्षु भाव अर्थात् ससार के बन्धनो से कर्म से मुक्त होने की तीव्र अभिलाषा होनी चाहिये। ध्यान मे आने वाले विघ्नो-बाधाओ को वही व्यक्ति सहर्ष पार कर सकेगा जिसके अन्तरग मे मुक्ति तीव्र तमन्ना होगी।

(२) **जन्म निर्विण्ण**—जिसके हृदय मे पुन-पुन होने वाली जन्म-मृत्यु की परम्परा के प्रति उदासीनता हो तथा जो पौद्गालिक सुखो के प्रति निर्वेद प्राप्त कर चुका हो।

(३) **शान्त चित्त**—समीक्षण ध्यान साधक का चित्त शान्त होना चाहिये। मानसिक उद्वेगो मे लिप्त रहने वाला व्यक्ति ध्यान साधना की योग्यता प्राप्त नही कर सकता है।

(४) **वशी**—जिसकी चित्त वृत्तिया स्वय के नियत्रण मे हो, जो मन को संयमित रख सकता हो, वही ध्यान साधना में शीघ्र सफलता प्राप्त कर सकता है।

(५) **स्थिर**—जो मन और तन को स्थिर रखने का अभ्यासी हो—जिसका आसन स्थिर हो, दैहिक चपलता न हो।

(६) **जिताक्षः**—जो इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर सकता हो, वासना की ओर दौडती हुई इन्द्रियो को नियन्त्रित-सयमित किये बिना ध्यान साधना नही हो सकती है। अत. साधक के लिक यह आवश्यक है कि वह जितेन्द्रिय हो।

(७) **संवृत्त**—जिसने अपनी मानसिक, वाचिक एव कायिक वृत्तियो को सवृत कर लिया हो अर्थात् जो पाचो आस्रव द्वारो को अवरुद्ध करके सवर साधना मे प्रवृत्त हुआ हो, वही ध्यान साधना मे गतिशील बन सकता है।

(८) **धीर**—जिसकी चेतना में धैर्य का सम्बल हो। जो उपलब्धि के प्रति बार-बार अधीर नही बनता हो और ध्यान के क्षणो मे आने वाले उपसर्गों के समय अपना धैर्य नही खोता हो। क्योंकि ध्यान के क्षणो मे देह के प्रति अनासक्ति का भाव बनाया जाता है,

अतः उस समय कैसी भी विकटतम परिस्थिति उपस्थित हो साधक को साधना मे धैर्य रखना होता है ।

ज्ञानार्णव ग्रन्थ के अनुसार ये आठ लक्षण ध्यान साधक के लिये बताए गए है । ये भावात्मक लक्षण हैं, किन्तु कुछ परिपार्श्विक परिस्थितिया भी ध्यान की भूमिका का निर्माण करती है, जिनके प्रति भी सजग-सतर्कता आवश्यक है । यद्यपि इनके सन्दर्भ मे रचना के प्रारम्भ मे ही विस्तृत सकेत दिये जा चुके हैं, तथापि एक सामान्य सकेत यहा आवश्यक समझा जा रहा है ।

(१) समीक्षण ध्यान साधना के समय-समय की नियमितता का ध्यान साधना की उपलब्धियो मे प्रेरक निमित्त बनता है, अतः समय की पाबन्दी नितान्त आवश्यक है ।

(२) ध्यान के पूर्व शरीर शुद्धि अर्थात् लघुशका, दीर्घशका आदि शारीरिक प्रवृत्तियो से निवृत्त हो लेना चाहिये ताकि ध्यान मे किसी प्रकार तदनुरूप व्यवधान उत्पन्न न हो ।

(३) साधना के लिये स्थान शान्त-एकान्त प्राकृतिक दृष्टि मे रम्य हो तो श्रेष्ठ है ।

(४) ध्यान मे यथाशक्य पालथी लगाकर ऐसे सरल आसन से बैठना चाहिये कि जिससे लम्बे समय तक बैठने पर भी किसी प्रकार का तनाव उत्पन्न न हो और दीर्घकाल तक बैठा जा सके ।

(५) साधना के समय शरीर पर एक दम ढीले वस्त्र होना लाभप्रद है । शीतनिवारण के लिये कम्बल आदि का प्रयोग हो सकता है, स्वेटर आदि का नहीं ।

(६) ध्यान के समय मेरुदण्ड (पीठ की हड्डी) सीधा रहना चाहिये, जिससे सुषुम्ना नाडी मे प्राण सचार होने मे व्यवधान न पड़े ।

(७) यथासम्भव ध्यान सीधा जमीन पर बैठकर न किया जाये, क्योंकि इससे साधना काल मे उत्पन्न होने वाली शारीरिक ऊर्जा-विद्युत भूमि मे उतर जाती है । अत. सूखे घास-फूस का आसन श्रेष्ठ माना गया है । इसके बाद सूती वस्त्रो का आसन और फिर ऊन के आसन का नम्बर आता है ।

(८) साधना काल में निम्न बातों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये:-

(१) चित्त को पूर्ण एकाग्र बनाये रखने का प्रयास रहना चाहिये। ज्योंही वह भटकने लगे, उसे मूल केन्द्रीय विषय पर ले आने का प्रयास करना चाहिये।

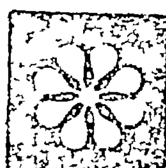
(२) किसी प्रकार की ऊब के बिना साधना के प्रति सुदृढ बने रहना चाहिये। अनुत्साह, नीरसता, मन का उचटना, शीघ्र लाभ नही होना, अस्वस्थता एव अन्य सासारिक कठिनाइयो के क्षणो मे भी मन मे ध्यान के प्रति रूचि बने रहना चाहिये। इन विघ्नो का डटकर मुकाबला करने की क्षमता अर्जित करनी चाहिये।

(३) साधना मे निरन्तरता बने रहना आवश्यक है। अत्यधिक आवश्यक कार्य के अतिरिक्त साधना के कार्य मे व्यवधान नही डालना चाहिये।

(४) साधक का आहार-विहार सात्विक होना चाहिये।

उपर्युक्त स्थितियो पर सावधानी रखते हुए यदि प्रस्तुत समीक्षण ध्यान विधियो का अनुशीलन किया जाता है तो तनाव मुक्ति और आत्म-शाति के द्वार निश्चित ही उद्घाटित हो सकते हैं।

यह कहा जा चुका है कि ध्यान-चर्चा का नही, प्रयोग का विषय है। आप और हम इस साधना के प्रयोग-अनुशीलन करे। साधना की गहराई मे उतरते जाये—उतरते जाये....आनन्द स्वत उपलब्ध होगा।



समीक्षण ध्यान : साधना

समीक्षण ध्यान के दार्शनिक किंवा वैचारिक पक्ष पर एक सामान्य चर्चा की जा चुकी है । किन्तु यह स्पष्ट किया जा चुका है, कि समीक्षण ध्यान केवल वैचारिक या काल्पनिक हवाई किला ही नहीं है । समीक्षण ध्यान ही नही, कोई भी ध्यान साधना, यदि वैचारिक सैद्धान्तिक परिवेश तक ही सीमित है, तो वह अधूरी है या यो कहे कि वह ध्यान नही, केवल विचारो का सकलन मात्र है ।

ध्यान तो एक ऊर्जस्विल प्रक्रिया है, जिसे अनुभूति के धरातल पर जीया जाता है । ध्यान के सन्दर्भ मे लच्छेदार भाषण दे दिया जाय, उस पर वृहत्काय ग्रन्थ लिख दिया जाय और उसे बहुत सुन्दर ढंग से व्याख्यायित कर दिया जाय, क्या इसे ध्यान साधना कहा जा सकता है ? हा, वह ध्यान की विवेचना कही जा सकती है, ध्यान साधना नही ।

ध्यान साधना का अर्थ है—जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे तन्मयता-तल्लीनता अथवा एकावधानता एव समरसता का घटित होना—और वह होता है ध्यान की प्रयोगात्मक प्रक्रिया के द्वारा । ध्यान के प्रयोग मे डूबता हुआ साधक उस गहराई को छू जाता है, जो ध्यान पर लाख पृष्ठ पढ लेने या हजारो पृष्ठ लिख देने पर नही हो सकता ।

यह सत्य है कि ध्यान की प्रयोगात्मक पद्धतियो को समझने के लिए ग्रन्थो की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है । साधक को कुछ दिग्बोध प्राप्त हो सकता है, किन्तु तज्जनित आनन्द तो ध्यान-साधना की गहराई मे पैठने पर ही प्राप्त हो सकता है । अध्ययन—अध्ययन ही रहता है, अनुशीलन नही । आनन्द अध्ययन मे नही अनुशीलन मे होता है । जैसे किसी को मिठाई का ज्ञान है कि वह कैसे बनती है, किन तत्वो से बनती है और कितनी स्वादिष्ट लगती है । किन्तु जब तक उसे खाया नही जाता, मिठाई का स्वाद-जनित आनन्द नहीं लिया जा सकता है । ठीक इसी प्रकार यह समझ लिया जाय कि ध्यान की यह प्रक्रिया है, इस विधि से ध्यान किया जाता है और वह

इतना आनन्द देता है, कोई आनन्द नहीं दे सकता है । जब तक ध्यान को अनुशीलन में नहीं लाया जाता, जब तक उसे जीया नही जाता, ध्यान आनन्दप्रद नही हो सकता है । 'ध्यान तो आनन्द का उत्साह-केन्द्र है' । ध्यान से बढकर आनन्द प्राप्ति का और कोई साधन हो ही नही सकता । या यो कहें 'ध्यान और आनन्द एक ही सिक्के के के दो पहलू है' या पर्यायवाची शब्द है । ध्यान अर्थात् आनन्द— आनन्द अर्थात् ध्यान ।

किन्तु समस्या यह है कि ध्यान साधना मे उतरा कैसे जाय ? ध्यान साधना किस विधि, किस प्रक्रिया से की जाय ? कौनसा सुगम मार्ग है जिसके द्वारा ध्यान साधना के प्रयोग कर अन्तरग की गहराई मे डुबकी लगाई जाय ?

समीक्षण ध्यान साधना : प्रयोग और भूमिका

वस इन्ही जिज्ञासाओ के समाधान का प्रयास प्रस्तुत प्रकरण मे किया जा रहा है । समीक्षण ध्यान साधना केवल वैचारिकता से अनुवद्ध साधना नही है, उसमे अनुशीलन की पूरी प्रक्रिया जुडी हुई है । उन्ही प्रक्रियाओ मे से कुछ का यहा विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

यहां यह ध्यान देने योग्य है कि प्रस्तुत समीक्षण ध्यान विधियों मे जो कुछ लिखा जा रहा है । वह अनुभूत विधियो के रूप मे लिखा जा रहा है । इसकी प्रयोगात्मकता के दो रूप हो सकते हैं एक आत्म-प्रेरणा (ऑटो सजेशन Auto Suggestion) और दूसरा पर-प्रेरणा (सजेशन Suggestion) ।

साधक जव कभी ध्यान साधना में सक्रिय हो, इन विधियों मे उल्लिखित शब्दावली का तन्मयतापूर्वक उच्चारण करता चला जाय एवम् ठीक वैसा ही फीलिग (अनुभूति) का अनुभव करता चला जाय । स्वय के द्वारा दोहराये जाने वाली शब्दावली की इस प्रक्रिया को 'ऑटो सजेशन' (Auto Suggestion) 'या आत्म-प्रेरणा' कहते हैं ।

दूसरी विधि में मुख्यतौरपर सामूहिक साधना के प्रयोग होते है । इसमें एक साधक गम्भीर-गहन शब्दो मे उल्लिखित शब्दो के अनुसार अपने भीतर वैसा अनुभव करते चले जाते है । इस प्रक्रिया को पर-प्रेरणा या सजेशन (Suggestion) कह सकते हैं ।

समीक्षण ध्यान साधना की इन दोनो प्रक्रियाओ का मूल उद्देश्य एक ही है कि साधक अधिक से अधिक आत्मकेन्द्र के निकट होता चला जाए। बन्धन से मुक्ति की ओर बढता जाय एव परभाव से ऊपर उठकर स्वभाव मे स्थिर हो जाय। यही तो हमारी साधना का मूल उद्देश्य है कि साधक पूर्णतया माध्यस्थ्य रूप मे रूपान्तरित हो जाय, जहां स्व-पर के सभी भेद मिट जाते हैं।

समीक्षण ध्यान पूर्व भूमिका (१)

ध्यान-साधना की प्रयोगात्मक प्रणालियो को समझाने के पूर्व उसकी भूमिका शुद्धि को समझ लेना अति उपयोगी सिद्ध होता है। कुछ स्थान एव परिस्थितिया ऐसी भी होती हैं जो ध्यान साधना के प्रतिकूल वायु मण्डल का निर्माण करती है अथवा साधक चित्त को पुनः-पुनः उद्वेलित करके ध्यान मे विक्षेप उत्पन्न करती है। एक अच्छे ध्यान-साधक के लिए यह सब जान लेना आवश्यक है कि किन परिस्थितियो मे ध्यान लगेगा और कौन-से तत्त्व ध्यान मे विघ्न उपस्थित करते हैं। यहा उनका सक्षिप्त, किन्तु सार-गर्भित विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

द्रव्यादि-शुद्धि-अशुद्धि

जैन तत्व विवेचना पद्धति मे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की बडी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वहा किसी भी तत्त्व की सम्पूर्ण विवेचना तभी हो सकती है जब कि उसमे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मे चिन्तन किया गया हो। ध्यान-साधना की भूमिका शुद्धि भी तभी बन सकती है जब कि उसमे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की शुद्धि हो। द्रव्यादि चारो की शुद्धता ध्यान साधना को सुगम बना सकती है, तो चारो की अशुद्धता ध्यान को दुरूह बना देती है। ध्यान-साधना मे द्रव्यादि की शुद्धता-अशुद्धता का निम्न बिन्दुओ के आधार पर चिन्तन किया जा सकता है।

द्रव्य—

ध्यान की द्रव्य सम्बन्धी विवेचना मे ध्यान के लिए उपयोगी-अनुपयोगी द्रव्य-आसनो एव आहारादि की विवेचना होती है। साधक चित्त की शुद्धता-अशुद्धता का मानदण्ड भी द्रव्य विवेचन मे ही आ जाता है।

वर्जित द्रव्य—

कुत्सित अथवा विकार बढ़ाने वाले आसन एव तामसिक आहार ध्यान-साधक के लिये वर्जित माने गए हैं । इसी प्रकार घृणित-या विक्षेपकारक पदार्थ—अस्थि, मांस, रक्त, चर्म, मेद, मज्जा, चर्वी, मृत जानवरो के कलेवर, खान–पान के पदार्थ पक्वान्न, ताम्बूल, औषधिया, तेल, इत्र, पलग, आसन शैय्या, आभूषण, शृङ्गार, प्रसाधन के पदार्थ, स्त्री आदि के कामुकतापूर्ण चित्र, इत्यादि द्रव्य जहा पडे हो, वहा ध्यान साधको के चित्त मे स्थिरता नही वन पाती है, इन अशुभ या चित्त विचलित करने वाले द्रव्यो के वीच मनो निग्रह अत्यन्त कठिन होता है, अत इन द्रव्यो की उपस्थिति ध्यान के लिये वर्जनीय मानी गई है ।

शुद्ध द्रव्य—

शुद्ध निर्जीव द्रव्य पृथ्वी–शिलापट्ट पर, काष्ठ के पाट एव चौकी पर, पराल आदि घास के आसन पर, ऊनी या सूती सादे वस्त्र पर ध्यानस्थ होने से विचारो मे सात्विकता का सचार होता है, अतः ये द्रव्य ध्यान-साधक के लिए शुद्ध या उचित माने गये हैं ।

आहार—

समीक्षण ध्यान-साधक को परिमित एव सात्विक हल्का आहार करना होता है । आहार न अधिक घृतादि से गरिष्ठ हो और नअधिक रुक्ष। अधिक मिर्च-मसाले वाले तामसिक आहार नही होकर ऋतु के अनुसार अपनी शारीरिक प्रकृति के अनुकूल आहार होना चाहिये । समयानुसार परिमित मात्रा मे लिया गया निर्दोष आहार चित्त-स्थिरता मे सहयोग करता है । आहार का साधक के चित्त पर वहुत गहरा प्रभाव पडता है । अत. ध्यान-साधक को इस विषय मे वहुत अधिक सतर्क-सावधान रहना चाहिये ।

आसन—

ध्यान–साधना के लिये आसन का भी अपना अलग ही महत्त्व होता है । वैसे आगमो मे वीरासन, लगुडासन, अम्वखुज्जासन, गोदूहासन आदि अनेक आसनो का उल्लेख मिलता है, किन्तु वर्तमान युग मे शारीरिक सगठन और शक्ति को देखते हुए इन आसनो मे अधिक समय तक स्थिरता वन पाना कठिन होता है । अतः आधुनिक

साधको के लिये पद्मासन, पर्यंकासन, दण्डासन अथवा सुखासन ही अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं ।

पद्मासन—

पालथी मारकर दोनो जांघो पर दोनों पैर मिश्रित रूप से जमाकर विकसित कमल के समान बायें हाथ की हथेली पर दाये हाथ की हथेली ऊर्ध्वमुखी रखकर नाभि के निकट स्थिर रखकर सुस्थिर रूप मे बैठना पद्मासन है ।

पर्यंकासन—

साधारण पालथी लगाकर उपर्युक्त विधि से हाथो को रखकर बैठना पर्यंकासन है ।

दण्डासन—

दण्ड के समान सीधे-स्वस्थ सुस्थिर खडे रहना दण्डासन है ।

उपर्युक्त तीनो आसन सुगम होते है । अतः इनमे साधक कुछ अधिक समय तक स्थिर रह सकता है । ध्यान-मुद्रा मे अधिक समय तक आसन से स्थिर हो जाना साधना की गहराई मे प्रवेश के लिये लाभप्रद माना जाता है ।

समीक्षण ध्यान साधक के लिये उपर्युक्त तीनो आसनो मे मे किसी एक आसन पर स्थिर होकर नासाग्र-दृष्टि अर्थात् नाक के अग्रभाग पर दृष्टि को केन्द्रित करके अथवा प्रवेश केन्द्र-भृकुटि मध्य-स्थान पर चित्त स्थिर करके शारीरिक सभी क्रियाओ का अवरुधन कर सभी मानसिक तनावो से मुक्त होने हेतु ध्यान मुद्रा साधना चाहिये । यह समस्त प्रक्रिया द्रव्य शुद्धि की प्रक्रिया है ।

सहायक

द्रव्य शुद्धि मे एक बात की तरफ और ध्यान जाना चाहिये, वह है सहयोगी । ध्यान साधना मे प्रारम्भ मे ऐसे सहयोगी मार्गद्रष्टा की आवश्यकता होती है जो स्वय ध्यान साधना की गहरी अनुभूतियों से संयुक्त हो और साधक को स्खलनाओ मे बचाकर सतत सावधान कर सके । उचित सहयोगी के अभाव मे साधना मे गति शीघ्रतापूर्वक

एव व्यवस्थित नही हो सकती है। अतः साधना के आरम्भ काल मे ही नही, उसकी मध्यम स्थिति मे भी उच्च अनुभवी सहयोगी का सहकार साधक को साधना में बहुत अच्छी स्थिति पर पहुचा सकता है। सहायक को हम 'गुरु', मार्गद्रष्टा अथवा और किसी भी नाम से पुकार सकते हैं। जो भी महान् आत्मा हमे ध्यान मे सहयोग प्रदान करे उसके प्रति पूज्यता अथवा आदर का भाव हमारी साधना में निखार लाता है।

क्षेत्र—

द्रव्य के समान ही क्षेत्र-जनित अनुकूलता प्रतिकूलता भी साधक चित्त को प्रभावित करती है। अत समीक्षण ध्यान के पूर्व ध्यान के अयोग्य अथवा योग्य क्षेत्र की परख एव योग्य क्षेत्र के चयन का परिज्ञान भी आवश्यक हो जाता है।

अयोग्य क्षेत्र—

पहले हम ध्यान-साधना के अयोग्य क्षेत्र–साधना मे विक्षेप उपस्थित करने वाले अशुद्ध क्षेत्रो को समझ लें। निम्न बिन्दुओ से समझा जा सकता है।

(१) जिन स्थानो पर दुष्ट, अन्यायी व अधार्मिक राजा का स्वामित्व हो, जहा पाखण्डी, कुलिगी अथवा म्लेच्छ लोगो का प्राबल्य हो तथा जहा इन स्थितियो के कारण ध्यान मे विघ्न अथवा उपसर्गों की अधिक सम्भावना रहती हो, वे क्षेत्र ध्यान–साधना के अयोग्य माने गए है।

(२) जहा पर मन को रागात्मक भाव की ओर खीचने वाले पदार्थ-पुष्प-फल, पत्र-धूप-दीप, अथवा मदिरा मास आदि पड़े हो, वहा मन के चचल होने की बहुत अधिक सम्भावना है। मन मे राग भाव की उत्पत्ति होने से ध्यान साधना की भूमिका ही नही बन बन पाएगी।

(३) जहा पर व्यभिचारी स्त्री-पुरुष क्रीड़ा करते हो, कामोद्दीपक और श्रृङ्गारमय चित्र लगे हुए हो, काम-क्रीड़ा के शास्त्रो का पठन-पाठन होता हो, वाद्य-यन्त्र बजते हो ऐसे स्थानो पर विकार

उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। वहा चित्त चांचल्य बना रहने से ध्यान नही हो सकता है।

(४) जहा जुआ खेला जाता हो, कैदी रहते हो, शिल्पकार (कलाकार, चमार, सुनार, लुहार, रगरेज) आदि रहते हो, ऐसे स्थानो पर चित्त विग्रह होने की सम्भावना रहती है।

(५) जहा नपुंसक, पशु, तिर्यंच प्राणी, कुलक्षणा नारी, भाड, नटखट पुरुष आदि अयोग्य प्राणी रहते हो, ऐसे स्थान पर अप्रतीति यानी अविश्वसनीयता की सम्भावना बनी रहती है।

(६) जहा मल्ल युद्ध और कुश्तिया तथा लडाई-झगडा होता हो, झगडे के शास्त्र पढे जाते हो, पचायती मामले चलते हो ऐसे स्थानो पर सक्लेश पैदा होने की सम्भावना रहती है।

(७) जहा स्वामी द्वारा किसी का भी प्रवेश किया जाना निषेध किया गया हो, ऐसे स्थानो पर रहने से चोरी, क्लेश और मध्य मे ही निकाले जाने की सम्भावना रहती है।

योग्य क्षेत्र--

उपर्युक्त सभी क्षेत्र ध्यान साधना के अयोग्य माने गए है। ध्यान साधना के लिये ऐसे निरवद्य स्थान चाहिये, जहां का वातावरण शान्त-प्रशान्त हो और जो साधक-चित्त को अन्तरग तक प्रभावित करता हो।

ध्यान के लिये उपयुक्त क्षेत्र

ध्यान के लिये उपयुक्त क्षेत्रों अथवा स्थानो को सामान्य रूप से निम्न रूप मे समझा जा सकता है—जहां ध्यान साधक के चित्त मे समाधि शान्ति का सचार हो सकता है—

(१) निर्जन स्थान—जहा मनुष्य आदि की बस्ती न हो आना जाना विशेष आवागमन न हो, ऐसे स्थान मे वातावरण शात प्रशात बना रहता है। चित्त में किसी प्रकार विक्षेप उत्पन्न नही होता है।

(२) नदी-तालाब अथवा समुद्र के किनारे वाले स्थान जो

वृक्षो के झुरमुटों से शोभित हो, जहा किसी प्रकार का जनरव या कलरव न हो ।

(३) ऐसे स्थान जहां नीचे तो हरित वनस्पति से रहित हो किन्तु ऊपर लताओ के मण्डप बन गए हो । ये प्रकृति के बनाये हुए मण्डप बडे सुहावने और मनः शान्ति के केन्द्र होते है ।

(४) पर्वत का कन्दरामय स्थान, जहा पर्वतों से कुछ हिस्से ऐसे निकले हुए हो जो बाहर से लघु कन्दराओ का रूप लिये हो व ऊपर से सहज ही प्राकृतिक पत्थरो की छाया बन गई हो ।

(५) गिरि-गुफाओ में, जहा के वातावरण मे एकदम सौम्य मधुरता व्याप्त हो रही हो, अन्य आम व्यक्ति जहा पहुंच नही सकते हो ।

(६) श्मशान की छत्रियो वाले सुनसान स्थान, जहा रात्रि अथवा विकाल मे आम व्यक्ति जाने से भयभीत रहता है ।

(७) सूखे वृक्षो की कोटर अर्थात् बडे-बडे वृक्षो के सूखे तनों में बन गई खोखले, जहा आम व्यक्ति की दृष्टि ही नही पडती है ।

(८) शून्य ग्राम अथवा शून्य गृह । जो ग्राम बस्तिया या घर उजड गए हो । वहां कोई रहने वाले न हो । इसी प्रकार शून्य देवालय जीर्ण-शीर्ण खण्डहर वाले मकान आदि ऐसे स्थान जो जन संकुल वातावरण वाले न हो ।

इन सबके अतिरिक्त ऐसे कोई भी क्षेत्र हो, जो अशुद्ध स्थान में वर्णित सभी दोषो से रहित हो ।

उपर्युक्त सभी स्थान निर्जीव, एवं एकान्त व शान्त हो, तो मन को भी शान्त-प्रशान्त बनाते हैं और चेतना को ध्यान समाधि मे ले जाकर आत्मशांति प्रदान करते हैं ।

काल—

ध्यान-साधना मे काल किंवा समय का निर्धारण भी कम महत्त्व नही रखता है । कुछ काल खण्ड अथवा समय ऐसे होते है, जिनमे ध्यान साधना का हो पाना अत्यन्त कठिन होता है ।

काल शब्द यहा सामान्य समय के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, इसके दो रूप हैं—(१) काल खण्ड अर्थात् दीर्घ आलावधि जैसे आरे, ऋतु आदि और (२) दिन-रात के अष्ट प्रहर मे से कौन-कौन से और कितने प्रहर। यहा दोनो दृष्टियो से ध्यान साधना के लिये उपयोगी-अनुपयोगी काल का विवेचन दिया जा रहा है, ताकि समीक्षण ध्यान साधक ध्यान-साधना के लिये समुचित समय का निर्धारण कर सके।

अशुभ अथवा निषिद्ध काल—

अपेक्षाकृत रूप से पहला, दूसरा और तीसरा आरा और छठा आरा ध्यान के अयोग्य माना गया है। इनमे धार्मिक पुरुषो के अभाव मे ध्यान क्रिया की साधना अति स्वल्प ही होने की संभावना रहती है। इसी प्रकार अति उष्णकाल, अति शीतकाल, अति जीवोत्पत्ति-काल, दुष्काल, विग्रहकाल, रोगग्रस्तकाल इत्यादि समयो मे भी ध्यान साधना बराबर नही हो सकती है।

क्योकि ये अथवा ऐसे ही अन्य कालविग्रह करने वाले गिने जाते है। उन समयो मे ध्यान करने वाले साधक के चित्त मे विक्षेप बना रहता है।

शुभ काल—

ध्यान के लिये सर्वोत्तम काल तो चौथा आरा ही माना जाता है। क्योंकि उसमें वज्र, ऋषभ, नाराच आदि संहननो की उत्तम संस्थानों की एवं अन्य अनुकूल संयोगो की विशेषताएं रहा करती है। यही कारण है कि उस समय मरणांतक कष्ट उपस्थित होने पर भी उसे सहन करते हुए ध्यान मे स्थिर रहा जा सकता था।

इस पंचम काल मे शारीरिक संस्थानों और संहननों की न्यूनता होने से उस प्रकार का ध्यान नहीं हो सकता है तथापि ध्यान का एकदम अभाव नहीं समझना चाहिये। पंचम काल मे भी ध्यान-साधना हो ही सकती है। शुक्ल ध्यान जैसी उच्च नही तो धर्म ध्यान जैसी सामान्य साधना तो हो ही सकती है। फिर भी इस काल मे ध्यान का समय शीत-उष्ण काल आदि अपनी प्रकृति के अनुसार लेना चाहिए।

उत्तराध्ययन सूत्र मे "वीयं झाणं झियायई" ऐसा कहा गया है । जिसका तात्पर्य यह है कि दिन के और रात्रि के द्वितीय प्रहर में ध्यान किया जाय । कितने ही ग्रन्थों में रात्रि के चौथे प्रहर में ध्यान करने का उल्लेख पाया जाता है । यह द्रव्य, क्षेत्र, काल और विधि की विवक्षा और शुभाशुभ स्थिति केवल अपूर्ण ज्ञानी और अस्थिर चित्तवृत्ति वालो के दृष्टिकोण से कही गई है, किन्तु जो पूर्ण ज्ञानी हैं, अडोलवृत्ति वाले है और निर्विकार हैं, उनके लिए तो ध्यान की दृष्टि से सभी क्षेत्र, द्रव्य और काल अनुकूल ही हुआ करते है ।

भाव—

ध्यान का मूल अग है भाव, विचार अथवा अथवा चिन्तन। विशुद्ध भा-विचार-चिन्तन में ही विशुद्ध ध्यान-साधना सम्भव है । वैसे हमारे मन में शुभ एव अशुभ दोनो ही प्रकार की भाव तरगें उठती हैं । दोनो मे ध्यान साधना के योग्य विचार होने पर ही ध्यान साधना की गहराई मे प्रवेश हो सकता है ।

अशुभ भाव—

यो तो आर्त्तध्यान एवं रौद्रध्यान की स्थिति मे होने वाले सभी विचार अशुभ अथवा अशुद्ध भाव की श्रेणी मे आते हैं । अत. इन दोनो ध्यानो मे ध्यान-साधना अच्छी तरह से नही हो सकती है। इसके अतिरिक्त विषय, कषाय, आश्रव, अशुभ योग, चपलता, मानसिक अस्थिरता, असमाधि, विफलता, कठोरता, अधैर्य, राग-द्वेष, एव नास्तिकता जैसे कुत्सित विचारो को भी अशुभ भाव समझना चाहिये । इन विकृतियो के समय चित्त मे चाचल्य बना रहता है, जो ध्यान-साधना का सबसे बडा शत्रु माना गया है । ऐसे अशुभ योगो अथवा अशुभ भावो मे ध्यान नही हो सकता है ।

शुभ भाव—

समीक्षण ध्यान-साधना के लिये जिन भावो की अपेक्षा होती है, वे प्रशस्ततम भाव हैं– आत्मस्थ होने के एव विश्व-मैत्री के उत्प्रेरक । ध्यान-साधना मे चित्त की स्थिरता तभी सम्भव है, जबकि उसमे राग-द्वेष के वैचारिक भाव न होकर करुणा, दया, स्नेह व सौजन्य के

मृदुल भाव हो । विचारधारा इतनी प्रशस्त हो कि मन मे कभी किसी को देखकर द्वेष या राग का उदय न हो । मन सदा समाहित एव समाधिस्थ रहे ।

चूंकि ससार मे अनेक प्रकार के लोग होते है और उन सबके प्रति हमारे मनो मे अनेक प्रकार के विचार उठते हैं । मानव-मानव का सामाजिक, पारिवारिक एव राजनैतिक आदि दृष्टियो से एक दूसरे से सम्पर्क, सम्बन्ध बनता ही है । उन सम्बन्धो मे सम्मुखस्थ व्यक्ति जिस स्वभाव का होता है, प्राय उसी के अनुरूप हमारे मन की प्रक्रिया होती है और इस रूप मे मन राग-द्वेष की गलियो मे भटकने लगता है । फिर ये अशुद्ध भाव ही ध्यान साधना मे बाधा पहुचाते हैं ।

ऐसी स्थिति मे अपने भावो को प्रशस्त बनाए रखने के लिए क्या किया जाय, यह एक जटिल प्रश्न है । क्या हम दुनिया के लोगो का स्वभाव बदल सकते है ? यदि नही तो फिर हमे ही अपने आपके स्वभाव को बदलना पडेगा । समीक्षण ध्यान साधक दुनिया को नही, स्वय को बदलने का सकल्प करता है ।

इसके लिए जैनाचार्यो ने संसार के समस्त प्राणियो को चार भागो मे विभक्त कर दिया और यह निर्देश किया कि साधक उन चारो पर चार प्रकार से चिन्तन करे, जिन्हे चार भावना कहा गया है । वे चार भावनाएं निम्न रूप से समझी जा सकती हैं ।

"सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम् ।
माध्यस्थ्य भाव विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।"

--अमित गति द्वात्रिंशिका-१

मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ्य ये चार प्रकार के प्रशस्त भाव होते हैं, जो क्रमश सभी प्राणियो पर गुणीजनो पर दुःखी जीवो पर एवं दुर्जनो पर बनाए जाते या रखे जाते हैं ।

मैत्री भावना—

"मित्ती मे सव्व भूएसु वेरं मज्झ न केणइ ।"

के आर्ष वाक्य के अनुसार ध्यान साधक को सदा सर्वत्र यह भावना

रहनी चाहिये कि ससार के समस्त प्राणियो पर मेरा मैत्री भाव हो, मेरा किसी भी आत्मा के साथ वैर भाव न हो ।

भगवती सूत्र आदि आगमो के अनुसार इस आत्मा ने ससार की प्रत्येक आत्मा के साथ अनन्त वार सम्बन्ध स्थापित कर लिये हैं। आज के पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-वहिन, माता-पुत्री, पुत्र-वधू आदि सम्वन्ध है, सभी सम्वन्ध अनन्त वार प्रत्येक आत्मा के साथ किये जा चुके है । इस दृष्टि से जव ससार की सभी आत्माए अपनी निकटतम रही हैं, तो फिर वैर-विरोध किससे किया जाय ? सभी आत्माएं तो अपनी मित्र रह चुकी है ।

इस प्रकार समीक्षण ध्यान-साधक यह प्रशस्ततम भावना रखता है कि ससार के समस्त सूक्ष्म बादर, त्रस-स्थावर प्राणी मेरे मित्र है । मैं किसी को भी किसी भी प्रकार की पीडा नही पहुचाऊ। जैसे मेरा निकट परिजनो के साथ प्रेम है, वैसा ही सभी प्राणियो पर प्रेम रहे । मेरे मन मे किसी के प्रति दुर्भाव उत्पन्न न हो । मैं ससार के समस्त प्राणियो को अपनी आत्मा के तुल्य समभू और यथाशक्ति सभी को सुखी वनाने का प्रयास करू ं । यह चिन्तन प्राणीमात्र पर मैत्री भावना का चिन्तन है ।

प्रमोद भावना—

प्रथम मैत्री भावना मे ससार के समस्त जीवो को सामान्य रूप से आत्मीयता प्रदान करने के वाद अन्य तीन भावनाओ मे समस्त सासारिक प्राणियो को तीन वर्गों मे विभक्त किया गया है ।

ससार मे कुछ व्यक्ति होते है जो अपने से अधिक गुणवान् है । ज्ञान के अनुपम कोप हैं । वीतराग वाणी पर प्रगाढ श्रद्धा रखने के साथ ही विशिष्ट श्रुत-सम्पन्न होते है और अपने ज्ञान एव श्रद्धा के द्वारा जन-मन मे वीतराग वाणी का प्रचार-प्रसार करते है । ऐसे ज्ञानपुञ्ज महापुरुपो के प्रति प्रमुदित होना, प्रमोद भावना है ।

इसी प्रकार अपने से श्रेष्ठ कवि, प्रवक्ता, व्याख्याता आदि प्रभावक महापुरुपो को देखकर मन मे ईर्ष्या का नही, श्रद्धा भाव का जागरण होना, उनका गुणोत्कीर्तन करना भी प्रमोद भावना के अन्तर्गत आता है ।

ससार मे अनेकानेक महान् आत्माए है—कुछ सदा आत्मध्यान मे लीन रहने वाली हैं, कुछ अल्पभाषी गुणग्राही हैं, तो कोई ध्यानयोग के उच्चकोटि से साधक हैं । कोई मासक्षमण आदि दीर्घ तपस्या करने वाले हैं, तो कोई सतत आत्मा मे ही रमण करते रहते है । कोई रस परित्याग का तप करके नीरस आहार से इन्द्रियो को वश मे करने वाले हैं, तो कोई अनेक प्रकार के काय-क्लेश तप से आत्मा को भावित करने वाले हैं । कोई त्याग, तप नही कर पाते हैं तो साधर्मी वात्सल्य के द्वारा सेवाभक्ति का लाभ लेते हैं ।

अनेक व्यक्ति गृहस्थ जीवन मे रहकर भी तप-त्याग एव व्रतों से अपनी आत्मा को सजाने का प्रयास करते हैं । तन-मन-धन से चतुर्विध सघ की सेवा करते है । साधु-साध्वियो को प्रासुक आहारादि दान देकर साता पहुचाते हैं ।

ऐसे गुणधारक महान् आत्माओ को देखकर मन मे प्रफुल्लता का अनुभव करना, उनके गुणो को अपने जीवन मे उतारने का प्रयास करना तथा यह चिन्तन करना कि हम महान् भाग्यशाली हैं जो हमे उच्च पुरुषो का सान्निध्य प्राप्त हुआ । हमारा क्षेत्र धन्य है, जहा ऐसे नर-पुगव उत्पन्न हुए । ऐसे उन्नत विचारो को प्रमोद भावना कहा जाता है । समीक्षण ध्यान साधक इस प्रमोद भावना के द्वारा गुणज्ञता एव गुणानुराग का विकास करता है, जो उसकी ध्यान साधना मे सहयोगी होता है ।

करुणा भावना—

अपने से अधिक गुणवान् लोगो पर प्रमोद भाव का जागरण होता है, तो ससार मे दूसरी कोटि के लोग भी हैं, जो अपने से अधिक दीन-हीन हैं, गुणो मे भी न्यून हैं, उन पर कैसी भावना रखी जाये ?

इस जिज्ञासा के समाधान के रूप मे करुणा भावना का निरूपण किया गया है । अनुकम्पा के पात्र दुःखी जीवो पर करुणा का उत्पन्न होना सम्यग्दृष्टि साधक का लक्षण माना है । दूसरे वर्ग के प्राणियो पर हृदय से करुणा उत्पन्न होना और उनके दु.ख दूर करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना ध्यान-साधना को सम्बल प्रदान करता है ।

सभी सासारिक प्राणी कर्म के अधीन है और शुभाशुभ कर्मों के अनुसार सुख-दु.ख का फलयोग करते रहते है अनेक व्यक्ति ऐसी दीन-हीन अवस्था मे रहते है कि उन्हे एक समय भर पेट भोजन नही मिलता है। तन ढकने को वस्त्र नही मिलते हैं। रहने को झोपड़ी भी नसीव नही होती है। फिर अनेक जीव वेदनीय कर्म के उदय से अनेक प्रकार की शारीरिक व मानसिक वेदनाए-पीडाए भोगते रहते हैं। अनेक अपराधो के कारण कारागृह मे बन्धनो मे पडे हुए दुःख भोगते हैं, तो अनेक लूले-लंगडे, बहरे-गूगे अपग होकर कष्ट पा रहे हैं।

मानव की यह दशा है तो मानवेतर प्राणियो का तो कहना ही क्या! वे तो प्रकृति से ही पराधीन हैं। बहुत सो को मनुष्य पालने के बहाने परतन्त्र बना देते हैं, तो बहुत से कर्मवश पराधीन बने हुए है और इस रूप मे अनेक कष्ट सहन करते रहते हैं।

ऐसे दुःखी प्राणी-मुंह से अथवा मूक रूप से प्रार्थना करते हैं कि कोई दयालु करुणा करके हमे इन दुःखो से बचावे, हमे जीवन-दान देवे, हमारा इन दुःख–सकटो से उद्धार करे।

ऐसे दु.खी, दयापात्र प्राणियो पर सहानुभूति किंवा करुणा का स्रोत फूट पडना, उनके दु.खों को दूर करने का प्रयास करना, उन्हे यथायोग्य प्रयत्नो से सुखी करने का प्रयास करना करुणा भावना है।

माध्यस्थ भावना—

विश्व में तीसरी कोटि के प्राणी हैं—दुर्जन, जिनके प्रति माध्यस्थ भाव अथवा उपेक्षावृत्ति का चिन्तन होना चाहिए।

संसार मे बहुत ऐसे प्राणी हैं, जो सद्गुणो की ओर दृष्टि ही नही करते हैं। सदा दुर्गुणो-दुर्व्यसनो में लिप्त रहते है। मान मे तने रहते है एव माया से वक्र-हृदय बने रहते है। अनाथ प्राणियो की निर्दयतापूर्वक हिंसा करते है। मद्य-मांस के भक्षण मे लिप्त रहते हैं। असत्य आचरण, चोरी एवं परस्त्री लम्पट होते हैं। विषय वासना में मस्त बने वैश्यावृत्ति में लिप्त रहते हैं। जुआ आदि सभी दुर्व्यसनो का सेवन करते है। देवगुरु धर्म से विपरीत रहकर १८ ही पापो मे रचे-पचे रहते हैं। आत्मप्रशंसा और परनिन्दा में ही रस लेते हैं।

हिंसादि दुष्वृत्तियो मे ही धर्म मानते हैं । ऐसे पाप-रुचि पाप-प्रवृत्त जीवो को देखकर भी उन पर द्वेष नहीं करके यह विचार करना कि बेचारे कितने अज्ञान मे जी रहे हैं । इनके कर्मों की कैसी विडम्बना है । अनन्त पुण्योदय से प्राप्त मोक्ष तक पहुंचाने वाले मनुष्य जन्मादि उत्तम सयोगो को ये नासमझी के कारण यो ही खो रहे हैं, अपना जीवन कुमार्ग मे लगाकर उसका वैसे ही दुरुपयोग कर रहे है, जैसे कोई चिन्तामणि रत्न के बदले कंकर खरीद रहा है ।

ऐसे नासमझ लोगो पर क्या द्वेष किया जाये । वे बिचारे इन कुकर्मों का फल भोगेंगे उस समय उनकी क्या दशा होगी ? कर्म-फल-भोग के समय ये कैसा पश्चात्ताप करेंगे । इनमे सद्‌बुद्धि का प्रवेश हो और ये अपने इस अमूल्य जीवन को समझें ।

इस प्रकार स्वय संक्लेशित जीवो पर राग-द्वेष नही करके मध्यस्थ भाव या उदासीन भाव रखना मध्यस्थ भावना कहलाती है ।

इन चारो भावनाओं में वहता हुआ समीक्षण ध्यान साधक साधना की उच्च भूमिका का निर्माण कर सकता है । यो द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव मे ध्यान की पूर्व भूमिका का निर्माण होने के वाद ध्यान-साधना की गहराई में सहज ही प्रवेश कर सकता हैं । समीक्षण ध्यान साधक को इस भूमिका के निर्माण का प्रथम अभ्यास अवश्य कर लेना चाहिये ।

समीक्षण ध्यान पूर्व भूमिका (२)

समीक्षण ध्यान साधना मे द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव की शुद्धि के अनुसार ही एक और पूर्व भूमिका की आवश्यकता होती है, जो चित्त स्थैर्य मे सहयोग प्रदान करती है । वह भूमिका है आसन की स्थिरता एव श्वासोच्छ्‌वास का व्यवस्थित होना । जिन्हे आसन और प्राणा-याम के रूप मे योग के अष्टागो मे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है ।

आसन—

आसन का कुछ विवेचन द्रव्य विवेचन के अन्तर्गत किया जा चुका है । यहा इतना ही विशेप समझना है कि ध्यान-साधक के लिए आसन की स्थिरता एव दृढ़ता की अत्यन्त उपयोगिना एवं आवश्यकता होती है ।

पद्मासन पर्यंकासन या और किसी शुभ सुखासन का इतना अभ्यास कर लेना चाहिये कि उसमे सुदीर्घावधि तक दृढ़तापूर्वक स्थिर-चित्त बैठा जा सके ।

आसन ऐसा सुगम-सरल होना चाहिए जिसमे किसी प्रकार का तनाव उत्पन्न न हो, मन चंचल न हो किसी प्रकार का विक्षेप उत्पन्न न हो । ध्यान–मुद्रा अथवा ध्यान का आसन स्थिर करते समय एक बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कोई भी आसन हो-खड़े हुए या बैठे हुए, पीठ–रीढ की हड्डी (मेरुदण्ड) सीधी रहनी चाहिए। मस्तक एवं गर्दन सीधे रहने चाहिये । यथाशक्ति दृष्टि नासाग्र पर स्थिर रहनी चाहिये तथा मन को किसी एक तत्त्व पर केन्द्रित करने का प्रयास होना चाहिये ।

आसन की दृढता अथवा ध्यान-साधना की भूमिका निर्माण मे यम–नियम का भी कम महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है । यम का अर्थ है—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह । नियम का अर्थ है–पवित्रता, सन्तोष, तप, त्याग, स्वाध्याय एव साधना के प्रति समर्पण । जब तक इन्द्रिय संयम एव चारित्रनिष्ठा के द्वारा उपर्युक्त गुणो को जीवन मे उतार नही लिया जाता है, तब तक न तो आसन की दृढता का अभ्यास हो सकता है और न ध्यान मे चित्त स्थिरता बन सकती है ।

ब्रह्मचर्य की साधना या चारित्र का निष्ठापूर्वक परिपालन ध्यान-साधना का अनिवार्य अग है । चारित्र शिथिल हो, इन्द्रिया अनियन्त्रित हो तो मन बार-बार विषयो की ओर ही दौडेगा वह साधना में स्थिर नही रहेगा । अतः मन को साधना मे स्थिर करने के लिए तथा दृढ आसन की स्थिरता के लिये यम-नियम के परिपालन को अति आवश्यक समझना चाहिये । किसी अपेक्षा से आसन की दृढता पर मन की दृढ़ता अवलम्बित है और आसन की दृढता स्वस्थ शरीर की अपेक्षा रखती है । स्वस्थ शरीर के लिये प्राणायाम एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है ।

प्राणायाम—

श्वास की प्रक्रिया को सुव्यवस्थित गति देने की विधि को प्राणायाम कहा जाता है ।

प्राणायाम के सन्दर्भ मे योग सम्बन्धी ग्रन्थो मे सुविस्तृत जानकारी मिलती है। यहा हम इतना ही समझने का प्रयास करेंगे कि प्राणायाम एक ऐसी प्रक्रिया है जो श्वास प्रक्रिया को सन्तुलित बनाती है, शरीर में ऑक्सीजन की मात्रा को बढाती है और प्राण कोष्ठो को अधिक शक्ति प्रदान करती है। ये सब उपलब्धिया ध्यान साधना मे अतीव उपयोगी होती हैं। यहा हम सक्षेप मे प्राणायाम की प्रक्रिया को समझने का प्रयास करेंगे।

प्राणायाम करने वाले की भूमिका का निर्देश करते हुए कहा है—प्राणायाम के साधक के लिये सर्वप्रथम नीरव, शुद्ध स्थान होना चाहिये। इसके अतिरिक्त स्वच्छ आसन, चिन्ता रहित मन एव निरोगी तन की आवश्यकता होती है। प्राणायाम की साधना खाली अथवा हल्के पेट के समय होनी चाहिये। भोजन करने के बाद अथवा लघु-शका की हाजत होने के समय प्राणायाम नही करना चाहिये। समय, सुविधा, स्थान एवं समुचित आसन की व्यवस्था के पश्चात् प्राणायाम प्रारम्भ करना चाहिये।

जैन ग्रन्थों के अनुसार प्राणायाम के प्रमुख दो भेद हैं—'बाह्य प्राणायाम' और 'आभ्यन्तर प्राणायाम'।

बाह्य प्राणायाम—

बाह्य प्राणायाम के प्रमुख तीन भेद हैं—कुम्भक, पूरक एवं रेचक।

हमारे पृष्ठ रज्जु मे तीन प्रमुख नाडिया हैं, जिन्हे इडा-इंगला, पिंगला और और सुषुम्ना के नाम से पुकारा जाता है। प्राणायाम की प्रक्रिया मे इन तीनो की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इन्ही के आधार पर तीनों प्रकार के प्राणायाम बनते हैं।

सर्वप्रथम इडा या इंगला नाडी अर्थात् दाहिनी नासिका के छिद्र से प्राणवायु को धीरे-धीरे उदर अथवा हृदय मे भरा जाता है। उस समय बायी नासिका को दाये हाथ की तर्जनी अगुली से बन्द रखना होता है। हृदय अथवा उदर मे वायु भरने की इस प्रक्रिया को कुम्भक प्राणायाम कहते है। उस वायु को एक सीमित समय तक भीतर ही रोके रखने को पूरक प्राणायाम और उसके पश्चात् पिंगला नाड़ी अर्थात् बायी नासिका के छिद्र से उस अवरुद्ध वायु को धीरे-धीरे

बाहर निकालना रेचक प्राणायाम कहलाता है। यह प्रक्रिया परिवर्तन क्रम से अर्थात् दूसरी बार पिंगला से श्वास लेना और इडा से छोड़ना, चलनी चाहिए। प्रतिदिन दिन मे तीन बार—प्रात, मध्याह्न एव सध्या को नियमित क्रम से यह साधना दोहराई जाती है। यह साधना दोहराद जाती है। यह साधना व्यवस्थित बन जाए तो सुषुम्ना का जागरण होता है।

इस क्रिया के द्वारा फिर केवल कुम्भक प्राणायाम की सिद्धि प्राप्त की जाती है। इसमें अन्य क्रियाए तो प्राणायाम जैसी ही रहती है। केवल कुम्भक की अवधि बढा दी जाती है—अर्थात्, श्वास को कुछ अधिक समय तक भीतर रोका जाता है। इस प्रक्रिया को प्रतिदिन तीनो समय बीस-बीस बार और फिर तीस-तीस बार दो माह तक किये जाने पर कुम्भक की साधना मानी जाती है।

प्राणवायु का मुख्य प्रभाव शरीर पर पडता है। ऑक्सीजन-प्राणवायु का अधिक मात्रा मे प्राप्त होना और दूषित वायु-कार्बनडाय ऑक्साइड का बाहर निकलना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभप्रद होता है।

केवल कुम्भक प्राणायाम की साधना से, ऐसा माना जाता है कि पित्त और कफ से उत्पन्न छाती के रोग, श्वास रोग आदि की उपशान्ति होती है। शरीर हल्का हो जाता है। मन स्वस्थ होने लगना है, परिणामत: मन मे उठने वाले संकल्प-विकल्प अपने आप शान्त होने लगते हैं। चित्त मे सहज स्थिरता की वृद्धि होने लगती है।

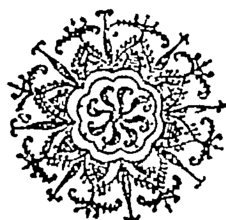
आभ्यतर प्राणायाम

मिथ्या, असत् एव दुर्विचारो से आत्मा को बचाना-अर्थात् पर-भाव रमणता का रेचन करना एव आत्म-भाव मे स्थिर रहने का अभ्यास करना आभ्यन्तर प्राणायाम है। आत्मा को ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भावो से परिपूरित करना पूरक प्राणायाम है। औपशमिक, क्षायोपशमिक भावो को अन्तरंग मे स्थिर करना आध्यन्तर कुम्भक प्राणायाम है।

इस प्रकार उभयमुखी प्राणायाम की साधना भी समीक्षण ध्यान की भूमिका का निर्माण करती है। इस भूमिका शुद्धि अथवा भूमिका

निर्माण के पश्चात् हमारा ध्यान के प्रयोगात्मक क्रिया पक्ष मे प्रवेश सुगम हो जाता है। इसी दृष्टि से समीक्षण ध्यान के साधना पक्ष की विवेचना के पूर्व उसकी भूमिका शुद्धि का प्रतिपादन किया गया है। अब हम अगले लघु प्रबन्धो मे ध्यान के प्रयोग पक्ष को इस रूप मे प्रतिपादित करने का प्रयास करेगे कि साधक लिखित शब्दावली का मननपूर्वक उच्चारण करता चला जाये या सामूहिक प्रयोग मे एक व्यक्ति उच्चारण करे और अन्य सभी साधक शब्दोच्चारण के अनुसार प्रक्रिया अपने अन्तरग मे अनुभव करते जाय।

मेरा विश्वास है कि ये विधिया साधक आत्मा को राग-द्वेष की परिणतियो से ऊपर उठने के साथ ही मानसिक तनावो से भी मुक्ति दिलायेगी। हम इस साधना प्रक्रिया से गुजरने का प्रयास करे, उपलब्धि अपने आप हस्तगत होगी।



१

विधि-विधान

ध्यान मुद्रा

ध्यान मुद्रा बनाले...........।

ध्यान मुद्रा मे पद्मासन, पर्यंकासन या अन्य किसी सुखासन से बैठे....।

आसन ऐसा हो, जिसमे लम्बे समय तक बैठने का अभ्यास हो........।

आसन मे किसी भी प्रकार का तनाव खिचाव न हो. ....।

ध्यान मुद्रा मे मेरु दण्ड (रीढ की हड्डी) सीधी रहे।

गर्दन सीधी रहे... ....।

नेत्र बन्द कर ले...... ....।

पूरे शरीर में किसी भी प्रकार तनाव खिचाव न हो.... ....।

ध्यान मुद्रा मे (यदि पर्यंकासन या पद्मासन से बैठे हो तो) हथेलियो को ऊपर की ओर खुली रहकर दोनों घुटनो पर जमालें...........।

हथेली का निचला हिस्सा घूटनो पर टिका रहे...... ....।

अगूठे के निकट वाली अगुली (तर्जनो) को अगूठे के साथ जोड़ दे .।

शेष तीन अंगुलियो को हल्के घुमाव के साथ ऊपर की ओर उठी रहने दें..........।

शरीर पर से पूरा ध्यान हटा दे ...... ।

अन्तरंग से अनुभव करे कि अब हम ध्यान मे प्रवेश कर रहे हैं.. ....।

अब हम बाहर की दुनिया से अलग हटकर अन्तरंग मे प्रवेश कर रहे हैं ....।

हमारी ध्यान मुद्रा सुस्थिर बन रही है...........।

हम ध्यान मुद्रा मे सुदृढ़ हो रहे हैं....... ....।

हमारा आसन अडोल अकम्प बन गया है.... ....।

अब बाहर के या शरीर सम्बन्धी कोई व्यवधान हमे विचलित नही कर सकते हैं....... ...।

अब हम अन्तर यात्रा के लिये पूर्णतया सन्नद्ध हो गए है...........।

२ गहरे श्वास--दीर्घश्वास

ध्यान मुद्रा बना लें..............।
(पूर्व की पूरी प्रक्रिया का पुनरावर्तन करें)
पांच या सात गहरे सास ले..........।
गहरे श्वास का अर्थ है, श्वास नाक से खीचें.......।
बहुत वेग से खीचे...........।
श्वास नाभि तक जाय.............।
फिर धीरे से उसे छोडें............।
श्वास लेते समय भाव करे...........।
प्राणवायु—ऑक्सीजन अधिक मात्रा में भीतर जा रही है... ....।
उसके साथ पवित्र विचार भीतर जा रहे हैं.... ..।
श्वास बाहर निकालते समय कल्पना करे...........।
कार्बनडाय ऑक्साइड—गन्दी हवा बाहर निकल रही है...........।
उसके साथ दूषित विचार बाहर निकल रहे है...........।
श्वास वेग से लें...........और पूर्वोक्त प्रक्रिया को दोहराते जाएं.. .....
श्वास को लय बद्ध बना ले... .... श्वास धीरे से छोड़ें और दूषित विचारो के बाहर निकलने के संकल्प को दोहराते चले जाएं...........
श्वास सम मात्रा मे लें......... ।
ऑक्सीजन—प्राणवायु जितनी अधिक मात्रा मे भीतर जा रही है.... ...।
उतनी मात्रा मे शरीर हल्का हो रहा है........ .. ।
...........स्वास्थ्य अच्छा हो रहा है.... ....।
मन भी हल्का हो रहा है...... ....।
इस सकल्प को दोहराते जाएं.........।
श्वास वेग से लें....।
श्वास धीरे से छोड़ें ....।
भाव करें...........।

सारी गन्दी हवा बाहर निकल गई है............।
गन्दी गैस बाहर निकल गई है.. ....।
उसके साथ सभी दूषित विचार भी बाहर चले गए हैं............।
मन की गन्दगी बाहर निकल गई............।
तन मन प्राण सभी कुछ हल्के हो गये............।
बहुत अधिक मात्रा में प्राणवायु भीतर में प्रवेश कर गई है.......... ।
अन्दर मे शुभ विचारों का अत्यधिक संग्रह हो गया है............।
शरीर-मन-प्राणों मे ऊर्जा भर गई है............।
शरीर स्वस्थ है............।
मन आनन्दित है............।
प्राण प्रफुल्लित है............।
ऑक्सीजन-प्राण वायु की अधिक मात्रा जीवन-ऊर्जा को संवर्धित करती है..... . ....।
शरीर मे, मन में स्वस्थता, प्रफुल्लता का सचार होता है............।
भाव करें............।
यह प्रक्रिया प्राणो में शक्ति का संचार करने वाली महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है............।



३ शरीर का—शिथिलीकरण

ध्यान मुद्रा बना लें............।
(प्रथम दो प्रक्रियाओ को दोहरायें............)
सीधे बैठे.. ....शरीर में कोई तनाव न हो ।
भाव करें........शरीर हल्का हो रहा है ।
अन्तरंग से भाव करें...... .....।
शरीर एकदम हल्का हो रहा है...........।
पैर हल्के हो गए हैं... ....।
पिण्डलिया हल्की हो गई हैं.... ....।
जंघाए हल्की हो रही हैं............।
पेट कमर हल्के हो गये हैं............।
सीना पीठ हल्के हो गये हैं............।
गर्दन ....सिर हल्के हो गए हैं..... ......।
हाथ, पाव, शरीर, पूरा भार-रहित हो गया है........।
शरीर मे कोई भार, कोई वजन ही नही रहा है........।
शरीर कपास की तरह—रूई की तरह हल्का हो गया है........... ।
हल्की वस्तु ऊपर उठती है उसी तरह शरीर भी ऊपर उठ रहा है....।
वास्तव मे अनुभव करें, शरीर अधर हो रहा है............।
शरीर को किसी आधार—आश्रय की आवश्यकता नही है............।
शरीर इतना हल्का हो गया कि वह अधर हो गया है. . ...।
अनुभव—फीलिंग को गहराई तक ले जाए, शरीर हल्का हो गया है....।
पूरे शरीर मे हल्केपन की सरसराहट फैल रही है............।
जैसे कि पाव सो जाता है............सन्न हो जाता है........... ।
वैसे ही बड़े वेग से पूरा शरीर हल्का होता जा रहा है............।
अनुभव करें........ .. इतना हल्कापन कभी नही रहा............।
कभी कल्पना भी नही की थी कि शरीर इतना हल्का भी हो सकता

श्वास भीतर खींचें............।
फिर कुछ क्षण रोकें.......... ।
फिर दायी नासिका से छोड़ें ....।
फिर बाह्य कुम्भक करें....(बाह्य श्वास रोकें)
पुनः दायीं नासिका से भीतर ले............।
इस प्रकार ७ बार इस प्रक्रिया का पुनरावर्तन करें...........।
अनुभव करें...........।
प्राणों मे शुद्ध वायु के प्रवाह से शक्ति बढ रही है...........।
फेफड़े एवं पेट एकदम हल्के हो रहे हैं............।
अब श्वास को सामान्य गति से चलने दें......... ..।
केवल श्वास के द्रष्टा बन जाएं............।
देखते रहें.......श्वास आ रहा है ....।
श्वास जा रहा है.... .. ....।
मन को श्वास की गति के साथ जोड़ दें....... ।
...........मन घड़ी के पेण्डुलम की तरह श्वास के साथ बाहर-भीतर गति करता है...........।
आप देखते रहें.......श्वास आ रहा है...........।
श्वास जा रहा है... ... .. ।
मन उसके साथ चल रहा है...........।
(इस पूरी प्रक्रिया में रीढ की हड्डी एवं गर्दन सीधी रखें, शरीर में कहीं झुकाव—तनाव न हो । मन शान्त बना रहे और श्वास-क्रिया का द्रष्टा बना रहे ।
प्रत्येक श्वास का समय बराबर हो, प्रथम श्वास लेने में 'जितना समय लगा, दूसरे श्वास मे भी उतना ही समय लगे...........।
इसी प्रकार प्रश्वास-श्वास छोड़ने में भी समान समय लगे...........।
श्वास के द्रष्टा बने रहे.. ....।



५ भस्त्रिका प्राणायाम

ध्यान मुद्रा बना लें............।

मेरु दण्ड सीधा रक्खें............।

गर्दन सीधी रक्खे............।

(पूर्व की प्रथम तीन प्रक्रियाओ को दोहराये)

श्वास की गति को सकल्प पूर्वक वेग दें ....।

वेग से श्वास ले........छोड़ें............।

जितनी शक्ति लगा सके............।

उतनी जल्दी-जल्दी श्वास लें........छोड़ें........।

शीघ्रता पूर्वक........जोरो से श्वास लें............।

शीघ्रता के साथ छोड़ें............।

मुंह बन्द रक्खें............।

श्वास नाक से लें............।

पूरे वेग से श्वास ले............।

तीव्रता से श्वास लेने-छोड़ने मे एक लय बाध लें............।

........लुहार की धोकनी की तरह............।

श्वास के वेग को और गति को बढने दे............।

तीन मिनट और कुछ अभ्यास होने पर ५-७ मिनट तक इस भस्त्रिका प्रयोग को चलने दे.. ....।

पेट को एक दम हल्का महसूस करे... ....।

........सीने एव फेफड़े को भी एकदम हल्का अनुभव करे............।

शरीर को एकदम हल्का-ढीला छोड़ दें........।

मन को हल्का अनुभव करे............।

मन को श्वास की सामान्य गति का द्रष्टा बना दे............।



६ भ्रामरी प्राणायाम

ध्यान मुद्रा बना ले........।

आसन सुदृढ-सुस्थिर बना ले अथवा रखे........।

(प्रथम दो प्रक्रियाओ को यथा क्रम से दोहराए।)

... ..शरीर को हल्का बना लें... ....।

अनुभव करे शरीर हल्का हो रहा है...........।

शरीर मे कही कोई तनाव नही है............।

दोनो हाथो के अगूठे दोनो कानो पर लगा दे.......।

कानो को दबाकर बन्द कर दे... ....।

कनिष्ठा अगुलियो से दोनो आखो पर हल्का दबाव डाले............।

आखे बन्द कर ले... ....।

मुह होठ बन्द रखें.. .....।

गले से भ्रमर की तरह हुकार की ध्वनि निकाले............।

नाक से हवा के साथ ध्वनि तरगे निकलने दे............।

ध्वनि की आवाज बढ़ाते जाए ....।

जितना अधिक समय तक श्वास रोक सके, श्वास रोके............।

भीतर कुम्भक करें.......... ।

आवाज के साथ श्वास को बाहर निकलने दे..... ......।

.......फिर कुम्भक करें और भ्रमर की तरह गुंज़ारव करें. .....।

गुंजारव के साथ दृष्टि को भृकुटि मध्य प्रवेश केन्द्र पर टिकाए रखे....।

वातावरण मे शान्ति का अनुभव करे.... .. ..।

भाव करे.. .....ससार की समस्त ध्वनिया मेरी आवाज मे दव गई हैं....।

चारो ओर एकदम शान्त—सौम्य वातावरण वन रहा है. . . ..।

मन आवाज मे डूव रहा है........।

गुजारव तीव्र हो रहा है.......।

आवाज लयवद्ध हो रही है........।

प्रारम्भ मे तीन मिनट का प्रयोग करें, फिर पाच-सात मिनिट तक ले जावें) ।

मन को गुंजारव के साथ जोड दें..... ।
लय वद्ध गुंजारव चलने दें....... ...।
भ्रामरी आवाज में ही खो जावे..........।
शान्त होकर बैठ जावें. .. . .. ।
मन को प्रवेश केन्द्र (आज्ञा चक्र) पर टिका देवे...........।
शरीर को हल्का छोड दें .... ।
आवाज बन्द होने के बाद भी अनुभव करे...........।
........वायु मण्डल मे आवाज का ही वर्तुल बना हुआ है ....।
गुंजारव सुनाई दे रहा है.. .....।
सुनते जाए ....।
सुनते जाए .... ।
अपनी समस्त चेतना को उसी आवाज मे डूबने दे.... . ।
मस्तिष्क एकदम हल्का हो रहा हैं........ ।
चारो ओर शान्ति-ही-शान्ति का प्रसार है... ।
और हम उस शान्ति मे डूब गए हैं..... ।
समस्त तनावो—द्वन्द्वो से मुक्त...........।



७ | मनोवृत्तियां : समीक्षण और निर्जर

ध्यान मुद्रा बनाले....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को दोहराएं)
भावना करें..
शरीर एकदम शिथिल हो गया....
शरीर निर्भार हल्का हो गया है....
अब हमे मन को हल्का करना है....
इस पर न जाने कितने जन्मो का भार लदा है....
मन पर न जाने कितना बोझ है....
कितनी राग-द्वेष की परतें चढ़ी हैं....
कषायो के कितने स्तर चढ़े हैं....
जरा अपने अन्तरग मे देखे....
कितनी गन्दगी है, अन्तर मन में....
कितना अधकार है मन-मन्दिर मे....
युगों-युगो का ही नही, जन्मो-जन्मो का मैल भरा है....इस मन मे....
किन्तु अब हमे मन के भार को उतार देना है...
· इसके मैल को साफ कर देना है ..
इसके अन्दर ज्योति प्रज्वलित कर देना है....
समस्त अन्धकार को समाप्त कर देना है....
भावना करिये ·
मन की सारी गन्दगी बाहर निकलने को आतुर है....
पूरे शरीर के स्नायुओ मे तीव्र कम्पन प्रारम्भ हो—
गया है, सारी गन्दगी इधर-उधर दौड रही है...
जैसे किसी मकान मे आग लग गई हो और वहा...
रहने वाले सभी व्यक्ति भागने लगते हैं....
जिसको जहा रास्ता मिला, वह वही से बाहर निकल जाता है...

उसी प्रकार····
हमारे भीतर ध्यान को आग लग गई है····
समस्त गन्दगी····सभी कषायें···
राग द्वेषात्मक परिणतिया····
बाहर निकलने के लिए इधर-उधर भाग रही हैं····
कोई नाक से....कोई कान से····
कोई मुंह और कोई आखो से बाहर भाग रही हैं····
समस्त दूषित विचार बाहर चले जा रहे हैं····
पूरी गन्दगी निकल गई····
मन मे हल्का-हल्का प्रकाश फैल रहा है····
अंधकार छटता चला जा रहा है····
मन निर्भार हो रहा है····
मन एकदम भार रहित हो गया है····
मन प्रकाश से भर गया है····उस प्रकाश मे उसकी एक-एक वृत्ति हमे दिखाई दे रही है····
संकल्प करें····
गहराई से भाव करें····
मन निर्मल हो गया····मन हल्का हो गया····दूषित विचार उड गए....
मन मे चारो ओर स्वच्छता ही स्वच्छता फैल गई है···
चारो ओर प्रकाश ही प्रकाश छिटक रहा है····
मन के सारे तनाव समाप्त हो गए····
तन्मयता से अनुभव करें, मन तनाव रहित हो गया···
मन आनन्द से आप्यायित हो रहा है····
मन परम आनन्द डूब रहा है....
इसी भाव मे डब जाए····
मन अपने चारो ओर आनन्द की वृष्टि का अनुभव कर रहा है····
मन आनन्द के सागर मे डूब रहा है····



८ | क्रोध : समीक्षण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बनाले····
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को दोहराए)
भाव करे
शरीर एकदम हल्का हो गया है···
शरीर ऊपर उठने को तत्पर है ··-
किन्तु मन अभी भार से लदा है····
अब हम मन को हल्का कर रहे हैं·
हमारे मन मे अनेक प्रकार के विकारो का भार· ·लदा है····
क्रोध ··अहकार छल, कपट···लोभ ·
लालच···ईर्ष्या-असूया विषय-विकार····
आदि अनेक दुर्वृत्तियो ने मन को बोझिल बना रक्खा है···
ध्यान ही एक ऐसा सबल साधन है, जो इन सब विकृतियो से मन
को और उसके माध्यम से आत्मा को मुक्ति दिला सकता है
ध्यान के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही··
हम ध्यान के द्वारा इन सभी दोषो को क्रमश. क्षीण
करने का प्रयास करेंगे····
अब हम मन को हल्का करने की प्रक्रिया का आरम्भ कर रहे हैं···
मन पर छायी हुई इन दुर्वृत्तियो मे से एक-एक को चुनकर उसे बाहर
निकालेंगे, उसकी निर्जरा करेंगे ·
अब हम अन्तरंग यात्रा कर रहे हैं···
अन्त. समीक्षण कर रहे है····
भीतर प्रवेश कर रहे हैं····
देखें जरा अपने ही अन्तरमन को देखे....
वहा कितने विकार भरे पड़े है...
सकल्पना करे

बहुत गहराई से भाव करें····
हम अपने मन की सघन शर्तों को देख रहे हैं····
हमारे आगे से सभी पर्दे हट गए है··
हम मन के आर-पार देख रहे है···
किन्तु वहा दिखाई क्या दे रहा है····
क्रोध····क्रोध · क्रोध····
चारो ओर क्रोध के ही परमाणु मन को घेरे हुए हैं····
कितना विद्रूप हो रहा है हमारा मन !!!····
ओ हो ! क्या इस दूषित विद्रूप मन मे परमात्मा
की झलक मिल सकती है ???··
नही··· नही···आज हम इस तन की सफाई करेंगे·
भाव करें ·
अब हम क्रोध के परमाणुओ को बाहर निकालने को सन्नद्ध हो गए हैं···
अभी हम अन्त समीक्षण कर रहे हैं ·
पहले मन के सम्पूर्ण क्षेत्र को देखे·
जहा-जहा आत्म-प्रदेश हैं वहा सर्वत्र मन भी है····
जहा-जहा मन है वहा-वहा क्रोध के परमाणु····
फैले हैं ·
या यो कहे····
आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर मोहनीय कर्म के परमाणु छाये हुए हैं··
क्रोध भी तो मोहनीय कर्म का भेद है····
वह मोहनीय कर्म की अवान्तर प्रवृत्तियों मे से एक प्रवृत्ति है ··
और इस रूप मे क्रोध सम्पूर्ण शरीर मे
आत्मप्रदेशो के साथ फैला हुआ है
अब जरा हम पूरे शरीर मे फैले आत्मप्रदेशो पर दृष्टि दौडाएं
देखें सब आत्मप्रदेशो पर कितने क्रोध के
परमाणुओ के स्तर जमे हुए है····
जरा सूक्ष्मता से बारीकी से देखें··
कल· परसो या दस-बीस दिन पूर्व किये गये
क्रोध के परमाणु ही नही····
वर्षों पूर्व किए गए क्रोध के परमाणु·
अरे, वर्षों पूर्व ही नही···न जाने कितने
जन्म-जन्मान्तरो के क्रोध के परमाणु····

इन आत्मप्रदेशों पर चिपके हुए हैं····
ओ, तो·· ···देखें······ जरा ध्यान से देखें····
क्रोध के कितने स्तर जम रहे हैं····
अभी हम क्रोध कर नही रहे हैं····
अभी हम केवल क्रोध के द्रष्टा बने हुए हैं····
हम देख रहे हैं· ····अपने ही भीतर····
अब हम द्रष्टा ही नही, परिष्कर्ता भी बन रहे है····
अब हम क्रोध के परमाणुओ को बाहर निकालने
की प्रक्रिया आरम्भ कर रहे हैं···
भावना करें····
तीव्रतम भावना करें····
हमारी ध्यान शक्ति के द्वारा····
हमारी संकल्प शक्ति के द्वारा····
वे क्रोध के परमाणु सभी आत्मप्रदेशो से हटने लगे हैं····
उनमे हल-चल मच गई है····
वे तीव्र गति से पूरे शरीर मे इधर-उधर दौड़ रहे हैं····
कल्पना करें, पूरे शरीर मे एक सनसनाहट फैल रही है····
भाव करें····
शरीर की नस-नस मे कम्पन हो रहा है····
क्रोध के परमाणु बडी तेज गति से ऊपर की ओर उठ रहे हैं····
देखिये, वे तेज गति से ऊपर की ओर····
मस्तिष्क की ओर भाग रहे हैं····
वे प्रत्येक आत्म-प्रदेश से अलग छिटक रहे हैं····
उनकी सारी चिपकाहट ढीली हो गई है····
वे सब मस्तिष्क के अगले भाग-कपाल के पास पहुच रहे हैं····
आगमिक दृष्टि से क्रोध का वास कपाल में माना गया है····
क्योकि जब हमें क्रोध आता है तो उसकी सीधी
प्रक्रिया कपाल पर पड़ती है····
ललाट पर सलवटे पड जाती हैं····
आखें लाल-लाल हो जाती हैं····
चेहरा तमतमाने लगता है और हम मुंह
से कुछ भी ऊल-जलूल बोलने लग जाते है····

हा तो अब देखें....
ये क्रोध के सारे परमाणु ललाट के पास कपाल मे इकट्ठे हो रहे हैं...
वे काली झाई लिए हुए लाल-लाल परमाणु हैं....
और देखे...वे सब कपाल के पास इकट्ठे हो गए हैं....
अब वे वहा से बाहर निकलने को मार्ग ढूंढ रहे है...
कल्पना करें....
क्रोध के बहुत से परमाणु आंखों मे उतर आए हैं....
देखें....बाहर की आखो से नही....
... ·अन्दर की आखो से देखे··
आंखें लाल-लाल हो गई हैं....
क्रोध के परमाणु आखो मे उतर आए हैं··
किन्तु अभी हम क्रोध मे नही हैं....
हमे क्रोध नही आ रहा है....
अभी हम क्रोध कषाय की निर्जरा कर रहे हैं··
अब वे परमाणु आखो से नीचे उतर रहे हैं...
और कल्पना करें अपना मुंह अपने आप....
खुल गया हैं....
अनुभव करें....
जेसे अपने मुंह से काली झाई लिए हुए
लाल-लाल धुआ निकल रहा है ·
वास्तव मे फीलिंग करें, धुए के गोट-के-गोट
अपने मुह से बाहर निकल रहे हैं....
मस्तिष्क एव आखे हल्के होते जा रहे हैं....
मन हल्का होता जा रहा है··
अपने सामने क्रोध के परमाणुओ का ढेर लग रहा है....
देखे....अन्तर चक्षुओ से देखें....
जैसे अपने सामने लाल-लाल रूई का ढेर लगा हो....
क्रोध के परमाणु अन्दर मे थे तो प्याज के छिलके
की तरह पर्त दर पर्त जमे हुए थे
किन्तु बाहर निकलने पर फैल गये है ·
जैसे रूई की प्रेस की हुई गाठ को खोल दी गई
हो और वह बहुत फूल गई हो··

उसी प्रकार क्रोध के परमाणु अन्दर जमे हुए थे····
अब वे बाहर आकर फूल गये है····
देखे अपने सामने लाल-लाल परमाणुओ का
बहुत बड़ा, बहुत ऊचा ढेर लग गया है····
बाहर ढेर लगा है किन्तु अन्तर्मन एक दम हल्का हो रहा है··
वहा अब क्रोध के परमाणु नही हैं·
यद्यपि अभी अन्य विकार वहा भरे पडे हैं····
किन्तु क्रोध कषाय की निर्जरा हो गई है····
फिर भी अभी वे बाहर पड़े हुए हैं
जरा सा निमित्त मिलने पर फिर अन्दर प्रवेश कर सकते है····
अत अब हमे उन्हे बाहर से भी हटा देना है·
अनुभव करे··भाव करें····
अपनी दोनो आखो से दो तेज किरणे निकल रही है··
वे किरणे क्रोध के परमाणुओ मे लग गई है और देखें····
क्रोध के परमाणुओ मे आग लग गई है····
अपने सामने अपने ही क्रोध के परमाणु जल रहे हैं
ज्वलाए ऊपर उठ रही हैं····
लाल-लाल अगारे धधक रहे है····
ज्वालाए बढ़ती जा रही हैं
हम अपने अन्तर की आखो से अपने सामने
उठती हुई ज्वालाओ को देख रहे हैं····
ज्वालाए धीरे-धीरे शान्त हो गई हैं····
अंगारे एकदम बुझ गये है····
ज्वालाए धीरे-धीरे शान्त हो रही हैं····
अब हमारे सामने केवल राख का ढेर रह गया है··
राख····सफेद झक राख··
देखें····राख ही राख का ढेर····
लेकिन इसे भी सामने से हटा देना है····
ऐसा कोई दूषित परमाणु—क्रोध का कीटाणु नही रह जाए कि फिर
निमित्त मिलने पर आत्मा दूषित हो जाय····
अब देखें····
भीतर से ध्यान की ऊर्जा से तेज हवा बाहर आ रही है·

कल्पना करे वास्तव मे अनुभव करे
तेज आधी चल पडी है और वह राख उड़ती हुई
दूर-सुदूर चली गई है··
अब हमारे सामने एकदम स्वच्छ वायुमण्डल हो गया है····
अब हमारा अन्तरग भी कुछ साफ हो गया है····
अब भावना करें ··
हमारे आत्म-प्रदेश निष्क्रोध हो गये हैं····
अब हमे कोई क्रोध दिलावे····हमे क्रोध नही आएगा····
क्योकि अब हमारे भीतर क्रोध के परमाणु रहे ही नही है··
अब कोई हमारी निन्दा-बुराई करे···
कोई गाली दे, कोई चिड़ावे, कोई अपमान करे,
कोई कैसा ही निमित्त उपस्थित करे क्रोध का···
किन्तु अब हमे क्रोध कैसे आ सकता है ? ··
कल्पना करें···तीव्रतम भाव करें····
हमारी चेतना क्षमा की मूर्ति बन गई है
अब आत्मा मे कोई आवेग-उद्वेग नही रहा है···
कही कोई झुझलाहट नही है
क्योकि अब क्रोध के सभी परमाणु बाहर निकल गए है
एक सबसे बड़ा दुर्गुण-दोष आत्मा से अलग हट गया है····
कर्म परमाणुओ मे रहा काली झाई वाला
लाल रंग बाहर निकल गया है
अव हमे अन्दर सुन्दर नयनाभिराम स्कायी कलर
ही दिखाई दे रहा है··
वह वहुत शान्त, सौम्य मन को लुभाने वाला स्कायी कलर है·····
आज क्रोध के सभी दूषित परमाणुओ के बाहर निकल जाने से मन का बहुत भार हल्का हो गया है, जो मन सक्लेश के भार से लदा रहता था ·
आज वह आनन्द से भर रहा है ·
अनुभव करे··अपने चारो ओर आनन्द-शान्ति
की सरस फुहारे बरस रही है··
हमारी आत्मा आनन्द के जल से भीग रही है····
हम इन क्षणो मे केवल आनन्द मे रमण कर रहे है ··

हम आनन्द मग्न हो गए हैं....
ससार की सभी प्रवृत्तियो से दूर....
हम आत्मिक आनन्द मे डूब गए है....
ओ, हो क्रोध के स्कध (परमाणुओ) के चले जाने
मात्र से मन आत्मा कितनी अलौकिक ऊर्जा से भर जाते हैं....
हमारे तन-मन, सब कुछ आनन्द के केन्द्र बन गए हैं..
क्रोध गया कि क्षमा आयी...
क्रोध नष्ट हुआ कि आनन्द उपलब्ध हुआ
क्रोध विलीन हुआ कि शाति आयी....
हमारे चारो ओर शाति....शाति शाति....
व्याप्त हो गई है...
हमारा यह आनन्द बढ़ता चला जाय....
हमारा यह हल्कापन बढ़ता ही रहे...
हमारी आत्म-शाति बढती चली जाय....
इसी कल्पना. इसी संकल्प...
इसी भावोन्मेष मे ध्यान से बाहर आ जाए
धीरे....धीरे प्रकृतिस्थ हो जाए....
शरीर-मन-प्राणो को एकदम हल्का अनुभव करें...



६ | अहंकार : समीक्षण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बना लें····
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को दोहराएं)
भाव करें····
शरीर एक दम हल्का हो गया है····
अब हम मन को हल्का करने का प्रयास कर रहे हैं····
मन मे विविध प्रकार के विकारो का सग्रह है····
वह बहुत भार से बोझिल है····
हमे मन को हल्का-निर्भार बनाना है, तो पहले उसके
भार को समझना होगा ··
उसकी विभिन्न विकृतियो को ढूंढ़-ढूढकर बाहर कर देना होगा··
मन मे राग -द्वेष है क्रोध हैं····अहकार है और भी
अगणित दुर्वृत्तिया है मन की····
इन सबको बाहर निकालने का उपाय एक ही है····
"ध्यान", ध्यान ही मन को विशुद्ध बनाने, आत्मा को
मुक्त कराने का अमोघ उपाय है
हम विगत लम्बी अवधि से ध्यान का अभ्यास कर रहे हैं····
अभी-अभी हमने कुछ अभ्यास से क्रोध के (स्कन्धो)
परमाणुओ की निर्जरा की है···
एक प्रबलतम शत्रु-दुर्वृत्ति की निष्कासन कर दिया है····
उसी पद्धति से हम एक-एक अशुभ वृत्ति का समीक्षण करके उन
स्कन्धो (परमाणुओ) को आत्म-प्रदेशो से अलग करेंगे···
उन सब दुर्गुणो की निर्जरा करेंगे, जो आत्मा की शक्ति
को दबोच रहे हैं
हमारे मन को हल्का करने की प्रक्रिया चल रही है····
पहले हम मन की अन्तरंग यात्रा करके उन वृत्तियो का समीक्षण करेंगे····

अब हम अन्तर् यात्रा कर रहे हैं····
हम मन की सघन पर्तों का समीक्षण कर रहे हैं
वहां हमे अनेक विकार दिखायी दे रहे हैं···
भाव करें····
हमारे अन्तः चक्षु खुल गए है····
हमें अपने अन्दर की सभी वृत्तियां दिखाई दे रही हैं····
ओ, हो,···हमारी ध्यान साधना ने कितना कमाल कर दिया है····
····अरे, वहा क्रोध के परमाणु तो शून्यवत् रह गए हैं···
किन्तु अभी हमे बहुत प्रयास करना है···
अब हम अहकार के स्कन्धो (परमाणुओ) की निर्जरा करेंगे
देखें—अपने सभी आत्म-प्रदेशो की ऊपरी परत को देखे····
ओ, हो, वहा तो अहकार अहंकार अहकार ही
अहकार दिखायी दे रहा है
अहंकार ने हमारे भीतर विभिन्न रूप धारण कर रखे
हैं। वह अनेक रूपों में आसन जमाए बैठा है ··
हमे अपने सौन्दर्य का अहंकार होता है, जिसे आगमिक
भाषा मे रूपमद कहा जाता है···
इस सौन्दर्य के अहकार ने भी कितने उत्पात मचाए हैं
कितने युद्ध करवाए हैं····
पद्मावती और कमलावती जैसी कितनी नारियो को
जौहर की ज्वालाओ मे भस्म करवा दिया है
ओ, हो, यह सौन्दर्य का अहकार बडा विकराल है
हमे ऐश्वर्य का भी तो अहकार अभिमान होता है····
मेरे पास कितना वैभव हैं
मैं कितना ऋद्धि-सम्पन्न हू···
मेरी सम्पदा का मुकाबला कौन कर सकता है····
और इस ऐश्वर्य के अहकार ने भी इस चेतन्य को कितने
नाच नचाए हैं···
कितना वितृष्ण बनाया है····
हमें अपने पद-प्रतिष्ठा का अहकार है····
मैं कितनी बडी कुर्सी—सत्ता का स्वामी हू····
मेरे पास कितने अधिकार हैं

और इस अधिकार–सत्ता के या पद-प्रतिष्ठा के मद ने तो कितने युद्ध
करवाये उनकी गणना करना ही मुश्किल है
आजकल चुनावो के युद्ध भी तो कम नही हो रहे हैं
ये सब पद-प्रतिष्ठा के ही तो सघर्ष हैं····
हमे अपने उच्च जाति-कुल का अहंकार भी तो सताता है····
हम ऊची जाति के हैं···
हमारा कुल खानदान कैसा ऊचा है··
वे नीच हैं··· नीचे हैं····
और इस जातिवाद के सकुचित दायरे ने किनने लोगो
का अपमान–अनादर किया है··
अहंकार के कितने रूप हमारे भीतर बैठे हुए हैं····
क्या उनकी कोई गणना हो सकती है····
हमे अपने ज्ञानी-विद्वान् होने का अहंकार हो जाता है
अरे ज्ञानी होने का अर्थ तो है विनम्र होना···
जो जितना उच्च विद्वान् होगा उतना ही विनम्र होगा···
किन्तु हम··· हम ज्ञानी होने के अभिमान मे चूर रहते हैं···
इसका अर्थ हुआ, हम ज्ञानी नही, ज्ञान के नाम से अज्ञान
दर्प इकट्ठा करने वाले भारवाही है···
विद्वता और अहंकार का तो कोई मेल ही नही है···
फिर भी हम अहकार करते हैं तो वह ज्ञानी होना तिरोहित हो गया··
हम व्याख्याता–उच्च कोटि के वक्ता होने का अहकार किया करते हैं···
जैसे हमारे जैसा व्याख्यान तो किसी को देना आता ही नही हैं
कितने उथले अहकार से भरे हैं आत्म-प्रदेश
हमे तपस्वी होने का, बलवान होने का, हर दृष्टि से
दूसरो से श्रेष्ठ होने का अहकार घेरे रहता है····
और ये सूक्ष्म वृत्तिया आत्मा पर छायी हुई हैं
हम नाकुछ–अदनी वातो पर दूसरे से श्रेष्ठ होने के
अहकार मे अकड़े फिरते है··
हमे यह पता नही है कि दुनिया मे हमसे श्रेष्ठ हर कार्य
मे अगणित हो गए हैं—अभी मौजूद हैं····
हमारे जीवन के अधिकाश व्यवहार—खान, पान, रहन, सहन, वेश
विन्यास सब कुछ अह के पोषण या प्रदर्शन के लिये होते हैं

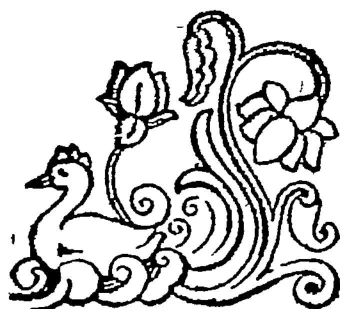
ध्यान रहे अभी हम आत्म-समीक्षण कर रहे हैं··
अहंकार का समीक्षण कर रहे है····
उसके विभिन्न रूपो को देख रहे है····
किन्तु हमे उन्हे देखना ही नही, आज अहकार के समस्त
परमाणुओ को बाहर निकाल देना हैं···
अहंकार के ये सारे परमाणु भी क्रोध के परमाणुओ के
समान पूरे शरीर में सभी आत्म-प्रदेशो पर फैले हुए हैं····
वे मान मोहनीय के रूप मे जमे हुए हैं··
जमे हुए ही नही, प्रतिक्षण किसी न किसी रूप में नये
भी प्रवेश कर रहे हैं····
हमे अहंकार के प्रवेश को रोकना है और पुराने जमे हुए
स्कन्धो-परमाणुओ को निकाल देना है····
सकल्पना करें और पूरी सकल्प शक्ति लगादें कि अब
अहंकार के परमाणुओ मे हलन-चलन मच गई है··
पूरा शरीर प्रकम्पित हो रहा है···
वास्तव मे अनुभव करे कि आत्म-प्रदेशो मे एक प्रकम्पन
उत्पन्न हो गया है
सारा शरीर स्पन्दित हो रहा है ·
मान मोहनीय कर्म के स्कन्ध इधर-उधर दौडने लग गए हैं····
देखें· अपने ही अन्दर देखे अहकार के परमाणु कितनी
तेज गति से दौड रहे हैं
जैसे किसी मकान मे आग लग गई हो और अन्दर रहने वाले लोग
इधर-उधर जिधर मार्ग मिलता है भागने लगते हैं···
उसी प्रकार हमारे भीतर ध्यान की ज्योति जल गई है और अहकार
के परमाणु अब भागने को मार्ग खोज रहे हैं ·
भाव करें·
अहकार के सभी परमाणु गले-गरदन के आस-पास एकत्रित हो रहे हैं··
क्योकि अहंकार का सम्बन्ध हमारी गर्दन से विशेष है ।
अहंकार के समय हमारी गर्दन अकड जाती है···
चिन्तन करे··अहकार के परमाणु गरदन के निकट
एकत्रित हो गए हैं
कल्पना करें· ·भाव करें ··

गले के आस-पास का हिस्सा अकड़ गया है····
गले मे कुछ भारीपन-सा महसूस हो रहा है··
सारा अहंकार वहा केन्द्रित होकर घनीभूत हो गया है·
अब वे सभी परमाणु वहा से बाहर निकलने को उतावले हो रहे हैं····
वे ऊपर उठने लगे हैं·
अनुभव करे, वे गले से ऊपर उठ रहे है····
अब वे दोनो नासिकाओ से बाहर निकलते जा रहे है····
भाव करे····अनुभव करे ·
जैसे दोनो नासिकाओ से हवा बाहर निकल रही है
दोनो नथुनो मे अहकार के उन परमाणुओ का स्पर्श हो रहा है···
अनुभव करे····
अहकार के परमाणु अब वेग के साथ बाहर निकल रहे है··
जैसे दोनो नासिकाओ से काली झायी लिये गहरे हरे रग
का धुंआ बाहर निकल रहा है··
अब अहकार के सभी परमाणु बाहर निकल गए हैं···
गले के आस-पास का हिस्सा एक दम हल्का हो गया है····
हमारा मन, हमारे प्राण, हमारी सम्पूर्ण चेतना एकदम
हल्की हो गई है····
यह अहकार हीं तो हमे झुकने नही देता है, अक्खड़ बनाये रखता है।
भारी भरकम बनाए रखता है
अब वह पूरा बाहर निकल गया है
हमारे भीतर विनय-नम्रता का भाव गहराता जा रहा है··
हमारा मन एकदम हल्का-लचीला विनम्र बन गया है····
हमारी आत्मा विनय की प्रतिमूर्ति ही बन गयी है -
अहकार ही तो भारीपन है ·
विनम्रता ही हल्कापन है·
हमारी पूरी चेतना इतनी हल्की हो गई है कि वह बिना किसी आधार
के ऊपर उठने लगी है····
हमारे भीतर इतनी विनम्रता भर गई है कि अब कोई भी निमित्त
हमें अहकार-मान-घमण्ड नही दिला सकता है· ·
अब हम किसी के भी समक्ष नम्रता से झुक सकते है····
अपनी चेतना का इतना हल्कापन हमने कभी अनुभव नही किया···

अहंकार के परमाणुओ के बाहर चले जाने से हमारा मन एव हमारी आत्मा तो हल्के हो गए है किन्तु अभी उन परमाणुओ का ढेर हमारे सामने पडा है ·
भाव करे.. देखे…
हमारे सामने फूली हुई रूई के समान गहरे हरे रंग के
परमाणुओ का ढेर लग रहा है…
अन्दर वे परमाणु पर्त दर पर्त जमे हुए थे, बाहर
आकर फूल गए हैं, फैल गए हैं….
कही वे परमाणु पुनः अन्दर प्रवेश कर आत्मा को फिर से अहंकारी न बना दे, अत हमे उन्हे बाहर भी नही रहने देना है….
अब कल्पना करे ·· अनुभव करें….
उन परमाणुओ के पीछे-पीछे नाक से ही ध्यान ऊर्जा से
उत्पन्न दो तेज किरणे बाहर निकलती है….
और वे अहकार के स्कन्धो पर पड़ रही है….
देखे · अन्तर दृष्टि से देखें….
उन अहकार के स्कन्धो मे आग लग गई है…
ज्वालाएं ऊपर उठ रही हैं….
अपने सामने ज्वालाए ऊपर उठती हुई देखें….
अहकार के सारे गन्दे तत्त्व उस आग मे जल रहे हैं…
हम अपने ही अहंकार को अपने सामने जलते हुए देख रहे हैं….
अनुभव करें ·
ज्वालाए एकदम ऊपर उठकर अब शात होती जा रही हैं….
आग शांत हो गई है…
अब देखे….अपने चारो ओर राख फैली हुई है….
देखें ··शान्त-सौम्यभाव से राख ही राख है ·
उस राख को भी हमे वहा रहने नही देना है । अहकार को उत्तेजित करने वाला एक भी परमाणु हमारे इर्द-गिर्द नही रहना चाहिए…
अन्तरग से अनुभव करें ·
भीतर से-ध्यान ऊर्जा से उत्पन्न हवा का एक वेगशाली
झोका उठ रहा है
वह हवा मण्डलाकार मे फैलती हुई, सारी राख को लेकर
उड़ती चली जा रही है…

कल्पना करे·· देखे···साक्षात् देखे···
मण्डलिया वायु का मण्डल राख लिये उडा जा रहा है····
अब हमारे चारो ओर शुद्ध, स्वच्छ वायु मण्डल हो गया है····
हमारा बहिरग और अन्तरग दोनो स्वच्छ–निर्मल
निरभिमानी एवं हल्के हो गए हैं··
भाव करे··· सभी आत्म-प्रदेश अहकार की कालिख से रहित हो गए हैं····
अब हम पद-प्रतिष्ठा, रूप, तप, पाण्डित्य आदि मे कितने
ही ऊचे उठ जावे, हमे अहंकार नही आ सकता··
अब हमारे भीतर अहंकार के उत्तेजक परमाणु रहे ही
नही हैं तो अहंकार कहा से आएगा ··
अब हम अपने से क्षमता मे न्यून होने वाले के साथ कभी
तुलना नही करेंगे कि मैं श्रेष्ठ हू और वह निकृष्ट है····
हमारी चेतना अहकार शून्य हो गई है··
अब हमारे स्वभाव मे अकडना नही, झुकना-ही-झुकना रह गया है····
वास्तव मे फीलिग करे
विनम्रता की एक भाव पूर्ण सरसराहट हमारी चेतना मे,
हमारी नस-नस मे फैल रही है····
हमारी आत्मा से आवेग उद्वेग उत्पन्न करने वाला अहंकार का एक
बहुत बडा दोष-दुर्गुण बाहर चला गया है····
हमारा मान-मोहनीय कर्म एक दम हल्का हो गया है····
उसकी बहुत अधिक निर्जरा हो गई है····
आज हमारा मन, हमारी आत्मा एकदम हल्की हो गई है····
अहकार का सारा भार नीचे उतर गया है····
ज्यो ही हम विनम्र बने कि हमारे चारो ओर आनन्द ही
आनन्द की वृष्टि होने लग गई है··
अभी हमारी आत्मा आनन्द के जल से भीग रही है····
भावना करें····अनुभूति मे डूबें
अपने चारो ओर शाति और आनन्द की सरस फुहारें गिर रही है····
हमारे ये क्षण आनन्द मे रमणता के क्षण हैं····
ये क्षण बड़े मूल्यवान क्षण है··
इस समय हम संसार की सभी प्रवृत्तियो से दूर····
केवल आनन्द मे लीन हो गए हैं····

ओ, हो, अहंकार शून्य हो जाने पर मन कितनी ऊर्जा से
भर जाता है ··
हमारे भीतर ऊर्जा का जागरण हो गया है····
तन-मन-प्राण सभी आनन्द की ऊर्जा से भर गए है····
अहकार गया कि विनम्रता आई···
अहंकार नष्ट हुआ कि आनन्द उपलब्ध हुआ····
अब हमारे चारों ओर शांति ही शान्ति व्याप्त हो गई है····
आनन्द-ही-आनन्द फैल गया है····
हमारा यह आनन्द बढता चला जाय··
हमारा हल्कापन बढता चला जाय····
हमारी विनम्रता बढती चली जाय····
हमारी आत्म-शांति बढ़ती चली जाय
इसी भावना····इसी सकल्प··· इस भावोन्मेष के साथ
ध्यान से बाहर आ जाएं···
धीरे-धीरे प्रकृतिस्थ हो जाए···
अपने तन-मन-प्राणो को एकदम हल्का अनुभव करे····



१० बड़प्पन का भाव : समीक्षण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बनालें....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को दोहराएं)
भाव करे, शरीर एक दम हल्का हो गया है...
मन को हल्का बनाने का प्रयास चल रहा है ..
मन से क्रोध एव अहकार की वृत्तिया विलीन हो गयी हैं....
मन बहुत कुछ हल्का होता जा रहा है ·
फिर भी अभी अन्तर्यात्रा करें तो हमें लगता है कि अभी
अहकार की सूक्ष्म परतें हमारे भीतर बैठी हुई है....
देखें, जरा अपने अन्तरग मे देखें ...
अहंकार की कितनी सूक्ष्म रेखाए मन को भारी बनाए हुए हैं....
मन के चारो ओर अगणित अहंकार की सूक्ष्म धाराएं फूट रही हैं....
जो मन को दवाए जा रही हैं....
अभी-अभी हमें एक धारा सुस्पष्ट दिखाई दे रही है....
देखें · अन्तर चक्षु से देखें ..
वह धारा है ·वडप्पन की
अपने आपको दूसरो मे श्रेष्ठ मानने की ·
आम-तौर पर हम अच्छे कपडे इसलिए पहनते हैं कि हम
दूसरो से अच्छे दिखाई दे....
हमारी अधिकाश क्रियाए—खान-पान, रहन-सहन, वेश-विन्यास आदि
दूसरो से अपने आपको श्रेष्ठ सावित करने के लिये होती है...
हमारे मन मे वडप्पन की भावनाए विविध रूपो मे समायी हुई हैं ..
देखें ये वडप्पन की भावनाए हमारे विकास के मार्ग को
कैसे रोक देती हैं · ·
आज हमे इन दूपित विचारो का विरेचन कर देना है...
यह बड़प्पन की भावना हमारे में एक वहुत बड़े दोष को

उत्पन्न कर देती है....
अपने बड़प्पन के भावों में हम दूसरो को अपने से नीचा
समझने लग जाते हैं....
दूसरों के प्रति हमारे विचार क्षुद्र बन जाते हैं...
हमे स्वयं को ही सर्व श्रेष्ठ मान बैठते है....
और यह क्षुद्र भाव हमारे विकास को सर्वथा रोक देता है...
आज हम इस क्षुद्रता से विपरीत भाव करें...
देखें अपने आपकी, क्षुद्रता को एव दूसरो की महानता को देखें....
जरा अन्तर में झांक कर देखें..
हम कितनी क्षुद्र भावनाओ से भरे हैं....
हम दुनिया से अपने को श्रेष्ठ मानते हैं किन्तु हम किस
दृष्टि से श्रेष्ठ हैं....
जरा अपनी सहजता मे अपनी योग्यता को देखें....
क्या हम दुनिया के सर्व श्रेष्ठ विद्वान् है ?....
क्या हम सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमान हैं ?
क्या हम सर्वाधिक सुन्दर हैं ?..
क्या हम सबसे ज्यादा धनवान् हैं ?
क्या हम अबसे उच्चकोटि के वक्ता–व्याख्याता है....
किन्ही भी अर्थों मे हम दुनिया मे सर्वाधिक महान् नही हैं...
फिर यह बड़प्पन का भाव क्यों....
आज हम अपने भीतर रहे इस क्षुद्र भाव का विरेचन करेंगे....
अभी हम तुलना करें...हमसे कितने उच्चकोटि के विद्वान्, व्याख्याता,
प्रवक्ता, साधक एव महान् व्यक्ति दुनिया मे भरे पडे है...
विशाल संसार मे हमारा नम्बर ही कहा आता है—
हम अपने आपमें एक सामान्य साधक है...
हमें बड़प्पन के भावों मे उलझ कर अपने विकास को
अवरुद्ध नहीं कर देना है....
हमे बड़प्पन की उच्च भूमिका तक पहुचना है....
अब हम अब तक की समस्त क्षुद्र भावनाओ को बाहर निकाल रहे हैं....
अब हम अपने से भिन्न व्यक्तियो को, जो वास्तव मे अपने से श्रेष्ठ
हैं, श्रेष्ठ मानेंगे और अपने आपको सामान्य..
देखें...अपने अन्तरंग मे गहरा भाव करे....

अपने भीतर के बडप्पन सम्बन्धी क्षुद्र भावनाओं के
परमाणु बाहर निकलते जा रहे हैं…
अनुभव करें अपने भीतर सभी आत्म-प्रदेशो मे तीव्रतम
कम्पन हो रहा है….
सभी क्षुद्रता के गन्दे परमाणु आत्म-प्रदेशो से अलग हट रहे हैं…
भाव करें….
वे परमाणु बडी तेज गति से बाहर की ओर भागते चले जा रहे हैं…
मन हलका होता चला जा रहा है….
अनुभव करें…
वास्तव मे अनुभव करें….मन एक दम हल्का हो गया है….
बडप्पन के समस्त परमाणु बाहर निकल गए हैं..
अब हमे सब कोई अपने से श्रेष्ठ-महान् एव गुणवान् ही
दिखाई देते है….
हम अपने आपमे एक सामान्य व्यक्ति रह गए है ..
अनुभव करें….
बड़प्पन के हीन परमाणुओ के निकलते ही आत्मा मे
कैसा हल्कापन लग रहा है…
विचारो में कितनी उच्च भावनाओ का सचार हो रहा है..
सामान्य से सामान्य व्यक्ति पर भी, चाहे वह नौकर भी
क्यो न हो, कितना स्नेह भरा आत्मीय भाव बन रहा है…
अपने से जरा भी अधिक योग्यता वाले व्यक्तियो पर
कितना बहुमान-सम्मान का भाव भीतर हिलोरें ले रहा है….
बडप्पन के विचारो का विरेचन हमें कितने आह्लाद से भर रहा है.
तीव्रतम भाव करें…
हमारे तन-मन-प्राण एवं आत्मा मे एकदम हल्कापन छा गया है…
भीतर आनन्द की तरंगें उठ रही हैं….
चारों ओर हल्कापन अनुभव हो रहा है….
यह हल्कापन बढता चला जाए
इस सकल्प को तीव्रतम बनालें…
कर्म निर्जरा हो रही है….यह प्रत्यक्ष अनुभव करें
हल्कापन ही तो कर्म निर्जरा का प्रतिफल है
यह हल्कापन बढता जाय ..
इस प्रशस्त सकल्प के साथ ध्यान से बाहर आ जाए….

११ | छल-छद्म : समीक्षण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बनालें....... ....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अच्छी तरह दोहराएं) ....
भाव करे...........
शरीर एक दम हल्का हो गया है ....
शरीर का हल्कापन अति सीमा तक पहुंच गया है.........
शरीर ऊपर उठने को आतुर है ....
किन्तु मन मे अभी भी बहुत भार भरा पड़ा है...........
मन का भारीपन अनेक कारणो से है..........
मन अगणित प्रकार के भारो से लदा है...........
अब हमें मन के समस्त भार को उतार फेंकना है ....
मन को एकदम हलका बना लेना है.........
हमे यह ज्ञात हो चुका है कि हमारे मन पर कौन-कौन
सा भार पड़ा है ....
यह भाव मन अनादि काल से अनेक प्रकार के भार.........
ढोता चला आ रहा है........
अरे, यह मन तो माध्यम है.... भार ढोने वाली तो आत्मा है ....
इस आत्मा पर क्रोध, अहंकार, छल-छद्म, लोभ-लालच विषय-वासना-
आदि के अनेक प्रकार के परमाणुओ ने प्रभाव जमा रखा है....
इनमे से अभी हमने क्रोध एवं अहकार के भार को हल्का
करने का प्रयास किया है.........
अब हम छल-कपट, अर्थात् माया जाल सम्बन्धी
आवरणों को हटाने का प्रयास करेंगे.. ..
अब जरा हम आत्म-समीक्षण करें.. .. ...
वास्तव में अनुभव करें कि अब हम अन्तर्यात्रा प्रारम्भ कर रहे हैं...
इस समय हमारी दृष्टि बाहर की दुनिया से दूर. .... ..

बहुत दूर....अपने ही भीतर की ओर दौड रही है . ...
हमारा मन अपनी ही अच्छी बुरी वृत्तियों का अवलोकन
कर रहा है.. ....
हम अपनी वृत्तियो का भाव-पूर्ण समीक्षण कर रहे हैं...... ....
जरा अनुभव करें . ...
हमे अभी अपने अन्तरंग मे क्या दिखाई दे रहा है.......... .
ओ, हो, वहा तो अभी कालिमा ही कालिमा दिखाई दे रही है.......
क्रोध, अहकार की कालिमा तो कुछ कम हो गई है............
फिर भी अभी छल-छद्म, झूठ फरेब, लोभ-लालच, विषय-वासना आदि के अगणित काले दाग या काले परमाणु आत्मा पर प्रभाव जमाए हुए हैं........
हमे अपने अन्तरंग मे कालिमा ही कालिमा दिखाई दे रही है...........
अभी हमारा ध्यान छल, कपट माया के परमाणुओ पर
ही टिक रहा है. ... .
देखें..... यह माया का जाल हम पर कितने रूपों में हावी हो रहा है ...
जिधर देखें उधर छल, छद्म, कपट, माया ही माया ने
मन को-आत्मा की सरल वृत्ति को घेर रक्खा है ....
न जाने कितने जन्मो से, नही, नही अनन्त काल से माया
ने आत्मा के सहज-सरल मूलभूत गुण को आवृत कर रक्खा है........
अरे, यह ठगिनी माया हमारे द्वारा दूसरो को और दूसरो के द्वारा हमें या स्वय-स्वयं को ही कैसे जाल मे फसाती है.... ....
कैसे नाच नचाती है.. . .....
इसने हमे कितनी कुटिल चालें सिखायी हैं.. ....
और हम इसके जाल में फसकर स्वयं को ही प्रताड़ित
करते रहे हैं. ... .. स्वयं को ही ठगते रहे हैं.......... .
देखे, जरा अपनी इस दूषित वृत्ति का अवलोकन, समीक्षण करे.......
अपनी अन्तरग दृष्टि पर के सभी ऊपरी पर्दों को हटादें...........
अपनी चित्त वृत्तियो के आर पार देखे.... ......
भाव करे...........
अब हमे अपनी अन्तरग समीक्षण ध्यान की दृष्टि से
आत्मा के आर-पार सब कुछ दिखायी दे रहा है......... ..
माया के विविध रूप हमे दिखाई दे रहे हैं...........

अपनी तुच्छ, स्वार्थी भावनाओ मे हम अच्छे-अच्छे बुद्धिजीवियों को, सरल चेता धर्मात्माओ को एवं भावुक लोगो को कैसे जाल मे फंसा लेते हैं.........
इसी छद्म वृत्ति के कारण हम कितने रूप, मुखौटे धारण करते रहते हैं..........
कैसे-कैसे स्वाग लेकर लोगो के सामने उपस्थित हो जाते है...........
अपने आपको कितने रूपों मे प्रस्तुत करते रहते हैं...........
जो हमारे भीतर है, उसे हम माया की वृत्ति से छिपा लेते हैं...........
जो हमारे भीतर नही है, उसका प्रदर्शन करते रहते हैं...........
अरे यह माया ही तो है, जो हमारी चेतना के आत्म-साधना के मूल गुण सरलता को ढक देती है...........
यह इस शरीर मे सर्वत्र अपना जाल फैलाए हुए है...........
प्रत्येक आत्म-प्रदेश पर क्रोध मोहनीय और मान मोहनीय के समान यह माया मोहनीय कर्म भी फैला हुआ है...........
चूंकि आत्म-प्रदेश पूरे शरीर के सचेतन भाग मे फैले हुए हैं...........
अतः यह माया की वृत्ति भी सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त हो रही है........
हम अभी इस छल छद्म की वृत्ति का समीक्षण कर रहे है...........
अभी हमारा ध्यान अन्य वृत्तियों पर नही, केवल 'माया' वृत्ति पर है....
हम अभी समस्त आत्म-प्रदेशो का साक्षात्कार कर रहे है...........
वहा फैले हुए माया मोहनीय के परमाणु को हम स्पष्ट देख रहे हैं..
ओ हो ! कितने जन्मो में की गई माया के स्तर वहा जमे हुये है....
दो चार दिन या कुछ वर्षों की ही नही, अनेक जन्मो की मायावृत्ति ने आत्म-प्रदेशो पर आसन जमा रक्खा है..........
देखे.......जरा गहराई से देखे...........
चारो ओर माया मोहनीय के परमाणु ही दिखाई दे रहे हैं..........
अभी हम छल-छद्म मे प्रवृत्त नही हैं...........
अभी हम अपने अन्तर मे बैठे इस दूषण के द्रष्टा बने हुए है...........
हम देख रहे हैं.... अपने भीतर देख रहे हैं...........
अभी हम द्रष्टा भर बन गए हैं..........
अब हम द्रष्टा ही नही आत्मा के—मनोवृत्तियो के परिष्कर्ता बन रहे है...........
हम संकल्प करें कि इस माया के जाल को छिन्न-भिन्न कर देंगे.......

हम अब माया की वृत्ति को तहस-नहस करने के
लिए सन्नद्ध हो गए है............
अब हम माया मोहनीय कर्म स्कन्धों को बाहर निकालने
की प्रक्रिया का प्रारम्भ कर रहे हैं...........
भाव करें...........
हमारी ध्यान की शक्ति से...........
हमारे तीव्रतम संकल्पों के द्वारा...........
समस्त आत्म-प्रदेशो में तीव्र प्रकम्पन हो रहा है...........
देखें . वास्तव मे फीलिंग करें...........
सम्पूर्ण शरीर में सभी आत्म-प्रदेश तीव्रगति से कांप रहे हैं...........
हमे अपने शरीर में कम्पन अनुभव हो रहा है...........
अब माया मोहनीय कर्म परमाणुओ मे हलन-चलन मच गई है...........
वे बड़ी तेजी से इधर-उधर दौड़ रहे है...........
माया के परमाणु, जो कितने ही जन्मो से आत्मा पर चिपके है........
वे आत्म-प्रदेशो से अलग छिटक रहे है ....
अनुभव करे, सम्पूर्ण शरीर मे एक सनसनाहट फैल रही है...........
जैसे बुखार के पूर्व मलेरिया के पूर्व कंपकंपी लगकर ठंडी लगती है....
उसी प्रकार शरीर के आन्तरिक भाग मे कंपकंपी हो रही है...........
भाव करें...........
माया के परमाणु सारे शरीर में इधर-उधर दौड़ रहे है...........
उनमें दीव्रतम गति उत्पन्न हो गई है...........
पैरो की ओर के समस्त परमाणु ऊपर की ओर उठ रहे है...........
ऊपर-सिर की ओर के समस्त परमाणु नीचे कमर की
ओर बढ रहे हैं...........
देखें, वे सारे माया के स्कन्ध कमर के निकट अन्दर की
ओर इकट्ठे हो रहे हैं...........
अनुभव करें...........
माया के सभी स्कन्ध कमर के पास इकट्ठे हो गए हैं...........
भाव करें...........
कमर का हिस्सा कुछ भारी हो गया है...........
बाकी पूरा शरीर हल्का हो रहा है...........
अनुभव करे...........

कमर में जैसे वायु भर गई है...बादी आ गई है.... ....
कमर के आस-पास बड़ा भारीपन लग रहा है.... ......
अब वे माया के परमाणु बाहर निकलने को मार्ग ढूंढ रहे हैं...........
वे अब शीघ्र बाहर निकल जाना चाहते है...........
संकल्प करे.......तीव्रतम संकल्प करे...........
अब वे माया के परमाणु कमर से कुछ नीचे खिसक रहे हैं..........
देखे.......अन्तर चक्षुओ से देखते रहे...........
वे परमाणु रीढ़ की हड्डी के मध्य सुषुम्ना नाडी में प्रवेश कर रहे हैं....
अब वे उस मेरुदण्ड-सुषुम्ना के अन्दर ऊपर उठ रहे हैं... ....
अनुभव करें.......कमर मे हल्कापन आ रहा है और
मेरुदण्ड-रीढ़ की हड्डी मे सरसराहट फैल रही है...........
अब माया के सब परमाणु बडे वेग के साथ ऊपर उठते
चले जा रहे हैं .. ..
वे नाभि तक पहुच गए हैं...........
और ऊपर, अनुभव करें... ....
वे सीने से ऊपर उठ रहे हैं ....
अब वे गले में प्रवेश कर गए हैं.. ....
भाव करें...........
पूरे मेरुदण्ड मे गले तक एक सरसराहट हो रही है...........
हल्के हल्के कम्पनो का अनुभव करे......... .
अब माया के परमाणु बाहर निकालने को मार्ग ढूंढ रहे हैं ....
अब उन्हे मार्ग मिल गया है.... .. ..
दोनों कानो से वे बाहए निकल रहे है...........
अनुभव करें.... ....
दोनो कानो से तेज हवा निकल रही है........ . .
कानो के पर्दो पर माया के परमाणुओ का स्पर्श हो रहा है.... ... ...
कमर के निकटवर्ती परमाणु ऊपर उठते जा रहे है... ... .
सुषुम्ना के सहारे वे परमाणु ऊपर उठते जा रहे है.......... .
और गले से ऊपर उठकर कानो के छिद्रो से बाहर
निकलते जा रहे हैं..... ..
देखे...-....अन्तर की आखो से देखे. . ...
अपने दायें-बायें दोनों ओर काली झाई लिए गहरे

आसमानी (जामूनी) कलर के परमाणु का ढेर लग रहा है..........
अब अन्दर से माया के सभी परमाणु बाहर निकल गए हैं............
अब कमर का हिस्सा एक दम हल्का हो गया है............
पूरा शरीर हल्का हो गया है....... मन भी हल्का हो गया है..........
अपने दोनो ओर काली झांई लिये बैगनी परमाणुओं का
ढेर लगा हुआ है....... ....
हमारा अन्तरग एक दम हल्का हो गया है..... ......
तन-मन-प्राण सभी कुछ सरल हो गए हैं ....
इतनी सहजता-सरलता का अनुभव हमने कभी नही किया था..........
हम आज एक शिशु की तरह सरल चित्त हो गए हैं...........
आज हमारी सारी वक्रता-कुटिलता न जाने कहा
गायब हो गई है..........
हमारा हृदय सरलता की मूर्ति ही बन गया है.......
हमारा व्यवहार एकदम सरल हो गया है और हर
व्यक्ति हमे सहज, सरल दिखाई दे रहा है..........
माया ही तो वक्रता है.......
वही हमे कुटिल जाल बुनने को प्रेरित करती थी... ....
अब वह बाहर निकल गई है.... ....
अब मन इतना सरल हो गया है कि उसमें धर्म का सहज
अवतरण हो रहा है .. . .
प्रभु महावीर का सिद्धान्त है कि "सो हिउज्जुय भूयस्य धम्मो
सुद्दस्स चिट्ठई" अर्थात् ऋजुभूत चित्त मे ही धर्म का निवास होता है....
अतः अब हमारा मन धर्म का पात्र बन गया है. .. ....
इतने समय तक हमारा मन कुटिल बना हुआ था ....
वह अनेक कुटिल चालें चलता ....
चाहे जिसको फंसाने का प्रयास करता. . .. .
किन्तु अब वह इस कुटिलता से मुक्त हो गया है.. . .. ..
वक्रता माया के तिरोहित हो जाने से आज हमारा मन
कितना सरल-हल्का एव प्रफुल्लित हो रहा है.......
आत्मा कितनी आनन्द-मग्न हो रही है...... ....
अब हमारी चेतना एकदम निष्कपट-निश्छल हो गई है.
अब कोई भी प्रवृत्ति हम मे कपट उत्पन्न नही कर सकती है..........

हमारा अन्तरंग-आत्मा का प्रत्येक प्रदेश निश्छल सा हो गया है........
किन्तु ...... किन्तु............
अभी हमारे बाहर दोनों तरफ माया के परमाणु-स्कन्धों
का ढेर लग रहा है.........
कही ये स्कन्ध पुनः भीतर प्रवेश न कर जावें...........
इसके लिये हमें बाहर की भी पूर्ण सफाई करनी है...........
अनुभव करें...........देखें... ....
अपने दोनों ओर बेंगनी कलर के परमाणु स्कन्धों का ढेर
लग रहा है..........
जैसे कोई बेंगनी कलर की रूई के ढेर लग रहे हों...........
दोनों ओर दो बड़े फूले हुए ढेर है...........
अन्दर वे एक दूसरे पर पर्त्त दर पर्त्त जमे हुए थे....
बाहर निकलते ही फैल गए हैं...........
अब हम उन्हें वहा से भी साफ कर रहे हैं...........
वे पुनः भीतर प्रवेश न कर जावें अतः हम उन्हें नेस्त-
नाबूद कर देना चाहते हैं...........
भाव करें...........
शरीर में....मन मे ज्योंही सरलता आई एक शक्ति का
जागरण हो गया है...........
यह शक्ति है ऊर्जा...........
अब हमारे मूलाधार से ध्यान ऊर्जा की सशक्त किरणें
ऊपर उठ रही हैं...........
प्रकाश की दो दिव्य रेखाएं गले से ऊपर उठकर दोनों
कानो की ओर फैल गई है...........
अनुभव करें........भाव करें........
कानों के बाहर निकलते ही दोनों दिव्य रेखाए अग्नि की
चिनगारियो के रूप में बदलती जा रही है.........
देखें ···वे चिनगारियां माया के स्कन्धो मे लग गई है...
अनुभव करें...........
हमारे दोनो ओर आग लग रही है........ ...
ज्वालाएं ऊपर उठ रही हैं...........
हम एकदम शान्त बैठे हैं..........

आग का हम पर कोई प्रभाव नही हो रहा है..........
ज्वालाएं ऊपर उठती जा रही हैं..........
अन्दर की आंखों से साक्षात् अनुभव करें....
कितनी तेज ज्वालाएं उठ रही हैं........
और....हम पर उन ज्वालाओं का कोई असर नही हो
रहा है, अब आग शान्त हो रही है...........
देखें अपने दोनो ओर-दायें बायें अंगारे धधक रहे हैं........
यह समाप्त होती हुई माया का पूर्व उत्तेजित रूप है.......
अब यह रूप भी शान्त हो रहा है..........
देखें....अंगारे मन्द पड़ रहे हैं..........
अब अपने दायें-बायें राख ही राख बच गई है............
ज्वालाएं बुझ गई..अंगारे शांत हो गए..........
राख ही राख रह गई है.........
एकदम सफेद राख....माया का कालापन समाप्त हो गया है..........
केवल राख का ढेर बच गया है..........
किन्तु इसे भी रहने नहीं देना है...........
माया का जाल पुनः फैल सके ऐसा एक भी दूषित परमाणु
अपने इर्द-गिर्द नही रहना चाहिए
अब भाव करें... गहराई से भाव करें..........
कमर के निकट से ही बडे वेग से हवा का झोंका ऊपर उठ रहा है ..
दोनों कानों से ध्यान ऊर्जा से उत्पन्न वायु बड़े वेग से
बाहर निकल रही है..........
जैसे फुटबाल के ब्लेडर का मुंह एक दम खुल गया हो....उसी
प्रकार दोनो कानो से बड़े वेग से हवा निकल रही है...........
और वह राख उस हवा के द्वारा दूर सुदूर उड़ती जा रही है .
हम राख के दोनों ओर दूर तक उडते हुए गोटो को देख रहे है .....
अपनी अन्तरग दृष्टि से अपनी माया को—उसके दूषित
परमाणुओ को उडते देख रहे हैं..........
भाव करें ......
सारी राख उड़ गई है..........
अब अपने आस-पास का पूरा वातावरण विशुद्ध हो गया है..........
अब हमारा अन्तरंग एवं बहिरंग-दोनों स्वच्छ, निर्मल

सरल हो गए हैं..........
हमारे चारो ओर सहज, सरलता, निश्छलता व्याप्त हो गई है..........
भाव करें.... .....
अब हमारे सभी आत्म-प्रदेश माया के परमाणु से रहित हो गए हैं....
वहा सहजभावी ऋजुता ही ऋजुता बच गई है..........
अब कोई भी निमित्त हमे छली, कपटी या मायावी
नही बना सकता है..........
माया-मोह के परमाणु ही नहीं रहे तो वक्रता आएगी ही कहां से....
अब हमारे स्वभाव में वक्रता नहीं, सरलता ही सरलता रहेगी.......
अन्तरंगता पूर्वक फीलिंग करें..........
सहज सरलता का भाव हमारे भीतर गहराता जा रहा है..........
हमारी नस-नस मे ऋजुता की सरसराहट फैल रही है .....
हमारा पूरा शरीर पुलकित-रोमाचित हो रहा है..... .. ....
सभी आत्म-प्रदेश प्रफुल्लित हो रहे हैं..... .....
माया का सारा भार उतर गया है ....
बस अब तो मन और आत्मा में हल्कापन ही शेष रहा है........
ज्योंही भीतर से माया हटी कि आत्मा एक अनुपम
आनन्द से भर गई है..... ....
हम इस समय आनन्द के सागर मे तैर रहे हैं ....
ये क्षण बड़े मूल्यवान् क्षण हैं.........
इस समय हम संसार की सभी छल-छद्म वृत्तियो से दूर....
केवल आनन्द मग्न हो रहे हैं ....
ओ हो, सरलता मे कितना आनन्द भरा है..........
मन कितनी ऊर्जा से भर गया है..........
सरलता आते ही आत्मा अपने सहज रूप मे स्थित हो जाती हैं .....
सहज आत्मा में ही ऊर्जा का जागरण होता है..........
अब हमारे तन-मन प्राण सब ऊर्जा से भर गए हैं ....
यह सहजता के आनन्द की ऊर्जा है .....
वक्रता गई कि सहजता आई ....
सहजता आई कि आनन्द उपलब्ध हुआ, अब हमारे
चारों ओर आनन्द ही आनन्द की वृष्टि हो रही है..........
हमारा तन-मन-प्राण सभी कुछ अलौकिक शान्ति से

व्याप्त हो गए है.........

हमारी यह शान्ति बढ़ती चली जाय...........

हमारी यह ऋजुता बढती चली जाय.........

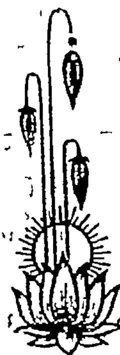
हमारा यह तन-मन का हल्कापन बढता चला जाय ..

हमारी समस्त चेतना आनन्द से आप्यायित बनी रहे....

इसी भावोन्मेष...इसी सकल्प के साथ ध्यान से बाहर आ जाय.......

धीरे-धीरे प्रकृतिस्थ हो जाय.........

अपने तन-मन प्राणो को एकदम हल्का अनुभव करे ·



१२ | असूयावृत्ति : समीक्षण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बनालें····
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को दोहराए)
भाव बनाएं····
शरीर एक दम हलका हो रहा है····
शरीर का हलकापन बहुत गहरा हो गया····
शरीर तो निर्भार गुब्बारे जैसा हो गया है····
किन्तु मन में अभी भी भार पडा है····
हमारे मन को हलका बनाने की प्रक्रिया गतिशील है····
आत्मा पर से क्रोध, मान और माया जैसे भयंकर
आवरणो—पर्दों को हटाने का प्रयास हमने किया है····
अब हम माया के ही एक सूक्ष्म रूप ईर्ष्यावृत्ति का
विरेचन करने का प्रयास करेंगे···
हमारे मन में ये छोटे-छोटे विकार—आत्म-शत्रु घर किये बैठे हैं···
अनेक प्रकार की दुर्वृत्तियों ने आत्मा पर सूक्ष्म जाल फैला रक्खा है···
ऐसे सूक्ष्म रूप हैं इन दुर्वृत्तियों के कि हम बहुत बार
इन्हें समझ भी नही पाते हैं····
बड़े-बड़े विकारो को हम निकाल देते हैं····
उनको परास्त कर देते हैं····
किन्तु ये सूक्ष्म शत्रु अनेक रूपों मे छिपकर रह जाते हैं····
उन्ही सूक्ष्म विकारों—आत्म-शत्रुओं मे से एक है असूयावृत्ति-
ईर्ष्या की आग····
बहुत बार हम दूसरों की पद-प्रतिष्ठा, धन-वैभव के रूप
में वृद्धि देखकर मन-ही-मन कुढ़ने लगते हैं····
हम अपने प्रतिद्वन्दी की प्रशंसा या बढती प्रतिष्ठा को
सुनकर बौखला उठते है····

कोई व्यक्ति हमसे किसी भी कार्य क्षेत्र मे अधिक तरक्की
कर जाता है तो हम मन ही मन जल-भुन जाते हैं····
यह हमारे मन की एक बहुत बडी कमजोरी है कि हम
दूसरे के विकास को अपना ह्रास मान बैठते हैं····
और ऐसी स्थिति में क्षुद्र भावनाओ से भरकर उसे नीचा
गिराने का सकल्प कर बैठते हैं····
इस छोटे-से विकार के कारण हम दूसरो का ही नही,
स्वय का भी बहुत बड़ा नुकसान करते रहते हैं····
जब कभी हम ईर्ष्या की आग में जलते हैं··
हमारा मन अत्यन्त कालुष्य से भर जाता है····
मन का कालुष्य ही तो कर्मबन्धन का मूल कारण है·
और इस रूप में हम प्रतिपल-प्रतिक्षण नये-नये कर्मों का
बन्धन करते चले जाते है····
बहुत बार ईर्ष्या की ज्वालाओ मे झुलसता हुआ हमारा
मन स्वयं के वर्तमान जीवन को भी तहस-नहस कर देता है···
ऐसी अनेक घटनाए हम सुनते और पढते हैं कि ईर्ष्या की आग मे
जलता हुआ व्यक्ति स्वयं अपने ही घर मे आग लगा देता है··
अपने ही लालो······ आखो के तारो·· ··· लाड़ले बेटो
के गले घोट देता है···
अपनी ही आख फोड लेता है
यह ईर्ष्या की आग हमे इतनी सूक्ष्मता और गहराई से
जलाती है, जिसका कि हमें अहसास भी नही हो पाता है· ·
आज हम अपनी चेतना से इस क्षुद्रतम वृत्ति का निष्कासन करेंगे ·
आज इस छिपे हुए शत्रु को निकाल भगाएगे
आज इस अशुभ वृत्ति का विरेचन करेंगे····
अन्त. समीक्षण के द्वारा अब हम दुर्वृत्ति का पर्यावलोकन कर रहे है····
कितने रूप लिए हुए यह हमारे भीतर बैठी हुई है····
हमारी दुकान से सामने वाले की दुकान अच्छी चल रही
हो तो हम ईर्ष्या से भर जाते हैं ··
हमारे भवन से किसी ने अधिक सुन्दर भवन खड़ाकर दिया तो···
यद्यपि उसने हमारे भवन को काट-छाट कर छोटा या
कुरूप नही कर दिया है····

किसी का बच्चा हमारे बच्चो से अधिक सुन्दर प्रतिभाशाली है तो
किसी का रहन-सहन, खान-पान हम से ज्यादा अच्छा है तो....
कोई दो भाई बड़े प्रेम से रह रहे हो तो ..
यही नही · कोई हमसे ज्यादा धर्म साधना करता है,
उसकी समाज में हमसे अधिक पूछ-प्रतिष्ठा है तो....
हम ईर्ष्या से भर जाते हैं ·
ऐसे अगणित रूप हैं, ईर्ष्या के जो छिपे चोर की भांति
हमारे भीतर छिपे बैठे हैं · ·
भाव बनाएं ·
हम अपने प्रत्येक आत्म-प्रदेश पर पैनी दृष्टि दोडा रहे है....
अनुभव करे · हमे अपने भीतर ईर्ष्या के अनेक रूपों
मे अनेक स्तर दिखाई दे रहे हैं ...
अब हम एक-एक रूप को एक-एक स्तर को चुन-चुन कर
बाहर निकाल रहे है ..
हमारे भीतर सर्वजन विकास, सर्वजन हित की प्रशस्त
भावना गहराती जा रही है ...
अपने प्रतिद्वन्दी के लिये भी हमारे भीतर सर्व प्रकार के
विकास की भावना बलवती होती जा रही है ..
जब सर्व जन विकास की भावना बलवती बन गई तो
ईर्ष्या के कीटाणु-परमाणु वहा रह ही कैसे सकते है....
अब हम अपने पडौसी या प्रतिद्वन्दी को अपने मे श्रेष्ठ
बनाने की भावना से सन्नद्ध हो गये हैं
हमे अब दूसरो को विकसित होते देखकर अच्छा लगता है · ·
हमे पडौसियो की प्रगति देखकर प्रसन्नता होती है ·
ऐसी स्थिति मे ईर्ष्या के परमाणु—स्कन्धो मे भगदड मच
जाना स्वाभाविक है
भाव करे · वास्तव मे अनुभव करे ·
अब भीतर कुछ तहलका मच गया है ...
ईर्ष्या के परमाणु एक दम ठण्डे पड गये हैं...
अन्तर के प्रतिपल जलने वाली वह आग शान्त हो रही है ·
ईर्ष्या की ज्वालाए बुझ गई है

ईर्ष्या के सारे परमाणु-स्कन्ध तरल बन गये है · ·

ठण्डे पानी के समान वे हमारी नसो मे वह रहे हैं ··
कल्पना करें··
वे हमारी नसो मे सरसराहट करते हुए दौड रहे हैं····
अनुभव करें···
हमारी नसो में शीत लहर-सी दौड रही है ··
सारे शरीर मे ठण्डी लगने जैसी कप-कपी हो रही है ·
हमारे ध्यान की ऊर्जा सक्रिय हो रही है ·
ईर्ष्या के स्कन्धो से वने उस तरल पदार्थ को वह ऊर्जा
बाहर निकाल देना चाहती है ·
अनुभव करे ·
ध्यान ऊर्जा ने एक वेग पकड लिया है ·
उस तरल पदार्थ के पीछे-पीछे ध्यान ऊर्जा भी दौडने लगी है···
फीलिंग करें
हमारी नसो मे तरल पदार्थ एव शक्ति के प्रवाह के कारण
सनसनाहट उत्पन्न हो गई है ··
ईर्ष्या के स्कन्ध बाहर निकल भागने को मार्ग ढूढ रहे है
अब उन्हें मार्ग मिल गया है···
वे हाथ और पैरो की अगुलियो से वाहर निकल रहे हैं
अनुभव करें··
हाथो एव पैरो की अगुलियो मे शीतल जल की धाराए छूट रही है ·
अन्तर् चक्षुओ से देखें··
सोलह अगुलियो से धाराए छूट रही है····
जैसे फव्वारे छूट रहे हैं
भाव करें .
फव्वारे वहुत ऊचे उठते जा रहे हैं
अन्दर से उन्हे वडा वेग मिल रहा है
ईर्ष्या के स्कन्धो से वना वह तरल पदार्थ वडी तेजी से
वाहर निकल रहा है···
वह फव्वारे वनकर उड रहा है और कही अदृश्य होता जा रहा है ··
देखें· ····अनुभव करे ईर्ष्या-असूया के समस्त कीटाणु
वाहर निकल गये हैं····
अव हमारे मन मे एक सहज हलकापन आ गया है····

अब हमारी चेतना में सहज आत्मीय भावना का विस्तार
होता जा रहा है....
अब हमें दूसरो का विकास अपना ही विकास दिखाई देता है....
अब हमे ईर्ष्या की आग जला नहीं सकती....
अब वह आग शान्त हो गई है....
आत्मा में एक दम हलकापन महसूस हो रहा है....
अब हमारे भीतर एक विकासशील ऊर्जा का जागरण हो गया है....
हमारी जो ऊर्जा ईर्ष्या की धधकती ज्वालाओ में जल जाती थी....
अब वह ऊर्जा स्वयं के विकास मे लग गई है ..
अब हमारी अपनी कार्य विधियों को सहज ही अधिक
ऊर्जा मिलने लग गई है...
अब हमारे सभी कार्य सहज विकसित होने लगे हैं..
कितनी अद्भुत वात है यह....
ध्यान के द्वारा अपनी ही शक्ति को हमने ह्रास से विकास
की ओर गतिशील कर दिया है...
अब हमारी मनोवृत्तियो में कितनी शान्ति का संचार हो रहा है....
असूया-निर्जरा के इस प्रयोग से हमारा मन कितना हल्का हो गया है
इन बहुमूल्य क्षणो मे हमारा मन कितना शान्त-प्रशान्त बन गया है....
हमारे चारो ओर अनूठी शान्ति का संचार हो रहा है....
हमारी यह शान्ति बढ़ती चली जाय...
हमारी चेतना ईर्ष्या-शून्य बनी रहे...
इसी भावोन्मेष.....इसी सत्संकल्प के साथ ध्यान से बाहर आजाएं...
अब सहज प्रकृतिस्थ हो जाय....
अपने तन, मन एव प्राणो को एक दम हलका अनुभव करें....



१३ लोभ : समीक्षण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बनालें
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को दोहराएं)
अत्यन्त गहराई से भाव करें कि शरीर एकदम हल्का हो गया है··
शरीर के हल्केपन के भाव को गहरा बनाते जाएं····
शरीर का हल्कापन अद्भुत दशा तक पहुंच गया है····
शरीर का भार गैस के फुगे जितना-सा रह गया है····
शरीर गगन की निर्बाध सैर करने को तत्पर है····
किन्तु अभी मन पूरा निर्भार नही हुआ है····
मन को स्वच्छ, निर्मल, निर्भार बनाने की प्रक्रिया चालू है ··
अभी हमारी ध्यान साधना इसी कार्य में प्रवृत्त है····
मन की निर्मलता ही तो आत्म-साधना की भूमिका है ·
मन निर्मल हुआ कि आत्मा का मलिन होना अपने आप
बन्द हो जायेगा ···
क्योकि मन की मलिनता ही तो कर्मों का बन्धन करवाती है····
मन की निर्मलता ही तो नये कर्म बन्धन को रोक देती है····
नये कर्म बन्धन का रुकना और पुराने कर्मों का झडना
(निर्जरा होना) ही तो आत्म-पवित्रता या आत्म कल्याण है····
इस रूप मे मन की निर्मलता साधना की भूमिका है····
अभी हम भूमिका निर्माण या भूमिका शुद्धि का कार्य कर रहे हैं····
अब तक हमने अपने अपने ध्यान-साधना के प्रयोगो द्वारा
क्रोध-मान-माया, ईर्ष्या जैसे वडे-वड़े भारो से मन को
हल्का करने का प्रयास किया है····
वास्तव मे हमें अपना मन कुछ-कुछ हल्का, निर्मल-साधना
की भूमिका योग्य लगने लगा है····
फिर भी अभी यह बहुत से भार से लदा है····

हमें इस मन को बिलकुल निर्भार बना देना है…
इसके लिये इसके प्रत्येक भार को चुन-चुन कर उतार फेंकना है…
आज हम मन के प्रबलतम भार आत्मा के बहुत बड़े शत्रु
को निकाल भगाने का प्रयास करेंगे….
वह शत्रु है लोभ
लालच, तृष्णा, आसक्ति, ममत्व आदि अनेक रूपों में वह
इस मन को दबोचे हुए है..
आत्मा पर हावी हो रहा है
मूल मे यह लोभ ही हमें ससार मे बाधे हुए है
अब हम आत्म-समीक्षण कर रहे हैं
प्रत्येक आत्म प्रदेश पर-शरीर के पूरे अन्तरंग पर दृष्टि दौड़ा रहे हैं….
देखें· हम अपने ही भीतर देखें….
आत्म-प्रदेशो पर फैले हुए लोभ-लालच के विभिन्न रूपो को देखें….
इस समय हम बाहर की दुनिया से कट चुके हैं….
हमारा मन इन क्षणो इन्द्रियो के सभी आकर्षणो से परे हट गया है….
इस समय हमारी सभी चित्त वृत्तिया अन्तरभिमुख हो गई है….
वे सभी आत्म-समीक्षण में रममाण हो रही हैं….
हमे आत्मा के अच्छे-बुरे सभी रूप दिखाई दे रहे हैं….
अभी हम अपना ध्यान सफाई की दृष्टि से आत्मा की
कालिमा पर ही केन्द्रित कर रहे हैं….
समीक्षण करे…अपने अन्तरग का समीक्षण करे…
हमे सुस्पष्ट दिखाई दे रही है ..
आत्मा पर कितनी कालिख पुती हुई है ·
ओ हो वहा तो जैसे कूड़े-कचरे का ढेर पड़ा हो··
कितनी मलिनता का वास है इस आत्मा पर··
क्रोध-अहंकार माया आदि की कालिमा तो कुछ हल्की हो गई है·
हमारे स्वभाव मे से क्रोध-अहकार, छल, छद्म की वृत्तिया
तो अत्यन्त क्षीण हो गई हैं ..
किन्तु अभी अन्य अनेक दूषित वृत्तिया आत्मा पर जमी हुई हैं…
उनमे से एक है लोभ-लालच ·
आज हम इस दूषित वृत्ति का भी निष्कासन कर रहे हैं…
आज हम लोभ के समस्त परमाणु स्कन्धो को बाहर खदेड़ देंगे

पहले हम लोभ वृत्ति के विभिन्न रूपो को देखने का प्रयास करेगे ··
लोभ वृत्ति का एक प्रमुख रूप है तृष्णा
इस तृष्णा की महानागिन ने हमारे मन को ही नही,
सारे संसार को डस रखा है
प्राय: प्रत्येक ससारी प्राणी मे इसका जहर फैला हुआ है···
इस जहर ने आदमी-आदमी को वेभान बना दिया है····
आम इन्सान की बुद्धि को ही इसने विकृत कर दिया है···
तृष्णा नागिन का विष धीरे-धीरे अदृश्य प्रभाव जमाता है·
जिसे हम आजकल की भाषा 'स्लोपायोजन' कहते हैं·
वैसा ही असर होता है तृष्णा के जहर का···
उद्दाम लालसाओ या निःसीम इच्छाओ को ही तो तृष्णा कहते हैं
और इच्छाएं धीरे-धीरे बढती जाती है·
एक इच्छा की पूर्ति होती है कि दूसरी इच्छा जागृत हो जाती है··
और उसकी पूर्ति पर तीसरी··
यों इच्छाओ की कभी कोई सीमा नही आती है···
उनका कोई अन्त नही आता है···
इसी दृष्टि से प्रभु महावीर ने कहा है·
"इच्छा हु आगास समा अणन्तया"
इच्छा आकाश के समान अनन्त है····
हम देखें·· अपने ही मन पर जमी इच्छा की पर्तों को देखे···
इच्छाओ अथवा तृष्णा का कैसा जाल फैल रहा है हमारे
मन पर हम अपने अन्तरंग का समीक्षण करे·
वहा हमे निःसीम इच्छाओ का जाल फैला हुआ दिखाई देगा···
जीवन की सामान्य आवश्यकताओ को छोड भी दे तो भी वहा कामना-
पूर्ण तृष्णा के अनेक ताने-वाने वुने हुये दिखाई देगे··
कही फ्रीज कही टी, वी · कही कार··
कही एयर कण्डीशन्ड वगला, कही वड़े-वड़े कल-कारखानो
का मालिक वनने की तृष्णा, तो कही अरवो-खरवो के
स्वामी वनने की पेचीदी लालसाए छिपी है····
कही मन्त्री····मुख्यमन्त्री ·प्रधानमन्त्री तक वनने की
लालसाएं घर किये वैठी हैं·

कही हेलीकोप्टर और एरोप्लेन तक खरीद लेने की

कामनाए छिपी हैं तो कही दुनिया के सर्वोच्च उद्योगपति,
लक्ष्मीपति बनने के स्वप्न दिखाई देते हैं…
अभी… इन क्षणो मे भले ही हमें ऐसा लगता हो कि हमारे भीतर ऐसी कोई कामनाएं नही है किन्तु वास्तव मे इससे अनन्तगुणी आकांक्षाएं छिपी हुई हैं—हमारे मन मे ‥
इसीलिये तो हजारपति से लखपति बन जाने के बाद भी वही दौड है ‥ और लखपति से करोडपति बन जाने के बाद भी वही दौड़ है…
यही नही ‥ करोड़पति से अरबपति बन जाने के बाद तो
दौड़ और अधिक तेज हो जाती है….
इसीलिये तो टाटा, बिडला, डालमिया और बागड़ सभी
बडी तेजी से एक-दूसरे की प्रतिस्पर्धा मे भागते जा रहे हैं…
है कही किसी के मन को विश्रान्ति ‥
यह तृष्णा की विपवल्ली बढती ही जाती है….
इसकी कही कोई परिसमाप्ति नही है….
हमारे मन के कोने-कोने, कण-कण मे इच्छाओ के विषैले
अकुर फूट रहे हैं….
वहां एक विषय की तृप्ति अनेक अतृप्तियो को उत्पन्न करती रहती हैं….
और यह तृष्णा या अतृप्ति धन की ही हो ऐसी बात नही है….
हमारे मन मे पद-प्रतिष्ठा और यशकीर्ति की उद्दाम
लालसाए भी तो बैठी हुई हैं….
तभी तो हमारा मन छोटी कुर्सी से वडी कुर्सी की ओर
निरन्तर दौड़ता रहता है….
सरपंच से चैअरमैन, चैअरमैन से विधायक और विधायक से मन्त्री,
केबिनेट मन्त्री, मुख्यमन्त्री और प्रधानमन्त्री तक बनने की कामनाएं
मन के कोने मे छिपी रहती हैं….
यही बात यश-कीर्ति की कामना के विषय मे है….
हम थोडा-सा दान देकर महादानी कर्ण जैसी कीर्ति प्राप्त
कर लेना चाहते हैं….
थोड़ा-सा पढ-लिखकर धुरन्धर पण्डित की प्रतिष्ठा चाहते है ‥ कुछ
बोलना सीखकर वहुत वड़े व्याख्याता-प्रवक्ता-सी इज्जत चाहते हैं ‥
दो-चार उपवास करके वहुत वडे तपस्वी का यश चाहते हैं….
इस प्रकार अनेक प्रकार की कीर्ति कामनाओ का बोझ
पड़ा है हमारे मन के ऊपर….

और जब हमारी धन, यश, पद, प्रतिष्ठा की कामनाएं पूरी
नही होती हैं ·· तो तृष्णा की आग ऐसी भड़क उठती है
कि मन अनहोनी-क्रूरता से भर जाता है···
धन-यश और पद की कामनाओ ने अनेक मनुष्यो के मन
को ऐसा उन्मादी बनाया है कि कामनाओ की पूर्ति नही
होने पर लाखो लोगो को बेमौत मौत के घाट उतार दिया गया····
महाभारत और राम-रावण के युद्ध तृष्णा की उद्दाम
लालसाओ के कारण ही तो हुए हैं ·
जितने भी युद्ध हुए हैं · · हो रहे हैं · उन सबके पीछे किसी
न किसी व्यक्ति की तृष्णा ही तो काम कर रही है····
तृष्णा का यह आवेग उन उन्मादी लोगो मे ही था ऐसी बात नही है ··
हमारे मनो मे भी वैसा ही विकराल जाल फैला हुआ है···
सामर्थ्य के अभाव मे ही हम उस ओर दौड़ नही लगा रहे हैं···
यदि हममे लखपति से करोडपति या चैयरमैन से विधायक
बनने तक का सामर्थ्य है तो उतनी दौड तो लगाते ही हैं···
और वहा पहुचने पर मन फिर अगली दौड की तैयारियो
मे जुट जाता है ·
इसीलिये कहा जा रहा है कि हमारे मन मे लोभ-तृष्णा
का महाजाल फैला हुआ है····
आज से नही ··सदियो से नही····अनन्त-अनन्त काल से
यह मन-आत्मा लोभ-लालच-तृष्णा के महाजाल मे फसा है····
किन्तु आज हम तृष्णा के इस महाजाल को छिन्न-भिन्न करके रहेगे····
अब हम अपने भीतर फैले हुए इस महाजाल का समीक्षण कर रहे है···
हम आत्म-प्रदेशो पर फैली लोभ की पर्तो को देख रहे है····
हम आत्म समीक्षण कर रहे है
हमे दिखाई दे रहा है···
प्रत्येक आत्म-प्रदेश पर अनन्त-अनन्त लोभ मोहनी कर्म-
परमाणुओ ने अपना प्रभाव जमा रखा है
इन परमाणुओ ने आत्मा की अनन्त मौलिक शक्ति को दबा दिया है ·
इस लोभ-वृत्ति के कारण ही तो आत्मा मे अनेक
दुर्वृत्तियो-दोषो ने घर कर लिया है···
भगवान महावीर ने कहा है····

'लो भाविलो नरो आययइ अदत्त"
लोभी व्यक्ति चोरी करता है····
चोरी ही नही, झूठ, हिंसा आदि अनेक दुर्गुण इस लोभ
के कारण आत्मा में प्रवेश कर जाते हैं····
यदि हमे आत्मा को स्वच्छ-निर्मल बनाना है····
यदि आत्मा को अपने सहज-मूल रूप मे प्रतिष्ठित करना
है तो इन लोभ मोहनीय के परमाणु स्कन्धो को निकाल
कर फेंक देना होगा····
और यही कार्य आज हम अपनी ध्यान साधना के द्वारा कर रहे हैं····
अब हम तीव्रतम भाव करें ··
हमे आत्म-प्रदेशो पर लगे हुए अनन्त-अनन्त परमाणु-
स्कन्ध स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं···
हम उन्हे बाहर निकालने को सन्नद्ध हो गये हैं··
देखें····अन्तर्, चक्षुओ से देखे
अनन्त-अनन्त जन्मो के चालीस कोड़ाकोडी सागरोपम
तक की स्थिति के लोभ मोहनीय के परमाणु-आत्म प्रदेशो
पर चिपके दिखाई दे रहे हैं
वे परमाणु प्रत्येक आत्म-प्रदेश पर पर्त दर पर्त चिपके हुए हैं ··
सबसे ऊपर वाली पर्त मे हल्के लोभ मोहनीय के परमाणु हैं····
जिन्हे आगमिक भाषा मे संज्वलन लोभ कहते हैं····
उसके अन्दर वाली पर्त मे प्रत्याख्यानावरण और उसके
अन्दर वाली पर्तों मे क्रमशः अप्रत्याख्यानावरण एव
अनन्तानुवन्धी क्रोध के परमाणु चिपके हुए हैं···
अन्दर-अन्दर के स्कन्ध अधिक-अधिक प्रगाढता लिये हुए है····
आज हम अपनी सूक्ष्म प्रज्ञा से लोभ मोहनीय की सभी
पर्तों का समीक्षण कर रहे है····
हमे वे पर्ते वहुत स्पष्ट दिखाई दे रही हैं
अब हम उन पर्तो को उलट-पलट कर बाहर निकालने
का क्रम प्रारम्भ कर रहे है····
भाव करें····
हमारे सभी आत्म-प्रदेशो मे तीव्र कम्पन पैदा हो गये हैं···
अनुभव करे····
लोभ के स्कन्धो की पर्तो मे तीव्रतम उथल-पुथल मच गई है··

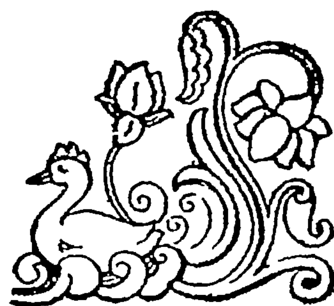
वे पर्तें ऊपर की नीचे और नीचे की ऊपर हो रही हैं....
हमारे ध्यान की शक्ति बढ गई है....
ध्यान ऊर्जा की तीव्रता ने आत्म-प्रदेशो मे तीव्रतम
प्रकम्पन उत्पन्न कर दिये हैं...
हमारे शरीर की नस-नस कांप कर रही है....
उसके साथ आत्म-प्रदेशों में प्रकम्पन का अनुभव हो रहा है....
फीलिंग करें....
अन्दर की पर्त बाहर और बाहर की अन्दर हो रही है....
तीव्र स्थिति वाले लोभ मोहनीय के स्कन्ध अल्प स्थिति
वाले बनकर ऊपर की ओर चले जा रहे हैं....
जिसे कर्म सिद्धान्त की भाषा में अपवर्तन एव संक्रमण कहते हैं....
हम उस कर्म अपवर्तन एवं संक्रमण की सूक्ष्म प्रक्रिया का
साक्षात् अनुभव कर रहे है...
भाव करें....
एक दो वर्षों से नही....जन्म-जन्मो से आत्म-प्रदेशों में
चिपके लोभ के परमाणु इधर-उधर भागने लगे हैं....
उन स्कन्धो मे बड़ी खलबली मच गई है....
अनुभव करें....जैसे हमारी नसो मे रक्त की गति बहुत
तीव्र हो गई हो....
रक्त की गति के साथ लोभ के परमाणु भी बडी तेज गति
से दौडने लगे हैं...
नीचे वाले परमाणुओ की गति ऊपर की ओर तथा ऊपर
वाले परमाणुओ की गति नीचे की ओर हो रही है....
वे सभी परमाणु पेट के स्थान पर नाभि के आस-पास
एकत्रित हो रहे है....
पूरे शरीर मे एक तीव्रतम सनसनाहट फैल रही है...
भाव करें....
लोभ-तृष्णा के सभी परमाणु पेट के अन्दर एकत्रित हो गये है....
अब पूरे शरीर मे हल्कापन लग रहा है....
किन्तु पेट एकदम भारी अनुभव हो रहा है....
जैसे पेट एकदम वायु से भर गया हो ..
ज्यों-ज्यो परमाण वहा एकत्रित हो रहे हैं त्यो-त्यो पेट

का भारीपन बढता जा रहा है····
अनुभव करें····
पेट एकदम फूल रहा है फुलावट इतनी अधिक हो गई
है कि वह सहन शक्ति के बाहर है····
अब वे सब परमाणु बाहर निकलने को उद्यत हो गये हैं····
वे बाहर निकलने का मार्ग ढूंढ रहे हैं···
अन्य मार्ग नही मिलने से वे नाभि पर जोर लगा रहे हैं··
भाव करें····
नाभि में एक छोटा-सा छिद्र हो गया है····
और लोभ के परमाणुओ ने बाहर निकलने का मार्ग बना लिया है···
छिद्र कुछ-कुछ बडा होता जा रहा है ··
बडे वेग के साथ वे तृष्णा के परमाणु बाहर निकलने लगे हैं···
जैसे किसी ट्रक के ट्यूब मे बडा-सा पंक्चर हो गया हो या कोई कट
लग गया हो और बडे वेग से हवा बाहर निकल रही हो···
अनुभव करें····
बड़े वेग से हवा की तेज धारा हमारे नाभि मण्डल से
बाहर निकल रही है ·
वह हवा केवल हवा नही, तृष्णा के परमाणु हैं···
काली झाई लिये गहरे कत्थई रंग के वे परमाणु बडी
तीव्र गति से बाहर निकल रहे हैं
धारा इतनी तेजो से निकल रही है कि वे परमाणु ५-७
फिट दूर गिरते जा रहे हैं···
भाव करें··
हमारे सामने ५-७ फिट दूर कत्थई परमाणुओ का ढेर लगा रहा है···
अन्दर के सभी लोभ-लालच-तृष्णा के परमाणु बाहर
निकलते जा रहे है··
हमारा पेट हलका होता जा रहा है····
अब समस्त तृष्णा के दूषित परमाणु बाहर निकल गये हैं····
अव हमारा अन्तरग पूरा मन हलका हो गया है
हमारा दम एकदम भार रहित हो गया है····
आज हमारी समस्त आशाएं-तृष्णा की वासनाएं क्षीण हो गई हैं····
हमारे अन्तरग मे निर्लोभ वृत्ति छा गई है····
हमारा मन निर्लोभी हो गया है····

किन्तु अभी हमारे सामने लोभ के परमाणुओं का ढेर लग रहा है····
हम अन्तरंग चक्षुओं से देख रहे हैं····
अन्दर और बाहर दोनो ओर हमारी दृष्टि फैली हुई है····
अन्तर मे निर्मलता है तो बाहर अभी जहरीले परमाणु
दिखाई दे रहे हैं····
तृष्णा एक जहरीली नागिन है और उसका जहर अभी
हमारे सामने पडा हुआ है····
कही वह जहर पुनः अन्दर प्रवेश न कर जाए····
अतः हमे उन जहरीले परमाणुओ को दूर-सुदूर खदेड देना है····
देखें· अन्तर दृष्टि से देखें···
हमारे सामने तृष्णा के जहरीले परमाणुओ का कितना
ऊचा ढेर लगा हुआ है····
अन्दर तो वे परमाणु पर्त दर पर्त जमे हुए थे··
किन्तु बाहर निकल कर फैल गये है····
फूल गये हैं··
हमे अपने सामने कत्थई रग के परमाणुओ का बहुत ऊंचा
ढेर दिखाई दे रहा है··
कितनी गन्दी हवा फैल रही है उन परमाणुओं मे···
कितनी जहरीली गैस फैल रही है हमारे चारो ओर··
पूरा वायुमण्डल विषाक्त बनता जा रहा है····
अब हम इस वायुमण्डल को भी पवित्र कर रहे हैं····
भाव करें
तृष्णा के जहरीले कीटाणुओं के बाहर निकलते ही हमारे
भीतर ध्यान की ज्योति जल उठी है
तीव्रतम ऊर्जा का जागरण हो रहा है····
इसी ज्योतिर्मय ऊर्जा से बडी तीव्र किरणें नाभि मण्डल
से ही बाहर निकल रही है ·
उन किरणो मे बडे तेज स्फुलिंग उठ रहे हैं····
वे स्फुलिंग तृष्णा के जहरीले कीटाणुओ मे जाकर गिर रहे है
तृष्णा के परमाणुओ में आग लग गई हैं····
अग्नि की ज्वालाए ऊपर उठती जा रही है
हमारे सामने ही हमारी तृष्णा के परमाणु जल रहे हैं····

सभी परमाणु जल कर राख हो गये हैं…
अब हमारे सामने राख ही राख का ढेर दिखाई दे रहा है….
फिर अन्तरंग से भाव करें….
हमारी नाभि से बड़ी तेजी से मण्डलिया वायु का वेग निकल रहा है…
वह वायु बडी तीव्र गति से गोलाकार मे घूम कर सारी
राख को उड़ाकर ले जा रही है…
वह राख दूर-सुदूर उडती जा रही है….
हम अपनी अन्तर्दृष्टि से उस राख को उडते हुए देख रहे हैं….
हमे स्पष्ट दिखाई दे रहा है….
मानो वदली की छोटी-सी टुकड़ी आकाश में तैरती जा रही है…
यह बदली बहुत दूर-सुदूर चली गई है….
अब हमारे बाहर का वायुमण्डल भी स्वच्छ-निर्मल हो गया है…
भाव करें….
नाभि से चन्दन की सुगन्ध लिए हुए वायु की वेगवती
धारा निकल रही है…
सारा वायुमण्डल चन्दन की महक से सुवासित हो गया हैं…
वास्तव मे अनुभव करें…
चारों ओर चन्दन ही चन्दन की महक फैल गयी है….
हमारा मन—हमारे सभी आत्म-प्रदेश तृष्णा शून्य हो गये है…
हमे अन्तर-बाहर दोनो ओर एकदम हल्कापन लग रहा है…
लोभ वृत्ति का सारा भार आत्मा से अलग हट गया है….
लोभ गया कि परम आनन्ददायक सन्तोष आया….
हमारा मन परम सन्तोष के सागर में तैर रहा है…
अब हमे संसार का कोई भी पदार्थ लुभा नही सकता है…
हमारी लोभ वृत्ति क्षीण हो गई है….
निर्लोभ चित्त ही मुक्ति-साधना कर सकता है….
अत: अब हम मुक्ति-साधना के लिये सर्वथा योग्य हो गये हैं….
इतने वर्षों तक हमारा मन तृष्णा के भवर मे गोते खाता रहता था…
अनेक आकाक्षाओ के ताने-बाने बुनता रहता था….
किन्तु आज वह सभी भौतिक आकांक्षाओ से ऊपर उठ गया है….
आकांक्षाओ के क्षीण होते ही हमारी चेतना आनन्द से भर गई है….
…री पूरी चेतना आनन्द से ऊर्मिल हो रही है…

सन्तोष वृत्ति का ऐसा आनन्द हमने कभी अनुभव नही किया....
भाव करें....
आकाक्षा रहित चेतना कितने आनन्द से भर जाती है....
तृष्णा के भार के हटते ही ऊर्जा का कैसा जागरण होता है...
हमारी सम्पूर्ण चेतना ऊर्जा की संवाहक भर बन गई है ..
यह ऊर्जा का प्रवाह अलौकिक है .
ये आनन्द के क्षण अनुपम हैं....
इन क्षणो में हमारे तन-मन-प्राण सभी कुछ अलौकिक
आनन्द से भर गये है....
हमारे चारो ओर शान्ति-शान्ति-शान्ति व्याप्त हो गई है....
हमारी यह शान्ति निरन्तर बनी रहै ..
हमारी चेतना इसी प्रकार सदा-सर्वदा आनन्द के सागर मे तैरती रहे . .
हमारे तन-मन सभी ऐसे ही हलके बने रहे....
यह हल्कापन बढता जाय
इसी भावमयता इसी सत्सकल्प....
इसी तन्मयता के साथ ध्यान से बाहर आ जायें....
धीरे-धीरे प्रकृतिस्थ हो जाएं....
अपने तन-मन-प्राण सभी को एकदम हल्का आनन्द परिपूर्ण
अनुभव करें....



१४ मिथ्यात्व अज्ञान : समीक्षण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बनाले....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को तन्मयता मे दोहराएं)
तन और मन के हल्का होने के भावो को खूब गहरा बनाए....
भाव करें...
शरीर एकदम हलका हो गया है....
मन का हलकापन भी बढ़ता जा रहा है....
आत्मा पर लगी हुई कषायो की पर्तें बहुत हलकी हो गई हैं....
अब हमारी आत्मा मे सहजता, निमलता, क्षमाशीलता
एवं विनम्रता का भाव बढता जा रहा है....
अब हमें कुछ हलकापन महसूस होने लगा है....
फिर भी यह हलकापन अभी बाह्य दृष्टि का हल्कापन है....
अभी तक की यात्रा द्रव्ययात्रा या व्यावहारिक शुद्धि की
यात्रा कही जा सकती है....
क्योकि अभी हमारे भीतर आत्मसाधना का प्रबलतम
शत्रु बैठा हुआ है,
जो साधना की भूमिका का ही निर्माण नहीं होने देता है....
वह शत्रु है अनादिकालीन 'मिथ्यात्व'....
प्रबलतम अज्ञान..
यह मिथ्यात्व ऐसा प्रबलतम शत्रु है जो हमें सत्-असत् या
धर्म-अधर्म का विवेक ही नही करने देता है....
जीव-अजीव और सुमार्ग-उन्मार्ग का भेद ही नही समझने देता है....
मिथ्यात्व मोह एक ऐसी नशीली मदिरा है, जिसे पी लेने
के बाद सारी सुध-बुध खो जाती है...
जैसे शराब पी लेने पर व्यक्ति मां को पत्नी और पत्नी
को मां कह देता है
घोड़े को गाय और गाय को घोडा कह देता है....

उसे किसी भी प्रकार का भान नहीं रहता है··
ठीक उसी प्रकार हमारी आत्मा के साथ लगा हुआ
अनादिकालीन मिथ्यात्व हमें स्वयं के सही
स्वरूप को ही समझने नही देता है····
और स्वरूप-बोध के अभाव मे धर्म-अधर्म एव जीव-
अजीव का ज्ञान तो हो ही नही सकता है···
और उसके अभाव मे मोक्ष की साधना तो किसी भी
तरह असम्भव है····
इस प्रकार ७० कोडा कोडी उत्कृष्ट स्थिति वाला यह
मिथ्यात्व मोहनीय ही हमारी आत्मा का मूलभूत शत्रु है····
या यो कहे ·
यह सभी शत्रुओ का राजा अथवा मुखिया है····
इस मुखिया को पराजित किया कि बाकी की सारी
दुर्वृत्तिया अपने आप क्षीण होने लगेंगी···
सेनापति मरा कि सेना अपने आप तितर-बितर होने लगेगी ·
अभी तक हमने कषायो के ऊपरी स्तरो को हटाने का
प्रयास किया है···
किन्तु अभी कषायो का मूल उत्प्रेरक केन्द्र मिथ्यात्व जब
तक बैठा है····
कषायें पुन·-पुनः उत्तेजित होती रहेगी····
अत· अब हमे इस सेनापति को ही कुचल डालना है ·
मिथ्यात्व को ही नष्ट कर देना है····
आज हम इस मिथ्यात्व मोह को नष्ट करने का प्रयास करेंगे· ··
पहले हम· मिथ्यात्व का समीक्षण करेंगे ·
देखें····अपने अन्तरग में देखे ··
हम जरा अन्तर्यात्रा करें····
आत्म-समीक्षण करें····
अनुभव करे····
हमे आत्मप्रदेशों पर लगी मिथ्यात्व की काली-काली पर्तें
दिखाई दे रही है····
प्रत्येक आत्मप्रदेश पर दृष्टि दौड़ाएं
वहां निबिडतम अन्धकार के समान काला ही कालापन

दिखाई दे रहा है··
यह कालापन मिथ्यात्व का है··
यह सघन अन्धकार आत्म-अज्ञान का है····
ओहो !····इस मिथ्यात्व ने····इस अज्ञान ने हमे जन्म-मरण की कितनी अन्धी गलियो मे भटकाया है····
अनन्त-अनन्त बार निगोद एव नरक योनियों में दु:खो की खाई मे डाला है····
यह मिथ्यात्व ही तो है, जिसने हमारी आत्मा को अभी तक संसार मे बाध रक्खा है····
मुक्ति सुख से—अनन्त आनन्द से वचित कर रक्खा है··
यह सभी आत्मप्रदेशो पर कैसे सघन श्याम वर्ण के रूप मे छाया हुआ है··
भाव करें····
अब हम उस श्याम वर्ण को, उस अन्धकार को हलका होते हुए देख रहे है····
अन्धकार छटता जा रहा है और श्याम वर्ण छटता जा रहा है····
अनुभव करे·
विचारो मे उज्ज्वलता का सचार होता जा रहा है····
इन क्षणो मे हम अपने विचारो के द्रष्टा बने हुए है···
हमारे अध्यवसायो की विशुद्धि बढती जा रही है····
भाव करे····
मिथ्यात्व मोहनीय की सत्तर कोडा कोडी की स्थिति घटती जा रही है····
अध्यवसायो की पवित्रता से सहज ही न्यून होती जा रही है··
जिसे हम आगमिक भाषा में स्थितिघात अथवा अपवर्तनकरण कहते हैं····
हम अपने कर्म की स्थिति को कम होते हुए देख रहे हैं..
मोहनीय कर्म की यह स्थिति अन्त: कोडा कोड़ी तक आ गई है····
इतनी अल्प स्थिति के आते ही आत्मा मे करणो की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई है····
भाव करें···
अभी हमारी आत्मा यथा प्रवृत्तीकरण से गुजर रही है····
यथा प्रवृत्तीकरण अध्यवसायो की वह प्रक्रिया है जिससे

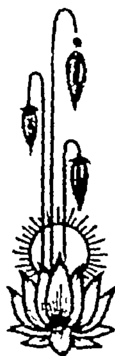
कर्मों की स्थिति घटने लग जाती है....
आत्मा अब विशुद्धि की ओर गतिशील हो रही है....
यथा प्रवृत्तीकरण की प्रक्रिया ने कर्मों की स्थिति को
बहुत कम कर दिया है....
अब हमारे अन्दर का अनादिकालीन अज्ञान-अन्धकार
कुछ-कुछ छंटने लगा है...
अब हम अध्यवसाय विशुद्धि की एक उच्चतम प्रक्रिया-
अपूर्वकरण से गुजर रहे हैं....
अपूर्वकरण एक ऐसी प्रक्रिया का नाम है जिसमे आत्मा में ऐसा भाव
उत्पन्न होता है जैसा जीवन मे कभी उत्पन्न नही हुआ हो....
अध्यवसायो की अथवा भावो की इस उच्चता मे आत्मा
मे सहज रूप से कुछ अभूतपूर्व गतिविधिया प्रारम्भ होती हैं....
कर्म सिद्धान्त मे उन्हे स्थितिघात, रसघात, गुण श्रेणि
गुण संक्रमण एव अपूर्व स्थितिबन्ध के नामो से पुकारते हैं ..
अभी हम इन पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या मे नही जा रहे है....
भाव करें....
इन क्षणो मे हम ध्यान की इतनी गहराई मे पैठ गये हैं कि हमे
इन सभी स्थितियों का साक्षात्-प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है...
अभी हम आत्म-समीक्षण एवं कर्म-समीक्षण की प्रक्रिया में संलग्न हैं....
हमे आत्मप्रदेशों पर लगे कर्म परमाणुओ में होने वाली
सूक्ष्म प्रक्रिया का अनुभव हो रहा हैं ..
कर्म परमाणुओं मे वहुत अधिक हलन चलन मच रही है....
कर्मों की स्थिति—फल देने की काल मर्यादा एकदम
घटती जा रही है....
कर्मों का रस फलानुभव का कटुकादि सामर्थ्य क्षीण होता
जा रहा है....
हम अनुभव कर रहे है....
कर्मो में उथल-पुथल मच रही है....
अभी अध्यवसायो के प्रकर्प से अशुभ-कर्म शुभ मे परिणत हो रहे हैं..
प्रतिक्षण असख्य गुण अधिक कर्म परमाणुओ की निर्जरा हो रही है....
कर्म निर्जरा एव कर्मवन्ध की प्रक्रिया का हम स्थूल
अनुभव कर रहे हैं....

भाव करें....
हम कर्म परमाणुओ मे पडने वाली स्थिति को देख रहे है....
इन क्षणो में हमारे बन्धने वाले कर्मो मे ऐसी अल्प स्थिति का
बन्ध हो रहा है, जैसा अनन्त भूतकाल मे कभी नही हुआ....
अपूर्वकरण की इस पंच प्रक्रियात्मक विधि मे कषायें
तो क्षीण हो ही रही हैं पर साथ मे मिथ्यात्व एवं अज्ञान की
पर्तें भी उतरती जा रही हैं....
आत्मा में हलका-हलका ज्ञान का प्रकाश फैलता जा
रहा है...
जैसे चन्द्रमा सघन बादलों की ओट में छिपा हो और
बादल धीरे-धीरे हल्के होते जा रहे हो—चादनी का
प्रकाश प्रसरता जा रहा हो।
अथवा आत्मा कृष्णपक्ष से शुक्लपक्ष के प्रकाश की ओर
गतिशील हो रही हो....
भाव करें....
आत्मा में प्रकाश फैलता जा रहा है, अन्धकार क्षीण होता जा रहा
है और इस प्रक्रिया का हम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं....
अब हमारी चेतना मे अनिवृत्तीकरण की प्रक्रिया मे
प्रवेश करने की भूमिका का निर्माण हो गया है....
अनिवृत्तिकरण उस प्रक्रिया को कहते हैं, जिसमे अध्यवसायो में इतनी
विशुद्धि आ जाती है कि आत्मा आत्मबोधि स्वरूप दर्शन या
सम्यग्-दर्शन प्राप्त किये बिना नही रहती है....
हम अनिवृत्तीकरण मे प्रवेश कर रहे हैं....
भाव करें..
आत्मा मे स्वरूप बोध की आभा फूटती जा रही है....
देखें....प्रत्येक आत्मप्रदेश को देखें....
वहा का अन्धकार एकदम हलका होता जा रहा है....
वहा नयनाभिराम दिव्य आलोक का उदय होता जा रहा है...
हलका-हलका नीलाभा लिये स्कायी कलर का मनमोहक
प्रकाश वहा फैल रहा है...
अनिवृत्तीकरण के प्राप्त होते ही मिथ्यात्व मोहनीय कर्म
के पुद्गलो में बड़ी भारी हलन-चलन मच गई है

उन्हें अपना आसन स्पष्ट हिलता हुआ दिखायी दे रहा है····
उनका अनादिकालीन प्रभाव क्षीण हो रहा है···
उनमे, अपनी पकड़ ढीली होने से एक प्रकार की
छटपटाहट उत्पन्न हो गई है···
भाव करे ·
अपने अन्तरंग में अनिवृत्तीकरण के अध्यवसायो और मिथ्यात्व
मोहनीय के कर्म दलिको में बडा भारी युद्ध छिड़ गया है····
अन्तरग मे होने वाले इस संघर्ष को हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं····
देखें कितना तुमुल संग्राम हो रहा है···
यह अज्ञान और ज्ञान का युद्ध है····
यह अन्धकार और प्रकाश का संघर्ष है····
यह मिथ्यात्व और सम्यग्दर्शन की लडाई है···
अनुभव करें
अज्ञान-मिथ्यात्व एवं अन्धकार परास्त होता जा रहा है····
अनिवृत्तीकरण के अध्यवसायो ने मिथ्यात्व के कर्मदलिको
को परास्त कर दिया है ·
देखें मिथ्यात्व मोह के अनादिकाल से लगे कर्म दलिक
परास्त होकर भागने लगे हैं····
अज्ञान तिरोहित होने लगा हैं····
अन्धकार छंट गया है····
आत्मा में सम्यग्दर्शन का अलौकिक प्रकाश फैल गया है ··
ऐसा प्रकाश जो कभी नही देखा गया ·
आत्मा का सही बोध हो गया है····
हेयज्ञेय उपादेय का परिज्ञान और सत्-असत् का
सम्यग्ज्ञान हो गया है···
ओ हो ! कैसी अलौकिक अनदेखी प्रभा फैल रही है हमारी चेतना मे ··
यह हमारे अनादिकालीन जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण
सबसे अलौकिक सर्वाधिक आनन्द का क्षण है··
हम अनादिकालीन मिथ्यात्व से बाहर आ गए हैं ··
हम आत्मदर्शी-सम्यग्दर्शी अथवा स्वरूपदर्शी बन गए हैं···
सत्तर कोडा कोडी सागरोपम की स्थितिवाला मिथ्यात्व
मोह कर्म आज हमारी आत्मा से विदा हो गया है····

उसी के साथ जुड़ा अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया और
लोभ का स्तर भी विलीन हो गया है....
अनुपम अद्भुत, अनिर्वचनीय सम्यक्त्व ज्योति हमारे
भीतर जल गई है....
उस ज्योति के प्रकाश मे अनादिकालीन मति-श्रुत-अज्ञान
सम्यग्ज्ञान के रूप में रूपान्तरित हो गए हैं ·
अब तक हम हेय को उपादेय और उपादेय को हेय समझ रहे थे....
अब हमारी पूरी दृष्टि बदल गई है....
अब हमे संसार के समस्त नाशवान् पदार्थ हेय लगने लगे हैं....
केवल मोक्ष मार्ग की साधना ही उपादेय लग रही है....
मिथ्यात्व के समस्त कर्म दलिक शरीर के रोम-रोम से
मार्ग ढूंढकर भाग गए हैं....
आत्मप्रदेशों से सहज प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा है....
यह प्रकाश कही बाहर से आगत नही, हमारी आत्मा का
ही प्रकाश है जो आज तक कर्मावरण से आवृत्त था ·
भाव करें...
अब हमे अपने चारो ओर पदार्थों का सही बोध हो रहा है....
हमारे भीतर मुक्ति साधना के प्रति गहरे विश्वास का
जागरण हो गया है....
हमारी तत्व के प्रति सम्यग्ज्ञानपूर्वक सम्यग्श्रद्धा उत्पन्न हो गई हैं....
हम आज अपनी आत्मा मे बहुत हल्कापन अनुभव कर रहे है....
ऐसा हलकापन जो कल्पनातीत है....
आज हमारी चेतना अनिर्वचनीय प्रकाश एवं अलौकिक
आनन्द से भर गई है....
सम्यग्दर्शन का यह प्रकाश पूरे शरीर से बाहर फूटता सा
दिखाई दे रहा है....
आज हमारी चेतना में सम्यग्दर्शन का सूर्योदय हो गया है....
आज हम ऐसे आनन्द मे तैर रहे हैं जो वर्णनातीत है..
सम्यग्दर्शन अथवा भेद विज्ञान की उपलब्धि के इस
आनन्द मे मन नृत्य कर रहा है
हमारे अन्तरग मे अध्यात्म साधना का सुन्दर संगीत उठ रहा है..
व करें....

यह आनन्द निरन्तर बढता चला जाय····
हमारा सम्यग्दर्शन क्षायिक भाव मे रूपान्तरित हो जाए····
हम इस आनन्द मे सदा-सदा लीन रहे···
इसी भावोन्मेष····इसी तीव्र अहोभाव के साथ ध्यान से
बाहर आ जाएं····
शरीर को प्रकृतिस्थ बनावें····
अपने पूरे परिवेश को एकदम हलका अनुभव करें····



१५ ममता बंधन : समीक्षण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बनाये....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को तीव्रतम सकल्पो के साथ दोहराएं)...
भाव करें....
शरीर का हलकापन बहुत अधिक बढ़ गया है....
मन का हलकापन भी बढ़ता जा रहा है....
आत्मा मे उच्चकोटि का हलकापन बढता जा रहा है ··
हमारा मिथ्यात्व का अन्धकार विलीन हो गया है....
कषायो की तीव्रता क्षीण हो गई है....
आत्मा मे अति रमणीय प्रकाश का उदय हो गया है.
फिर भी अभी वहा अनेक प्रकार के विकार भरे पड़े हैं....
ऐसे छोटे-छोटे वैकारिक जन्तु वहा बैठे है जो अनन्त
शक्ति सम्पन्न आत्मा को परेशान कर रहे हैं..
जैसे सुषुप्त सिह को मच्छर-मक्खियां भी परेशान कर देती हैं....
उसी प्रकार हमारे भीतर बैठे छोटे-छोटे विकार हमे
परेशान कर देते हैं....
आज हम उन छोटे-छोटे विकारो मे से एक विकार को
चुन कर निकालने का प्रयास कर रहे है....
यह विकार है 'ममत्व भाव'....
सम्यग्दृष्टि भाव के जागरण के वाद भी....
कषायो की क्षीणता के उपरान्त भी ममता के वन्धन
हमारी आत्मा मे सूक्ष्मता से छिपे रहते हैं....
ये ममता के वन्धन अत्यन्त सूक्ष्म एवं चिकने होते हैं,
जिन्हे हम शीघ्र समझ भी नही पाते हैं...
हमें अपने परिवार पर, मकान पर, धन सम्पत्ति पर,
पद प्रतिष्ठा पर, प्रियजनो पर ममत्व होता है....

यही नही हमे ऐसे अगणित पदार्थो पर ममत्व होता है, जो अभी हमारे पास नही है किन्तु उनकी प्राप्ति हेतु हम रात-दिन प्रयास करते हैं....
यह ममत्व, जिसे आगमिक भाषा मे राग कहा जाता है....
हमारी आत्मा मे गहरी जड़े जमाए रहता है...
द्वेष भाव तो फिर भी शीघ्र छूट जाता है किन्तु राग का छूटना बहुत कठिन माना गया है..
राग भाव दसवें गुणस्थान तक रहता है...
पति-पत्नी का राग, पिता-पुत्र, माता-पुत्री या भाई-बहिन का राग तो स्थूल राग है....
इससे भी गहरा राग होता है उन अदृश्य तत्त्वो का जो अभी स्वाधीन नही है किन्तु मन उनके लिये प्रतिपल उद्विग्न बना रहता है....
हम जरा आत्म-समीक्षण करें....
अपने ही अन्तरंग मे झाकें....
हमे ममता के कितने ही सूक्ष्म स्तर वहा दिखाई दे रहे है....
वहा ममता के ऐसे ताने-बाने लगे हुए है कि एक उलझा हुआ जाल फैल रहा है...
ऐसा जाल, जिसे काट पाना बहुत कठिन है...
ममता के इस जाल ने ही तो हमे ससार के बन्धनो मे जकड़ रक्खा है....
इस जाल के कारण ही तो हम साधुत्व की उच्च भूमिका का स्पर्श नही कर पा रहे है...
और इसी रेशमी बन्धन के कारण जन्म-मरण की शृंखला मजबूत होती जाती है....
किन्तु आज हम ममता के इन बन्धनो को तोड़ देगे....
अभी हम आत्म-प्रदेशो पर फैली हुई रेशमी जाली का समीक्षण कर रहे है....
विविध रूपो मे फैले हुए ममता के बन्धन हमे स्पष्ट दिखाई दे रहे है ..
कही हमारा मन पारिवारिक बधनो से बधा हुआ है तो कही पद-प्रतिष्ठा और वैभव के बन्धनो से....

१५ ममता बंधन : समीक्षण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बनाये....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को तीव्रतम सकल्पो के साथ दोहराएं)...
भाव करे....
शरीर का हलकापन बहुत अधिक बढ गया है....
मन का हलकापन भी बढ़ता जा रहा है....
आत्मा मे उच्चकोटि का हलकापन बढता जा रहा है ..
हमारा मिथ्यात्व का अन्धकार विलीन हो गया है....
कषायो की तीव्रता क्षीण हो गई है....
आत्मा में अति रमणीय प्रकाश का उदय हो गया है.
फिर भी अभी वहा अनेक प्रकार के विकार भरे पड़े हैं....
ऐसे छोटे-छोटे वैकारिक जन्तु वहा बैठे हैं जो अनन्त
शक्ति सम्पन्न आत्मा को परेशान कर रहे हैं...
जैसे सुषुप्त सिंह को मच्छर-मक्खिया भी परेशान कर देती हैं....
उसी प्रकार हमारे भीतर बैठे छोटे-छोटे विकार हमे
परेशान कर देते हैं....
आज हम उन छोटे-छोटे विकारो मे से एक विकार को
चुन कर निकालने का प्रयास कर रहे हैं....
यह विकार है 'ममत्व भाव'....
सम्यग्दृष्टि भाव के जागरण के वाद भी....
कपायो की क्षीणता के उपरान्त भी ममता के वन्धन
हमारी आत्मा मे सूक्ष्मता से छिपे रहते हैं....
ये ममता के वन्धन अत्यन्त सूक्ष्म एवं चिकने होते हैं,
जिन्हे हम शीघ्र समझ भी नही पाते हैं...
हमें अपने परिवार पर, मकान पर, धन सम्पत्ति पर,
पद प्रतिष्ठा पर, प्रियजनो पर ममत्व होता है....

अभी हमें अपने अन्तरग में बने सभी रिश्ते एकदम
स्वार्थी एवं क्षणभंगुर दिखाई दे रहे हैं....
यहि स्थिति पद-प्रतिष्ठा और धन दौलत की ममता की है....
ये सभी तो चंचल हैं। आज का करोड़पति कल कंगाल
बन जाता हैं और आज का चपरासी कल मिनिस्टर कर
कर पुनः चन्द दिनों मे सड़क छाप व्यक्ति बन जाता है....
फिर इनमें ममता कैसी....
अनुभव करें....
हमारे भीतर ध्यान की ऐसी तीक्ष्ण ऊर्जा उत्पन्न हो गई है....
जिसने इन सम्बन्धो की स्वार्थता को समझ लिया है....
अब वह ऊर्जा एक तीक्ष्ण कैंची की तरह अन्दर चल रही है....
रेशमी धागे-सी वह जाली कटती जा रही है .
हमारे मन से ममता के बन्धन टूटते जा रहे हैं....
अनुभव करें...
भीतर से एक पतली सी तीक्ष्ण कैंची सर-सर करती चल रही है....
हमारे आत्म-प्रदेशो मे गुद-गुदाहट-सी हो रही है....
ममता के बन्धन टूटते जा रहे हैं ..
हमारी आसक्ति क्षीण होती जा रही है....
इन क्षणो मे हम बन्धनो की टूटन को साक्षात् अनुभव कर रहे हैं....
हमें ममत्व की जाली टूटती हुई साफ दिखाई दे रही है....
आत्म-प्रदेश एकदम मुक्त-मुक्त से लग रहे हैं....
इन क्षणो हम सारे सम्बन्धो से परे अपने आपको
एकाकी नि.स्पृह-अकिंचन अनुभव कर रहे हैं .
अहा, इस एकाकीपन में भी कितना आनन्द भरा हुआ है....
ऐसा अलौकिक आनन्द जो शब्दातीत है आज हमे मन
और आत्मा एकदम असग हलके अनुभव हो रहे हैं..
आज हमारी चेतना मे अभूतपूर्व अनासक्ति अथवा
अथवा निर्ममत्व भाव का जागरण हो गया है. ..
हम अपने आपको सम्पूर्ण ससार मे अलग-थलग अनुभव कर रहे है....
भाव करे....
इन क्षणो हम एकान्त-निर्जन शून्य जगल मे एकाकी बैठे हुए हैं....
अब हमारे सम्बन्ध अपने शरीर के अतिरिक्त किसी के साथ नही हैं....

कही मन किसी सुन्दर रूप से जुडा है....
तो कही स्वादिष्ट पकवानो से कही गीत और सुगन्धित पदार्थो से
चिपका है तो कही मनभावन स्पर्श सुखो से....
इन क्षणो हम स्पष्ट देख रहे हैं कि ये सभी ममत्व के
धागे हमारे मन के चारो ओर फैले हुए है....
ये वड़े महीन किन्तु अत्यन्त मजबूत धागे है....
अब हम इन धागों को तोडने के लिए सक्रिय हो रहे हैं...
हमारी ध्यान साधना के द्वारा हमारे भीतर एक पैने
शस्त्र का निर्माण हो गया है....
भाव करें...
हमे अपने अध्यवसायो मे ऐसी पैनी दृष्टि दिखाई दे रही है.
जो इन ममता बन्धनो की क्षणिकता का वोध करा रही है. .
हमारी चेतना मे अनासक्ति भाव गहराता जा रहा है....
अभी हमे परिवार के सभी बन्धन क्षणिक एव स्वार्थी...
दिखायी दे रहे हैं....
ओहो कितना स्वार्थ भरा है इन सम्बन्धों मे...
पति पत्नी की इच्छाओ आवश्यकताओ की पूर्ति करता
रहे तव तक तो ठीक, अन्यथा सघर्ष चालू हो जाते हैं....
यही स्थिति पिता, पुत्र एवं अन्यान्य सम्बन्धो की है....
फिर इन सम्बन्धो मे ममत्व कैसा....
ऐसे अनेक ऐतिहासिक उदाहरण हमारे सामने हैं जिनमें
स्वार्थों मे जरा-सी वाधा आते ही एक-दूसरा प्रियजन
एक दूसरे की हत्या तक कर देता है...
अरे, इस स्वार्थी संसार मे अनेक पत्नियो ने अपने हाथो
अपने प्रियतमो को मौत के घाट उतार दिया. .
अनेक पुत्रो ने अपने जन्मदाता पूज्य पिताओ को जेल के सीकचो मे
वन्द कर तड़प-तडप कर मरने को मजबूर कर दिया ..
भाई के पास पैसा है तो वह वहिन का प्यारा भाई है....
नही तो वहिन उसे फूटी कौड़ी के मोल भी नही पूछे....
हा, हा, कितना स्वार्थों से भरा यह ससार है. ..
फिर किस पर ममता रक्खी जाए....
भाव करें...

अभी हमें अपने अन्तरंग में बने सभी रिश्ते एकदम
स्वार्थी एवं क्षणभंगुर दिखाई दे रहे हैं....
यहि स्थिति पद-प्रतिष्ठा और धन दौलत की ममता की है....
ये सभी तो चंचल हैं । आज का करोड़पति कल कंगाल
बन जाता हैं और आज का चपरासी कल मिनिस्टर कर
कर पुनः चन्द दिनो मे सड़क छाप व्यक्ति बन जाता है....
फिर इनमे ममता कैसी....
अनुभव करें....
हमारे भीतर ध्यान की ऐसी तीक्ष्ण ऊर्जा उत्पन्न हो गई है....
जिसने इन सम्बन्धो की स्वार्थता को समझ लिया है....
अब वह ऊर्जा एक तीक्ष्ण कैंची की तरह अन्दर चल रही हैं....
रेशमी धागे-सी वह जाली कटती जा रही है..
हमारे मन से ममता के बन्धन टूटते जा रहे हैं ..
अनुभव करें...
भीतर से एक पतली सी तीक्ष्ण कैंची सर-सर करती चल रही है....
हमारे आत्म-प्रदेशो मे गुद-गुदाहट-सी हो रही है....
ममता के बन्धन टूटते जा रहे हैं..
हमारी आसक्ति क्षीण होती जा रही है. .
इन क्षणो मे हम बन्धनो की टूटन को साक्षात् अनुभव कर रहे हैं....
हमें ममत्व की जाली टूटती हुई साफ दिखाई दे रही है....
आत्म-प्रदेश एकदम मुक्त-मुक्त से लग रहे हैं....
इन क्षणो हम सारे सम्बन्धो से परे अपने आपको
एकाकी नि.स्पृह-अकिंचन अनुभव कर रहे हैं ..
अहा, इस एकाकीपन मे भी कितना आनन्द भरा हुआ है....
ऐसा अलौकिक आनन्द जो शब्दातीत है आज हमे मन
और आत्मा एकदम असंग हलके अनुभव हो रहे हैं.
आज हमारी चेतना मे अभूतपूर्व अनासक्ति अथवा
अथवा निर्ममत्व भाव का जागरण हो गया है...
हम अपने आपको सम्पूर्ण ससार मे अलग-थलग अनुभव कर रहे है....
भाव करे...
इन क्षणो हम एकान्त-निर्जन शून्य जंगल मे एकाकी बैठे हुए हैं....
अब हमारे सम्बन्ध अपने शरीर के अतिरिक्त किसी के साथ नही हैं....

संसार की ना कुछ-सड़ी गली चीजों पर रहने वाली
ममता स्वत: दूर भाग गई है....
हम अपने आप मे एकाकी हैं....
"एगो ऽहं नत्थि मे कोई" की आगम वाणी हमारे
अन्तरग में गूंज रही है....
हमारे भीतर तीव्र अहोभाव उठ रहा है कि मैं एकाकी अनाशक्त योगी
हूं । यहा मेरा कोई नही है और न मैं किसी का हूं....
किसका-किसकी और मेरा-मेरी के सारे सम्बन्धो एव
सारे शब्दो से हमारी चेतना ऊपर उठ गई है....
सम्बन्धों के क्षीण होते ही चेतना हल्की हो गई है....
तीव्रतम भाव करें....
अहो, एकाकीपन की मस्ती भी अजब है....
यह आनन्द अद्भुत है....
यह अममत्व भाव का आनन्द अनवरत बना रहे....
हमारी किसी भी पदार्थ पर ममता न रहे...
हम अनासक्त योगी बने रहे....
इसी भावात्मकता के साथ ध्यान से बाहर आ जायें....
प्रकृतिस्थ हो जाएं ...अपनी चेतना को एकदम अनासक्त
एवं हल्का अनुभव करें....



१६ | द्वेष भाव : समीक्षण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बनालें····
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को तीव्रतम निष्ठा के साथ दोहराएं)
शरीर का पूर्णतया हलकापन अनुभव करें····
मन के स्वच्छ-निर्मल हो जाने के भाव को गहरा बनाएं····
भाव करें····
आत्मा एक दम उज्ज्वल होती जा रही है····
हमने अपनी ध्यान साधना की अब तक की यात्रा मे
अनेक विकारो-दुर्भावनाओ को बाहर निकाल दिया है··
अभी भी हमारा यह क्रम चल रहा है····
कर्म-मुक्ति के लिये हमे आत्मा से छोटे-बड़े सभी विकारो
को बाहर निकाल देना है····
आज हम आत्मा के मूल-भूत दो शत्रु—राग और द्वेष मे
से द्वेष को हटा देने को सन्नद्ध हो रहे हैं····
जरा आत्म-समीक्षण करें··
अपने अन्दर झाकें··
वहा द्वेष भाव कितने रूपो मे छिपा हुआ है····
आगमिक दृष्टि से आत्मा के मूल-भूत दो ही शत्रु हैं····
जिन्हे संसार वृक्ष के बीज कहा गया है—"रागो य दोसो
विय कम्मं बीय" राग द्वेष ये कर्म बीज हैं···
आत्मा को संसार मे बाधने वाले भी ये दो ही तत्त्व हैं—
"दो हिं वधणे हिं राग बंधणेण दोष वंधणेण"
ये दो शत्रु हैं····प्रबलतम शत्रु जो हमारी मुक्ति मजिल
को प्रतिबन्धित कर रहे हैं···
इन दोनो शत्रुओ मे से राग-ममत्व का निष्कासन तो
हमने कर दिया है····

आज हम द्वेष भाव का विरेचन करेंगे····
द्वेष-भाव को निकाल फेंकने का प्रयास करेंगे····
पहले हम अपने आत्म-प्रदेशों पर दृष्टि दौड़ाएं कि द्वेष कब से
और किन-किन रूपों मे हमारी आत्मा पर छाया हुआ है····
अब हम आत्म प्रदेशों का समीक्षण कर रहे हैं····
वहां हमें द्वेष के परमाणु सुस्पष्ट दिखाई दे रहे हैं····
एक दिन, दो दिन या कुछ वर्षों के ही नही अनन्त-अनन्त काल
के द्वेष भाव के पुद्गल हमारी आत्मा पर छाये हैं····
वे ही पुद्गल हमारे मन में द्वेष भाव उत्पन्न करते हैं····
हम देखें·······अपने मन के समस्त वैकारिक विचारों को····
मन के आर-पार देखें···
भाव करें···हमे वहां तेरे-मेरे की अनेक भेद रेखायें
संगीन दीवालें दिखाई दे रही हैं····

वहा मुझ पर राग और तुझ पर द्वेष की प्लेटें लगी हुई है····
हमे अपने अन्तर मन में·········उन दीवालो पर वे प्लेटें-
नाम पट्ट स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं···
आज तक कितने व्यक्तियो को, कितने पदार्थों को अपना
मान कर हमने उन पर राग किया है····
कितनो को पराया मानकर द्वेष किया है····
किन्तु क्या अपने, सदा अपने बने रहे हैं····
क्या पराये सदा पराये ही बने रहे हैं···
हमें अपने अतीत के चलचित्र मन के पर्दे पर साफ दिखाई दे रहे हैं····
अतीत काल मे अनेकानेक आत्माओ एवं पदार्थों को हमने
अपना माना, किन्तु वे सभी काल के प्रवाह में बह गये—
पराये हो गये···

आज उनके साथ हमारा कोई सम्बन्ध नही, जो राग के
पात्र थे वे ही द्वेष के पात्र हो गये····
आज जिन्हे हम पराया समझ कर द्वेष कर रहे हैं, वे
कभी अपने बनकर राग के निमित्त बन रहे हैं····
आगे भी कभी राग के निमित्त बन सकते हैं····
फिर भी एक गहरा अज्ञान हमारी आत्मा में छाया हुआ है,
अत. हमारा तेरे-मेरे का भाव समाप्त नही होता है···

आज हम इस भाव को समाप्त करने का प्रयास कर रहे हैं····
भाव करे····अभी हमारा जिन-जिन व्यक्तियो एवं पदार्थों पर द्वेष भाव
है वे व्यक्ति एव पदार्थ अभी हमारी दृष्टि में आ रहे है····
हम अन्तर्चक्षुओं से उनका साक्षात्कार कर रहे है···
जिसने हमारे साथ दुर्व्यवहार किया···जिसने हमारा
बुरा चाहा उसके प्रति हमारे मन मे द्वेष भाव बैठा हुआ है····
उस द्वेष भाव मे हम सदा उसके प्रति असत्संकल्पों से भरे रहते हैं····
और बुरे कर्मों का वन्ध करते रहते हैं····
हम जिसे चाहते है········उस पर यदि कोई दूसरा व्यक्ति
अधिकार जमा लेता है तो हम उसके प्रति द्वेष से भर जाते हैं····
कई बार उस द्वेष की ऐसी विकराल स्थिति बन जाती
है कि उसकी हत्या तक को तैयार हो जाते हैं
किसी ने हमारी प्रतिस्पर्धा मे खडे होकर हमसे अधिक
प्रतिष्ठा कमा ली प्रतिद्वन्द्विता मे वह विजयी हो गया तो
भी हमारा मन उसके प्रति द्वेप से भर जाता है····
हम किसी के प्रिय पात्र-चहेते बनना चाहते हैं और किसी दूसरे ने
वह स्थान ले लिया तो हम उसके प्रति द्वेष करने लग जाते हैं····
इस रूप मे हमे अपने मन के पर्दे पर अनेक घटना चक्र
दिखाई दे रहे है····
इतने प्रसग हमारी दृष्टि के समक्ष चले आ रहे है कि हम
आश्चर्य चकित हैं····
हमने कभी कल्पना भी नही की कि हमारे भीतर द्वेष की
ऐसी गाठें पडी हुई होगी ·
हमारा मन इतना विद्वेष पूर्ण भी हो सकता है, यह हमनें
कभी सोचा ही नही····
ओ हो ! इस द्वेष भाव मे हमने कितनो के साथ अभद्र
व्यवहार किया····
कितनो को आर्थिक हानिया पहुचाई····
कितनो को मानसिक संकलेश पहुंचाये····
न जाने कितने व्यक्तियो की हत्यायें करवा दी है····
जन्म-जन्म के ये चित्रपट हमारी आखों-अन्तर्चक्षुओ के
समक्ष साफ झलक रहे हैं···

हा, हा ! इन सभी दुर्वृत्तियो में हमने कैसे चिकने कर्मो के
बन्धन कर लिये हैं…
क्या होगा हमारी इस आत्मा का….
यह द्वेष हमे कितनी बार पशु योनि में ले गया….
कितनी बार नरक के दु.खो में ले गया….
ओ हो ! अनन्त-अनन्त यातनाये इसने हमे दी हैं…
और अब भी यह हमें कितनी योनियो में भटकायेगा….
नही-नही अब हम इस भटकाव को रोक देंगे….
अब हम इस द्वेष भाव को समाप्त कर देगे….
अब हम इन विविध योनियो मे भटकने के प्रमुख कारण
राग-द्वेष को समाप्त करने के लिये सन्नद्ध हो गये है….
भाव करें….

हमारे भीतर राग-द्वेष के विरुद्ध समत्व भाव का जागरण हो रहा है….
हमारे अन्दर से तेरे-मेरे का भाव तिरोहित होता जा रहा है…
भावनाओं का उद्रेक ऐसा बढ रहा है कि अन्दर के द्वेष
के पर्दे फटते जा रहे हैं….
भेद की दीवालें टूटती जा रही है….
तेरे-मेरे की सब प्लेटें हट गई है…
समस्त प्राणियो पर आत्मवत् दृष्टि का जागरण हो रहा है…
अब हमे कोई पराया लगता ही नही है… फिर किस पर द्वेष करें….
हम से द्वेष करने वाला भी हमे हित-कर्ता ही लग रहा है….
जिन पदार्थो के कारण मन मे द्वेष का जागरण हुआ वे
सभी क्षणिक लग रहे है…
इन ना कुछ-क्षणिक पदार्थों के कारण किसी से द्वेष
करना कहां की बुद्धिमत्ता है…
भाव करें….
हमारी प्रज्ञा पटु बन गई है अब उसमे आत्महित का बोध
जागृत हो गया है…
हम समस्त द्वेष भाव से ऊपर उठ रहे है…
द्वेष के परमाणु आत्म-प्रदेशो से अलग हट रहे है…
भाव करें….
आत्म-प्रदेशो मे तीव्रतम कम्पन हो रहा है….

द्वेष के परमाणु सभी आत्म-प्रदेशो से अलग छिटक रहे हैं····
वर्षों के चिपके परमाणु आज ऐसे झड़ रहे हैं जैसे कुत्ता अपने पूरे
शरीर के चर्म को कम्पित करके लगी हुई धूलि को झाड़ देता है····
जिन निमित्तों से हमारी आत्मा में द्वेष उत्पन्न होता था
वे निमित्त समाप्त हो गये हैं····
हमारी चेतना में समत्व भाव-वीतराग भाव गहराता जा रहा है····
इन क्षणो न हमारा किसी पर राग है और न किसी पर द्वेष····
प्राणिमात्र पर समत्व दृष्टि का जागरण हो गया है····
अनुभव करें····
आत्म-प्रदेशो से नीचे झड़े हुए द्वेष के परमाणु शरीर से
बाहर निकल गये हैं····
प्रत्येक रोम से पसीने की तरह वे बाहर चले गये है····
हवा के तीव्रतम झोको से वे सब इधर-उधर उड़ गये हैं····
अब कोई भी निमित्त हमारे मन मे द्वेष भाव का निर्माण
नही कर सकता है····
हमारी चेतना वीतराग भाव मे रमण कर रही है····
अहा ! द्वेष और राग के विलीन होते ही चित्त वृत्तियो में
कैसी वीतरागता आ जाती है····
और इस वीतरागता में जैसी अनुपम मस्ती छिपी हुई है····
इस वीतराग भाव में कैसा अद्भुत आनन्द भरा है····
कैसी अलौकिक शक्ति छा रही है हमारे भीतर····
सारे दु.खो के जनक तो राग-द्वेष ही हैं·
राग-द्वेष गये कि वीतरागता आई····
वीतरागता आई कि दुःख गये····
हमारी सम्पूर्ण चेतना दु.खातीत स्थिति का अनुभव कर रही है····
इन क्षणो हम अनन्त-अनिर्वनीय आनन्द मे लीन है····
दुःख की कही कोई रेखा भी दिखायी नही देती है····
ओ हो ! यह वीतराग भाव की रमणता बढती ही जा रही है····
यह आनन्द बढता ही जा रहा है····
हमारे चारो ओर आनन्द एव शान्ति की ही वृष्टि हो रही है····
हमारा यह वीतराग भाव, यह आनन्द, यह अनासक्ति
का भाव बढ़ता ही चला जावे····

हम राग-द्वेष से सदा दूर रहें....
हमारे भीतर विश्व वात्सल्य का स्रोत बहता रहे....
इसी भाव मयता के साथ ध्यान से बाहर आ जायें....
प्रकृतिस्थ हो जायें....
अपनी चेतना को.... अपने तन, मन, प्राणो को एकदम
सहज, सरल, हलका अनुभव करें....
आनन्द के सागर में तैरते रहें....



१७ | वासना : समीक्षण और निर्जरा

ध्यान मुद्रा बनालें....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को अनन्य तन्मयता के साथ दोहराएं)
भाव करें....
शरीर सीमातीत हल्का हो गया है....
ऐसा हल्कापन जो गुब्बारे मे भी नही है....
मन की वृत्तियां भी एकदम हल्की होती जा रही हैं ..
मन से बहुत कुछ भार नीचे उतर गया है....
मन के हल्केपन के साथ आत्मा में उर्ध्वारोहण की शक्ति
बढती जा रही है...
मन और आत्मा पर से बहुत कुछ बोझ हमने उतार दिया है...
किन्तु ज्यो-ज्यो पर्तें उघडती हैं त्यो-त्यो भीतर
नये-नये बोझ, नये-नये आवरण निकलते जाते हैं....
आज मन की अनेक पर्तों में छिपी हुई एक सघन पर्त का
हम समीक्षण कर रहे है....
ऐसी सघन पर्त—ऐसा सघन आवरण जो बड-बड़े योगियो
की साधना को धूल धूसरित कर देता है....
वे पर्ते हैं वासना की—विकारों की—इन्द्रियो के आकर्षणो की....
वासना के कीटाणु टी० बी० और कैन्सर के कीटाणुओ
से भी खतरनाक हैं जो हमारी आत्मा मे छिपे बैठे है....
आज हम इन जहरीले कीटाणुओ का—इनकी प्रवृत्तियो
का समीक्षण करेंगे...
इनकी भयकरता को समझने का प्रयास करेंगे....
और अन्त मे इन्हे निकाल फैंकने का प्रयास करेंगे...
सर्वप्रथम हम वासना की भयंकरता को समझने के लिये अन्तर में नही,
बाहर देखें और वह भी पुरातन इतिहास के सन्दर्भ मे..
हम जरा ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक घटनाओ पर दृष्टि डालें...
इतिहास-महाभारत एवं रामायण के ये पृष्ठ हमे स्पष्ट

दिखाई दे रहे हैं....
वे दृश्य हमारी आंखों के सामने तैर रहे हैं जिनमें वासना
की आधी ने कितना भयंकर ताण्डव नृत्य किया है....
कितने लोगो को मौत के घाट उतार दिया है एवं कितनी ललनाओं
को वैधव्य का दुःख भोगने को विवश कर दिया हैं...
कितने बच्चो को अनाथ जैसी जिन्दगी जीने को बाध्य कर दिया है....
ओहो ! इन्द्रियो की भोग-तृप्ति के लिये....क्षणिक सुख के लिये इन्सान
ने कितने और कैसे-कैसे जघन्य अपराध किये हैं....
महाभारत काल के कीचक, दुर्योधन, कंस, जरासंघ
एवं शिशुपाल के काण्ड हमारे नेत्रो मे चमक रहे हैं....
तो रामायण का रावण तो जन-जन के मुंह पर है....
महाभारत एवं रामायण के युद्ध वासना के क्षणिक
आवेग के कारण ही तो हुए थे....
क्या हुआ इन युद्धों में....
क्या किसी की वासना की पूर्ति हुई थी...
लाखों के नर संहार के बाद भी क्या किसी को कुछ उपलब्धि हुई
अधिक दूर नही, निकट भूत के इतिहास को उठाकर देखें....
चन्द बादशाहों की वासना-कामाग्नि के कारण जैसलमेर
और चित्तौड के जौहर मे हजारों क्षत्राणियों को अग्नि
की ज्वालाओ में कूद जाना पड़ा....
इतिहास के ऐसे हजारो उदाहरण हमारे सामने हैं....
जो कामाग्नि के द्वारा होने वाले नर संहारो का खुला
चित्रण हमारे सामने प्रस्तुत कर रहे हैं....
किन्तु क्या इन घटनाचक्रों से हमारी आत्मा में जरा भी
कम्पन उत्पन्न हुआ है....
क्या कभी हमने इनसे कुछ भी सीख ली है...
क्या आज भी हमारे मनो में वही कामाग्नि की ज्वालाएं
नही सुलग रही है ..
अब हम इतिहास के उन घटनाक्रमो की ओर से दृष्टि को हटावें....
अब जरा अपने अन्तरंग का ही समीक्षण करें....
भाव करें....

हम अपने मन की पर्तों को देख रहे हैं....

हमें मन में उठने वाली अनेक तरंगें स्पष्ट दिखाई दे रही हैं····
अनुभव करें····
हम मन के आर-पार देख रहे हैं····
अभी हमारी दृष्टि मन की वासनात्मक तरंगों पर अधिक दौड़ रही है····
अभी हमारे मन में वासना का उदय नहीं है····
अभी हम केवल वासना की पर्तों के द्रष्टा बने हुए हैं····
ओहो ! हमें अपने मन में वासना की कितनी पर्तें दिखाई दे रही हैं····
हमारा मन कितना विद्रूप बना हुआ है····
रूप-सौन्दर्य की वासना और रस गन्ध की वासना कोमल गुदगुदी
भरे स्पर्श सुखो की वासना, मधुर-कर्णप्रिय गीत सुनने की वासना—
काम-विकार के स्मरण की वासना, न जाने कितने प्रकार की
वासनाओं की पर्तें चढी हुई हैं हमारे मन के ऊपर····
मधुर शब्दो की झंकार सुनते ही कान कितनी तेजी से उस ओर
खिच जाते हैं, मन कितना आकृष्ट होता है उस ओर····
अरे, यह चमडे का गोरापन—रूपछटा नेत्रों को कितनी
लुभावनी लगती है····
मन कितना हर्षित होता है इस क्षणिक सौन्दर्य को देखकर····
स्पर्श सुखो के लिये तो यह बार-बार दौड़ता ही रहता है····
कैसी-कैसी अगणित कामनाओं से भरा है यह मन····
अनुभव करें····
इन कामनाओ ने कितने जीवनो को नष्ट किया है····
कितने परिवारो मे आग लगाई है···
यह सब हमारी इस आत्मा ने भी अनन्त बार किया है····
उन कलुषित कर्मों के जो दाग इस आत्मा पर लगे है
वे बहुत गहरी जडें जमाए हुए हैं····
अब हमे इन जडो को ढीला कर देना है····
भाव करें···
अब हम अपने मन को उघाडने का प्रयास कर रहे हैं····
अन्दर जमे हुए वे विषैले परमाणु हमे स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं···
मन पर जमी वासना की पर्तो मे बडी भारी उथल-पुथल मच गई है····
आज-कल-परसो के नही, कुछ वर्षो के नही, जन्म-जन्म
के वैकारिक सस्कार उभरकर ऊपर आ रहे हैं····

हमें यह देखकर आश्चर्य हो रहा है कि वासना के कितने
पुराने और गहरे संस्कार पड़े हुए हैं हमारे मन पर....
अभी हम चिर अतीत के सस्कारों को गौण कर निकट
भूत के संस्कारो को देखें...
भाव करें....
हमें अपने भीतर वासना का एक जाल-सा वना दिखाई दे रहा है....
कितनी नारियो-पुरुषो के सौन्दर्य दर्शन के द्वारा बने
वासनात्मक सस्कार मन पर पड़े हुए हैं....
इन क्षणो उन संस्कारों में दबी अनेक रूप छटाएं उभर
कर हमारे सामने आ रही हैं..
ओहो ! कितनी वार कितना विकृत वना है हमारा यह मन....
इसकी विकृतियो का कोई ओर छोर ही नही है....
एक के वाद एक सौन्दर्यमयी—लावण्यमयी आकृतियो के चित्र हमारे
अन्तर्चक्षुओं के सामने से चित्रपट के समान गुजरते जा रहे हैं...
स्मरण रहे....
अभी हम इन आकृतियों के द्रष्टा मात्र है..
द्रष्टा ही नही एक-एक आकृति को उठा-उठाकर मन से
अलग हटाते जा रहे है....
भाव करें....
सभी आकृतियां हमारी आंखो के सामने से विलीन होती जा रही हैं....
एक-एक सस्कार हमारी आत्मा से मिटता जा रहा हैं....
देखें....
हमारे मन पर वहुत समय से प्रभाव जमाए हुए सभी रूप
छटाए सहसा गायव हो गई हैं..
मानो वहुत रसीला पिक्चर यकायक गायव हो गया हो...
रूप ही नही, इन्द्रियो के सभी आकर्षण क्षीण होते जा रहे हैं....
संकल्प करें....विकार विजय का तीव्रतम भाव हमारी
चेतना मे उत्पन्न होता जा रहा है.
ब्रह्मचर्य की ओजस्विता का भाव गहराता जा रहा है..
ब्रह्मचर्य की ऊर्जा का पवित्र भावों के रूप मे जागरण हो रहा है....
अनुभव करें...
ओजस की शक्ति सम्पूर्ण शरीर की नस-नस मे

सरसराहट के साथ दौड़ रही है....
वह शक्ति एक प्रकार की प्रबल शक्ति सम्पन्न औषधि है ..
या वह अमृत ही है
वासना के जहरीले कीटाणुओ के साथ वह संघर्ष करने में समर्थ है....
तत्पर है....
भाव करे ...
सम्पूर्ण शरीर मे जैसे रक्त संचार की गति तीव्र हो गई हो....
हमारे अन्तरंग में एक गहरा सघर्ष छिड़ गया है....
द्वन्द्व युद्ध छिड गया है....
वासना के जहरीले कीटाणु भी कम शक्तिशाली नहीं हैं....
अनादिकाल से उन्होने आत्मा पर प्रभाव जमा रक्खा है....
इसकी सारी शक्तियो को दबोच रक्खा है....
आत्मा ज्योही उससे संघर्ष करने को तत्पर होती है कि वह अनेक रूपो मे बड़े प्रभावशाली ढंग से उसे पराजित कर देता है...
वासना का कोई एक ही रूप तो नही है....
न जाने कितने रूपो मे वह हमला करती है....
इन्द्रियो के विषयो के रूप मे, मन के विकारो के रूप मे....
पूर्व के कामभोगों के सस्मरण के रूप मे .
दृष्टि राग के रूप मे ...
और भी अगणित रूपो मे यह जहरीली ज्वाला भडकती रहती है और अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्मा को भी परास्त करती रहती है ..
आत्मा की समस्त शक्तियो के जागरण मे सबसे बड़ी बाधा है - वासना....
यह शारीरिक-मानसिक सभी शक्तियों के विकास को अवरुद्ध कर देती है ...
इन्द्रिया स्वरूपोन्मुख होती है—द्रष्टा बनती हैं कि यह वासना उन्हे भोक्ता बना देती है ..
मन अध्यात्म की दिशा में आत्म-स्वरूप के चिन्तन में लगता है कि वासना उसे अपनी ओर खीच लेती है....
वीर्यक्षय के रूप मे यह शरीर की मूलभूत शक्ति को क्षीण कर देती है ...
यह वासना न उत्तम चिन्तन करने देती है और न उत्तम

आचरण…
ध्यान-मौन, त्याग-तप आदि सभी प्रकार की साधना की
यह अर्गला है….
शील की तो यह परम शत्रु ही है…
बड़े-बडे साधक इससे परास्त हो गए….
विश्वामित्र जैसे हजारो वर्षों के साधक वासना के क्षणिक
आवेग मे—मेनका के कटाक्षो में फस गए…
यही नही, रथनेमी जैसी चरमशरीरी आत्मा भी अपनी
सुरक्षा नही कर पायी….
हल्के से निमित्तो ने उन्हे मानसिक विकारो की ओर खीच लिया….
इन सभी स्थितियो के आधार पर क्या यह निर्णय करलें
कि वासना पर विजय हो ही नही सकती है….
नही-नहीं ··हमारे पास ऐसे सैकड़ो उदाहरण हैं….
जो यह सिद्ध करते हैं कि वासना पर विजय प्राप्त करना
हमारे हाथ में है….
देखे जरा इतिहास के पृष्ठों को…
भाव करें….
हमारे सामने विजय कवर और विजया कुंवरी की
ब्रह्मचर्य साधना साकार हो रही है….
दाम्पत्य जीवन मे रहते हुए एक ही कक्ष मे रहते
हुए उन्होने प्रतिज्ञाबद्ध होने के कारण कैसी अखण्ड
शीलव्रत की आराधना की थी….
अरे उन स्थूलिभद्र महा श्रमण के घटना प्रसग को तो देखे—
जिस वैश्या के यहां वर्षों तक भोग वासना मे रस लिया
वही अडोल ब्रह्मचर्य की साधना….
कितने कठिन क्षण थे वे जिनमे वैश्या ने विचलित करने
में कोई कसर नही रक्खी….किन्तु—
आत्म-विजेता, विकार-विजेता स्थूलिभद्र के मन का
अनन्तवा भाग भी तो कम्पित नही हुआ….
धन्य है उन आत्मजयी महामुनि प्रवर को….
अरे ! उस भ्रातृभक्त लक्ष्मण की ओर तो देखें
कितना सयम था उसका अपनी दृष्टि पर….

चौदह वर्षों तक महारानी सीता के साथ रहने पर भी
कभी पैरों की पायलो के अतिरिक्त किन्ही अंग-आभूषणों
पर दृष्टि तक नहीं डाली····
जिसका नाम इतिहास के पृष्ठो पर स्वर्णाक्षरो मे अकित है····
उस महायोगी लक्ष्मण को इन क्षणों मे अवश्य स्मृति-
पटल पर ले आए····
वह महा वैरागी अप्रतिम त्यागी था—'जम्बूकुमार' अरे
अभी जिसने यौवन की देहलीज पर पाव रक्खा ही था····
आठ-आठ रमणिया रूपगर्विता षोडषिया अप्सराओ-सा
सौन्दर्य लिये सामने बैठी हैं····
कामदेव-सा रूप लिये उस आदर्श त्यागी युवक को
विचलित करने का भरपूर प्रयास कर रही हैं···
अपने हाव-भाव एवं कटाक्षो के तीखे बाण फेंक रही है····
अनेको उदाहरणो के द्वारा समझाने का कार्य कर रही है····
किन्तु··· किन्तु युवा खून मे कही वासना का उबाल भी आया ???····
कही मन के किसी कोने मे भी राग भाव उत्पन्न हुआ ??····
क्या भोग वासना के प्रति कोई क्षीण रेखा भी उसके मन पर उभरी····
अरे ! वह नरपुंगव स्वय तो अनासक्त योगी वैरागी बना ही रहा····
अपनी उस ब्रह्मचर्य की ओजस्विता से उसने उन षोडशियों को भी
विरागी बना दिया... त्यागी साधिका बना दिया· ·
यही नही···
उस युवा ब्रह्मचारी ने अपनी तेजस्विता से पाच सौ चोरो
को, क्रूरहृदयी क्रूरकर्मा लोगो के मानस को बदल दिया····
उन्हे संयम साधना जैसी उच्च भूमिका पर आरूढ़ कर दिया····
धन्य है··
लाख-लाख धन्य है उस महामुनि को, जिसने अरबो की सम्पत्ति और
चारों ओर बिखरी मोहक सामग्री को ठोकर मार दी····
वासना पर उसके उभार के पूर्व ही नियन्त्रण साध लिया····
यौवन के विस्फोट के पूर्व ही आत्म-समाधि में लीन हो गया····
सम्पूर्ण यौवन को साधना का हुताशन बना दिया····
अहा ! चारित्र निष्ठा एव आत्म जागृति की कैसी
उज्ज्वल मिसाल है यह···।।।

अरे ऐसे एक-दो नही संख्यातीत उज्ज्वल चारित्रशील
नर रत्नो के उदाहरण हमारी आखों के सामने तैर रहे हैं····
भाव करे····
ये सब घटनाक्रम अभी हमे जीवन्त से दिखाई दे रहे हैं
इन घटना चक्रो के परिप्रेक्ष्य मे हम अपने अन्तर मे झाककर देखे···
क्या हमारी चेतना में वह क्षमता, वह सामर्थ्य तेजस्विता
नही है कि हम अपने ओजस् को ऊर्ध्व दिशा दे सके····
अपनी शक्ति को वासना के क्षरण मे जाते हुए बचा सकें···
अरे ! इन नरपुंगवो ने जो कर दिखाया, हमारी महतारियो-
शीलदेवियो ने तो इससे बढ़कर चारित्र, निष्ठा एवं शील-सुरक्षा
के सस्मरण हमारे सामने प्रस्तुत किये हैं···
भाव करें··
महारानी धारणी का वह दृश्य हमारी आखो के सामने
तैर रहा है, जिसमे उसने अपनी लाडली बेटी वसुमती
(चन्दनवाला) को पाठ पढाने एव अपनी शील-सुरक्षा
हेतु जीभ खीच रथी के सामने आत्म-बलिदान कर दिया····
यह देखे····
हमारी आखो के सामने दूसरा चित्र उभर रहा है
महासती राजीमती का····
मन से अरिष्टनेमि का वरण कर लेने के बाद भी ब्रह्मचर्य
की अखड साधना करने वाली राजीमती अरिष्टनेमि के
लघुभ्राता रथनेमि को क्षीर का वमन करके वह कटोरा
रथनेमि के सामने प्रस्तुत कर रही है····
देखें तो उस महानारी की तेजस्विता को वह धिक्कार
रही है उस रथनेमि को···
देखें हम अपने अन्तर् चक्षुओ से देखें···
उस महान् साध्वी का दूसरा चित्र हमारे सामने आ रहा है····
वह गुफा मे ध्यानस्थ बैठे अस्थिर चित्त रथनेमि को फटकार रही है····
वह कह रही है इससे तो तेरा मर जाना श्रेष्ठ है··
इस महासती सीता की शील निष्ठा के चमत्कारो को भी तो देखें····
वह अग्नि मे कूद रही है और आग-जल के रूप मे बदल रही है····
द्रौपदी का चीर हरण भरी सभा मे हो रहा है और

उसका शील उसके लिये सुरक्षा कवच बन गया है....
अरे ! एक-एक महान् चित्र हमारी आंखो के सामने
उभरते जा रहे हैं....
अभी हम उस समुज्ज्वल चरित्रशीला मदनरेखा का चित्र देख रहे हैं....
अपने ही ज्येष्ठ मणिरथ के मलिन विचारो से अपने को बचा लेने
को उसने कितने कष्टो के पहाड अपने सिर पर झेले है ·
ओहो ! उन शील की देवियो—महान आत्माओ में
कितनी अपूर्व क्षमता थी, कितना ओजस् था....
क्या हमारे भीतर वह सामर्थ्य नही है कि हम वासना
के इन तूफानो मे अपने को स्थिर रख सकें....
नही, नही .. हमारे भीतर भी वही शौर्य, वही बलिदानी
संकल्प और वही ओजस्विता छिपी हुई है.. ·
इन उज्ज्वल चरित्रो के चित्र हमारी नसो में घूम रहे हैं....
इतिहास के पृष्ठ हमे गहरे सदेश दे रहे हैं ...
हमने अभी तक अपने सामर्थ्य को भुला रक्खा था....
आज हम अपनी अनन्त आत्म-शक्ति का बोध प्राप्त कर रहे हैं....
हमारे भीतर एक ऊर्जस्विल विश्वास जागृत होता जा रहा है....
भाव करे · :
अन्तरंग मे आत्म-विश्वास की ऊर्जा जागृत हो गई है....
हमारे वीर्य-ओजस्व ने ऊर्ध्व दिशा पकड ली है....
आज तक वह अधो-निम्न दिशा की ओर प्रवाहित हो रहा था....
अनुभव करें....
अभी तक हमारी ब्रह्मचर्य की शक्ति वासना मे बहती जा रही थी....
अनेकों प्रकार के विकारो ने हमारी चेतन-शक्ति को
क्षीण कर दिया, पगु बना दिया था · किन्तु अब ..
अब हमारी चेतना में एक गहरे विश्वास का जागरण हो गया है....
अब हमारी शक्ति ध्यान साधना के द्वारा ऊपर की ओर उठने लगी है....
अब वासना के परमाणु हमे प्रभावित नही कर सकते है ·
अब हमारी शक्ति का क्षरण नही हो सकता है....
भाव करें ..
अभी हमारे भीतर तुमुल संग्राम हो रहा है ·
वासना अर्थात्—विष, वीर्य-ओजस् अर्थात् अमृत याने जहर और

अमृत का संघर्ष हो रहा है हमारी आत्मा में····
यो तो यह संघर्ष-द्वन्द्व युद्ध अनेकों बार चलता है किन्तु
आज का यह संघर्ष अपूर्व है····
सदा-सदा इस संघर्ष में ब्रह्मचर्य की शक्ति-आत्मशक्ति
परास्त होती चली आयी है····
किन्तु आज····आज बात उलट गई है, आज वासना के
जहरीले कीटाणु क्षीण होते जा रहे हैं····
परास्त होते जा रहे हैं····
आज आत्मा में अपूर्व तेज का जागरण हुआ है···
ऐसा तेज जो अभूतपूर्व है ··
अनुभव करें····
रक्तवाहिनी नाड़ियों में बहुत तेजी से सरसराहट चल रही है····
रक्त की गति मे तीव्र प्रवाह का अनुभव करें····
अब तक हमारे रक्त में कामुकता के जहरीले कीटाणु भरे हुए थे····
अब वे क्षीण होते जा रहे हैं····
अब हमारे रक्त में ओजस् शक्ति का संचार हो रहा है····
भाव करें····
अभी हमारा रक्त परस्पर दो विपरीत दिशाओं में बह रहा है····
वासना के विषैले कीटाणु ऊपर की ओर उठना चाहते हैं····
भावनाओं में उत्तेजना उत्पन्न करना चाहते हैं····
किन्तु ब्रह्मचर्य की शक्ति के पवित्र विचारों के अमृतकण
उन्हें ऊपर उठने नही दे रहे हैं····
वे उन्हें नीचे की ओर धकेल रहे हैं····
हम इस संघर्ष का अपने रक्तवाही संस्थानों मे साक्षात्
अनुभव कर रहे हैं····
सदा-सदा से विजय का अट्टहास करने वाले वे कीटाणु-
परमाणु आज परास्त हो रहे हैं····
वे अभी चमड़ी के इर्द-गिर्द इधर-उधर चिपक कर छिप
जाना चाहते है···
वे अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करना चाहते हैं···
इन्द्रियां एवं मन के माध्यम से अनेको बहाने ढूंढ रहे हैं····
किन्तु आज ध्यान साधना के द्वारा उत्पन्न उस ब्रह्मचर्य की निष्ठापूर्ण
शक्ति ने, उस ओजस् ने अपना पूरा सामर्थ्य जुटा लिया है····

आज वह शक्ति उन्हें समूल नष्ट करने के लिये कृत-संकल्प हैं····
देखें ···अपने अन्तरंग में अनुभव करें····
संघर्ष बढता जा रहा है····
उस अमृत-ओजस् की शक्ति प्रचण्ड रूप धारण करती जा रही है····
वासना के जहरीले कीटाणुओ में खलबली मच गई है····
भाव करें····
आत्मप्रदेशो में तीव्रतम कम्पन्न उत्पन्न हो रहे हैं····
हमारी समस्त चेतना मे अत्यधिक सक्रियता का संचार हो गया है····
वह अब वैकारिक कीटाणुओं को निकाल फैंकने के लिए
सन्नद्ध हो गई है····
संकल्प करें····
वह वीर्य-शक्ति बडी तेजी से हमारी नसों में दौड़ रही है····
वासना के कीटाणुओं को उसने एकदम परास्त कर दिया है····
वे सारे कीटाणु नीचे खिसकने लगे हैं····
भाव करें···
वासना के समस्त परमाणु मूलधार चक्र पर एकत्रित हो रहे हैं····
अब हमारी चैतन्य शक्ति ने ब्रह्मचर्य की ऊर्जा ने उनके
बाहर भागने के समस्त द्वार रोक दिये हैं····
वे सभी पुनः सामूहिक शक्ति के रूप मे एकत्रित होकर
चेतना पर हमला बोल देना चाहते हैं····
किन्तु अब उनकी शक्ति क्षीण हो गई है····
अब वे सामर्थ्यहीन निःसत्व हो गए हैं····
यह मनोवैज्ञानिक सिद्धांत है कि अल्पबल वाला अधिक
बल वाले के रूप में बदल जाता है···
वासना के समस्त जहरीले कीटाणु रूपान्तरित होते जा रहे है····
जो शक्ति वासना के माध्यम से नीचे की ओर बह रही
थी अब वह ऊपर की ओर उठने लगी है····
भाव करें····
मूलाधार चक्र से, जो नाभि के नीचे पेडू के निकट है,
शक्ति का ऊर्ध्वारोहण हो रहा है····
काम-वासना मे बहने वाली शक्ति साधना मे ऊपर उठ रही है·
रीढ़ की हड्डी-मेरुदण्ड के बीच सुषुम्ना नाड़ी मे होती

हुई वह शक्ति ऊपर की ओर बढ रही है ··
वीर्य का ऊर्ध्वगमन हो रहा है····
वह ओज हमारी चेतना मे भव्य ओजस् का निर्माण कर रहा है····
अनुभव करें····
अब हमारी वासनाएं क्षीण हो गई हैं···
वीर्य शक्ति-ब्रह्मचर्य की शक्ति परमात्म दिशा की ओर बढ रही है····
अब हमे वासना के कैसे भी उत्तेजक निमित्त मिलें,
हमारे भीतर वासना जागृत नही हो सकती है···
आज की इस ध्यान साधना के द्वारा हमारी आत्मा में
अपूर्व अभूतपूर्व शक्ति का जागरण हुआ है···
हमारी चेतना अपूर्व उल्लास-अभूतपूर्व आनन्द से भरती जा रही है···
ओहो, हम अपने शरीर को कितना हल्का अनुभव कर रहे हैं····
हमें अपने आपमे कैसी अद्भुत शक्ति का अनुभव हो रहा है····
ब्रह्मचर्य की शक्ति अद्भुत है· अनुपम है····अनिर्वचनीय है···
हमे अपने भीतर ऊर्जस्विलता-ओजस्विता आ अनुभव हो रहा है ··
अब हम विकारो से सर्वथा अलग हट गए हैं··
ऊपर उठ गए है····
हमारी चेतना आनन्दमग्न हो रही है ··
ऐसा अद्भुत आनन्द निरन्तर बढ़ता चला जाय, हमारा
यह हल्कापन सदा-सदा बना रहे·
इस भाव स्पन्दन के साथ···
इस उल्लासपूर्ण तन्मयता के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं··
स्वस्थ प्रकृतिस्थ हो जाए··
अपने तन-मन-प्राण सभी को हल्का, प्रफुल्लित,
आनन्दपूर्ण अनुभव करे···



१८ कर्मबन्धन की प्रक्रिया का समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें··
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को अतीव भाव प्रवणता के साथ दोहराए)
अपने तन-मन को एकदम पूर्ण रूप से हलका भार रहित
अनुभव करे, भाव करे····
शरीर एकदम हल्का हो गया है···
मन मे भी हल्कापन लग रहा है
आज हम मन को भारी बनाने वाले कर्मों का उनके
बन्धन की प्रक्रिया का समीक्षण कर रहे है ·
आज हम यह देखने का प्रयास करेगे कि आत्मा ससार मे
क्यो भटकती है····
यह नित नये बन्धन मे क्यो बंधती है ··
यह कर्मबन्धन क्या है और किस रूप मे होता है ··
आत्मा को कर्म बन्धन से कैसे बचाया जा सकता है····
भाव करें···
अभी हम आत्मप्रदेशो को साक्षात् देख रहे है···
वहा कर्मों के स्तर के स्तर जमे हुए हैं ·
प्रतिपल नये कर्म भी बंधते जा रहे है ·
देखे ये कर्म आत्मा के प्रति कैसे आकृष्ट होते हैं और कैसे
उसके साथ चिपक जाते है·
अभनुव करे···
हमे अपने मन के स्पन्दनो का अनुभव हो रहा है····
हमे वचन और काया के स्पन्दनो का अनुभव हो रहा है····
हमे वचन और काया के स्पन्दनों का प्रत्यक्ष बोध-हो रहा है····
ये तीनों योग है ·· ·· मन, वचन, काया की प्रवृत्ति ही
तो योग है और यही आश्रव है····

अभी हम कर्मों के आगमन की प्रक्रिया का स्पष्ट अनुभव कर रहे हैं····
वे कर्म कही दूर से नही आ रहे है····
वे कर्म हमारे आत्म-प्रदेशों के ही अति निकट स्तर के स्तर भरे पडे हैं, उनमे प्रतिपल तीव्रतम हलन-चलन चलती ही रहती है····
मन, वचन, काया के स्पन्दनात्मक योग की प्रवृत्ति के
कारण वे आत्मा के साथ खिचते चले जाते हैं····
हमारे मन में हमारे आत्म-प्रदेशो मे रही हुई कषाये उन्हें
आत्मा के साथ चिपकने में सहयोग करती है····
भाव करें····
हमें आत्मा मे कषायो की चिकनाहट दिखाई दे रही है····
जैसे घृत अथवा तेल की चिकनाई वाला घडा हवा मे पडा हो उस पर हवा के द्वारा उड़-उड़कर धूलि आ-आकर जम रही हो····
उसी प्रकार आत्मघट पर कषायो को चिकनाई लगी हुई है····
मन, वचन, काया के योग की हवा चल रही है और कर्म
परमाणु रूपी धूलि उस चिकनी आत्मा पर चिपक रही है···
हम अभी अपने काषायिक भावो को देख रहे हैं····
उस चिकनाई से बंधने वाले कर्म परमाणुओं को भी देख रहे है····
अनुभव करे····
यह कर्म बन्धन की सूक्ष्म प्रक्रिया हमारी आंखो के सामने हो रही है,
हमे अन्त: समीक्षण के द्वारा इस प्रक्रिया का साक्षात्
अनुभव हो रहा है···
देखें·······अपने अध्यवसायो को देखें····
उनमें क्षण-क्षण में होने वाले परिवर्तन को देखे····
भाव करें··
हमारे अध्यवसाय-विचार ज्यो-ज्यों बदलते है, त्यो-त्यों
कर्म-बन्धन में भी परिवर्तन आ रहा है····
अशुभ अध्यवसायो से बन्धने वाले कर्म कितने भद्दे प्रकार के हैं···
कितने विद्रूप हैं·······कितने काले-काले हैं ··
ये आत्मा को मलिन बना देते हैं····
इन क्षणो हम अतीत मे बनी मलिन वृत्तियों से बंधे
कर्मों को देख रहे हैं···
चूंकि इन क्षणों हम ध्यान साधना के विशुद्धतम अध्यवसायों

मे रमण कर रहे हैं···
अतः अशुभ कर्मों का नही, शुभ पुण्य कर्मों का बन्ध हो रहा है····
अनुभव करें····
अभी हमारी आत्मा मे विशुद्धतम भाव चल रहे हैं····
सर्वत्र उज्ज्वलता का प्रकाश फैल रहा है···
आने वाले, चिपकने वाले कर्म परमाणु भी शुभ्रता लिये हुए हैं····
अहा·······कितने शुभ-पुण्य कर्मों का आगमन हो रहा है····
आत्मा मे निर्मलता बढ़ती जा रही है····
कर्म-बन्धन अवश्य हो रहा है····
हम उसे देख रहे हैं····
किन्तु यह बन्धन आत्मा को भारी बनाने वाला बन्धन नही है,
यह चिकनाई जो आत्मा पर लगी हुई है वह भी शुभ ही लग
रही है, हमे आत्मा के साथ बधते हुए कर्म दिखाई दे रहे हैं··
यह सब इन चर्म चक्षुओ का विषय नही है···
हम अपनी अन्तर् आंखो से देख रहे हैं···
हमे अपनी आत्मा के साथ कर्म-बन्धन होता हुआ उसी प्रकार दिखाई
दे रहा है जैसे आग मे तपे हुए लोह गोलक को पानी में डाल देने
पर वह पानी को चारो ओर से अपनी ओर खीचने लगता है····
'सव्वं सव्वेण बंधइ ।' के आगम सूत्रानुसार हम देख रहे
हैं आत्मा मे चारो ओर से कर्मो का आश्रव हो रहा है,
और सम्पूर्ण आत्मप्रदेशो मे कर्मों का बन्धन हो रहा है····
भाव करें···
बंधते हुए कर्मों में पड़ने वाली भेद रेखाओ को भी हम देख रहे हैं····
देखें····सूक्ष्मता पूर्वक देखें····
उन कर्मो मे कुछ कर्म परमाणु ज्ञानावरणीय के रूप मे
रूपान्तरित होकर आत्मा के ज्ञान गुण को ढकते जा रहे है··
हमारे अध्यवसायो-विचारो के अनुसार कर्म परमाणुओ
मे रूपातन्तरण हो रहा है····
जैसे-जैसे भाव-विचार वैसे-वैसे कर्म बन्धन····
हमारे विचार-अध्यवसाय ही तो कर्म बन्धन का मूल हेतु हैं···
कषायो की तारतम्यता ही तो कर्मों की स्थिति एवं
फलदायक शक्ति मे तारतम्य उत्पन्न कर देती है····

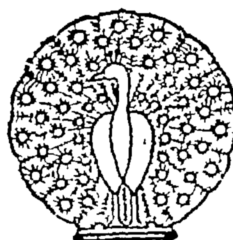
हम अपने भावो, विचारो, काषायिक परिणामों को देखे····
उनमे जैसी तीव्रता-मन्दता है वैसी ही तीव्रता मन्दता
कर्म परमाणुओ मे बन रही है···
भाव करें ·
हमारे भावो मे ज्ञान-सामान्य ज्ञान मे अश्रद्धा-उपेक्षा का
भाव बन रहा है····
हम दूसरों के ज्ञान में ईर्ष्या या बाधक बनने का विचार कर रहे हैं
ज्ञान के साधनों की या ज्ञानदाता गुरु की अवज्ञा कर रहे हैं····
और हमारे बधने वाले कर्मों में ज्ञान, दर्शन, आत्मा के
मौलिक गुण को ढकने की तीव्रतम शक्ति उत्पन्न हो रही है····
देखे··· भाव प्रवणता से देखे···
कैसे सघन आवरण हमारी आत्मा पर चढ़ रहे हैं···
मानो उसकी ज्ञान-शक्ति के प्रकाश पर पर्दे पडते जा रहे है····
हमारी चेतना का ज्ञान-प्रकाश मंद-मद पडता जा रहा है····
इस प्रकार ज्ञानावरण एवं दर्शनावरण के आवरणो का
हम स्पष्ट रूप से अनुभव कर रहे है
अब फिर हम अपने अध्यवसायो-विचारों को देख रहे है··
भाव करे
हमे उनमे दूसरो को दु.ख देने की यातना-पीड़ा पहुंचाने
की कलुषता दिखाई दे रही है····
ओ हो ! कैसे दूपित विचार हैं हमारे ·
हम दूसरो को रुला कर खुश होते हैं ·
दूसरो को लड़ाकर, पीड़ित देखकर हमे प्रसन्नता होती है····
ये परिणाम ही तो असाता वेदनीय कर्म वन्धन के कारण हैं····
अभी हमारी आत्मा मे वंधने वाले कर्मों में असाता-दु.ख
उत्पन्न करने की क्षमता का निर्माण हो रहा है····
अभी जो कर्म दलिक वंध रहे हैं उनमे वेदनीय कर्म को
वहुत अधिक हिस्सा मिल रहा हैं··
इस प्रकार अध्यवसायो का परिवर्तन भिन्न-भिन्न कर्मों के
वन्धन का कारण वनता है
अभी हमारे विचारो में कुछ शुभत्व आ रहा है····
भाव करे··

अभी हमारे सामने कोई दु:खी प्राणी है....
हमारा हृदय करुणा से भर उठा है....
अत्यन्त दया पूर्ण भाव हमारी चेतना मे गहरा रहे हैं..
कितनी शुभ भावनाएं उत्पन्न हो रही हैं इस समय...
ये भावनाएं ही तो सातावेदनीय आदि पुण्यकर्म बन्धन की हेतु हैं....
अभी जो कर्म परमाणु हमारी आत्मा पर चिपक रहे हैं
वे शुभ्रता लिये हुए है, ये अपने परिणाम मे हमें साता-
सुख-समृद्धि देने वाले होगे...
हम इन बन्धने वाले कर्म परमाणुओं को भी देख रहे हैं....
इन्हें देखने वाली दृष्टि है समीक्षण की....
अभी हम अपने मे विचारों की निर्मलता एवं हल्केपन का
अनुभव कर रहे हैं, अरे, यह क्या, हमारे विचारो में पुनः
एकदम मोड आ गया है...
विचारो मे राग-द्वेष की काली धाराए बहने लगी हैं ..
प्रबलतम मोह भाव-विकार-भाव का जागरण हो रहा है.
हमारी आत्मा में.
ओ हो, अभी हम कितने कलुषित विचारो में बहने लगे हैं...
अभी हमारी चेतना मोहान्ध ही बन गई है...
इस समय हमारे अध्यवसाय अपनी आत्मा पर भी
निष्ठावान् नही रहे है.
शुद्ध देव, गुरु, धर्म पर भी हमारे विचारो मे कितनी उपेक्षा
भर गई है, हम परम आराध्य अरिहन्त देव, मार्ग द्रष्टा गुरु एव
शिव सौख्य प्रदाता धर्म की भी अवज्ञा-आशातना कर देते हैं ..
अरे, ये ही तो दर्शन मोह कर्म-बन्धन के कारण है...
दर्शन मोहनीय कर्म ही तो हमें सम्यक्त्व बोध से वचित कर देता है....
हा, हा, कैसे आवरण छा रहे हैं, हमारी आत्मा पर, हम
प्रत्यक्ष देख रहे हैं, इन सघन आवरणो को....
अनुभव करें
हमें अपनी सन्मति पर चढते हुए आवरण दिखाई दे रहे हैं....
आत्मा मे स्वरूप-बोध की क्षमता क्षीण होती जा रही है....
अरे, रे, यह क्या....
हमारी आत्मा मे तो तीव्रतम कषायो का उदय हो रहा है....

क्रोध, अहंकार, छल, दम्भ, लोभ, लालच, अनेक काषायिक
विकारो का हमला हो गया है, हमारे मन पर····
एक तीव्रतम कम्पन हो गया है—मानसिक, वाचिक,
कायिक वृत्तियों में····
आत्मा में एक उथल-पुथल मच गई····
और अब जो कर्म परमाणु आत्मा के साथ खिंच रहे हैं····
बंध रहे हैं, वे है मोहनीय कर्म····
आत्मा को बेभान-चारित्र हीन बना देने वाले कर्म····
यह मोहनीय कर्म ही तो राग-द्वेष की परिणतियों के
द्वारा ममता के बन्धनों मे बांधता है····
यही तो अनन्त काल तक संसार भ्रमण का कारण बनता है····
यही तो सब कर्मों का राजा कहलाता है····
अपने-पराये के भेद इसी के कारण तो खड़े होते हैं···
भाव करें···
हम कर्म परमाणुओं को मोह के रूप में आत्मा के साथ
संश्लिष्ट होते हुए देख रहे हैं····
हमे आत्मा की वीतराग अवस्था पर एक सघन आवरण
आता हुआ दिखाई दे रहा है····
अहा, कितनी सूक्ष्म प्रक्रिया है, कर्म बन्धन की····
आत्मा पर एक मोहक जाल फैलता जा रहा है····
आत्मा शराबी की तरह या मदोन्मत्त हाथी की तरह
प्रमत्त बनती जा रही है···
उसे अपने हिताहित का भाव भी नही रहा है····
अभी हम देख रहे हैं, अपने आगामी जन्म का आयुष्य बंधते
हुए हमारे अध्यवसाय चलचित्र की भांति बदलते जा रहे हैं···
क्षण भर पूर्व अध्यवसायो मे जो विकृति थी, अब वह
नष्ट हो गई है ·
अब भाव-विचार निर्मल-पवित्र हो गए हैं····
इन क्षणो हम साधना में रममाण हो रहे हैं···
साधना के ये उन्नत विचार देवयोनि के आयुष्य बन्ध के
उत्प्रेरक निमित्त बन रहे हैं···
अभी हम सागरोपम की स्थिति तक के उच्च देवलोक

के आयुष्य सम्बन्धी कर्मदलिकों का बन्धन कर रहे हैं—
अहा....हमें अभी अपना जीवन सार्थक हुआ सा लग रहा है....
हमने उच्च योनि-देवगति का आयुष्य बंध कर लिया है...
देखें...... भाव करें..
वे कर्म दलिक प्रशस्त रूप में अभी ताजा ही आत्म-प्रदेशों
पर पड़े हुए हैं, हमें दिखाई दे रहे हैं....
अरे ! शुभायु के साथ नाम कर्म की भी शुभ प्रकृतियो
का बंध हो रहा है....
अब पुण्य बंध जैसे ही अध्यवसाय बन रहे हैं....
नाम कर्म की शुभ पुण्य प्रकृतियों का ही बन्ध हो रहा है....
गौत्र कर्म भी उच्च ही बन्ध रहा है....
अभी हमारी चेतना में शुभ भावो का ज्वार आ गया है
और सभी शुभ-पुण्य प्रकृतियों का ही बन्ध हो रहा है...
अशुभ प्रकृतियां बन्ध तो रही है किन्तु उन्हे कर्म
परमाणुओ का हिस्सा बहुत कम मिल रहा है
शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गौत्र कर्म के परमाणु
आत्मा पर चिपकते जा रहे हैं....
अरे ! यह कैसा हवा का झोंका आया....
चित्रपट एक दम बदल गया....
विचारो की-अध्यवसायो की धारा मे एकदम परिवर्तन हो गया....
विचारधारा में हठात्-अशुभता आ गई, अरे ये कैसे विचार
ये तो किसी दीन-अनाथ को दान देने मे रुकावट डालने
वाले कुत्सित विचार हमारी आत्मा मे उत्पन्न हो रहे हैं....
ओ हो ! दूसरो की उपलब्धियों मे बाधक बनने मे मन
को बड़ा आनन्द मिल रहा है....
दूसरों के चारित्र विकास मे, संयम साधना के भावो मे
गिरावट लाने मे कैसा रस आ रहा है इस मन को....
और इन परिणामो से जो कर्म-बन्ध हो रहा है वह है अन्तराय कर्म
अन्तराय कर्म के बन्धन को भी हम देख रहे हैं....
हमारी दान-लाभ-भोग उपभोग एव वीर्य की शक्तिया
दबती जा रही हैं....
आत्मा की चारित्रिक विकास की शक्ति पर पराक्रम

फोड़ने की शक्ति पर आवरण चढते जा रहे हैं....
दान देने की भावनाएं क्षीण होती जा रही हैं....
दबती जा रही हैं..
ओ हो ! यह कैसा कर्म बन्धन, इसने तो आत्म-विकास
के द्वार बन्द कर दिये, आत्मा का वीर्य ही दब गया है....
भाव करें....
हमें आत्मा पर आते हुए ये आवरण स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं....
आज हमने कर्म-बन्धन की प्रक्रिया का साक्षात्कार किया है....
आज की हमारी ध्यान-साधना अत्यन्त सूक्ष्म एवं गहन रही है...
आज हम ध्यान की अत्यन्त गहराई मे पहुंचे हैं....
हमने आत्मा के आर-पार-कर्म परमाणुओ की हलन-चलन
एव योगों के स्पन्दनो का अनुभव किया है....
हमारे चिन्तन की, ध्यान की यह सूक्ष्म भाव गहन शक्ति
बढती चली जाय...
हम ध्यान की गहराई मे बैठते चले जाएं....
हमे अन्दर होने वाली सूक्ष्म क्रिया भी दिखाई देती रहे...
इसी भावोन्मेष, इसी तीव्र अहोभाव के साथ ध्यान से
बाहर आ जाएं...
प्रकृतिस्थ हो जाएं....
अपने सम्पूर्ण परिवेश को एकदम हलका अनुभव करे...
स्वस्थ हो जाएं....



१९ कर्म निर्जरा : समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनाले··
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को भावपूर्ण उल्लास के साथ दोहराएं)
तीव्रतम संकल्प के साथ भाव करें कि हमारा शरीर एकदम
शिथिल-हल्का हो गया है·
शरीर के साथ हमारा मन भी एकदम हल्का हो गया है···
मन के अधिकांश विकारो को हमने बाहर निकाल दिया है····
मन का और तन का एक साथ ऐसा हल्कापन हमने
कभी अनुभव नही किया था···
हम अपनी ध्यान-साधना में मन की वृत्तियो का समीक्षण
करते रहे है····
अनेक दूषित मनोवृत्तियो की हमने निर्जरा भी की है····
अव हम फिर से आत्म-समीक्षण की प्रक्रिया की ओर
गतिशील हो रहे हैं····
अभी हमने कर्म बन्धन की प्रक्रिया का समीक्षण किया था···
अव हम कर्म निर्जरा की प्रक्रिया का साक्षात्कार करने
का प्रयास करेंगे···
हमने कर्म बन्धन के हेतुओ-कारणो को समझा····
मिथ्यात्व-अज्ञान अव्रत कषाय आदि कर्म बन्धन के हेतु है··
ये सव मन के विविध प्रकार के भाव ही तो हैं ·
और भाव ही तो वन्धन के कारण हैं····
अरे, मुक्ति का कारण भी तो भाव ही हैं····
आगमो मे कहा है—"जे आसवा ते परिसवा" जो वन्धन
के कारण होते हैं, वे ही मुक्ति के कारण भी वन जाते है ··
"मनसा वद्ध्यते मनसैव मुच्यते" मन से ही वंधा जाता
है और मन से ही मुक्त हुआ जाता है····

वन्धन का कारण मन का कलुषित भाव है तो मुक्ति का
कारण भावो की परम विशुद्धता है....
भावो की मलिनता के कारण होने वाले अशुभ-शुभ कर्मो
के वन्धन का हमने समीक्षण किया है....
अब हम प्रशस्त तम अध्यवसायों के द्वारा होने वाली
कर्म निर्जरा-आत्म-शुद्धि का अनुभव करेंगे....
भाव करें...
हमारा तन-मन सब हल्का हो गया है....
हमारे विचारो-अध्यवसायों मे विशुद्धि होती जा रही है....
देखे...अपने आत्म-प्रदेशो को देखें....
दृष्टि को सर्वथा आत्म-केन्द्रित करलें....
आत्म-प्रदेशो को ही देखे....
आत्मा के आर-पार देखने का अभ्यास करें....
हमे आत्मा में उठने वाले भाव स्पष्ट दिखाई दे रहे है...
अभी हम स्वयं के विचारो के द्रष्टा बन गए है....
शान्त सरोवर मे उठती हुई तरंगो-लहरो के समान हमें
अध्यवसायो की तरंगे साफ-साफ दिखाई दे रही हैं....
हमे आत्म-प्रदेशो मे हल्की-हल्की कम्पन का अनुभव हो रहा है....
आत्म-प्रदेशो मे एक सरसराहट-सी फैल रही है...
अभी हमारे अध्यवसायो मे पवित्रता का संचार होता जा रहा है....
अभी हमारे अध्यवसाय आत्मा के इर्द-गिर्द ही परिक्रमा कर रहे हैं....
भाव करे
अभी हमारे विचारो मे परभाव की आसक्ति टूट गई है....
स्वरूप रमणता का भाव गहराता जा रहा है...
इन्द्रियो के प्रति आकर्षण क्षीण होता जा रहा है....
ससार के पदार्थो के प्रति हमारे मन मे कोई रस नही रहा है....
त्याग-तप-स्वाध्याय-ध्यान-कायोत्सर्ग की भावनाए बलवती
होती जा रही हैं...
कषायें क्षीण होती जा रही है....
ये-ऐसे विशुद्धतम अध्यवसाय ही तो निर्जरा-आत्म-शुद्धि के कारण हैं...
अनुभव करें....
हमारी त्याग-तप की भावनाओं से आत्मा पर बंधे हुए

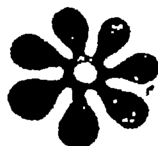
कर्म परमाणुओं में हलन-चलन प्रारम्भ हो गई है…
उनकी आत्मा के प्रति पकड़ ढीली हो रही है….
संयम-साधना की उत्कृष्ट भावनाएं कर्म परमाणुओं के
नये आगमन को तो रोक ही रही है पर पुराने कर्मों को
भी हटाने का प्रयास कर रही है….
विशुद्धतम अध्यवसायो के कारण इस समय हमे कोई
नये कर्म आते हुए, बाधते हुए दिखाई नही दे रहे है….
इन्द्रियो की उपरामता एव मन-वचन-काया के स्थिरत्व
ने कर्मों के आगमन के द्वार बन्द कर दिये हैं….
जिसे हम आगमिक भाषा मे संवर कहते है….
जैसे हमने कमरे की खिडकिया बन्द कर दी हो, ताकि
हवा से धूलि कण कमरे मे नही आ सकें…
इन्द्रियो के सारे द्वार भी बन्द हो जाने से कर्मो की धूलि
का आत्म-भवन मे आना रुक गया है ·
किन्तु कभी हमे पूर्व मे पड़े हुए कर्म मैल को भी निकाल
कर बाहर कर देना है जैसे कमरे मे पड़ी हुई धूल को
बाहर निकालने के लिये श्रम करना पड़ता है वैसे ही
आत्मा पर लगे अनादि कालीन कर्म मैल को अलग हटाने
के लिये तीव्रतम श्रम की आवश्यकता है….
और वह श्रम है….द्वादश प्रकार का तप ·
अनशन-ऊनोदरी आदि बाह्य एवं प्रायश्चित्त ध्यान आदि
आभ्यंतर तप…भाव करें….
अभी हमारी चेतना मे तप साधना की तीव्रतम लहर उठ रही है…
हम उपवास आदि तपो मे रमण कर रहे हैं…
हमारा शरीर तप साधना से कृश हो गया है…
देह के प्रति इस अनासक्ति के अध्यवसाय से प्रतिपल
बहुत अधिक कर्मो की निर्जरा हो रही है…
हमारे भीतर ज्ञान के प्रति प्रगाढ रुचि का जागरण हो रहा है…
हम स्वय ज्ञान सीखने-आध्यात्मिक अध्ययन के प्रति रुचिवान् एव
सलग्न हो रहे हैं और ज्ञान सीखने की प्रेरणा भी कर रहे हैं…
अभाव-ग्रस्तो को ज्ञान के साधन भी जुटा रहे हैं….
देखें इन विशुद्ध ज्ञान प्राप्ति के अध्यवसायो से हमारी

आत्मा पर से ज्ञानावरणीय कर्मो के पर्दे हटने लगे हैं...
ज्ञानावरणीय कर्म परमाणुओ मे खल-बली मच गई है....
पर्दे हटते जा रहे हैं और हमारे भीतर ज्ञान का प्रकाश
फैलता जा रहा है....
अनुभव करें....
जैसे भीतर कोई ऐसी मर्करी लाइट जल रही है जो
धीरे-धीरे प्रकाश को गति को बढ़ा रही है....
देखे....अपने अन्तरग मे देखे
वहा आत्मा पर से पर्दे हटते हुए और प्रकाश फैलते हुए
हमे स्पष्ट दिखाई दे रहा है..
इस समय आत्मा पर से कर्म परमाणुओं के वृन्द के वृन्द
उड़ते जा रहे हैं....
ज्ञानावरणीय कर्मों के साथ ही दर्शनावरणीय कर्म के
परमाणु भी उसी अनुपात मे उड़ रहे हैं ..
क्योकि दोनो के वन्ध और निर्जरा के सामान्य हेतु समान ही हैं....
दर्शनावरणीय कर्म भी तो दर्शन रूप सामान्य ज्ञान
शक्ति की ही आवृत्ति करता है...
भाव करें....
हमे आत्मा पर से कर्मों के वृन्द उड़ते हुए दिखाई दे रहे हैं—
ज्ञान का प्रकाश फैलता हुआ दिखाई दे रहा है....
ज्ञान के इस प्रकार मे हमारे अध्यवसायो में एक प्रशस्त
परिवर्तन आ रहा है....
जव ज्ञान का प्रकाश फैलता जाता है तो जीवा-जीव का,
सद्-असत् का वोध होने लगता है..
आत्मा मे करुणा, दया, अनुकम्पा के भाव जागृत होने लगते हैं....
दु खी प्राणी को देखकर हृदय भर उठता है....
अनुभव करें..हमारे सामने कोई दीन दुःखी खड़ा है...
और हम करुणा के भावों से भर गए हैं....
यथाशक्ति उसे सुखी वनाने का प्रयास कर रहे है...
और इस प्रकार हमारे असाता वेदनीय कर्म की निर्जरा हो रही है....
हमारी आत्मा से असाता वेदनीय कर्म धुंआ वन कर उड़ रहे हैं....
अनुकम्पा के भाव उठे तो कषायो की मन्दता भी होने लगी है...

समभाव का जागरण हो रहा है....
भाव करें...
हमारी आत्मा इस समय परम समता भाव मे रमण कर रही है...
संसार के आकर्षणो के प्रति उदासीन भाव का जागरण हो रहा है....
मुक्ति साधना के भाव तीव्रतर-तीव्रतम होते जा रहे हैं ..
अहा, वीतराग वाणी पर कैसी अहोभावपूर्ण श्रद्धा का
जागरण हो रहा है...
अणु-अणु में प्रत्येक आत्म-प्रदेश पर श्रद्धा का भाव हिलोरें ले रहा है....
और देखें....इन अध्यवसायों के प्रभाव से मिथ्यात्व मोहनीय कर्म की
निर्जरा हो रही है, अश्रद्धा का भाव समाप्त हो रहा है ..
मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के प्रवल आवरण छिन्न-भिन्न हो रहे हैं .
शुद्ध दृष्टि-सम्यग्दर्शन का आलोक हमारी चेतना मे
भरता जा रहा है....
दृष्टि के विशुद्ध होते ही राग-द्वेष की परतें भी हिलने लगी हैं...
चारित्र मोहनीय कर्म की निर्जरा-उसका क्षयोपशम होने लगा है...
आत्मा पर प्रवल रूप में छाया हुआ मोहनीय कर्म कुछ
ढीला हो रहा है...
भाव करें....
हमारी इन्द्रियो के आकर्षक क्षीण हो गए हैं....
उन पर होने वाले राग-द्वेप मन्द पड़ गए हैं..
अच्छे शब्दों पर या अच्छे रूप पर कोई राग नहीं रह
गया है ओर बुरे शब्द रूपादि पर कोई द्वेष नही रह गया है...
हमारी आत्मा मे वीतराग भाव गहराता जा रहा है....
समता का भाव वढता जा रहा है....अनुभव करें....
इस वीतरागता के भावो से मोहनीय कर्म की जड़ें ढीली हो गई है....
चारित्र मोहनीय कर्म-परमाण आत्मा से अलग हट रहे हैं....
अन्तरग मे आत्मा से कर्मों के अलग हटने का हम साक्षात्
अनुभव कर रहे हैं..
जैसे कपड़े पर मैल चिपका हो और साबुन आदि से वह
अलग हट जाता है....
वैसे ही अनुभव करें....
आत्मा पर मैल लगा है और अध्यवसायो की विशुद्धता
रूप साबुन से वह मैल हटता जा रहा है...

वीतराग भावों के समक्ष मोह कर्म परास्त हो जाता है....
भाव करें...मोह कर्म के आवरण को हटते हुए देख रहे हैं...
चारित्र मोह के क्षयोपशम के साथ ही विरक्ति के भाव बढने लगे हैं....
देशव्रती और उससे भी विशुद्ध सर्वव्रती की भावनाओ
का उदय हो रहा है...
सम्पूर्ण विरक्ति के भाव गहराते जा रहे हैं...
मन संयम साधना-चारित्र आराधना के प्रति उत्सुक हो रहा है....
त्याग, तप, साधना का बाधक मोह कर्म ही तो था जो
आज क्षीण हो गया है....
अब त्याग व्रती में कोई बाधक तत्त्व नही है....
अन्तरंग मे त्याग भाव का उल्लास उत्पन्न हो रहा है....
देखें...भाव करे...
मोह कर्म के अधिकाश कर्म परमाणु उड़ गए हैं ·
कुछ अन्दर दब गए हैं...जिसे क्षयोपशम कहा जाता है....
इसी प्रकार हमारे अध्यवसायो की विशुद्धि बढ़ती जा रही है और
अन्य नाम-गौत्रादि कर्मों के परमाणु भी उड़ते जा रहे है—
भाव करें · आत्म प्रदेशो पर के सभी आवरण हटते जा रहे हैं...
कर्म परमाणुओ को धुए की तरह हम उड़ते हुए देख रहे हैं....
हमारी पूरी आत्मा में एक कम्पन सा हो रहा है....
जैसे पशु अपने शरीर पर लगे रज कण को झाड़ने के
लिये शरीर को कम्पित करता है....उसी प्रकार एक
सरसराहट पूर्ण कम्पन हमारी आत्मा में हो रही है...
उस कम्पन से कर्म-रज नीचे झडती जा रही है....
भाव करें.. आत्म-प्रदेशो के कम्पन एवं कर्मरज के परिशाटन
का हम प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं...
आत्मा को हल्का बना देने वाला ऐसा आनन्द प्रद
अनुभव पहले कभी नही हुआ....
हमें ये क्षण अपूर्व आनन्दप्रद लग रहे हैं—
आत्मा मे अपूर्व ज्योति फैलती जा रही है....
आत्म-प्रदेशो के निरावरण होने से उनमें हल्कापन बढता जा रहा है....
वीतराग भाव बढ़ते जा रहे हैं....
ज्ञान का दिव्य आलोक प्रसरता जा रहा है....

अनन्त-अपरिमेय सुख हमारी चेतना के चारों ओर
मण्डराता जा रहा है…
अनुभव करें· भीतर प्रचण्ड शक्ति का जागरण हो रहा है ।
वह शक्ति जो, संहारक नही सृजेता है…
वह सम्पूर्ण सृष्टि को अभयत्व के आनन्द से भर देने वाली शक्ति है…
कर्म निर्जरा के पवित्र अध्यवसायो मे वृद्धि होती चली जाए…
यह ज्ञान का आलोक बढता चला जाए…
यह सात्विक शक्ति का जागरण और यह अपूर्व आनन्द
बढता चला जाए…
इसी अहोभाव के साथ…इस भावोन्मेष के साथ ध्यान
से बाहर आ जाएं…
अपने आपको एकदम स्वस्थ एवं हल्का अनुभव करें…
प्रति पल कर्मं निर्जरा के भाव को जागृत रखने के संकल्प में
ध्यान से बाहर आ जाएं…भाव करें·· तीव्रतम भाव करें…
आज वास्तव में आत्मा एकदम हल्की लग रही है…
आत्मा पर से पर्दों का बोझ हटा हुआ-सा लग रहा है…



२० कर्म : आवरण और विलय का समीक्षण

ध्यान मुद्रा बना लें....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अतीव उल्लसित तन्मयता के साथ दोहराएं....)
अपने शरीर को एकदम हल्का महसूस करें....
भाव करें....
हमारा शरीर एकदम हल्का हो गया है....
अब मन को हल्का बनाने का हमारा प्रयास चल रहा है...
और उसके माध्यम से हम आत्मा को हल्का बनाने का प्रयास कर रहे हैं..
आज हम आत्मा की अनन्त ज्ञानादि शक्तियो को आवृत कर देने वाले आवरणो का समीक्षण करेंगे...
आज हम उन आवरणों के अन्दर छिपी हुई अनन्त सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान उस चैतन्य-ज्योति का भी समीक्षण करेंगे....
भाव करें....
अभी हम इस देह के मृत्पिण्ड से परिवेष्टित आत्म-ज्योति का समीक्षण कर रहे हैं...
एक अत्यन्त प्रभा स्वर सूर्य से भी अधिक सौम्य तेजवान्, तत्त्व हमें अपनी शरीराकृति के रूप में दिखाई दे रहा है....
किन्तु उसका वह तेज अत्यन्त धुंधला हो गया है....
जैसे सूर्य के ऊपर अति सघन कोहरा छा गया हो....
और उसकी ज्योति अत्यन्त क्षीण हो गई हो....
अब हम उस कोहरे रूप आवरणो को देख रहे हैं....
देखें...
अत्यन्त तीक्ष्ण अन्तर् दृष्टि से देखें....
अनन्त ज्योति पुञ्ज हमारी देहाकृति रूप आत्म-मणि

हुई है और ये छोटे-छोटे आवरण उसकी अनन्त सामर्थ्य
निधि पर अधिकार जमाए हुए हैं....
आज प्रचण्ड शक्ति सम्पन्न यह चैतन्य दीन-हीन कमजोर
और बुजदिल बना हुआ है..
इसका मूल कारण क्या है ?.
इसका कारण है यह अन्तराय कर्म का आवरण। इस
अन्तराय कर्म का पर्दा आत्मा पर छाया हुआ है....
भाव करें....
हमे ये चारो पर्दे साफ-साफ दिखाई दे रहे हैं....
ये चारो ही नही, ऐसे चार पर्दे और हमारी आत्मा पर लगे हुए हैं....
यह ठीक है कि ये चार पर्दे आत्मा पर सीधा प्रभाव नही
डालकर, शरीर पर प्रभाव डालते है फिर भी आत्मा इन
दूसरे चार पर्दों के कारण ही तो शरीर के साथ बंधी रहती है....
जब तक आयुष्य कर्म हैं, तब तक यह किसी न किसी
स्थूल शरीर मे बंधी रहती है
और जहा शरीर है वहा किसी-न-किसी प्रकार की वेदना
सुख-दुःख की अनुभूति भी होती ही है....
और जहा शरीर है तो उसके वर्ण, संस्थान, आकृति, संघयन,
मजबूती, गति, जाति आदि अनेक प्रवृत्तिया होंगी ही....
इन अवस्थाओ का जनक ही तो नाम कर्म है....
और इनमे उच्च-नीच का संचार करने वाला गौत्र कर्म है....
अर्थात्, आयुष्य, वेदनीय, नाम और गौत्र इन चारो कर्मों
के चार आवरण हमारी आत्मा को संसार में बांधे रखने
का कार्य कर रहे हैं....
अभी हम अपनी समीक्षण दृष्टि से इन आठों पर्दों को देख रहे हैं....
इनमे चार सघन और चार हल्के हैं....
अब हम इन आवरणो के विलीन होनें की सामान्य
प्रक्रिया का समीक्षण करेंगे....
भाव करें....
अभी हम पुनः उस, सघनतम पर्दे—मोहकर्म पर अपनी
दृष्टि केन्द्रित करेंगे....
अभी हमें अपनी अनन्त ज्योति-पुञ्ज आत्मा के दर्शन हो रहे है

जैसे किसी व्यक्ति की आंखों पर वहुत ठोस कपडे की
पट्टी वाध दी जाए, तो उसे अपने चारो ओर अन्धकार
ही अन्धकार दिखाई देता है····
उसको स्वयं की नेत्र-ज्योति पूर्णरूप से स्वस्थतया विद्यमान
होते हुए भी पट्टी का आवरण उसे कुछ भी देखने नही देता····
ठीक यही स्थिति हमारी चैतन्य-ज्योति की है।
उसमें अनन्त-अनन्त प्रकाश भरा पड़ा है, किन्तु ज्ञानावरणीय
कर्म का पर्दा उस ज्योति को आवृत किये हुए है····
इसी प्रकार वस्तु के (सामान्या व बोध) की अनन्त दर्शन-शक्ति
हमारी आत्मा मे विद्यमान है, किन्तु दर्शनावरणीय
कर्म उस अनन्त दर्शन की क्षमता को दबाए हुए है····
भाव करे···
अभी हम अपनी आत्मा पर छाये हुए तीनो पर्दों को
स्पष्ट रूप से देख रहे हैं···
वे तीनो पर्दे हमे इस प्रकार दिखाई दे रहे हैं···
जैसे कि सूर्य के ऊपर सघन काले-कजरारे वादल छा गये हों··
पहला अत्यन्त सघन काला वादल है और दूसरा-तीसरा कुछ हल्का है····
आत्म-सूर्य पर छाये हुए वादलों को, कर्मावरण रूप पर्दों
को हम स्पष्ट देख रहे हैं···
इन आवरणों ने हमारी चेतना की अनन्त ज्ञान और
अनन्त दर्शन रूप शक्ति को ढक दिया है···
अब हम जरा और सूक्ष्म दृष्टि से देख रहे हैं·
हमे एक और पर्दा दिखाई दे रहा है··
यह पर्दा आत्मा के अनन्त पौरुष-शक्ति-सामर्थ्य को आवृत कर रहा है····
हमारी आत्मा मे इतनी प्रचण्ड शक्ति है कि यह सम्पूर्ण
ब्रह्माण्ड को अपनी कनिष्ठिका अंगुली से हिला दे····
प्रचण्ड शौर्य का धारक है हमारा यह आत्म-चैतन्य किन्तु
इन जड आवरणों ने इसकी शक्ति को दवोच रक्खा है····
जैसे कोई वनराज अपनी एक दहाड़ से सम्पूर्ण वन-
प्रान्तर को कम्पित-भयभीत कर देता है, किन्तु यदि वह
रुग्ण हो जाए तो छोटे-छोटे मक्खी-मच्छर जैसे जन्तु भी
उसे परेशान करते रहते हैं···
इसी प्रकार हमारी इस आत्मा पर मोह की निद्रा-छाई

हुई है ग्रौर ये छोटे-छोटे ग्रावरण उसकी ग्रनन्त सामर्थ्य
निधि पर ग्रधिकार जमाए हुए हैं....
ग्राज प्रचण्ड शक्ति सम्पन्न यह चैतन्य दीन-हीन कमजोर
और बुजदिल बना हुआ है
इसका मूल कारण क्या है ?
इसका कारण है यह अन्तराय कर्म का आवरण । इस
अन्तराय कर्म का पर्दा ग्रात्मा पर छाया हुआ है....
भाव करें....
हमे ये चारो पर्दे साफ-साफ दिखाई दे रहे हैं...
ये चारो ही नही, ऐसे चार पर्दे और हमारी आत्मा पर लगे हुए है....
यह ठीक है कि ये चार पर्दे आत्मा पर सीधा प्रभाव नही
डालकर, शरीर पर प्रभाव डालते हैं फिर भी आत्मा इन
दूसरे चार पर्दों के कारण ही तो शरीर के साथ बधी रहती है....
जब तक आयुष्य कर्म हैं, तब तक यह किसी न किसी
स्थूल शरीर मे बंधी रहती है
ग्रौर जहा शरीर है वहा किसी-न-किसी प्रकार की वेदना
सुख-दुःख की ग्रनुभूति भी होती ही है....
ग्रौर जहां शरीर है तो उसके वर्ण, सस्थान, ग्राकृति, सघयन,
मजबूती, गति, जाति आदि अनेक प्रवृत्तिया होगी ही ...
इन अवस्थाओ का जनक ही तो नाम कर्म है...
ग्रौर इनमे उच्च-नीच का सचार करने वाला गौत्र कर्म है....
अर्थात्, ग्रायुष्य, वेदनीय, नाम और गौत्र इन चारो कर्मों
के चार ग्रावरण हमारी आत्मा को संसार में बांधे रखने
का कार्य कर रहे हैं....
अभी हम अपनी समीक्षण दृष्टि से इन ग्राठों पर्दों को देख रहे हैं....
इनमे चार सघन ग्रौर चार हल्के हैं...
अब हम इन ग्रावरणो के विलीन होने की सामान्य
प्रक्रिया का समीक्षण करेंगे...
भाव करें....
ग्रभी हम पुनः उस, सघनतम पर्दे—मोहकर्म पर ग्रपनी
दृष्टि केन्द्रित करेंगे....
ग्रभी हमें ग्रपनी अनन्त ज्योति-पुन्ज आत्मा के दर्शन हो रहे है

और उस पर छाया हुआ मोह का पर्दा भी दिखाई दे रहा है····
हम देख रहे हैं···
हमारे अध्यवसाय-विचार विशुद्ध हो रहे हैं ·
भावनाओ मे आत्म-दर्शन की प्रकर्षता बढ रही है····
इन उच्च अध्यवसायों से हमारा दर्शन मोह का पर्दा
हल्का होता जा रहा है····
जैसे कि सूर्य पर आया हुआ सघन बादल हवा के प्रभाव
से हल्का होने लग जाता है····
और हमें आत्म-बोध हो रहा है····
अभी हम आत्म-दर्शन का अनुपम आनन्द ले रहे हैं···
अपूर्व आह्लादक क्षण हैं ये····
हमारी चेतना मे चारित्र ग्रहण करने के भाव जाग्रत हो रहे हैं····
हमारे चारित्र मोह का आवरण क्षीण हो रहा है ·
हमारे चैतन्य देव मे चारित्र का नयनाभिराम प्रकाश फैल रहा है····
हमे स्वरूप का दर्शन हुआ और हम साधना की ओर
आगे बढ़ रहे हैं····
अभी हमारी चेतना आत्मानन्द के उल्लास में रममाण हो रही है····
भाव करे····
हमें आत्मा पर से आवरण हटते हुए स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं····
जैसे कोई बादल बिखर रहे हैं····
आत्मा मे ज्ञान का आलोक फैल रहा है····
उसकी सम्यक् समझ जाग्रत हो रही है····
ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम हो रहा है····
धीरे-धीरे ज्ञान का प्रकाश बढता जा रहा है····
आत्मा की उज्ज्वलता बढ़ती जा रही है····
अन्तराय कर्म का क्षयोपशम हो रहा है···
हमारी आत्मिक शक्तियो पर आए आवरण हटते जा रहे हैं····
भीतर जैसे कोई शक्ति का विस्फोट हो रहा हो····
आज हमारी वीर्य शक्ति बढ रही है····
चारित्राराधना की भावना एवं क्षमता मे अत्यधिक विकास हो रहा है····
हमारी शारीरिक शक्ति बढती जा रही है ·
हमारी भुजाओ मे शक्ति का ज्वार आ रहा है····

हमें सहसा अलभ्य उपलब्धियां हो रही हैं····
हमारी दान देने की भावनाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है····
हमारी आत्मा की अनन्तवीर्य सम्पन्नता का हमे सहज
बोध हो रहा है ··
भाव करें····
हम आवरणो के विलीन होने की इस प्रक्रिया को
प्रत्यक्षत: देख रहे हैं ·
हमें आवरणो के हटने से होने वाला चैतन्य प्रकाश
स्पष्ट दिखाई दे रहा है····
हमारी आत्मा एकदम हल्की होती जा रही हैं····
अध्यवसायो अर्थात् विचारों मे उच्चतापूर्ण निखार आता जा रहा है···
नये आवरण चढाने वाले कालुष्य धुलते जा रहे हैं···
विशुद्ध भावनाओ से पुराने कर्म हटते जा रहे हैं··
आत्मा के निर्मल प्रकाश युक्त होने की इस प्रक्रिया को
हम अपनी अन्तरग दृष्टि से देख रहे हैं··
अभी भी हमारी आत्मा पर आवरण चढ रहे है, किन्तु
वे आवरण पतले वस्त्र के समान हल्के हो गए हैं····
जैसे किसी मर्करी लाइट पर पतले-पतले कपड़ों के कुछ
पर्दे डाल दिये गए हो और प्रकाश उन पर्दों मे से छन-
छन कर बाहर आ रहा हो····
हम अपनी आत्मा के अलौकिक ज्ञान प्रकाश को देख रहे हैं···
आवरणो और उनमे छनकर आने वाले ज्ञान के तारतम्य
भाव का हम साक्षात् दर्शन कर रहे हैं····
आज की हमारी ध्यान की प्रक्रिया बड़ी सहज, किन्तु
आनन्दप्रद रही है ·
आज हमने कर्मावरणो के स्तरो को देखा और आत्मा
की अनन्त शक्ति का भी अनुभव किया····
आवरणो को हटते हुए भी देखा···
हमारा यह आत्म-लोक का दर्शन अतीव प्रीतिकर है····
अत्यन्त रमणीय है···
अत्यन्त आह्लादक है····
उसी आलोक दर्शन में रममाण मन:स्थिति के साथ

और उस पर छाया हुआ मोह का पर्दा भी दिखाई दे रहा है····
हम देख रहे हैं····
हमारे अध्यवसाय-विचार विशुद्ध हो रहे हैं
भावनाओ मे आत्म-दर्शन की प्रकर्षता बढ रही है····
इन उच्च अध्यवसायो से हमारा दर्शन मोह का पर्दा
हल्का होता जा रहा है····
जैसे कि सूर्य पर आया हुआ सघन बादल हवा के प्रभाव
से हल्का होने लग जाता है····
और हमे आत्म-बोध हो रहा है····
अभी हम आत्म-दर्शन का अनुपम आनन्द ले रहे हैं···
अपूर्व आह्लादक क्षण हैं ये····
हमारी चेतना मे चारित्र ग्रहण करने के भाव जाग्रत हो रहे हैं····
हमारे चारित्र मोह का आवरण क्षीण हो रहा है
हमारे चैतन्य देव मे चारित्र का नयनाभिराम प्रकाश फैल रहा है····
हमें स्वरूप का दर्शन हुआ और हम साधना की ओर
आगे बढ़ रहे हैं····
अभी हमारी चेतना आत्मानन्द के उल्लास में रममाण हो रही है···
भाव करे····
हमें आत्मा पर से आवरण हटते हुए स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं····
जैसे कोई बादल बिखर रहे हैं····
आत्मा मे ज्ञान का आलोक फैल रहा है····
उसकी सम्यक् समझ जाग्रत हो रही है···
ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम हो रहा है····
धीरे-धीरे ज्ञान का प्रकाश बढता जा रहा है····
आत्मा की उज्ज्वलता बढ़ती जा रही है····
अन्तराय कर्म का क्षयोपशम हो रहा है···
हमारी आत्मिक शक्तियो पर आए आवरण हटते जा रहे हैं····
भीतर जैसे कोई शक्ति का विस्फोट हो रहा हो····
आज हमारी वीर्य शक्ति बढ रही है····
चारित्राराधना की भावना एवं क्षमता मे अत्यधिक विकास हो रहा है····
हमारी शारीरिक शक्ति बढती जा रही है···
हमारी भुजाओ मे शक्ति का ज्वार आ रहा है····

हमें सहसा अलभ्य उपलब्धियां हो रही हैं....
हमारी दान देने की भावनाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है....
हमारी आत्मा की अनन्तवीर्य सम्पन्नता का हमे सहज
बोध हो रहा है ...
भाव करें....
हम आवरणो के विलीन होने की इस प्रक्रिया को
प्रत्यक्षतः देख रहे हैं
हमें आवरणों के हटने से होने वाला चैतन्य प्रकाश
स्पष्ट दिखाई दे रहा है....
हमारी आत्मा एकदम हल्की होती जा रही है....
अध्यवसायो अर्थात् विचारों मे उच्चतापूर्ण निखार आता जा रहा है....
नये आवरण चढाने वाले कालुष्य धुलते जा रहे हैं ..
विशुद्ध भावनाओ से पुराने कर्म हटते जा रहे हैं...
आत्मा के निर्मल प्रकाश युक्त होने की इस प्रक्रिया को
हम अपनी अन्तरग दृष्टि से देख रहे हैं...
अभी भी हमारी आत्मा पर आवरण चढ रहे है, किन्तु
वे आवरण पतले वस्त्र के समान हल्के हो गए है....
जैसे किसी मर्करी लाइट पर पतले-पतले कपडो के कुछ
पर्दे डाल दिये गए हो और प्रकाश उन पर्दों मे से छन-
छन कर बाहर आ रहा हो....
हम अपनी आत्मा के अलौकिक ज्ञान प्रकाश को देख रहे हैं...
आवरणो और उनमे छनकर आने वाले ज्ञान के तारतम्य
भाव का हम साक्षात् दर्शन कर रहे हैं....
आज की हमारी ध्यान की प्रक्रिया बड़ी सहज, किन्तु
आनन्दप्रद रही है....
आज हमने कर्मावरणो के स्तरो को देखा और आत्मा
की अनन्त शक्ति का भी अनुभव किया....
आवरणो को हटते हुए भी देखा..
हमारा यह आत्म-लोक का दर्शन अतीव प्रीतिकर है....
अत्यन्त रमणीय है....
अत्यन्त आह्लादक है....
उसी आलोक दर्शन में रममाण मन.स्थिति के साथ

ध्यान से बाहर आजाएं....
अपनी आत्मा को स्वच्छ-निर्मल एवं हल्का अनुभव करें....
अपने सम्पूर्ण परिवेश को उद्वेग-आवेग रहित हल्का
आह्लादक अनुभव कर प्रकृतिस्थ हो जाए....
अपने तन-मन प्राणों को प्रफुल्लित अनुभव करें....



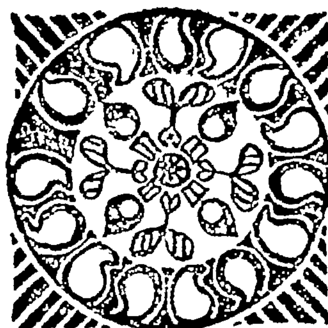
२१ प्राणी-मैत्री-समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को भावपूर्ण तन्मयता के साथ दोहराएं)
भाव करें....
तन, मन ही नहीं आत्मप्रदेश भी एकदम हल्के-निर्मल हो गए हैं....
हमारे अध्यवसायों की विशुद्धता पराकोटि पर पहुंच रही है....
हमारी राग-द्वेष की अनादिकालीन गांठें ढीली पड़ गई हैं....
न किसी पर विशेष राग रहा और न किसी पर द्वेष....
चेतना की यही अवस्था वीतराग के निकट ले जाने वाली अवस्था है....
मन के कालुष्य के धुल जाने के बाद अपने-पराये का
या तेरे-मेरे का भेद कहा रह जाता है....
संसार में सभी संघर्षों-तनावों या दुःख-द्वन्द्वो का मूल
तेरे-मेरे का भेद-मूलक भाव ही तो है....
'तेरे' पर द्वेष होता है तो 'मेरे' पर राग...
और यही आकर विद्वेष की भावनाएं जागृत होती हैं....
भाव करें....
हमारे भीतर के तेरे-मेरे के भाव नष्ट हो गए हैं....
विद्वेष के सभी निमित्त क्षीण हो गए हैं...
हम अभी परम समत्व भाव के सागर मे तैर रहे हैं....
जब तेरे-मेरे का भाव क्षीण हो गया तो सभी कुछ
अपना ही लगने लगता है....
हमे प्राणिमात्र अपना निकटतम लग रहे हैं....
छोटे से छोटे प्राणी में हमे अपना ही प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा है....
"अप्प सम मन्निज्ज छप्पिकाए" का आगमिक उद्घोष
अन्तरंग मे साकार होता दिखाई दे रहा है....
"वसुधैव कुटुम्बकम्" की विराट भावना अन्तरंग मे लहलहा रही है....

ग्रहा ! वनस्पति जैसी एकेन्द्रिय आत्माओं पर भी कैसी करुणा जागृत हो रही है....
भावनाओं की गागर में करुणा के सागर उमड़ रहे हैं...
प्राणिमात्र पर मैत्री का भाव जागृत हो रहा है....
हमें अभी कोई पराया लग ही नहीं रहा है....
अरे ! यहां पराया है ही कौन ?....
संसार की सभी आत्माओं के साथ तो हमारा अनन्त-अनन्त बार संबंध हो चुका है....
इस पूरे ब्रह्माण्ड में एक भी आत्मा ऐसी नहीं है जिसके साथ इस आत्मा का सम्बन्ध नहीं हुआ हो....
अरे ! निगोद अवस्था या अव्यवहार राशि में भी एक शरीर में अनन्त जीवों के रूप मे रहकर हमारी आत्मा ने उन अनन्त अव्यवहार राशि की आत्माओ के साथ सम्बन्ध रक्खा है....
अनन्त-अनन्त काल तक एक ही शरीर में एक साथ रह चुकी है—हमारी आत्मा....
जब हमारी आत्मा इतने निकट के सम्बन्ध से जुडी रही है संसार की आत्माओं के साथ, तो फिर यहां पराई आत्मा कौन रही है ?....
भाव करें...
आज हमें संसार की चराचर सभी आत्माएं अपने से जुड़ी हुई दिखाई दे रही हैं....
अभी हमारी भावनाओ में एक गहरी आत्मीयता जागृत होती जा रही है....
अहा ! विचारों में इतनी व्यापकता, इतनी विराटता आज पहली बार ही आयी है....
जब सभी आत्माएं....आत्मीय अपने ही हैं तो शत्रुता तो किसी से रह ही नही सकती है....
प्राणिमात्र पर परम मैत्री का भाव ही रह गया है....
कुछ को अपना और अन्य सभी को पराया मानने की अपेक्षा सबको अपना बना लेने मे कितना आनन्द भरा है....
एक छोटे से परिवार पर अपनत्व कायम कर उस पर राग और अन्य संसार के सभी प्राणियों पर परायेपन के भाव मे वह आनन्द कहां है जो विश्ववात्सल्य के भावों में छिपा हुआ है....

अरे ! छोटे से परिवार के दायरे में तो जरा सा राग
और अपरिमेय द्वेष का भाव छिपा रहता है....
किन्तु जब सम्पूर्ण विश्व को अपना मान लिया जाता है....
तो न राग रहा, न द्वेष, राग-द्वेष क्षुद्रता में रहते हैं....
विराटता मे दोनो ही समाहित हो जाते है....
अहा ! हमारे भीतर का शत्रुत्व भाव ही नष्ट हो गया है....
हमे चींटी मे भी अपनी ही आत्मा का दर्शन हो रहा है....
मक्खी-मच्छर-गाय-भैंस-घोड़ा-ऊट ही नही, नाग और
सिंह जैसे क्रूर माने जाने वाले प्राणियो मे भी हमें
अपनी ही आत्मा दिखाई दे रही हे....
अरे ! उन प्राणियो की आत्मा में और हमारी
आत्मा मे मौलिक रूप से कोई भी तो अन्तर नहीं है....
स्वरूप की दृष्टि से सभी आत्माए हमारी आत्मा के समान ही तो हैं....
भाव करें....
हमारी आत्मा मे, हमारी दृष्टि मे विशालता बढ़ती जा रही है....
प्राणिमात्र के साथ अन्तरंग मैत्री का भाव गहराता जा रहा है....
और यही तो वीतराग दशा का भाव-सूत्र है....
सभी प्रकार की क्षुद्रताएं टूट गई हैं...
विराट भावो में प्रवेश करते ही हमारी चेतना में
कितना आनन्द भर गया है....
अद्भुत है यह आनन्द....
कहीं कोई लुकाव-छिपाव नही है...
कही कोई दुराव का भाव नही है....
कही कोई तनाव नही है....
सभी आत्माओं के साथ अपनत्व वना लेने के वाद
किससे क्या लुकाव-छिपाव किया जाए....
और जहां लुकाव-छिपाव नही, वहां अनिर्वचनीय
आनन्द ही आनन्द है....
हमारी आत्मा आनन्द का ही केन्द्र वन गई है....
वीतराग भाव का आनन्द....यह आनन्द वढता जा रहा है....
भाव करे...
आत्मा का रूप व्यापक, विस्तृत होता जा रहा है....

हमारी आत्मा विश्वात्मा बन गई है....
हमारी आत्मा चराचर मे सयुक्त, व्याप्त हो गई है....
यह व्यापक रूप सदा-सदा बना रहे, विश्व मैत्री का भाव गहराता रहे इसी भावुकता के साथ ध्यान से बाहर आ जाए....
अपने को एकदम विराट किन्तु हल्का अनुभव करे....
स्वस्थ हो जाए....



२२ विश्व वात्सल्य : समीक्षण

ध्यान मुद्रा बना ले....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को तीव्रतम सकल्प के साथ दोहराए)
भाव करें....
शरीर एकदम हल्का होता जा रहा है...
शरीर का हल्कापन अति सीमा पर पहुंच गया है....
शरीर एकदम निर्भार हो गया है....
हम अब आत्मा के हल्केपन का अभ्यास-प्रयास कर रहे हैं....
आत्मा को हल्का बनाने के लिये पहले मन को हल्का बनाना होगा....
और मन को हल्का बनाने के पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि
मन भारी क्यो और किन कारणो से बना हुआ है...
हम मन के भारीपन के अनेक हेतु पूर्व मे इसी ध्यान-
साधना के दौरान समझ चुके है..
उसे सार रूप मे दोहराए तो मन को बोझिल बनाने
वाला भाव है—राग-द्वेष ..
राग-द्वेष उत्पन्न होता है तेरे-मेरे, अपने-पराये की भेद की रेखाओं से....
जहा मेरापन-अपनत्व का भाव है, वहां राग-भाव होगा ही....
और जहा तेरा-परायेपन का भाव होगा, वहा किसी न
किसी मात्रा मे द्वेप भाव का उदय होगा ही....
मन को निर्भार बनाने के लिये तेरे-मेरे की भेद रेखाओ
का टूटना अनिवार्य है...
अपने-पराये की भावनाओं को तिलाजलि देना आवश्यक है....
और यह होगा अपने विचारो को क्षुद्रता के सकुचित
दायरे से बाहर निकालकर विराट परिवेश प्रदान करने से....
तो .. आज हम विचारो की विराटता का समीक्षण करेंगे....
भाव करें....

अब हम अपनें-पराये की क्षुद्र परिधि का परित्याग कर रहे हैं…
तीव्रतम भाव करे…
सकुचित दायरो के टूटने के साथ ही अपनत्व का भाव
विस्मृत होता जा रहा है…परायेपन का भाव क्षीण
होता जा रहा है…अब हमे ससार के प्रत्येक प्राणी मे
अपनत्व का बोध हो रहा है…सभी आत्माए हमे अपने
समान ही नही, अपने रूप मे ही दिखाई दे रही है…
चलते-फिरते त्रस प्राणियों मे ही नही, पृथ्वीकायिक
अपकायिक आदि छोटे-से-छोटे प्राणियो के प्रति हमारे
मन में आत्मोपम्य की भावनाएं गहराती जा रही है
हमे यह पूरा विश्व ही अपना ही परिवार लग रहा है…
कल्पना करें
हमे अपने छोटे से परिवार के प्रति कितना ममत्व रहता है…
अपने भाई, अपनी वहिन, अपने माता-पिता, अपनी पत्नी और
अपने वच्चे अपना घर, अपनी दुकान, अपना ऑफिस
अव उस अपनत्व को जब हम विस्तार दे देते हैं…
सम्पूर्ण विश्व को अपना कुटुम्ब-परिवार मान लेते है…
समस्त संसार को अपना घर मान लेते हैं…
तो फिर परायापन किसमे किसके प्रति वच जाता हैं…
जब सब कुछ अपना हो गया तो पराया कौन वच गया…
अहा !! कितना आनन्द भरा है इस विश्व कुटुम्ब की भावना मे…
इस विस्तार भावना के साथ ही शत्रु-मित्र का भाव ही
तिरोहित हो जाता है…
अरे ! जब पूरा विश्व ही मित्र हो गया, मैत्री के पवित्र
सूत्र मे वध गया तो शत्रु कौन रहेगा…
कल्पना करें…
इन क्षणों हम अपने किसी शत्रु को अपने मानस पटल
पर—कल्पना लोक मे उभार कर ले आवे…
देखे…हमारे मन मे उसके प्रति कहा-कहा कितना क्रोध भरा है…
मन के किस कोने मे शत्रुता का भाव छिपा है…
वहुत गहराई से उस छिपे हुए शत्रुत्व का समीक्षण करे…
भाव करे…तीव्रतम सकल्प करे…

वह शत्रुत्व क्षीण होता जा रहा है....
उस व्यक्ति के प्रति अनन्य आत्मीयता का भाव निर्मित
होता जा रहा है...
अत्यन्त स्नेह-मृदुल प्रेमभाव का प्रादुर्भाव होता जा रहा है....
वह व्यक्ति हमारे मानस-पटल पर एक सज्जन आत्मीय
पुरुष के रूप में उभरकर आ रहा है....
एक व्यक्ति के प्रति ही नहीं समस्त प्राणियो के प्रति
मैत्री भाव का जागरण हो रहा है....
पानी के जीवों में हमे अपना ही प्रतिविम्ब दिखाई दे रहा है....
अरे ! सिंह, साप और बिच्छू जैसे जहरीले जतुओं पर
भी हमारे अन्तरंग मे स्नेह की वृष्टि हो रही है....
हमारे मन के वात्सल्य ने अपने प्रति संसार के समस्त
प्राणियों की क्रूरता-कलुषता को धो डाला है....
हमारी विशुद्ध आत्मीय वात्सल्यता के सामने शत्रुत्व का
भाव टिक ही कैसे सकता है....
तत्त्व द्रष्टाओ ने स्पष्ट ही तो कहा है....
"अहिंसा एवं समता की भावना के सामने क्रूरता रह
ही नही सकती है"....
भाव करें ..
इन क्षणों हमे विश्व की सभी चराचर आत्माएं अपनी
चिरपरिचित आत्मीय भासित हो रही हैं....
वास्तव मे वे हमसे चिर परिचित रही ही है...
संसार की प्रत्येक आत्मा के साथ हमारे अनेकानेक रिश्ते बने हैं....
अनादिकाल के इस परिभ्रमण मे समस्त आत्माएं
हमारे निकटतम परिजनो के रूप मे रह चुकी है ..
यही नही, निगोद अवस्था में तो इस सम्बन्ध से भी
निकट, हम एक ही शरीर में संयुक्त रूप से अनन्त
आत्माओं के साथ रह चुके हैं...
व्यवहार मे प्रेम प्रदर्शन के समय हम कहा करते हैं—
दो शरीर और एक आत्मा, किन्तु इससे भी निकट का रिश्ता एक
शरीर और अनन्त आत्माओं का हमने कायम किया है....
इससे बढ़कर और निकट का सम्बन्ध क्या हो सकता है कि सूई के

अग्रभाग जितने से स्थान में हम अनन्त आत्माओं के साथ एक
दूसरे के साथ आत्मीय बनकर रह चुके हैं....
जहां हमारा आहार-खाना-पीना ही नही, प्रत्येक श्वांस
एक दूसरे के साथ ही होता था....
यह अलग बात है कि उस समय हमारी चेतना अत्यन्त
सुषप्त अवस्था मे होने से हम उस आत्मीय सम्बन्ध को
समझ नहीं सकते थे....
उनका जीवन्त बोध नहीं कर सकते थे....
किन्तु वह आत्मीयता तो निर्विवाद रूप से थी ही....
अब जरा हम अपने वर्तमान के साथ अतीत के चिन्तन
को जोड़ दें—समीक्षण करें....
वर्तमान मे जिन्हें हमने शत्रु के रूप में देखा है वे ही तो
हमारे अतीत में अत्यन्त आत्मीय रहे हैं....एक
शरीरवासी अभिन्न चेतनांशी बनकर रहे हैं....
फिर शत्रुता किसके प्रति रक्खी जाय....
नहीं, नहीं !! आज हमने अपने आत्म-समीक्षण के
द्वारा शत्रुत्व को ही मिटा दिया है....
हमारी चेतना मे विश्व मैत्री का भाव गहराता जा रहा है....
हमारे मन मे प्राणिमात्र के प्रति एक अनन्य आत्मीयता
पूर्ण वात्सल्य का भाव फूट रहा है....
अहा !! विश्व वात्सल्य का यह उन्नत भाव कितना आह्लादकारी है....
यह भाव हमें कितने उच्चकोटि के आनन्द से भर देता है....
भाव करें....
तीव्रतम अहोभाव से भर दें अपनी आत्मा को....
ससार के समस्त चराचर प्राणी हमारे कुटुम्वी हैं....
सभी चेतनाएं हमारी आत्मीय हैं....
अनुभव करें....
इन क्षणों मे हमारी आत्मा से ऐसी शुभ्र-शुक्ल किरणें निकल रही
हैं—ये सभी प्राणियो को अपने भीतर समेटती जा रही है....
एक अभूतपूर्व प्रेम का संचार प्रत्येक चेतना मे हो रहा है....
और सभी आत्मायों के भीतर से हमारे प्रति रोष-द्वेष
का भाव नष्ट होता जा रहा है....

एक स्नेहपूर्ण भाव हमारे प्रति निर्मित होता जा रहा है....
अब तेरे-मेरे मन की सभी दीवारें टूट चुकी हैं....
राग-द्वेष का भाव तिरोहित हो चुका है..
हम सारे संसार के आत्मीय बन चुके हैं....
समस्त संसार का प्राणी वर्ग हमारा आत्मीय बन चुका है....
हमारा आत्मीय भाव बढ़ता चला जाय....
विश्व मैत्री की ये पुनीत भावनाएं गहरी होती चली जाएं....
और हम आत्मीय भाव के इस आनन्द में बहुत गहराई
तक डूबते चले जाएं .
वीतराग भाव का अनुपम आनन्द सर्वत्र फैलता चला जाये...
भाव करें....
इन क्षणों हम अभूतपूर्व अलौकिक आनन्द मे सराबोर हो रहे हैं..
आनन्द वृद्धि के इस अहोभाव के साथ ध्यान से बाहर आ जायें...
अपने आपको एकदम हल्का अनुभव करते हुए प्रकृतिस्थ हो जाएं....



२३ पूर्व जन्मों का समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें····

(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को अन्तरंग उल्लास एवं प्रबलतम संकल्प के साथ दोहराएं····)

अपनी चेतना के अन्तर्बाह्य सम्पूर्ण परिवेश को हलका अनुभव करें····

आज हम इतने हल्के हो गए हैं कि अब हम कही की भी कैसी भी यात्रा कर सकते हैं ·

अत: आज हम समीक्षण की अत्यन्त गहन एवं सूक्ष्म प्रक्रिया की यात्रा की तैयारी कर रहे हैं····वह यात्रा अपने जीवन के अतीत की यात्रा है····

केवल वर्तमान के जीवन के अतीत की ही नहीं, अनेक जीवनों की, पूर्व के अनेक जन्मो की भाव यात्रा हमे करनी है····

हमारी इस यात्रा का उद्देश्य है—हम अपने मूल स्वरूप से परिचय प्राप्त कर सकें····अपनी मूल आत्मा का साक्षात्कार कर सकें···

अतीत की इस यात्रा के लिये पहले हमें अपने भविष्य के विचारों को त्यागना होगा—हम सदा अतीत को भुलाकर भविष्योन्मुखी ही जीने के अभ्यासी हो गए हैं···

हमारी अभिरुचि भूतकाल मे नही भविष्यत् के सुनहरे स्वप्नों में ही अधिक रहती है, इसीलिये हम आमतौर पर ज्योतिषियो के द्वार खटखटाते रहते हैं कि कल क्या होने वाला है····

····भविष्य में क्या होने वाला है····

हम कल—आने वाले कल के प्रति अधिक उत्सुक हैं····

····क्योंकि वहां हमे आशाएं दिखाई देती हैं ·

अतीत हमें मृत लगता है और भविष्यत् जीवन्त प्रतीत होता है···

····किन्तु····यदि हमें पूर्व जन्मों का स्मरण करना है····

अतीत मे डुबकी लगाना है····तो भविष्यत् को भुला देना होगा····
भविष्यत् की उत्सुकता को दफना देना होगा· ·उस ओर
से आंखें बन्द कर देनी होगी····
हमारी चिन्तन शक्ति का पूरा प्रकाश भविष्यत् की ओर
से हटाकर अतीत की ओर ही फेंकना होगा····
भाव करें····तीव्रतम भाव करें कि भविष्यत् की ओर से
हमारी आखें बन्द हो गई है···
हम अपने ही अतीत मे गोते खा रहे हैं····
इन क्षणो मे भविष्य सम्बन्धी विचार एकदम बन्द हो गए है····
····हम अभी आने वाले कल की बात ही दिमाग से बाहर
निकाल दे···अभी तो गए कल का विचार ही करना
है···आगे क्या करना है ? क्या होने वाला है··
या क्या होगा ? सब कुछ को मस्तिष्क से निकाल दें··
····जैसे टार्च का फोकस एक ही दिशा मे पड़ता है···और
दूसरी दिशा मे अन्धकार ही रहता है···
उसी प्रकार अपने सम्पूर्ण चिन्तन का फोकस भविष्य से
हटाकर भूत····अपने अतीत पर लगा दे ··
भाव करे कि अभी हम भविष्य को एकदम भूल गए हैं
और भूतकाल को ही देख रहे हैं···
भूतकाल में भी अभी बहुत अतीत मे नहीं केवल गए कल
में ही डुबकी लगा रहे हैं····देखें अपने गए कल को
देखें··गए कल हम कब उठे थे···किस-किस समय क्या-
क्या कार्य किया था···
किस-किस से मिले थे··· क्या-क्या खाया था····पहले इन
स्थूल क्रियाओ को ही देखने का प्रयास करें····
फिर कल दिन भर के अच्छे-बुरे सभी प्रकार के विचारों
का समीक्षण करें····अनुभव करें जैसे किसी एक पुस्तक के
अनेक पृष्ठ खुलते जा रहे हैं····
अपने ही अतीत के विचारो को देखकर हमारा मन
आश्चर्य से भर रहा है····इसी क्रम से हम गए परसों के
कार्यक्रमो का अवलोकन करेंगे···
देखें अपने अतीत के परसो को····

एक-एक घटना-चक्र का समीक्षण-साक्षात्कार करते जावें
जितने जीवन्त रूप मे हमने परसों को परसों नही जाना
था, आज अभी वह उससे अधिक ही सजीव हो उठा है····
भाव करें····
परसो के सभी दृश्य चित्र पट के समान आंखो के सामने
तैरते जा रहे हैं····
एक-एक घटना अभी घटती हुई-सी नजर आ रही है····
···हम देखेंगे, कुछ दिनों के अभ्यास से हमें महीनो ही
नही, वर्षों पूर्व के सभी दृश्य दिखाई देने लगेंगे····
आज जो अज्ञात के महासागर में पड़ा है, वह ज्ञात के
आकाश मे तैरता-सा दिखाई देने लगेगा····
अभी हम अपनी अतीत दर्शन की यात्रा चालू रक्खें····
··· हम अतीत के अनेकों वर्षों का समीक्षण करते हुए
अपने बचपन में लौट गए हैं····
हमें बाल्य-काल की प्रत्येक क्रिया सजीव-सी लग रही है···
··· पूरा बचपन अपनी स्मृति के महासागर मे तैर रहा है····
अनुभव करें····
कितने सुनहरे एवं आनन्द से भरे हैं वे बचपन के दिन····!!!
कैसी गुद-गुदी फैल रही है हमारे तन-बदन में····
बचपन के स्मरण के द्वारा····!!! अहा····हमारा बचपन
हमारे सामने लौट आया है, एकदम जीवन्त हो उठा है···
अरे, अभी हमे बचपन की सहज-सरल लीला में ही नही
अटक जाना है··· अब हम बचपन से भी पीछे, एकदम
शैशव मे ···दुधमुंहे बालक के रूप मे अपने आपको
अनुभव कर रहे हैं····
भाव करे····
हम अंगूठा मुंह मे डाले हुए हैं····
हम मां की ममता मयी गोद मे सोए हुए हैं·
हम दूध पी रहे हैं···
यह क्या····हम छोटे-छोटे खिलौनो से खेल रहे हैं···
हमारा खिलौना छिन गया है और हम रो रहे हैं····
बचपन का यह रोना भी कितना मासूम है····

लो यह मां हमे गुद-गुदी कर रही है····
वह भी हमारे साथ तुतला रही है और हम विना आवाज
के मुस्करा रहे हैं···हमे अपना ही बचपन कितना
जोवन्त, कितना आनन्दमय·· कितना प्यारा लग रहा है····
लेकिन अभी हमे यहा पर नही रुक जाना है····
हमारी अतीत की यात्रा बहुत लम्बी है··अभी तो हमे····
अपने पूर्व के अनेक जन्मो का साक्षात्कार करना है····
अब हम शैशव से भी पूर्व अवस्था गर्भस्थ काल का
साक्षात्कार कर रहे है····ओहो !!
अनुभव करे···
हम कैसी काल कोठरी मे बैठे हैं···कितनी गन्दी-दुर्गन्धमय
जगह है यह और हम कितने संकुचित होकर—हाथ-पांव
सिकोड़कर बैठे हैं·
कितना गन्दा आहार हमे वहा मिल रहा है·
वास्तव में भाव करें···
इन क्षणो हम गर्भ मे ही बैठे है····
भयंकर यातनामय स्थान पर····
जहा यातना, दुःख को अभिव्यक्ति करने के लिये 'आह'····
'उफ' भी नही कर सकते है····
उस गर्भ के दु खो की कल्पना ही हमारे पूरे तन-वदन
को कंपा देती है···
कैसे गन्दे परमाणुओ से निर्माण हो रहा है हमारे इस शरीर का··
किन्तु··जरा देखें, हमें ऐसा शरीर क्यो मिला·
क्यो हमे इस गर्भ मे आना पडा····
और इसके लिये ही हमें अपने पूर्व जन्मो की स्मृति में छलांग लगानी
पडेगी···देखें, जरा अपने गर्भ मे आने के पूर्व काल को····
हम इस गर्भ मे कहा से आए हैं ले जाएं···
चिन्तन को अतीत मे ले जाएं····
अपनी स्मृति पर कुछ जोर लगाएं·· कुछ और जोर लगाएं
थोडे साहस एवं धैर्य से काम लें····स्मृति पर कुछ और
अधिक दवाव डालें····
अभी पर्दे उठेगे···

सघनतम पर्दे हटेंगे और हमें एक नही, अनेक जन्म
दिखाई देने लगेंगे…
किन्तु… किन्तु…पहले यह साहस जुटालें कि हम अपने
अतीत के जन्मों को भी देख सकेंगे कि नही…
क्योंकि… हो सकता है…इस जन्म मे हम बड़े आदर्श
विचारो वाले धार्मिक व्यक्ति हों, किन्तु पूर्व जन्म मे पशु-
योनि में भी तो हो सकते हैं…
कदाचित् मनुष्य योनि मे भी रहे हो…
अथवा… अभी से ठीक विपरीत…अधार्मिक, जुआरी, शराबी,,
दुराचारी या स्त्री रूप मे विलासी जीवन वाले रहे हो…
…यह आवश्यक नही कि हम अपने पूर्व जन्म में बहुत
बड़े धर्मात्मा ही रहे हो और एक अच्छा चित्र अपने पूर्व
जन्म का हमारे सामने उभर कर आ जावे…
अतः पहले यह साहस जुटालें कि हमें अपना पूर्व जन्म,
कैसा भी रहा हो, देखने मे कोई आपत्ति नही होगी…
हम उसे सहज रूप से चित्रपट पर आने वाले चित्र की तरह लेंगे…
उससे कोई तादात्म्य स्थापित नही करेंगे…
हम केवल द्रष्टा बने रहेंगे…
हम अपने अतीत के जन्मों के दृश्यो के भोक्ता नही होगे…
हां तो…हमारी अतीत दर्शन की यात्रा चल रही है…
…जरा अपनी स्मृति पर भार डाले…
उसे कुछ प्राचीनता मे ले जाएं
अनुभव करें कि हमारे मस्तिष्क मे तीव्रतम हलन-चलन मच रही है…
ज्ञान केन्द्र पर गहरे कम्पन हो रहे हैं…
ज्ञान-केन्द्र का अर्थ है—मस्तिष्क का पिछला सबसे
उभरा हुआ हिस्सा, जहां पर कुछ हिन्दू चोटी रखते हैं…
हमारे ज्ञान-केन्द्र मे हलन-चलन मच गई हैं…
हमारे मति-स्मृति ज्ञान के आवरण हटते जा रहे हैं…
भाव करे…
हमारे ज्ञान-केन्द्र पर सख्यातीत बारीक बारीक पर्दे पड़े हुए हैं…
और वे कम्पित होने लगे हैं…
हमारी स्मृति जागृत होने लगी है…
अरे, यह एक पर्दा उठ गया है

और हम अपने पूर्व जन्म को देख रहे हैं…
ओ हो ! यह कैसा दृश्य ???
उस जन्म में तो हम बहुत विलासितापूर्ण जीवन मे थे….
हमें देवलोक का ऐश्वर्य स्पष्ट दिखाई दे रहा है….
सैकड़ों देवियो से घिरे हुए हम भोग-वासना मे लिप्त हो रहे हैं….
कितनी विलासिता की जिन्दगी है यह….
अरे, यहां धर्म-कर्म की तो चर्चा ही नही है….
केवल भोग….भोग…भोग में आकण्ठ डूबे हुए हैं हम….
और उसी को परम सुख मान रहे है हम
अरे, यह भी कोई जीवन है….जहां नाटकों के मनमोहक
दृश्यो एवं कर्ण प्रिय गीतो के साथ नृत्य करती अप्सराओं
के नूपुरो की झनझनाहटो में ही रात-दिन खोया रहा जाता है….
….एक दिन, दो दिन नही, हजारो वर्ष इन्ही रंगीन दृश्यो
मे व्यतीत हो जाते हैं ·
आत्मा तो भोगो के जटिल जाल मे न जाने कहा खो जाती है….
….अरे, वह नृत्य करती हुई अप्सरा आखों के सामने आ गई है….
अभी हमें उसके वस्त्र कितने वेहूदे लग रहे हैं··
कितने कामुक—मोहक कटाक्ष फेंक रही है वह…
कितनी भद्दी उसकी भाव-भगिमा है….
इन्ही कटाक्षो मे आत्मा परास्त हो जाती है…
अपने शक्ति—सामर्थ्य को भूल जाती है·· और फस जाती
है वासना के चक्रव्यूह मे….
अरे, यह क्या, वह हमारी देवी रुष्ट हो गई है और हम उसे मनाने
का प्रयास कर रहे हैं….वह नूपुरो की झंकार बन्द हो गई है….
हम अपनी देवी को विमान मे लेकर देवलोक के नीचे सुमेरु
पर्वत पर नन्दन वन मे ले आए हैं…और उसे प्रसन्न
करने का प्रयास कर रहे हैं··
ओहो ! देवलोक का एक-एक दृश्य हमें स्पष्ट दिखाई दे रहा है….
और हमे यह विलासिता पूर्ण जीवन एकदम वेहूदा-सा लग रहा है…
लो, हमारी स्मृति पर से एक और पर्दा हट गया है….
अव हम देवलोक से भी पहले के जन्म को देख रहे है….
हम अपने आपको एक श्री सम्पन्न मनुष्य के रूप में देख रहे हैं….
हमारे चारो ओर अपार सम्पत्ति विखरी हुई है…

अनेक व्यावसायिक केन्द्रों का हम संचालन कर रहे हैं....
...अनेक मुनीम गुमाश्ते हमारे इर्द-गिर्द बैठे हुए अपना
काम कर रहे हैं...
देखें · अपने अतीत को तन्मयता से देखें...
भाव करें....
वास्तव मे हम इस समय एक धनाधीश के रूप मे बैठे है ..
सहसा हमारे कानो को एक बुरी सूचना मिलती है कि
हमारा एक युवापुत्र नये बनते हुए भवन से गिर पडता
है और उसकी मृत्यु हो जाती है...
हम बिलख-बिलख कर रोने लगते हैं ·
हमारे विचारों पर एक झटका-सा लगता है और हम
व्यापार व्यवसाय से एकदम उदासीन हो जाते हैं....
यही नही हम अपनी सम्पत्ति का बहुत अधिक भाग दीन–
अनाश्रितो की सेवामे लगा देते हैं...
धार्मिक कार्यों के प्रति रुचि जागृत हो जाती है, हम
सामायिक साधना मे रस लेने लगते हैं,
और इस रूप मे अत्यधिक पुण्य का सचय कर लेते है...
....और उसी पुण्य के परिणाम से हमे स्वर्गीय सुखो की प्राप्ति होती है..
हम अब अपनी स्मृति को कुछ और पीछे ले जा रहे है....
.. लो, यह एक पर्दा और उठ गया...
हम अपने आपको एक बैल के रूप मे देख रहे हैं....
धूप-शीत सब कुछ सहन करता हुआ, भार ढोता हुआ बैल ..
· ओ, हो ! कितना भार लदा है गाड़ी मे...हम उसे
अपनी पूरी शक्ति से खीच रहे हैं .. फिर भी गाड़ी का
मालिक हम पर चाबुक बरसा रहा है...आरी चुभो रहा है ..
हम अपनी गति–चाल को तेज कर देते हैं.....
किन्तु कुछ क्षणो के बाद फिर हमारी गति में धीमापन
आ जाता है और फिर चाबुक की मार पड़ती है हमारी पीठ पर...
....आरी की चुभन से खून रिसने लगा है...
...किन्तु हम मूक हैं, कुछ बोलकर अपनी व्यथा व्यक्त
नही कर सकते हैं...
सब कुछ समभाव से सहन कर रहे हैं...
न समय पर पानी मिल रहा है और न समय पर चारा-

घास…ओ हो !!! कैसी जिन्दगी है यह हमारी…
कितनी दयनीय दशा है हमारी…
कितने-कितने दुःख उठाए हैं हमने उस पशु योनि मे…
…उस सामान्य-सी समभाव की मात्रा से और अकाम निर्जरा के परिणाम से ही हम मानव तन में श्रेष्ठी कुल में उत्पन्न हो गए…
बैल योनि के कष्टों का स्मरण करते-करते ही हमारे पर्दे हटते जा रहे हैं…
भाव करें…
यह एक पर्दा और हट गया है…
हम पुन. अपने आपको एक मनुष्य के रूप मे देख रहे है…
हम एक बैल गाडी के चालक हैं ओर गाड़ी मे मन चाहा भार ढोकर चला रहे है…
बैलों की चावुक की मार-मार रहे हैं…
हम स्वयं पसीने से तर-वतर हो रहे हैं…
थके-थके-से अनुभव कर रहे है…
ऊपर से धूप तप रही है और हम अपने तन-मन की गर्मी वैलो पर निकाल रहे हैं…
बड़ी जोरों से आरे चुभो कर उन्हें दौड़ने को विवश कर रहे हैं…हम वडी सहजता से उन पर चावुक का वार करते जा रहे हैं…
हम ऐसे अभ्यस्त हो गए हैं कि हमे अहसास ही नहीं होता कि हम किसी को मार रहे हैं…केवल चावुक चलाने का अभ्यास हो गया है…अरे…रे, यह क्या एक बैल-गिर पड़ा है…बेचारा हाफ रहा है और हम निर्दय बनकर उसे धीरे से उठाने के बजाय उस पर चावुको की वर्षा शुरू कर देते हैं…
भाव करें…तीव्रतम भाव करें…
हम यह सीन…अपने ही अतीत का यह चित्र प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं…
हम बैल पर मार-मारे जा रहे हैं…
उसके मुंह से झाग ही झाग निकल रहे हैं…

अब उसकी उठनें की हिम्मत ही नही रही है ·
वह उठने का प्रयास करता है और फिर गिर पडता है····
····फिर हम उसे चाबुक मार रहे हैं····
और—अरे वह तो अचेत हो गया····वह मर गया····
हम निस्तेज होकर अब वहां बैठ जाते है····हाथ पर सिर
धर कर रुआंसा चेहरा लिये बीच मार्ग मे बैठे हैं····
बैल की हत्या हो गई इसका दुःख हमें नही हैं····
हमें दुःख है अपने नुकसान हो जाने का···अब हम मन-
ही-मन खिन्न-दुखित हो गए हैं····गाड़ी को बीच मार्ग
मे छोड़कर जा भी नही सकते है····
हमें प्यास सताने लगी है·
हम किसी राहगीर का इन्तजार करते हैं ·
सहसा कोई राहगीर आता दिखायी देता है····और हम
कुछ राहत अनुभव करते हैं····उसके द्वारा हम अपने गाव
अपने घर सन्देश पहुचाते हैं···
हमारा बड़ा भाई वहां पहुचता है····वह बहुत क्रोध मे
गालियां बकने लगता है—और हमें भी तीव्र क्रोध आ
जाता है····हम आपस में झगड़ने लगते हैं···
स्मृति को भाव पूर्ण बनाएं और अनुभव करें वास्तव मे
हम अपने आपको उस स्थिति मे देख रहे हैं····
क्रोध में हमारे होठ फड़-फड़ाने लगते हैं ··
हम दोनों भाई अपना सन्तुलन खो देते हैं और वह
आवेश में आकर गाडी ठीक करने का औजार उठा लेता है····
हमारे सिर पर एक प्रहार करता है···
हमारा प्राणान्त हो जाता है···
हमारा मरण समय का क्रोध भाई के साथ उस बैल पर
भी रह जाता है····
हमारी मौत का निमित्त वह बैल ही तो बना····
और हम मर कर एक गाय के गर्भ में उत्पन्न हो जाते हैं····
····ओ हो ! कैसी विचित्र लीला है कर्मों की !! कैसे-कैसे
जन्म हमने ग्रहण किये हैं····
····कैसी-कैसी मरणान्तक वेदनाएं सहन की हैं····

ऐसे एक नहीं, अनन्त-अनन्त जन्म मरणों की यातनाएं
हमने सहन की हैं····
अभी तो हमारा नरक की यातनाओं का पर्दा नही उठा है····
उसके उठने पर तो हम पागल ही हो जाएगे····
नरक की भयकर यातनाएं अभी हमने प्रत्यक्ष देखी नही है····
केवल शास्त्रो में पढी ही हैं····
उन यातनाओ का स्मरण ही हमे रोमाञ्चित कर देता है····
अव हम पुन अपने वर्तमान मे लौट रहे हैं····
अतीत की यात्रा केवल पूर्व जन्मो की शृंखला को देखने
के लिए ही नही की है····
इस यात्रा के द्वारा हमने कर्म-फल भोग का प्रत्यक्ष
साक्षात्कार किया है···
अब अपने भीतर प्रेरणाप्रद संकल्प को ग्रहण कर रहे हैं कि अव
हमारे भविष्य के कर्म दुर्गति मे ले जाने वाले नही होंगे····
भाव करें····
अव हम अपने वर्तमान मे लौट आए हैं····
पर्दे एक-एक करके अपने आप खिचते जा रहे हैं····
आज की हमारी ध्यान यात्रा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण····अतीव
गहरी हुई है····
आज हमारी ज्ञान चेतना में अपूर्व जागृति का संचार हुआ है····
अभी हमारा मन एक अभूतपूर्व शान्ति का अनुभव कर रहा है····
हमारी ज्ञान चेतना की यह जागृति निरन्तर वढ़ती चली जाए····
हमारी मनः शान्ति बढती चली जाए····
इस तीव्रतम संकल्प के साथ ध्यान से वाहर आ जाएं····
····अपने आपको एकदम हल्का अनुभव करें···
तन-मन को एकदम हल्का अनुभव करें····
प्रकृतिस्थ हो जाएं····
एकदम हल्के-हल्के महसूस करें····



२४ आत्म–सुरक्षा : समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें····

(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अत्यन्त भावपूर्ण तन्मयता के साथ दोहराएं)

अतीव अहोभाव के साथ भाव करें कि हमारा तन-मन एकदम हल्का हो गया है···

इतने दिनों के अभ्यास से हमें तन का बहुत कुछ हल्का-पन लगने लगा है····

मन की भी अनेक दुर्वृत्तियों के नष्ट हो जाने से मन भी बहुत हल्का लग रहा है····

आज हम शरीर के बाह्य तत्त्वों से अप्रभावित रहने का समीक्षण कर रहे हैं····

तीव्रतम संकल्प करें कि हमारा शरीर कठोर होता चला जा रहा है····

यों तो यह शरीर अत्यन्त कोमल है····

थोड़ी भी शीत-उष्ण की वेदना इसके लिये असह्य होती है····किन्तु इन क्षणों हमारा शरीर सहनशक्ति की सीमा पार कर गया है····वह वज्र से भी कठोर फौलादी रूप ले चुका है····

भाव करे····

कितना सशक्त हो गया है हमारा तन····

बाहर के किसी परमाणु-शस्त्र आदि की कोई प्रक्रिया इसे प्रभावित नही कर सकती है····

हमारे चारो ओर आग लग रही है····

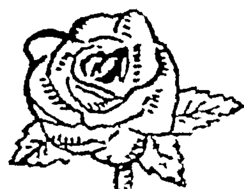
ज्वालाएं बहुत फैलती जा रही हैं···

आग ऊंची से ऊची उठती जा रही है····

किन्तु हम उस आग से एकदम अप्रभावित हैं···जैसे हमने बुलेटप्रूफ जाकेट पहन लिया हो···अथवा अग्निरोधक कवच धारण कर लिया हो····

····हमारे चारों ओर बड़ी तेज गर्मी-उष्णता फैल रही
है किन्तु हम पर उस गर्मी का कोई प्रभाव नही हो रहा है····
हमे एकदम ठण्डक का अनुभव हो रहा है··
हमारे चारों ओर जैसे पारदर्शी कांच लगा हो···
हम किसी पारदर्शी कांच की वर्नी मे सुरक्षित बैठे हो····
हमारे चारो ओर ऐसा सुरक्षा कवच तैयार हो गया है
कि किसी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग हमारे ऊपर
आघात-प्रत्याघात नही कर सकता है
भाव करें··
अग्नि की ज्वालाएं बहुत तेज होती जा रही हैं···
वे हमारे निकट आती जा रही हैं·· किन्तु हम पर
उनका कोई भी प्रभाव नही हो रहा है
हमारी मानसिक एव आत्मिक शक्ति का प्रभाव हमारे
शरीर पर बहुत गहराई तक हो गया है कि वह किसी
भी प्रकार के उपघात को अकिंचित् कर बना देता है····
हम अपने सामने ज्वालाओ को उठते हुए, अपने आसपास
मण्डराते हुए देख रहे हैं···किन्तु उनका हमारे तन-मन
पर कोई प्रभाव नही पड रहा है····
अपने तन और मन मे ऐसी शक्ति का संचार हम प्रथम
बार ही देख रहे है···
कितनी क्षमता है हमारे तन और मन में कि वे प्रकृति के प्रचण्ड
शक्ति सम्पन्न तत्त्वो पर भी अपना अधिकार जमा लेते हैं···
संकल्प करें···
अपनी इस सहनशक्ति का विकास होता जा रहा है····
ज्यो-ज्यो अग्नि का उत्ताप बढ रहा है, त्यो-त्यो हमारा
मनोबल और शरीर बल भी बढ़ता जा रहा है···
भाव करें
हमारे सुरक्षा कवच से प्रभावित होकर अग्नि ठडी होने लग गई है····
ज्वालाएं मन्द-मन्द होती जा रही हैं··
अग्नि शान्त हो रही है··
अग्नि हमे प्रभावित नही कर सकी····
हमारी अतरंग शक्ति ने ही अग्नि को प्रभावित कर दिया है····

इस भाव को संकल्प को इस गहराई तक ले जावें कि
हमारा यह सुरक्षा कवच सदा हमारे साथ बना रहेगा…
वह प्रतिक्षण हमारी सुरक्षा के प्रति सतर्क रहेगा….
इस सुरक्षा कवच के रहते किसी भी प्रकार के शस्त्र
की शक्ति हमे मार नही सकती है….
जैसे वुलेट प्रूफ जाकेट पर बन्दूक-पिस्तौल की गोली का
प्रभाव नही होता है….उसी प्रकार हमारे सुरक्षा कवच
पर किसी भी शस्त्र का प्रभाव नही हो सकता है· न
पानी का न अग्नि का··न हवा का, क्योकि हमारा
यह सुरक्षा कवच वाटर प्रूफ, फायर प्रूफ, एयर प्रूफ
आदि सभी गुण एक साथ रखता है…
इस संकल्प को तीव्रता के साथ दोहराएं कि हमारा तन
एकदम सुरक्षित हो गया है–
शारीरिक शक्ति वज्रमय बन गई है….
यह शक्ति सदा-सदा इसी रूप में बनी रहे….
प्रत्येक शस्त्र इस शक्ति के सामने हमेशा परास्त होता रहे….
हमारे तन-मन की फौलादी शक्ति बढ़ती चली जाय….
इस भाव के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं….
अपनी सहज मूल मुद्रा में आ जाएं….
प्रकृतिस्थ हो जाएं….



२५ शक्ति जागरण-केन्द्र समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें ··
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को दोहराएं)
भाव करें···
हमारा शरीर एकदम हल्का हो गया है····
हल्केपन का यह अनुभव अतीव आह्लादक है, अत्यन्त मृदुल है··
वास्तव मे अनुभव करें··
हमारा मन भी एकदम हल्का हो गया है ··
हमारी कषायें एकदम मंद पड गई हैं···
हमारे विचार विशुद्ध एवं तरल हो गए हैं···
संसार के आकर्षण क्षीण हो गये हैं
अब हमारी शक्ति का दुरुपयोग रुक गया है··
अब हम उस शक्ति के ऊर्ध्वारोहण की प्रक्रिया प्रारम्भ कर रहे हैं····
भाव करें···
हमारी सम्पूर्ण शक्ति नाभिमण्डल के नीचे पेडू के पास
मूलाधार चक्र पर टिकी हुई है····
वह शक्ति जब नीचे की ओर बहती है तो वासना बन जाती है···
विकारो को आमत्रण देती है ··
हमारे सम्पूर्ण जीवन को पतन की गहरी खाई मे ढकेल देती है···
वही शक्ति जब ध्यान-साधना के माध्यम से ऊर्ध्वमुखी
बनती है तो हमे कल्याण की दिशा प्रदान करती है·
अध्यात्म की ओर मोड़ देती है ·
अनेक उपलब्धियो के द्वार खोलती हुई हमे परमात्मा से मिला देती है·
या हमे परमात्मा के रूप मे रूपान्तरित कर देती है····
अनादिकाल से हमारी वह शक्ति निम्न दिशा की ओर
गतिशील रही है····

शक्ति की इस अधोगामी दशा ने ही हमें जन्म-मरण
की व्याधि में डाल रखा है....
नरक तिर्यंच आदि गतियो मे परिभ्रमण का मूल कारण
भा शक्ति की अधोगामिता ही है....
संसार के नाना दु खो का मूल शक्ति की निम्न दिशा मे गति है....
आज तक हमारी शक्ति निम्न प्रवाही रही है....
आज हम उस शक्ति को ऊर्ध्व दिशा देने का प्रयास कर रहे हैं....
भाव करें....
आज हम ध्यान की एक अति महत्वपूर्ण प्रकिया से गुजरेंगे....
आज हमारा समीक्षण शक्ति केन्द्रों का समीक्षण होगा....
यह प्रयोग एक अनूठा प्रयोग है....
इस प्रयोग के द्वारा हम अपने चैतन्य की समस्त शक्ति
को केन्द्रित कर ऊपर उठाने का सकल्प कर रहे हैं....
ध्यान दें....मेरे इन शब्दो पर ध्यान दें कि आज हमें
अपनी एकाग्रता को अति सीमा तक ले जाना है....
भाव करें ...
हमारे मन का एकावधानता बढ रही है ...
अब हम अपने मन को अथवा उसकी चिन्तनीय शक्ति
को मूलाधार चक्र पर ले जा रहे हैं ..
हमें मूलाधार चक्र पर शक्ति भण्डार दिखाई दे रहा है....
मूलाधार चक्र से जुड़ी एक पतली सी नाड़ी नीचे की
ओर जा रही है और तीन नाड़ियां ऊपर की ओर जा रही हैं....
नीचे की ओर जाने वाली नाड़ी शक्ति को वासना की
ओर ले जा रही है और ऊपर जाने वाली नाड़िया शक्ति
को ऊर्ध्वमुखी बनाती है....
भाव करें ...
हमे वे नाड़िया स्पष्ट दिखाई दे रही है....
जैसे कोई रबर का छोटा सा ब्लेडर हो और उसके एक
हिस्से से तीन नलिया जुडी हुई हों ..
हम अपने पेडू के पास इस ब्लेडर को स्पष्ट देख रहे हैं....
हमे वे नाड़िया स्पष्ट पारदर्शी काच की दिखाई दे रही हैं ...
अथवा सिलाईन-ग्लूकोज चढ़ाने की नली जैसी दिखाई दे रही है....

अब हम अपने ध्यान के संकल्प को गहरा बना रहे हैं····
हमारी ध्यान ऊर्जा सक्रिय हो गई है···
अपना सम्पूर्ण अवधान मूलाधार पर टिका दे····
संकल्प करें····
मूलाधार से शक्ति का जागरण हो रहा है····
जो तीन नाड़ियां ऊपर उठ रही हैं उनमें मध्य की नाडी
को योग की भाषा मे 'सुषुम्ना' कहते है····
और वही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती है····
शेष दो नाड़ियो को 'इडा'—इंगला और पिंगला कहा जाता है····
हमारी आंतरिक शक्ति का जागरण हो रहा है····
वह शक्ति ऊपर की ओर उठ रही है···
वह सीधी सुषुम्ना मे प्रवेश कर रही है··
भाव करे····
ग्लूकोज के तरल पदार्थ जैसा एक चमकीला द्रव्य
मूलाधार चक्र पर गति कर रहा है····
वह बड़ी तेजी से राउण्ड मे चक्कर लगा रहा है····
ध्यान ऊर्जा की बलवती प्रेरणा से वह सुषुम्ना मे प्रवेश कर रहा है···
अनुभव करें···
वह चमकीला तरल पदार्थ मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) मे स्थिर सुषुम्ना
मे मूलाधार चक्र से ऊपर की ओर उठ रहा है···
हमारे गुदाद्वार से ऊपर की ओर दबाव लग रहा है
और वह शक्ति तत्व ऊपर उठता जा रहा है····
हमे रीढ की हड्डी मे हल्की सी सरसराहट का अनुभव हो रहा है···
फीलिंग करे···
हमको शक्ति का स्रोत ऊपर उठता हुआ दिखाई दे रहा है···
हमारी रीढ़ की हड्डी मे एक दिव्य प्रकाश फैलता जा रहा है···
अनुभव करें···
वह दिव्य प्रकाश पुञ्ज शक्ति-स्रोत ऊपर उठता हुआ
नाभि के समानान्तर में पहुंच गया है ।
मेरुदण्ड मे दिव्य प्रकाश फैलता जा रहा है····
नाभि तक का हिस्सा अलौकिक प्रकाश से व्याप्त हो गया है···
भाव करें··

अब हमारी पूरी शक्ति ऊपर उठती जा रही है....
वह मणिपुर चक्र को पार करके अनाहत चक्र सीने के
निकट पहुंच गई है ...
प्रत्येक चक्र पर एक दिव्य-अद्‌भुत प्रकाश फलता जा रहा है....
देखें....अतीव तन्मयता से देखें... अपना पूरा मनोयोग
शक्ति के ऊर्ध्वगमन को देखने में ही लगा दे....
अनुभव करते जाएं कि नीचे से दबाव लगता जा रहा है
और शक्ति ऊपर की ओर उठती जा रही है....
अब वह ज्योतित शक्ति तत्त्व विशुद्धि चक्र गले के
आसपास पहुंच गया है...
गले में हल्की-सी खुजलाहट अथवा सरसराहट का
अनुभव हो रहा है....
हमारी तन्मयता बढ़ती जा रही है .
हमारी स्वर-शुद्धि और भाव-शुद्धि बढ़ती जा रही है....
गले के निकट फैलने वाला वह शक्ति-पुञ्ज पदार्थ वहां
के समस्त अशुद्ध-गले-सड़े परमाणुओं को जलाता जा रहा है ..
स्वर अवरोधक तत्त्व जलते जा रहे है और हमारा स्वर
मधुर-सुरीला होता जा रहा है ..
अब वह शक्ति गले से भी ऊपर उठ रही है....
वह मस्तिष्क मे पहुंच रही है...
मस्तिष्क का पिछला उभरा हुआ हिस्सा जहा ब्राह्मण
लोग चोटी रखते हैं, ज्ञान-केन्द्र कहलाता है....
अब वह शक्ति ज्ञान-केन्द्र पर पहुंच गई है....
भाव करें...
मस्तिष्क एकदम प्रकाशित हो गया है....
जैसे कोई दिव्य सर्चलाइट मस्तिष्क मे जल गई हो....
उस प्रकाश से हम मस्तिष्क का प्रत्येक भीतरी तत्त्व देख रहे हैं..
अहा ! कितना अनुपम प्रकाश फैल रहा है, हमारे मस्तिष्क मे...
कितनी अलौकिक छटा व्याप्त हो रही है हमारे मस्तिष्क मे....!!!
अनुभव करें....
वह दिव्य शक्ति ज्ञान-केन्द्र के चारों ओर चक्कर लगा रही है....
एक पतली गोल ट्यूब-लाइट की तरह वह गोलाकार घूम रही है .

भाव करें ··
वह शक्ति जितनी तीव्रता से घूम रही है, उतनी ही
तीव्रता से ज्ञान से अवरोधक तत्त्वों को समाप्त करती जा रही है···
हमारी स्मरण शक्ति बढती जा रही है····
हमारी प्रज्ञा-प्रतिभा एकदम विकसित होती जा रही है····
हमारी मेधा शक्ति तीक्ष्ण होती जा रही है···
बुद्धि पटु एवं शीघ्रग्राही होती जा रही है····
भावनाओ मे विशुद्धि का, पटुता का सचार हो रहा है····
तीव्रतम भाव करें···
हमारी स्मरण शक्ति पर, हमारे ज्ञान केन्द्र पर
इतना अधिक प्रकाश हो गया है कि हमारा चिन्तन
अतीत मे दूर-सुदूर तक पहुंच गया है····
हमे अपने बचपन का सारा चित्र अपनी आखो के सामने
दिखाई दे रहा है····
हमारे अतीत जीवन की सभी वृत्तिया चलचित्र की
भांति हमारी आखो के सामने तैर रही हैं···
देखे, वह शक्ति ज्ञान-केन्द्र के चारो ओर बड़ी तीव्रता से घूम रही है····
अनुभव करें····ज्ञान केन्द्र—चोटी वाले स्थान पर प्रकाश
ही प्रकाश फैल गया है ··
वहा हल्की-हल्की खुजलाहट हो रही है···
एक रमणीय अद्भुत, अलौकिक प्रभामण्डल सा वर्तुल
वहा बन गया है····
अब वह शक्ति वहा से ऊपर उठ रही है····
अर्थात् वह शक्ति ज्ञान-केन्द्र से आगे बढ रही है····
ज्ञान-केन्द्र से आगे लगभग चार अंगुल की दूरी पर आनन्द-केन्द्र है···
जिसे हम तालु कहते हैं, वही आनन्द केन्द्र अथवा शान्ति केन्द्र है····
वह शक्ति पुञ्ज ज्ञान केन्द्र से आगे बढकर शान्ति केन्द्र
तक पहुंच गया है···
अब वह आनन्द केन्द्र पर चक्कर लगा रहा है···
जैसे कोई चक्रीवाला पटाखा घूम रहा हो, वैसे ही वह प्रकाश पुञ्ज
शक्ति स्रोत शांति केन्द्र के चारो ओर घूम रहा है····
अनुभव करें··

उसके घुमाव में एक लयबद्धता है····
हमारी चेतना में आनन्द का विस्तार होता जा रहा है···
हमारे तन-मन और प्राणों में अलौकिक शाति का प्रसार हो रहा है····
भाव करें···
उस आनन्द केन्द्र से शांति का रस टपक रहा है···
वह अमृत गले मे होकर सीधे तलवे पर स्पर्श करता
हुआ, जीभ के आन्तरिक छोर पर गिर रहा है····
एक अनुपम आस्वाद का हमे अनुभव हो रहा है,
ऐसा आस्वाद जो जीवन में कभी भी प्राप्त नही हुआ ·
वह अमृत हमारी सम्पूर्ण चेतना को आप्यायित कर रहा है ··
हमारा मन, हमारी चेतना, इन क्षणो आनन्द मे विभोर हो रही है····
हम अब भी आनन्द—आत्मिक-अलौकिक आनन्द के
सागर मे ही गोते लगा रहे हैं···
हम ऐसी डुबकी लगा रहे हैं—आनन्द सागर की
इतनी गहराई में पहुच गये हैं कि वहा से बाहर निकलने
की इच्छा ही नही हो रही है···
अभी हम अपने अन्तरंग आनन्द मे तन्मय हो गए हैं···
ससार के सभी बाह्य विकल्प छूट गये है····
बाहर की ओर अभी हमारा कोई लगाव खिचाव बचा ही नही है···
भाव करें····
वह आनन्द रस, वह अमृत, अब आनन्द केन्द्र से गले की
रसवाहिनी नली का स्पर्श करता हुआ सीधा हृदय
केन्द्र पर पहुंच रहा है···
अनुभव करे···
हृदय में अनाहत चक्र पर अमृत की बूंदे टपक रही हैं ··
हमारा हृदय बडी विभोरता में खो रहा है····
हृदय कमल एकदम प्रफुल्लित हो गया है ··
वह हर्ष—वह प्रफुल्लता, वर्णनातीत है···
वह अमृत हमें अमरता की ओर खीच रहा है····
हमारा जीवन मरण-धर्मा है, यह अहसास इन क्षणो
एकदम भुला दिया गया है····
हम एकदम अमरण धर्मा-अमर होने का अनुभव कर रहे है···
हमारे हृदय मे इतना अधिक आनन्द भर गया है कि

हमारे तन-मन-प्राण सभी रोमांचित, प्रफुल्लित हो रहे हैं....
भाव करें....
अब हमारी जीभ उलट गई है....
वास्तव मे अब हम जीभ को ऊपर की ओर से मोडकर
अन्दर-पीछे ले जावे और तालु पर लगा दे....
अनुभव करें....
जीभ तालु पर लग गई है और आनन्द केन्द्र से टपकने
वाला शान्तिरस—वे अमृत की बूंदे, जीभ के
अग्रभाग पर गिर रही हैं .
हमे अद्भुत अस्वादित स्वाद का अनुभव हो रहा है....
वास्तव मे फीलिंग करे..
हमारी जिह्वा पर अनुपम स्वाद उतर रहा है...
अब उस स्वाद का आनन्द लेते हुए उस अनुभव को
सजीव रखते हुए ही जीभ को पुनः सीधा कर दें....
अब संकल्प करे कि, वह शक्ति केन्द्र से आगे खिसक गई है....
वह मस्तिष्क के अगले हिस्से—सहस्रार पर पहुंच गई है...
भाव करें....
सहस्रार मे एक सहस्र पंखुरी वाला कमल प्रभासित हो रहा है..
एक अनुपम प्रभा उन सहस्र पंखुरियो से फूट रही है....
एक अद्भुत प्रकाश वहां फैल रहा है...
वह शक्ति सहस्रार के ईर्द-गिर्द चक्कर लगा रही है....
पूरे मस्तिष्क में अनुपम प्रकाश फैल गया है जैसे—
कोई स्काई कलर की तेज पावर वाली मर्करी लाईट
अन्दर जल गई है....
वह प्रकाश इतना आह्लादक, इतना रमणीय है कि
हमारा चित्त आनन्द विभोर हुआ जा रहा है....
हमारी चेतना की यह रमणीय अवस्था अद्भुत है....
हम आज अभूतपूर्व आनन्द की स्थिति मे पहुंच गए हैं...
आज हमारी चेतना प्रकाश पुञ्ज बन गई है....
वह एकदम हल्की हो गई है....
भाव करें..
हमारे सहस्रार में शक्ति का विस्फोट हो रहा है...

हमारी मानसिक क्षमता में अनन्तता का भाव गहरा रहा है…
हमारे भीतर अनन्त शक्ति का जागरण हो रहा है…
देखें… अन्तश्चक्षुओ से देखें ·
अब वह शक्ति सहस्रार को प्रज्वलित करके आगे बढ गई है….
वह प्रदेश केन्द्र किंवा दर्शन केन्द्र पर पहुंच गई है….
भृकुटि मध्य का स्थान जहा पर पुरुष तिलक लगाते हैं….
अथवा महिलाए बिन्दियां लगाती है, उसे ही प्रवेश
केन्द्र की सज्ञा प्रदान की गई है….
हमारा ध्यान योग में प्रवेश वही से सुगम होता है…
शक्ति स्रोत के प्रवेश केन्द्र पर पहुचते ही वहा हल्के
गुलाबी रग का प्रकाश फैल गया है ·
वहां हमे हल्की-हल्की लालिमा लिये हुए गुलाबी प्रकाश
स्पष्ट दिखाई दे रहा है….
हमारे भृकुटि मध्य मे प्रवेश केन्द्र पर प्रकाश की किरणे फूट रही हैं….
वे किरणें बाहर तक प्रकाश फैला रही हैं··
उन किरणो के द्वारा हमारे मस्तिष्क के चारो ओर एक
आभा वलय बन गया है
हल्का गुलाबी रंग का प्रकाश उस आभा वलय से फूट रहा है…
वह प्रकाश हमारी भावनाओ का प्रकाश है—हमारी भावना,
हमारे ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना से भावित है…
अतः वह प्रकाश हमारी साधना का प्रकाश है ·
हमारी भावनाए प्रभावलय के रूप मे बाहर फैल रही है
हमारे चारो ओर गुलाबी छटा लिये प्रकाश ही प्रकाश फैल गया है…
इन क्षणो हमारी आत्मा एकदम निर्मल बन गई है…
असत् भावनाए तिरोहित हो गई हैं…
हमारी चेतना मे एक अहोभाव गहराता जा रहा है ·
अभी हम एकदम हल्के हो गये हैं….
हम अधर होते जा रहे हैं….
हमारी तन्मयता, हमारी शान्ति बढती ही जा रही है…
वह शक्ति हमारी स्वयं की शक्ति है ·
आज तक वह नीचे की ओर बहती रही है ·
आज उसने ऊर्ध्व दिशा पकड़ ली है….

आज हमारी शक्ति का जागरण हो गया है····
आज वह अपनी प्रभा को बाहर तक फैला रही है····
सम्पूर्ण वायुमण्डल को अनुप्राणित-सुवासित-भावित कर रही है··
अहा !! कितना सामर्थ्य है, हमारी अन्तर् शक्ति मे ?····
भाव करें····
अब वह शक्ति प्रवेश केन्द्र पर तीव्र प्रहार कर रही है ··
वह भृकुटी के मध्य से बाहर निकल जाना चाहती है····
हमारी भृकुटी के मध्य मे हल्की-हल्की खुजलाहट हो रही है
वह शक्ति वहां से बाहर निकलने को तत्पर है···
उस शक्ति के प्रहार से हमारा पूरा शरीर रोमाञ्चित,
प्रकम्पित हो रहा है···
आज का यह शक्ति-जागरण अपूर्व है····
अभूतपूर्व है···
भाव करें·
अब वह शक्ति वही विकस्वर हो गई है····
उसका विकास सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त हो गया है····
वह बाहर विस्फोट नहीं करके अन्दर ही फैल गई है···
अभी हमारे शरीर मे एक रमणीय प्रकाश फैल गया है····
हमारे सम्पूर्ण शरीर में एक ऊर्जस्विल शक्ति गहरा रही है····
वह शक्ति मारक-संहारक नही, वह सृजनात्मक शक्ति है ··
वह प्राणिमात्र को आनन्द-शाति प्रदान करने वाली शक्ति है····
अभी हमारे तन-मन मे अपूर्व शान्ति का संचार हो रहा है···
हमारा सम्पूर्ण शरीर पारदर्शी काच की तरह प्रकाशित हो रहा है··
हमारे तन, मन, प्राण सभी कुछ एकदम हल्के हो गये हैं····
आज का यह हल्कापन अजीब है, अनुपम है···
हमारे शरीर से चारो तरफ ऐसी किरणे निकल रही हैं
जो प्राणिमात्र के प्रति आनन्द का—परम शान्ति का
सम्प्रेषण कर रही हैं ··
हमारी आत्मा इन क्षणों, अद्भुत शान्ति मे भर गई है···
यह आनन्द—यह शान्ति अनुपम है, वर्णनातीत है····
आज का यह आनन्द ज्ञान, दर्शन, चारित्र मे रमणता का आनन्द है ·
यह आत्म-रमणता का आनन्द है····

हमारा यह शक्ति का जागरण बढ़ता चला जाय····
हमारा आत्म-रमणता का भाव गहराता चला जाय····
हमारी यह शान्ति सदा-सदा बनी रहे और हजारों
हजार जीवों को आतृप्त आप्यायित करती रहे····
इसी भावोन्मेष के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं····
अपने आपको एकदम हल्का महसूस करें····
हमारे तन-मन-प्राण प्रफुल्लित हो रहे हैं····
इसी प्रफुल्लता का अनुभव करते हुए ध्यान से बाहर आ जाएं····
प्रकृतिस्थ हो जाएं····
सम्पूर्ण वायुमण्डल मे हल्केपन का चारित्र की सुवास का अनुभव करें····
मन को शांत-प्रशान्त अवस्था में ले जाएं····
पूरे शरीर में सम्पूर्ण मानसिकता में सहजता, सरलता,
सात्विकता का अनुभव करें····



२६ आत्मा और शरीर की भिन्नता का समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को अतीव तन्मयता के साथ दोहरायें)
अपने शरीर को अत्यन्त हल्का अनुभव करें....
तीव्रतम भाव करें....
शरीर एकदम हल्का हो गया है....
अपने मन को भी एकदम हल्का अनुभव करें....
मन का सारा वोझ झटक गया है ..
मन के विकार क्षीण हो गये हैं....
मन निर्भार हो गया है ...
शरीर और मन के हल्केपन के साथ ही आत्मा भी एकदम हल्की हो गई है ...
आज हम आत्मा और शरीर की भिन्नता का समीक्षण करेंगे....
हमारा ससार परिभ्रमण का किंवा जन्म-मरण का मूल कारण है; हमने शरीर और आत्मा को अभिन्न मान लिया है ...
जब तक हमारा देहाध्यास नहीं छूट जाता, जब तक हमें आत्मा और शरीर की भिन्नता का वोध नही हो जाता, तब तक हमारी दृष्टि सम्यक् नही बन सकती ...
और सम्यग्दृष्टि भाव के जागरण के विना मुक्ति तीन काल में भी असम्भव है ..
यह ठीक है कि आत्मा और शरीर का सम्बन्ध अनादि है....
किन्तु अनादि होने मात्र से दोनों एक नही हो जाते....
स्वर्ण और पत्थर का सम्बन्ध भी तो अनादि है। किन्तु स्वर्ण को पत्थर अथवा मिट्टी से अलग किया जा सकता है ..
ठीक इसी प्रकार साधना के द्वारा शरीर से आत्मा को भिन्न किया जा सकता है....

और शरीर से आत्मा का सर्वथा अलग हट जाना ही तो मोक्ष है....
यों तो जब हमारी मृत्यु होती है, तब हम शरीर से
अलग होते हैं, किन्तु वह अलगाव केवल स्थूल शरीर का है....
सूक्ष्म शरीर अर्थात् तेजस् और कार्मण शरीर तो मृत्यु के समय भी
और उसके अन्य गति में गमन के समय भी साथ लगे ही रहते हैं....
जब तक आत्मा मुक्त नही हो जाती, तब तक तेजस् कार्मण शरीर
आत्मा के साथ क्षीर-नीर की तरह मिले हुए ही रहते हैं..
अथवा हम यों कह सकते हैं कि तेजस्-कार्मण शरीर का
आत्मा से अलग हो जाना ही तो मोक्ष है .
तो आज हम शरीर और आत्मा की भिन्नता का बोध
जागृत करने का प्रयास करेंगे....
आज हम आत्मा और शरीर को अलग-अलग
तत्वो के रूप मे देखने का अभ्यास करेंगे....
आज हम देहाध्यास से ऊपर उठने का प्रयत्न कर रहे हैं...
देहाध्यास का अर्थ है शरीर मे आत्म-बुद्धि होना ..
शरीर और आत्मा को अभिन्न मान लेना....
आज हम इस अनादि भाव को छिन्न-भिन्न कर देंगे ...
आज की हमारी समीक्षण ध्यान की प्रक्रिया भाव-पूर्ण प्रक्रिया होगी...
भाव करें ..
अभी हम ध्यान मुद्रा में बैठे हुए हैं....
हम अपने अन्तश्चक्षुओं से ध्यान मुद्रा मे स्थित अपने
शरीर को देख रहे हैं
हमारा अभी का यह शरीर-दर्शन एक अलग प्रकार का शरीर-दर्शन है....
आज हम शरीर को अपने से भिन्न स्थिति मे देख रहे हैं....
हमे शरीर अपनी आत्मा से अलग दिखाई दे रहा है ..
जैसे कोई अन्य व्यक्ति हमारे सामने बैठा हो और हम
उसकी गतिविधि के द्रष्टा बने हुए हो .
उसी प्रकार अभी हमारी आत्मा शरीर को एक भिन्न
व्यक्ति के रूप मे पास मे पड़े हुए देख रही है...
आज वह शरीर की गतिविधियो की प्रत्यक्ष द्रष्टा बनी हुई है....
भाव करें....
आत्मा के रूप मे हम अलग बैठे हुए हैं और शरीर हमारे
सामने अलग स्थित है .
जैसे हमारे सामने हमारी ही आकृति की कोई मूर्ति पड़ी हो....

किन्तु वह मूर्ति निर्जीव नही सजीव है····
उसकी श्वास प्रक्रिया चल रही है····
उसके रक्त संचार को, उसके हार्ट की पम्पिग को हम
स्पष्ट रूप से देख रहे हैं
भाव करें····
हमारा शरीर एकदम पारदर्शी बन गया है
हमे शरीर की नर्व सिस्टम भी स्पष्ट दिखाई दे रही है·
हमारी दृष्टि मे शरीर की प्रत्येक गतिविधि-सुस्पष्ट झलक रही है··
देखें·········अन्तर् दृष्टि से देखे····
अत्यन्त तन्मयता से देखे·
हमारा शरीर अलग है और हम अलग हैं···
इन क्षणो शरीर और आत्मा का सम्बन्ध एक अदृश्य रज्जु
से जुड़ा हुआ-सा सम्बन्ध रह गया है···
हमे आज यह सम्बन्ध औपाधिक सम्बन्ध लग रहा है··
आज हमें स्पष्ट भासित हो रहा है कि शरीर आत्मा का
सम्बन्ध तादात्म्य सम्बन्ध नही है·
यह ऊपर से आरोपित अथवा आगन्तुक सम्बन्ध है····
आज हम इस सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से देख रहे हैं···
हमे दिखाई दे रहा है कि शरीर बिल्कुल भिन्न है और आत्मा भिन्न है····
इन क्षणो हमारी आत्मा एकदम असग हो गई है··
हम उसे एक ज्योति के रूप मे देख रहे है··
हमारे समस्त आत्म-प्रदेश एक ज्योतिपुञ्ज के रूप मे दिखाई दे रहे है····
ऐसी दिव्य-ज्योति जो अद्भुत है, रमणीय है, अनुपम है, अलौकिक हैं····
आत्म-स्वरूप का यह दर्शन अभूतपूर्व है, अदृष्टपूर्व है··
इन क्षणो हमें आत्मा और शरीर का अपने मूल रूप मे
दर्शन हो रहा है
दोनो की भिन्नता का स्पष्ट अवबोध हो रहा है····
अब हमें अपना शरीर कुछ दूसरे ही रूप मे दिखाई दे रहा है···
हमारे शरीर की चमक-दमक अथवा ओजस्विता क्षीण
होती जा रही है···
चूंकि यह औदारिक शरीर गलन-सड़न स्वभाव वाला ही है। अत.
हम इसे विशीर्ण, जरा जीर्ण होते हुए स्पष्ट देख रहे हैं····
देखें·····अपने सामने पडे हुए अपने शरीर को देखें····

उसमे से अनन्त-अनन्त परमाणु निकल रहे हैं…
हमारा शरीर जरा-जीर्ण होता जा रहा है….
हमारा चेहरा झुर्रियो से भर रहा है….
हमारे बाल सफेद हो रहे हैं….
हमारे पूरे शरीर पर स्पष्ट रूप से वृद्धावस्था झलक रही है….
किन्तु शरीर की जीर्णता को देखने वाली आत्मा तो
यथावत् शक्ति, सम्पन्न है…
वह शरीर की द्रष्का अवश्य है, किन्तु उसमे कोई बदलाव नही है….
उसकी अनन्त शक्ति तो ज्यों की त्यों है….
शरीर की नश्वरता का आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं है….
क्योकि आज हमने शरीर और आत्मा की भिन्नता का
बोध प्राप्त कर लिया है….
आत्मा जब शरीर को अपना मानती थी, तो उसके साथ
विचलित हो जाती थी· ··उसके सुख-दु.ख मे सहभागी
होकर स्वय को सुखी-दुःखी अनुभव करने लगती थी….
किन्तु अब, अब स्थिति बदल गई है…
शरीर की प्रक्रिया का आत्मा पर कोई प्रभाव नही पड़ रहा है….
आत्मा केवल द्रष्टा बनी हुई है….
भाव करें ·
अब हम अपने ही शरीर को अपने सामने जलते हुए देख रहे है….
देखे……हमारा शरीर चिता पर रख दिया गया है….
चिता मे आग लगाई जा रही है….
आग की ज्वालाएं ऊपर उठ रही हैं…
हमारे शरीर ने आग पकड़ ली है….
वह जलने लगा है…
शरीर पूरी तरह से जल रहा है· ··
किन्तु आत्मा, आत्मा का कुछ नही बिगड़ रहा है· ··
वह तो शरीर से एकदम असंग-असम्पृक्त हो गई है…
वह तो चित्रपट के दृश्यों के समान अपने शरीर को
जलते हुए दूर बैठी देख रही है…
अहा !! आज का यह देह-दर्शन का भाव कितना भावपूर्ण है….
शरीर आत्मा की भिन्नता का यह बोध कितना अनुपम है….

भाव करें…
अब हम पुनः पीछे की ओर लौट रहे हैं…
पुनः देहाभिन्नता के प्रारम्भिक बोध की ओर गति कर रहे हैं…
हम ध्यान मुद्रा मे बैठे हुए हैं…
शरीर से भिन्न आत्म-प्रदेश एक उज्ज्वल ज्योति के रूप में स्थित है…
हमारे सामने शरीर भी ध्यान मुद्रा मे स्थित है…
हम इस देहात्मभिन्नता के बोध से जागृत होते हुए भी
पुन शरीर मे प्रवेश कर रहे हैं
क्योकि जब तक कर्मो का सर्वथा क्षय नही हो जाता,
तब तक सूक्ष्म-कार्मण शरीर से आत्मा मुक्त नही हो
जाती, शरीर में स्थित रहना अनिवार्य है…
अभी हम देह से सर्वथा अलग नही हो गए हैं…
अभी तो हमने देहात्मभिन्नता का ज्ञान किया है…
देहात्मभिन्नता के इस बोध को ही तो भेद-विज्ञान कहा गया है…
भेद-विज्ञान ही तो मुक्ति साधना की मूलभित्ति है…
भेद-विज्ञान के बिना मुक्ति साधना के प्रथम सोपान पर
भी नही चढ़ा जा सकता है…
भेद-विज्ञान को ही तो सम्यग् दर्शन कहा जाता है…और
सम्यग् दर्शन ही तो मुक्ति मन्जिल की पहली पायरी है…
आज हमने देह और आत्मा की भिन्नता को जान लिया है·
इस बोध से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जब शरीर
भी अपना नही है, तो शरीर के साथ सम्बन्ध रखने वाले
अन्य पदार्थ हमारे कैसे हो सकते हैं…
आचार्य अमित गति ने इसी बात को तो स्पष्ट किया है—

"यस्यास्ति नैक्य वपुषापि सार्धं,
तस्यास्ति किं पुत्र-कलत्र-मित्रैः ।
पृथक् करुते चर्मणिरोमकूपाः,
कुतोहि तिष्ठन्ति शरीर मध्ये ।।

अरे ! जब शरीर पर चमड़ी ही न हो, तो रोमकूप
अर्थात् बाल कहा टिक पायेंगे ? इसी प्रकार जब शरीर
ही अपना नही है, तो उससे सम्बन्धित मित्र-परिजन
एव अन्य नाशवान् पदार्थ हमारे कैसे हो सकते है ?…

तो आज हमें ससार के सभी पदार्थ अपने से भिन्न लग रहे हैं....
अब हमे किन्ही तत्त्वो पर आसक्ति का भाव नही घेर सकता है....
आज हमे जड़ पदार्थों की नश्वरता का एवं उनके आत्मा
के साथ बने औपाधिक सम्बन्धो का ज्ञान हो गया है....
अब हम आत्म-विज्ञानी बन गये हैं ..
हम शरीर मे रहते हुए भी शरीर से भिन्न हैं....
अब हमारा जीवन जल-कमलवत् निर्लिप्त हो गया है....
हम परिवार में रह रहे हैं, किन्तु उसमें आसक्त नही है
जैसे कमल कीचड़ मे उत्पन्न होता है, जल मे वृद्धि पाता
है, किन्तु इन दोनों से अलग ऊपर उठकर रहता है....
उसी प्रकार की अब हमारी चित्त-दशा हो गई है .. हम संसार रूपी
कीचड मे पैदा हुए, परिवार रूपी पानी मे बड़े हुए, किन्तु अब
हम इनसे असम्पृक्त-अनासक्त रहकर जीना सीख गए हैं....
हमें ससार में बाधने वाला तत्त्व आसक्ति का भाव है....
आज हमने देहात्मभिन्नता का बोध प्राप्त किया है....
परिणामत: हम भेद विज्ञानी बने और आसक्ति भाव से
ऊपर उठ गए....
अब हमे संसार मे बाधने वाला कोई तत्त्व नहीं है ..
हम देह के द्रष्टा बने रहे....
हमारा भेद विज्ञान का भाव गहराता चला जाय....
हमारा यह अनासक्ति का भाव सदा-सदा बना रहे
हम आत्मा और शरीर की भिन्नता का बोध सदा-सदा
बनाए रक्खे, इसी भावतन्मयता के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं....
अपने आप को, अपने सम्पूर्ण परिवेश को एकदम हल्का अनुभव करें....
अपने मन को एकदम हल्का महसूस करें...
प्रकृतिस्थ हो जाएं....
ध्यान से बाहर आ जाए....



२७ शरीर में आत्म-ज्योति का समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें....
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अतीव भावपूर्ण तन्मयता के साथ दोहराएं)
शरीर के परिपूर्ण हल्केपन के अहसास को बहुत गहराई तक अनुभव करें....
मन के भार रहित होने का अनुभव करें....
भाव करें
आत्मा एकदम उज्ज्वल, निर्मल होती जा रही है....
आत्मा की उज्ज्वलता का प्रभाव शरीर पर भी पड़ रहा है
शरीर भी उज्ज्वल प्रभा-स्वर होता जा रहा है...
आज शरीर मे फैलते हुए आत्म-ज्योति के प्रकाश को देखेंगे....
आज हम चैतन्य प्रकाश का भावपूर्ण समीक्षण करेंगे....
देखें..... अपने शरीर के भीतर प्रत्येक अणु-अणु मे चेतना के संचार को देखें
शरीर व्यापी चैतन्य की संव्याप्ति का समीक्षण करें....
अभी हमारा सम्पूर्ण शरीर आत्म-ज्योति से संव्याप्त होता जा रहा है...
तीव्रतम अहोभाव से भरकर देखें....
हमारा पूरा शरीर पारदर्शी हो गया है....
हमारे शरीर के अणु-अणु में एक अलौकिक प्रकाश संचारित हो रहा है....
हम उस अद्भुत प्रकाश के द्रष्टा बने हुए हैं..
आज का हमारा द्रष्टा भाव बहुत आनन्द विभोर कर देने वाला है; क्योकि आज हम स्वय की ज्योति का दर्शन कर रहे हैं....
भाव करें....
हमारे शरीर मे हार्ट के पास-दोनो फेफड़ो के बीच मे एक

तीव्र; किन्तु अत्यन्त आह्लादक मर्करी लाइट जल गई है....
हमारे सम्पूर्ण शरीर में प्रकाश ही प्रकाश फैल गया है....
यह प्रकाश आत्मा की ज्ञान-शक्ति का प्रकाश है....
यह प्रकाश ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाला प्रकाश है....
हमारी चेतना एक प्रकाश पुञ्ज ही बन गई है...
हमारा शरीर पारदर्शी कांच के समान हो गया है....
जैसे हमारी ध्यान मुद्रा स्थित देहाकृति ही कोई कांच की बनी है....
हमारे शरीर के रोम-रोम से अद्भुत प्रकाश की किरणें
निकल रही हैं..
हमारे सम्पूर्ण शरीर से प्रकाश छिटक रहा है....
यह प्रकाश अतुलनीय है, अद्भुत है, अनुपम है....
हमारे तन, मन, प्राण सभी कुछ प्रभास्वर हो गये हैं...
यह प्रकाश केवल प्रकाश ही प्रकाश नही है...
इस प्रकाश मे चन्दन जैसी शीतलता भरी हुई है....
इस प्रकाश से चन्द्रमा जैसी सौम्यता टपक रही है....
यही नही, इस प्रकाश से अद्भुत सौरभ फूट रही है....
वह सौरभ अथवा सुवास अतुलनीय है....
चन्दन, केवड़ा, गुलाब या अन्य किसी भी सुगन्ध से
उसकी तुलना नही की जा सकती है....
वह सुगन्ध हमारे चारित्र की सुगन्ध है....
भाव करें...
जैसे किसी ऐसी अगरबत्ती की महक हमारे चारो ओर
व्याप्त हो गई है, जिसे हमने कभी देखा ही नही जिसकी
गन्ध हमने कभी ली ही नही .
आहा ! कितनी अद्भुत महक हमारे चारों ओर व्याप्त होती
जा रही है....
हमारे आस-पास का सम्पूर्ण वायुमण्डल सुवासित हो गया है....
यह सुवास हमारे चारित्र आराधना की सुवास है..
आज हम ज्ञान के प्रकाश एवं चारित्र की सुवास का
प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं ..
हमारे ज्ञान का प्रकाश सम्पूर्ण वायुमण्डल मे व्याप्त हो रहा है, तो
हमारे चारित्र की सुवास से समस्त वातावरण महक रहा है....

कैसी अनिर्वचनीय महक फैल रही है, हमारे चारों ओर····
भाव करें····
हम इस अकथनीय सुवास मे सराबोर हो रहे हैं····
चारित्र आराधना की यह सुवास हमारी समस्त चेतना में
अद्‌भुत आनन्द भर रही है····
हम इन क्षणों अनुपम आनन्द के सागर में तैर रहे हैं····
हमारे समस्त संकल्प-विकल्प, जन्य तनाव समाप्त हो गये हैं ··
हमारे शरीर से प्रकाश और सुगन्ध दोनों निकल रहे हैं····
हमारा सम्पूर्ण शरीर पुलकित-रोमांचित हो रहा है····
इन क्षणो हमारा ध्यान शरीर की नश्वरता पर नही,
उसमें विद्यमान ज्ञान, दर्शन, चारित्र धारक आत्मा पर है··
शरीर तो उस कांच की बर्नी-शीशी के समान माध्यम
है, जिसमें से प्रकाश और सुगन्ध फैल रही है····
इन क्षणो हमारे चारो ओर प्रकाश ही प्रकाश है, सुगन्ध ही सुगन्ध है···
प्रकाश और सुगन्ध के अलावा यहां अभी और कुछ भी नही है···
प्रकाश·······प्रकाश·······प्रकाश····
सुवास·······सुवास·······सुवास····
यह प्रकाश अत्यन्त रमणीय, अतीव आह्लादक है और
यह सुवास भी परम प्रीतिकर परम आह्लादक है····
अनुभव पूर्ण भाव करें····
हम उस दिव्यातिदिव्य प्रकाश का उस अनुपम सुवास
का जी भरकर आनन्द ले रहे हैं···
डूबते जाएं, उस प्रकाश और सुवास के आनन्द सागर मे·
एक तन्मयता, एक तल्लीनता बना लें····
कितना मन भावन ! कितना अलौकिक प्रकाश है यह !····
इन क्षणो हम आनन्द ही आनन्द मे मग्न हैं····
संसार के समस्त तनावो से दूर, समस्त विवादो से अलग,
एकाकी आत्म-रमणता का आनन्द····
और यह आनन्द कृत्रिम नही है ··
यह चैतन्य का सहज-सदा सहभागी आनन्द है····
ज्ञान, दर्शन, चारित्र चेतना के सहज सहभागी गुण हैं,
अत. उनका प्रकाश, उनकी सुगन्ध चेतना की सहभागी

सहज अवस्थाएं हैं....
अरे ! कृत्रिम तत्त्वो में वह आनन्द है ही कहां....
जो आनन्द आत्मा की सहज अवस्था में है, वह इन
कृत्रिम पदार्थों मे कभी भी सम्भव नही है ....
भाव करें....
हमारे शरीर में जल रही मर्करी लाइट का वह सौम्य-
शीतल प्रकाश बढ़ता जा रहा है....
हृदय कमल से उठने वाली वह सौरभ बढती जा रही है....
हमारे आस-पास के वातावरण मे एक अलौकिक मादकता
का भाव गहराता जा रहा है....
हमारी चेतना उस मादकता मे सराबोर हो रही है....
वह मादकता नशीले पदार्थों की नही....
वह मादकता चेतना की सहजावस्था की है -
हम चारों ओर से सुवास और सुगन्ध से घिरे हुए हैं...
आज हमने एक अद्भुत दिव्यता का अनुपम आत्म-
ज्योति का साक्षात्कार किया है....
आज के हमारे ध्यान का आनन्द एक अलग ही प्रकार का आनन्द है....
आज हम जीवन की अद्भुत दिव्यता की यात्रा कर आए है....
हमारी यह दिव्यता की अलौकिक छटा बढती चली जाए....
हमारे ज्ञान का प्रकाश निरन्तर ऊर्जस्वित होता चला जाए....
हमारे चारित्र की सुवास दिग्दिगन्त को सुवासित करती रहे....
हमारी चेतना में ज्ञान और चारित्र के प्रति अहो भाव
बढ़ता चला जाय ..
इस उल्लसित भाव के साथ..
इस कमनीय अहोभाव के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं....
अपने आप को प्रकाश एव सुगन्ध के घेरे मे एकदम हल्का
अनुभव करें .
अपने तन, मन एव प्राणो मे एक सात्विक तरलता का अनुभव करें....
यह तरलता, यह सात्विकता उच्चकोटि की है....
इस अहोभाव मे रममाण होते हुए ध्यान से बाहर आ जाएं....



२८ ऊर्ध्वगमन एवं परमात्म-भाव का समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें····
(प्रथम तीन प्रक्रियाओं को अतीव उत्प्रेरक भावो के साथ दोहराए)
तीव्रतम भाव करे····
हमारे कषायों का विरेचन हो गया है····
हमारे मिथ्यात्व-अज्ञान आदि मूल दोषो का विरेचन हो गया है····
हमारे समस्त विकार क्षीण हो गए हैं ·
हमारा मन एक दम हल्का हो गया है ·
आत्मा का हल्कापन सीमातीत हो गया है···
आत्मा ऐसी हल्की हो गई है कि अब परमात्म-भाव तक
पहुचने मे अधिक श्रम की आवश्यकता नही रहेगी····
कल्पना करें···
इन क्षणो हम किसी शून्य जगल मे वृक्षों के झुरमुट के
वीच एक शिलापट्ट पर बैठे हुए हैं····
हमारे चारो ओर हरियाली ही हरियाली फैली हुई है ·
फूलो की मन्द-मन्द सुगन्ध वायु-मण्डल को सुरभित कर रही है····
मन्द-मन्द बयार चल रही है जो तन मन को आह्लादित
करने वाली है···
कही-कही, कभी-कभी पक्षियों की चहचहाट के अतिरिक्त
सम्पूर्ण वातावरण मे नीरव शाति का साम्राज्य छाया हुआ है····
इन क्षणो हमारी ध्यान मुद्रा बहुत भावपूर्ण हो रही है····
हम बाहर के समस्त द्वन्द्वो-तनावो से एकदम अलग हट गए हैं····
अभी हम समस्त दुनिया से अलग एकाकी आत्मस्थ भाव
मे लीन हो रहे है···
"एगोह नत्थि मे कोई" का आगम वाक्य हमारी चेतना
में रममाण हो रहा है—नस-नस मे व्याप्त हो रहा है··

भाव करें····
अभी हम शून्य निर्जन वन में बैठे हुए हैं····
अपने-पराये सभी व्यक्तियो से एकदम दूर एकात्म भावलीन हैं हम····
तेरे-मेरे की सारी परिधियां टूट गई हैं····
विचारों मे व्यापकता-विराटता का सचार हो रहा है····
हमारे चारों तरफ दूर-सुदूर तक वातावरण में नीरव शान्ति छाई हुई है····
हम एक शिलापट्ट पर खुले आकाश में शात-प्रशात होकर स्थिरासन मे बैठे हुए हैं····
संकल्प करें ··
अचानक हमारे शरीर मे अद्भुत हल्कापन आ रहा है····
ऐसा हल्कापन, जैसा हमने पूर्व मे कभी अनुभव नही किया····
गुब्बारे से भी अधिक हल्का हो गया है हमारा शरीर····
अरे ! यह क्या ? हमारा शरीर आसन से ऊपर उठने लगा है···
जैसे हलकी चीज ऊपर उठती है, उसी प्रकार हमारा शरीर ऊपर उठता जा रहा है····
शरीर अधर हो रहा है····
हमारे शरीर को अब नीचे किसी आश्रय-सहारे की आवश्यकता नही रही है····
वह आसन से लगभग चार अगुल ऊपर अधर हो गया है····
हमारे तन के साथ हमारा मन भी एकदम हल्का होता जा रहा है····
इन क्षणो का हमारे तन और मन का हल्कापन अनुपम है····
भाव करें···
हमारा शरीर ऊपर उठता जा रहा है···
वह निरन्तर ऊर्ध्वगमन कर रहा है····
अहा ! कितने उल्लसित-आनन्द भरे क्षण हैं ये····
हम जैसे आकाश मे बद्ध पर्यकासन ही तैरते जा रहे है····
ऊपर उडते जा रहे है···
हमारा यह ऊर्ध्वगमन अत्यन्त आह्लादक, अतीव प्रमोदजनक है····
हम विशाल आकाश मे ऊपर उठते ही जा रहे है, हम बहुत ऊंचाइयों पर पहुंच रहे हैं····
चूंकि हमारा मन भी एकदम हल्का हो गया है, अतः

भावात्मक दृष्टि से भी इस समय हमारी चेतना बहुत
ऊंचाइयो का स्पर्श कर रही है
द्रव्य और भाव अर्थात् तन और मन से हम ऊपर उठते जा रहे हैं....
अनुभव करें.. अपनी ऊपर उड़ती हुई स्थिति का अनुभव करें....
हम आकाश मे बहुत ऊचे उठ गये हैं...
हम ऐसे वायु-मण्डल में पहुंच गए जहा चारो ओर सुगन्ध
ही सुगन्ध फैल रही है
हम आत्मिक आनन्द से आप्यायित होते जा रहे हैं...
सहसा हम अधर आकाश मे स्थिर हो गए है ·
हमारी अन्तर् दृष्टि खुल गई है और हमें दूर-सुदूर तक
दिखाई दे रहा है..
सहसा हमारी दृष्टि एक अलौकिक प्रभा-सम्पन्न दिव्य
पुरुष पर पडती है..
एक आकाशचारी पुरुष दूर-सुदूर से हमारी ओर चला आ रहा है....
उसका सम्पूर्ण शरीर स्वर्ण-कान्ति जैसा चमक रहा है....
चेहरे पर अनन्त सूर्यों से भी अधिक तेज दमक रहा है....
उस तेजस्विता के सामने हमारी दृष्टि चौंधिया रही है..
हमारी दृष्टि में चकाचौध उत्पन्न हो रही है....
अहा ! कितनी अनुपम तेजस्विता ! कितना अलौकिक
रूप ! कैसी दिव्य छटा ! कितना नयनाभिराम सौन्दर्य ! ..
मन मुग्ध हुआ जा रहा है....
चेतना आनन्द-विभोर हुए जा रही है....
ओहो ! वह लोकोत्तर आकाश-पुरुष हमारे निकट आता जा रहा है ·
उसकी तेजस्विता हमारे लिये असह्य होती जा रही है....
हम उस तेजस्विता मे आकण्ठ डूबते जा रहे हैं ..
अरे ! वह लोकोत्तर महापुरुष और कोई नही परम
करुणामूर्ति परम आराध्य हमारे गुरुदेव ही हैं...
आज वे अपने मूल रूप मे आ रहे हैं...
हमारी संकुचित दृष्टि ने आज तक उनके आन्तरिक रूप
को, उनकी अपरम्पार तेजस्विता को देखा नही
अपने ही परम गुरु के उस दिव्य रूप को प्रतिपल समीप
रहते हुए भी हम देख नही पाये....

आज यह रूप एक अलग ही आभा लिये हमारी अन्तर्दृष्टि
के समक्ष उभर रहा है…
अहा ! वे महापुरुष तो हमारे निकट ही आते जा रहे हैं…
कितनी करुणा टपक रही है—उनकी दृष्टि से…
कितनी सौम्यता व्याप्त हो रही है, उनके चेहरे पर…
सूर्यों का प्रकाश आज इस दिव्य काति के समक्ष परास्त हो गया है…
चन्द्रमा की सौम्यता आज इस दिव्य प्रभास्वर, शान्त-
प्रशान्त छटा के सामने हतप्रभ हो गई है…
ओ हो ! वे महापुरुष तो सहसा हमारे समीप आकर खड़े हो गए हैं…
उनकी अगुलिया एवं हथेली के मध्य भाग से तेज किरणें निकल
रही है, जो सीधी हमारी चेतना तक पहुच रही हैं…
हमारी रही सही कलुषता भी उन किरणो की ऊष्मा से
भस्म होती जा रही है·
हमारी चेतना मे अद्भुत विशुद्धि एवं अप्रतिम प्रकाश
फैलता जा रहा है…
उस महापुरुष—परम गुरु की दिव्य एव सौम्य दृष्टि से
मानो अमृत का निर्झर ही बह रहा है…
वह अमिय धारा हमारी आत्मा को आनन्द से आप्यायित कर रही है…
अहो ! कितनी करुणा बरस रही है हमारे ऊपर…
हम उस करुणा की अमृतधारा में नहाकर सराबोर हो रहे हैं…
भाव करें…
उस दिव्य पुरुष ने अपनी भुजाए हमारी ओर बढा दी हैं…
अरे ! वे हमे अपनी भुजाओ में भर लेना चाहते हैं…
वे हमे अपने अनुरूप ही बना देना चाहते हैं…
नही, वे हमे अपने मे ही मिला देना चाहते हैं…
एक अस्तित्व में ही समा लेना चाहते हैं…
उनकी भुजाएं आगे बढ़ रही हैं…
वे हमारे अत्यन्त निकट आ गए हैं…
और…और उन्होने हमे अपनी भुजाओ मे भर लिया…
आत्मसात् कर लिया…
अहा ! कितने आनन्द के क्षण हैं ये…
परमात्म-मिलन के ये अद्भुत क्षण अनुपमेय हैं…

हमारी सम्पूर्ण चेतना में एक अलौकिक भाव भर गया है....
हमारे सम्पूर्ण शरीर में एक सनसनाहट फैल रही है....
परमात्म-भाव का दिव्य-प्रकाश हमारी चेतना में भर गया है....
हमारी नस-नस में रक्त नहीं, अमृत-अमृत दौड़ रहा है....
हमारे रोग के कीटाणु न जाने कहां विलीन हो गए हैं....
अरे ! जहां अमृत धारा ही बहती हो वहां रोगाणु रह
ही कैसे सकते हैं....
और परमात्म-भाव-सद् गुरुदेव की अप्रतिम कृपा के
पश्चात अमृत के अलावा और मिल ही क्या सकता है....
अहो ! हमारी चेतना अद्भुत आनन्द में, अनुपम शान्ति
मे सराबोर हो रही है...
सद्गुरुदेव की साक्षात् कृपा दृष्टि तले हमारे तन-मन
सभी कुछ पवित्र हो गए हैं....
तन के रोग और मन के विकार नष्ट हो गए हैं....
अनुपम कृपा बरस रही है, हमारे ऊपर परमात्म-स्वरूप
सद्गुरु देव की ...
आज हमारी वाणी मूक हो गई है....
सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो रहा है....
हम सद्गुरु देव की कृपा को शब्दों में व्यक्त करना
चाहते हैं; किन्तु हमे वैसे शब्द ही नही मिल रहे हैं....
हमारी वाणी ही नही, सोचने की शक्ति भी मूक हो गई है....
इन क्षणों हम अपने आप मे लीन हो गए हैं....
स्वयं में खो गए हैं....
हमारी यह आत्मलीनता अतीव गहरी है....
आह्लादक है....
भाव करें...
हम उस दिव्य आकाश पुरुष सद्गुरु देव की भुजाओं मे
समाते जा रहे हैं....
सहसा उस स्वर्ण-पुरुष के नेत्रो से निकलने वाली किरणें
घनीभूत होकर एक धार के रूप मे बन गई हैं और हमारे प्रवेश केन्द्र-
आज्ञा चक्र के स्थान से हमारे भीतर प्रवेश कर रही है....
हमारे शरीर मे अलौकिक परमात्म-शक्ति का प्रवेश हो गया है

हमारे मस्तिष्क में एक अलग ही प्रकाश की दिव्यता
फैलती जा रही है....
मनोभिराम प्रकाश सम्पूर्ण मस्तिष्क में व्याप्त हो रहा है....
उन दिव्य किरणों से हमारा सम्पूर्ण शरीर आलोकित
होता जा रहा है....
अभी हम दुनियां के समस्त विचारों से परे हो गए हैं....
केवल प्रकाशमय हो गए हैं....
बाहर का भाव मिटा कि अन्धकार विलीन हुआ....
बाहर का भाव मिटा कि अन्तर् का, परमात्म-भाव का
प्रकाश प्रज्ज्वलित हुआ....
अहा ! सद्गुरु के रूप में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन,
अनन्त आनन्दमय परमात्मा हमारे अन्दर बैठ गए हैं....
अभी हमारी चेतना को वह आनन्द प्राप्त हो रहा है
कि अब इस स्थिति से बाहर आने का भाव ही नही बनता है....
परमात्मा की इस अप्रतिम सन्निधि को छोडने को जी
ही नहीं करता है....
भाव हो रहा है कि परमात्मा के इस दिव्य रूप को
देखते ही चले जाएं, देखते ही चले जाएं...
हम अभी अनन्त-अपार आनन्द के सागर मे तैर रहे हैं...
भाव करें....
दिव्य द्रष्टा परम गुरु ने हमारे प्रवेश द्वार किंवा दर्शन
केन्द्र के द्वारा हमारे भीतर शक्तिपात कर दिया
और इस शक्तिपात के साथ ही वह दिव्य पुरुष, वह
लोकोत्तर व्यक्तित्व हमे अपने भुजपाश से मुक्त कर देता है
अरे ! अरे !! यह क्या ? वह परम पुरुष हमसे अलग
होते जा रहे हैं....
वे हमसे दूर-दूर-सुदूर चले जा रहे हैं....
हम असहाय सी स्थिति मे उन्हें जाते हुए अपलक देख रहे हैं....
वह दिव्य छटा हमारी आखो से ओझल हो रही है ..
वह मोहिनी मूरत हमारी दृष्टि से दूर चली गई
अभी हमारे कानो में उस दिव्य पुरुष की एक ध्वनि पड़ रही है..
गहन गम्भीर ध्वनि "अप्पाणं सरणं गच्छ, अप्पाण सरणं

गच्छ·······अप्पाणं सरणं गच्छ और···वह महान्
दिव्य-ज्योति हमसे दूर-सुदूर चली गई···
वह परम गुरु हमें पुनः अधर आकाश मे एकाकी असहाय
छोड कर चले गये····
नही—नही अब हम असहाय कहां रहे···
उस महान परोपकारी पुरुष ने हमारे भीतर दिव्य
शक्तिपात जो कर दिया है····
हमारी नसों मे अब रक्त नही अमृत बह रहा है····
वहां प्रचण्ड शक्ति का धारक विद्युत प्रवाह बह रहा है····
अब हम अन्य किसी की नही, अपनी शरण मे लौट रहे हैं····
हम अपनी आत्मा की शरण में जा रहे हैं····
आत्म-शरण के इस अहोभाव से भरे हुए ही हम
धीरे-धीरे नीचे उतर रहे हैं·
बहुत धीरे-धीरे आकाश में तैरते से हम नीचे अपने मूल
स्थान पर पहुंच रहे हैं····
अब हम एक अनिर्वचनीय आनन्द भरे हुए अपने मूल
स्थान शिलापट्ट पर आ गए है····
आज की ध्यान साधना का यह आनन्द शब्दातीत है
वर्णनातीत है—अलौकिक है—अनुपम है····
आज की हमारी ध्यान साधना परमोच्च श्रेणी की ध्यान साधना थी···
आज हम देहातीत अवस्था मे पहुंच गए थे··
आज हम परमात्म मिलन के द्वार पर पहुंच गये थे····
अहा ! आज हमारी चेतना कितने आनन्द मे डूब गई थी·
हमारा यह आनन्द सदा-सदा बना रहे···
हमारी यह शान्ति शाश्वतता मे रूपान्तरित हो जाए····
इसी भावोन्मेषपूर्ण अहोभाव के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं
अपने आपको प्रसन्नचित्त, प्रफुल्लित वदन एव आनन्द
ऊर्मित अनुभव करें·
अपने सम्पूर्ण परिवेश को हलका अनुभव करें····
आत्मलीनता की गहराई में डुबकी लगाते रहे····



२६ समीक्षण की एक प्रक्रिया–गुणस्थान आरोहण

ध्यान मुद्रा बनालें····
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को अनन्य श्रद्धापूर्ण संकल्प के साथ दोहराएं ·)
हमारा शरीर बहुत अधिक हल्का हो गया है····
हमारा मन भी एकदम हल्का होता जा रहा है····
किन्तु मन मे रहा हुआ थोड़ा भी मैल उसे बार-बार भारी कर देता है····
हम साधना के द्वारा मन को हल्का करते हैं, किन्तु २३ घंटो की प्रवृत्तियां पुनः-पुन. उसे भारी बोझिल बना देती हैं····
जैसे कोई व्यक्ति कमरे के एक दरवाजे से कचरा बाहर निकालता है और अन्य पाच खिडकियो से हवा के साथ पुनः कचरा कमरे में आता रहता है
यदि खिडकियां खुली है तो २३ घंटा ४० मिनिट कचरा आता रहता है
केवल बीस मिनट उसकी सफाई के लिये दिये जाते हैं····
वे बीस मिनट भी पर्याप्त हो सकते हैं यदि नवीन कचरे के आने के द्वारो को बन्द कर दिया जाय····
आज हम उन द्वारो का समीक्षण करेंगे····
समीक्षण ही नही, आत्मा में कर्म मैल के आने के द्वारो को बन्द करते हुए क्रमशः ऊर्ध्वारोहण करेंगे ··
जिसे आगमिक भाषा मे गुणस्थान—आरोहण कहा जाता हैं····
गुणस्थान आरोहण का अर्थ है आत्मा का क्रमिक रूप से विकास की ओर गतिशील होना··
निचली कक्षाओ से ऊपर उठते हुए ऊपर की कक्षाओ मे प्रवेश करते जाना····

गुणस्थान आरोहण के पूर्व हम आत्मा की अनादि-कालीन
मूल स्थिति का समीक्षण करेंगे....
भाव करें...
इस समय हम अपनी ही आत्मा को अज्ञान अन्धकार के चरम
छोर परम मिथ्यात्व के निबिड़तम स्थान निगोद मे देख रहे हैं....
निगोद की इस अवस्था मे हम इतने सूक्ष्म शरीर मे हैं ।
जो अगुल के असख्यातवें भाग जितना बड़ा है....
और उस छोटे-से शरीर मे हम अनन्त आत्माएं एक साथ
एक दूसरे-से घुली-मिली हैं..
हमारे श्वास-प्रश्वास, आहारादि की प्रक्रिया एक ही रूप
मे चल रही है...
हमारी आत्मा पर इस समय सघनतम अज्ञान का आवरण छा रहा है....
ओ हो !! कितने सूक्ष्म रूप मे और कितने कष्ट मे हैं हम अभी....
भाव करें....
जैसे किसी एक छोटे-से कमरे मे, जिसमें पाच व्यक्तियो के
बैठने का स्थान हो वहा, सौ व्यक्तियो को ठूंस दिया गया हो....
कितनी पीड़ा होगी उस कमरे मे उन सौ व्यक्तियो को....
अरे ! उससे अनन्त गुणाधिक पीड़ा इस निगोद मे हम
अनुभव कर रहे हैं....
यहां हमे इस सूक्ष्म शरीर को पीडा ही नही पुन.-पुनः
जन्म-मरण की पीड़ा भी भोगनी पड रही है....
नाड़ी के ठपके मे अर्थात् एक सैकण्ड में अनेक बार जन्म-
मरण हो रहा है....
जन्म-मरण की यह वेदना कितनी दुस्सह है...
अरे ! इस जन्म-मरण की वेदना से भी भयंकर दु.ख है,
यहां अज्ञानता का...
इस समय आत्मा का चेतनाश बहुत कम खुला है....
ज्ञानावरणीय और मिथ्यात्व का सघन आवरण इस पर छा रहा है...
यही दशा इस जीव की आदि अवस्था अथवा सबसे निम्न दशा है...
भाव करें....
अपनी आत्मा की इस निम्नतम दशा का हम साक्षात्-
प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं ..

ये दुःखद क्षण हमे प्रत्यक्ष लग रहे हैं....
वेदना की इतनी सघनता की 'आह' और 'उफ' करने
तक का अवकाश नही है....
हमारी आत्मा की यह सबसे निम्नतम दशा है, जहा हमे
ज्ञान की एक छोटी-सी किरण भी दिखाई नही देती.....
किन्तु घुणाक्षर न्याय से अथवा गिरि-नदी पाषाण के
न्याय से हमारी चेतना मे सहसा परिवर्तन होने लगा है....
भाव करें....
अब हमारी अज्ञान-आवृत चेतना मे कुछ प्रकाश फैलने लगा है...
यद्यपि यह प्रकाश इतना मन्द-अस्पष्ट है कि इसमे आत्म-
बोध नही हो पा रहा है....
किन्तु इसे हम आगमिक भाषा मे कृष्ण पक्ष के शुक्ल पक्ष
में आना कह सकते हैं....
उस निगोद अवस्था से निकल कर अब हमारी आत्मा
प्रत्येक वनस्पति मे आ गई है...
भाव करें....
अब हमारी चेतना आम की गुठली मे जीव के रूप मे बैठी है....
अभी हम सुखी नही बन गये हैं, फिर भी एक शरीर में
अनन्त जीव वाली दशा से तो बहुत ऊपर उठ गये हैं....
अभी हम एक शरीर मे, एक ही जीव के रूप मे हैं....
फिर भी हमारी यह अवस्था भी अत्यन्त सुषुप्त अवस्था है....
शास्त्रीय दृष्टि से इसे एकेन्द्रिय वर्ग कहा जाता है....
अनुभव करें कि हमारी चेतना मे एक और प्रकाश किरण
फूट रही है...
अब हम उस एकेन्द्रिय की निम्नतम श्रेणी से कुछ ऊपर
उठकर द्वीन्द्रिय वर्ग में आ गये हैं ..
भाव करें कि इस समय हम एक कीड़े के रूप में रेंग रहे हैं....
एकदम गन्दगी मे लिप्त हमारा तन अत्यन्त मुलायम
होते हुए भी अशोभनीय बना हुआ है.
कल्पना करें एक बड़ा कीडा हमारे पीछे लगा है अथवा
पांच-दस चिड़ियां हमारे पीछे लग गई हैं और हम छटपटा
कर अपने प्राण बचाने को भाग जाना चाहते हैं...

किन्तु....परन्तु....कहा है वह स्वतन्त्रता और शक्ति, कि
हम अपने से बलशाली प्राणियो से बचकर निकल जायें....
लो,...हम मर गए हैं कीडे के रूप से हमारा उद्धार हो
गया है और अब हम चीटी के रूप मे उत्पन्न हो गये हैं...
देखें अपने आपको एक चीटी के रूप में देखें....
इन क्षणो हम तीन इन्द्रिय वाले एक प्राणी हैं चीटी के
रूप मे हम अपना खाद्य इकट्ठा करने को दौड़ रहे हैं
हम सडक पार कर रहे हैं और किसी व्यक्ति का पैर हम
पर लग जाता है....
हम तडप रहे हैं...
अनुभव करें....
हम छटपटा रहे हैं....इधर से उधर घुड़क रहे हैं....
और हमारे प्राण निकल गये....
हम सहज विकास करते जा रहे हैं
बिना किसी पुण्य के ..पहाड से गिरने वाले पत्थर की
तरह जो घुडकता-घुड़कता अपने आप गोल मटोल हो जाता है..
बिना किसी कल्पना के वह शालिगराम बन जाता है..
उसी प्रकार हम भी विकास की ओर बढते जा रहे हैं....
तीन इन्द्रियो से निकल कर हम अब अपने आपको एक
मधुमक्खी के रूप में देख रहे हैं
हमारी यह आत्मा पुष्पो पर मडरा रही है....
पुष्पो का पराग-रस एकत्रित करने को इधर-उधर दौड़ रही है....
हमारा तन एकदम हल्का-हल्का है और हम निर्बाध
गगन की सैर कर रहे हैं
हम आकाश में उड़ रहे है एक मधुमक्खी के रूप मे....
हम रस-संचय करके ले आये हैं
अपने छत्ते में रस एकत्रित कर रहे हैं
अब क्षुद्र योनि मे भी हम प्रसन्न हैं...
अपने कार्य में व्यस्त हैं..
किन्तु सहसा एक मधु एकत्रित करने वाला शिकारी आकर हमारे छत्ते
के आसपास आग लगाकर धुआ ही धुंआ कर देता है..
हम धुंए के कारण अन्धी हो जाती हैं....

हमारा पूरा-हजारों मक्खियों का परिवार इधर-उधर
अस्त-व्यस्त होकर भागने लगता है....
हममे से बहुत-सी अचेत हो जाती हैं ..
बहुत-सी तत्काल मर जाती है ..
उन मृत्यून्मुखी मक्खियो मे हम भी तडप-तड़प कर अपने
प्राण दे देते हैं....
किन्तु मरते समय हमारे भीतर वैर का कलुषित भाव
निर्मित हो जाता है....
हम उस पारधी पर अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते हैं और मर कर जहरीले बिच्छू
के रूप मे उसी चार इन्द्रिय वर्ग मे उत्पन्न हो जाते हैं ..
हमारा वैर भाव उस शत्रु को ढूंढने लगता है · हमारा
कषाय तीव्रतम होता जा रहा है....
हम अपने पूर्व जन्म के शत्रु को नष्ट करें उसके पूर्व ही
उसी शिकारी-पारधी के द्वारा हम मारे जाते हैं ...
हमारा द्वेष तीव्रता से बढ़ जाता है ·
हम उस चतुरिन्द्रिय योनि से निकलकर पचेन्द्रिय योनि
में एक सर्प के रूप में जन्म ले लेते हैं ...
भाव करें....
वास्तव मे हम इन क्षणो एक जहरीले नाग के रूप में हैं....
हम कुछ बडे होकर अपने घातक-शत्रु को खोज रहे हैं....
वह हमारा हत्यारा सामने चला जा रहा है और हम
क्रोधारुण नेत्रो से उसकी ओर देख रहे हैं....
हमारा क्रोध प्रचण्ड हो जाता है....
हम तेज फूत्कार करते हुए उसके पीछे दौड़ते हैं और
पीछे से उसे डंक मार देते हैं....
वह पीछे मुडकर हाथ में पकड़े हुए, किसी शस्त्र का हम
पर बड़े जोरो का प्रहार करता है ...
हम तड़फडा कर अत्यन्त क्रूर परिणामों के साथ मरकर
एक सिंहनी के गर्भ मे उत्पन्न हो जाते हैं ...
कल्पना करें....
हम अभी एक सिंहनी के गर्भ मे सकुचित अंग पड़े हुए है....
गर्भ की भयंकर वेदना का हमे प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है....
हम अभी एक काल कोठरी मे पड़े हुए है....
हमें अपनी कोई सुध-बुध नही है ...

और अब हम गर्भ से बाहर निकलकर एक सिंह शावक-
शेर के छोटे से बच्चे के रूप में क्रीडा कर रहे हैं....
हम विकसित होकर एक विकराल सिंह के रूप मे वन-
भ्रमण कर रहे हैं....
अपने आहार के लिये वन में भ्रमण करते हुए हमें एक
हरिणी अपने बच्चे के साथ भ्रमण करती हुई दिखाई देती है...
और हम उसके पीछे दौडते हैं....
क्रूरता का भाव हमारी नस-नस में समाया हुआ है...
सहसा एक शिकारी पीछे से गोली चलाता है और हम
एक भयंकर गर्जना के साथ धराशायी हो जाते हैं
वास्तव मे हम अपने आपको एक तडफड़ाते सिंह के रूप
में अनुभव करें..
यह क्रम एक दृष्टि से तो चेतना का विकास क्रम है;
किन्तु क्रूरता की दृष्टि से तो पाप की प्रचुरता का क्रम है....
इस रूप मे यह आत्मा एकेन्द्रिय-निगोद से निकलकर
विकास क्रम की यात्रा करते हुए पचेन्द्रिय तक पहुंच गई है...
इस विकास के साथ ही हमारी क्रूरता भी बढ़ती गई है...
हम एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जैसी उच्च जाति मे पहुच कर
भी शेर जैसी क्रूर योनि में आ गये हैं
भाव करें....
हम इस समय एक शक्तिशाली सिंह होकर भी बंदूक की
गोली के शिकार होकर भूमि पर पड़े छटपटा रहे हैं -
चन्द क्षणो छटपटा कर हम मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं....
और वहा से मरकर नरक में चले जाते हैं...
वह हमारा शत्रु शिकारी भी मरकर नरक में चला आता है...
एक दूसरे के वैर का बदला हम नरक भूमि मे पूरा कर रहे हैं....
दारुण दुःखो के बीच हम एक दूसरे को निरीह दृष्टि से देख रहे हैं..
हमारे विचारो मे कोमलता का संचार हो रहा है...
एक दूसरे के प्रति करुणा के भाव फूट रहे है....
विचारो में सरलता आ रही है....
हम नरक की अनन्त वेदना को भोग कर अकाम निर्जरा से कर्म क्षीण
करते हुए वहा से निकल कर मनुष्य योनि मे आ गये हैं...
इसी प्रकार के विकास क्रम मे हम सुकुल आर्य क्षेत्र मे पहुंच जाते हैं..
भाव करें...

अब हम एक उच्चकुलीन मनुष्य के रूप में उत्पन्न हो गए हैं....
संयोगतः हमें वीतराग भगवान् की देशना सुनने का
सुअवसर प्राप्त होता है और हमारी आत्मा धर्म-श्रवण
कर सम्यक्त्व-शुद्ध श्रद्धा की ओर उन्मुख होती है....
हमें आत्मबोध प्राप्त होता है; किन्तु कुछ शंका कुशंकाएं
बनी रहती हैं ..
परिणामतः हम विचारों की डांवाडोल स्थिति मे पहुंच जाते हैं....
इसी अवस्था को आगमिक भाषा मे तृतीय मिश्र गुणस्थान कहते हैं....
यह आत्मा के उत्थान की ओर गतिशीलता का संसूचन है
कुछ समय—अर्थात् अन्तर्मुहूर्त तक ही विचारो की यह
दोलायमान स्थिति रहती है....
धीरे-धीरे हमारे विचारो मे विशुद्धता का प्रवेश हो रहा है....
हमारी अनादिकालीन राग-द्वेष की ग्रन्थि ढीली हो रही है ..
हमारे अध्यवसायो मे विशुद्धि का प्रकर्ष बढता जा रहा है ..
अध्यवसायो की इस विशुद्धि स्थिति को शास्त्रीय भाषा
मे यथा प्रवृत्तिकरण कहते हैं....
भाव करें ·
हमारे भाव जगत् मे एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहा है....
हमारे अध्यवसायो मे आत्म-दर्शन की भूमिका का निर्माण हो रहा है....
वीतराग-वाणी पर चिन्तन करते-करते हमारे विचार
अभूतपूर्व रूप से विशुद्ध हो रहे हैं ..
ऐसी विशुद्धि जो पूर्व मे कभी नही हुई
कल्पना करें....
अभी हमारी चेतना वीतराग उपदेश के गहन चिन्तन में खोई हुई है....
वह एक-एक शब्द की गहरी चिन्तना मे डूबी हुई है....
भाव विशुद्धि की यह प्रक्रिया अपूर्व करण कहलाती है ·
आत्मा में एकदम विशुद्धि बढ़ती जा रही है....
कर्मों के, मुख्य रूप से मोहनीय कर्म के वृन्द क्षीण होते जा रहे हैं....
मिथ्यात्व मोह के दलिक तीव्रता से क्षीण हो रहे हैं और
आत्मा मे एक अलौकिक अभूतपूर्व प्रकाश फैलता जा रहा है....
अब हमारी आत्मा इस स्थिति पर पहुंच गई है कि स्व-
दर्शन किये बिना नही रहेगी और इस भाव-प्रकर्ष को
अनिवृत्तिकरण कहा जाता है....

भाव करें....तीव्रतम अहोभाव में बहें....
अभी हमारी आत्मा में दिव्य प्रकाश फूट रहा है....
यह देखें.. दर्शन मोहनीय कर्म का प्रबलतम क्षयोपशम
हो गया है और सम्यक्‌दर्शन का अनुपम प्रकाश हमारी
चेतना में फैल गया है...
हम इन क्षणो मे आत्मदर्शन का अपूर्व आनन्द ले रहे हैं...
हमें स्वयं का बोध-स्वदर्शन हो गया है....
हमारे अनादिकालीन मिथ्यात्व का अवसान हो चुका है...
हमारी चेतना में वीतराग वचनों पर अनन्य आस्था का
जागरण हो गया है....
सुदेव, सुगुरु और सुधर्म के प्रति हमारी प्रीति गहरी होती जा रही है ..
जिन वचनो पर श्रद्धा का भाव अटूट एवं गहरा होता जा रहा है...
हम अब विकास क्रम की चौथी कक्षा और अध्यात्म की
प्रथम कक्षा में प्रवेश कर रहे हैं ..
इसे ही अविरत सम्यग्दृष्टि, चतुर्थ गुणस्थान कहते हैं..
यही समस्त साधना की पूर्व भूमिका है....
विशुद्ध श्रद्धा भाव ही साधना के प्रति अभिरुचि जागृत करता है...
हम अब आत्मा के हिताहित को समझने लगे है....
हेय-ज्ञेय और उपादेय का बोध हमे अच्छी तरह हो गया है....
हमे जीवादि तत्त्वो का सम्यग्ज्ञान हो गया है....
हमारा अनादि कालीन अज्ञान, मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान
के रूप में रूपान्तरित हो गया है...
हमारे अध्यवसायो मे प्रखर विशुद्धि होती जा रही है..
संकल्प करें और यह प्रत्यक्षत: अनुभव करें कि अपनी
चेतना मे हेय को छोड़ने के और उपादेय को गहण करने
के भाव बढते जा रहे हैं .
हमारे चित्त में पाप प्रवृत्तियो से बचने के संकल्प उत्पन्न
होते जा रहे हैं....
हमारी चेतना अब धर्म की ओर, आत्मशुद्धि की ओर
उन्मुख होती जा रही है...
अब आरम्भ-समारम्भ अर्थात् हिंसादि असत् प्रवृत्तियो
के प्रति उदासीनता बढ़ती जा रही है...

अब हम देशव्रती अर्थात् पाप प्रवृत्तियो के आंशिक त्यागी बन रहे है....
हम अणुव्रतो के स्वीकार के साथ सामायिक, उपवास
पौषधादि धर्म क्रियाओं में रुचिवान् बन रहे है....
यही नही, हमारा चित्त अब आत्म-धर्म की उपासना में
ही आनन्द मान रहा है...
सासारिक राग-द्वेषात्मक प्रवृत्तियो में मन एकदम उदास
सा रहने लगा है....
धर्म क्रियाओ के प्रति रुचि और रस बढता जा रहा है....
यही अवस्था देशव्रती श्रावक की अवस्था है जो विकास
क्रम की पांचवी कक्षा है, पचम गुणस्थान है...
इस अवस्था में वीतराग भगवन्तो पर गहरी भक्ति उमड़ती है....
निर्ग्रन्थ गुरुओं के प्रति बहुमान का भाव जागृत होता है और
तीर्थंकरो द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों पर अचल आस्था बनती है...
भाव करें....
वास्तव में हमारे भीतर एक गहरी आस्था का जागरण हो रहा है....
हम आत्म-रमणता की साधना में बहुत आनन्द का
अनुभव कर रहे हैं....
हठात् हमारी चेतना मे एक उच्चतम भाव का जागरण हो गया है....
अब हम देश-त्यागी जीवन से ही सन्तुष्ट न होकर सर्व-
त्यागी भाव की ओर बढ रहे हैं ..
यही नहीं, हमारा मन आत्म-स्वरूप की रमणता मे
अप्रमत्त भाव से बढ़ रहा है...
इस समय हम जीवन के एक-एक क्षण के मूल्य को समझ रहे हैं....
हमारा सम्पूर्ण ध्यान केवल आत्म-स्वरूप पर ही लगा हुआ है....
हम अभी सर्वत्यागी अप्रमत्त साधु बन गये हैं...
समस्त आरम्भ परिग्रह की गाठो से सर्वथा मुक्त निर्ग्रन्थ
श्रमण भाव मे हमारी चेतना रममाण हो रही है....
अभी—इन क्षणों मद-विषय, कषाय, निद्रा और विकथा
रूप कोई भी प्रमाद हमारी आत्मा मे नही है .
हम अभी आत्मा के प्रति सतत जागृत हैं....
किन्तु इस अप्रमत्त भाव मे धीरे-धीरे कुछ शिथिलता आ रही है....
अभी हमारी आत्मा अप्रमत्त भाव की इस सातवी श्रेणी में...

अप्रमत्त संयत गुणस्थान मे थी....
अब वह पुनः नीचे की ओर उतर रही है....
अभी हमारी आत्मा मे कुछ-कुछ प्रमाद का प्रवेश हो रहा है....
अब हम प्रमत्त संयत रूप छठे गुणस्थान मे आ गये हैं....
महाव्रतों की आराधना एव ज्ञान-दर्शन-चारित्र मे
सजगतापूर्वक रमणता बढ रही है....
कभी-कभी कुछ स्खलना हो जाने पर भी साधुचर्या की
आराधना में हमारी रुचि बनी हुई है....
हमारी आत्मा महाव्रतो एव समिति गुप्ति की आराधना
मे आनन्द का अनुभव कर रही है...
तीव्रतम भाव करें कि हम तीर्थंकर भगवन्त के चरणो मे ही
दीक्षित हुए है....
प्रभु के निर्देशानुसार हो हमारी साधना चल रही है ·
कभी-कभी हमारी आत्मा मे प्रमाद का झोका आता है
और हम गिरकर छठे गुणस्थान मे पहुंच जाते हैं....
किन्तु वीतराग देव की वाणी हमारी भाव विशुद्धि को प्रकर्ष पर
पहुंचा देती है और पुनः हम सातवें गुणस्थान पर पहुंच जाते हैं·
भाव करें....
हमारे विचारो की प्रकर्षता बढती जा रही है....
वीतराग वाणी हमारे अन्तरंग मे गहरी पैठती जा रही है...
हमारी आत्म-जागरण की साधना बहुत गहरी होती जा रही है....
हम अब दुनिया के समस्त पदार्थो-सम्बन्धो से सर्वथा
अनासक्त-अलिप्त हो गए हैं
अब हमारे भीतर आत्म-रमणता का रस ही बच गया है··
भाव करे...
हमारे अध्यवसाय उच्च से उच्च होते जा रहे हैं...
अरिहन्त प्रभु की देशना हमारी अन्तरग गहराई को छू गई है....
हम बहुत गहरे मे आत्मस्थ होते जा रहे हैं....
सातवें गुणस्थान के उच्चतम परिणाम मे ही सहसा
हमारी मृत्यु हो जाती है....
हम उच्चकोटि के देवलोक मे पहुंच जाते हैं...
अनुभव करें....

अभी हम देवलोक के मानसिक सुखों का उपभोग कर रहे हैं....
हम ऐसे देवलोक में पहुंच गये हैं, जहां देवियो का कोई
स्थान नहीं है, केवल भाव रमणता ही रहती है....
उस उच्च देवलोक के अपार भौतिक सुख-भोग मे भी
हमारी आस्था-वीतराग वाणी पर श्रद्धा अडोल रही है....
अध्यात्म साधना के आधार सम्यग्दर्शन रूप चतुर्थ गुण
स्थान पर तो हम यथावत् बने रहे हैं....
हां, चारित्र आराधना रूप पंचम आदि गुणस्थानों से तो
अवश्य नीचे उतर गये हैं...
हमे इस बात का अत्यन्त आनन्द आ रहा है कि भौतिक
सुखो की प्रचुरता मे भी हम आत्मभाव अथवा स्वबोध
के केन्द्र से बराबर जुड़े रहे है....
भाव करें....
इन क्षणो हम चारो ओर से भौतिक, दैविक सुखो की
प्रचुरता से घिरे हुए हैं....
हमारे चारो ओर अपार भौतिक वैभव बिखरा पड़ा है....
फिर भी हमारा ध्यान तो अपने आत्मिक वैभव पर ही टिका हुआ है....
अवधिज्ञान की पवित्र ज्योति हमारी चेतना मे जगमग कर रही है....
विराट् से विराट् और सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप धारण कर
लेने की तथा क्षण भर में हजारो मीलो की यात्रा कर लेने की
क्षमता हमारे भीतर समाई हुई है....
किन्तु किसी भी प्रकार के रूप परिवर्तन की उत्सुकता ही
हमारे भीतर नही है ..
न अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर कुछ जान लेने की तमन्ना है....
शक्ति होते हुए भी शक्ति के भोग या उपयोग के भाव
तिरोहित हो गये हैं .
आत्मबोध की जागृति ही सतत बनी हुई है...
अब हम अनागत की एक असत्कल्पना मे प्रवेश कर रहे हैं..
हम यह जानते है कि वर्तमान काल मे श्रेणी—आरोहण
की प्रक्रिया नही हो सकती है....
उपशम श्रेणी या क्षपक श्रेणी के लिये उच्च सघयण की
आवश्यकता होती है...
तथापि हम अपनी ध्यान प्रक्रिया मे भावो की ऊर्जस्विलता

का आह्वान करेंगे और गुण स्थानों की उच्चता में
आरोहण करने का प्रयास करेंगे....
भाव करें
अब हम उस अपार दैविक ऐश्वर्य से अनासक्त रहते हुए ही वहां
से च्युत होकर-मर कर महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न हो गये हैं....
हमे उच्चतम आध्यात्मिक संस्कारों वाले परिवार का
सुयोग प्राप्त हुआ है....
बाल्यकाल मे ही हमारी आध्यात्मिक रुचि बढती जा रही है....
हमे तीर्थंकर भगवन्तो की वाणी श्रवण का योग यौवन
में ही प्राप्त हो गया है....
हमारे भावो की उच्चता-श्रेष्ठता बढती जा रही है....
हम प्रभु चरणो में सम्पूर्णतया समर्पित होकर आत्म-
कल्याण के लिये सन्नद्ध हो गये हैं....
हम विशुद्ध साध्वाचार का सजगतापूर्वक परिपालन कर रहे हैं....
हमारे समस्त प्रमाद-जनित भाव नष्ट हो गये हैं....
अप्रमत्त भाव गहराता जा रहा है....
हमारे अन्तरंग विकार नष्ट हो रहे हैं....
आभ्यन्तर एव बाह्य तपो मे हमारी अन्तरग रुचि बढ़ गई है....
अनुभव करे, प्रत्यक्षतः अनुभव करें कि हम अभी तीर्थंकर प्रभु
के समक्ष ही ध्यान मुद्रा में अडोल अकम्प भाव से बैठे हुए है...
हमारे आर्त्त-रौद्र ध्यान के भाव सर्वथा क्षीण हो गये हैं....
अभी हम धर्मध्यान की उच्च भावनाओ मे रमण कर रहे हैं..
एकत्व-अन्यत्व-अशुचित्व आदि द्वादश भावनाओ के
समीक्षण मे हमारी चेतना लीन हो गई है....
अब हम इन भावनाओ से भी ऊपर आत्मलीनता मे डूबते जा रहे हैं..
भावनाओ की इस उच्चता मे हमारे कर्मों के वृन्द के
वृन्द उड़ रहे हैं -
आत्म विशुद्धि बढती जा रही है...
अध्यवसायो मे समरसता का प्रवेश होता जा रहा है...
हम अब श्रेणी आरोहण की भूमिका पर पहुच गये हैं..
अर्थात् कर्मों को भीतर दबाते जाने के बजाय उन्हे
समूल नष्ट करते हुए ही आगे बढ़ रहे हैं...

भाव करे ''तीव्रतम भाव करे''''
हम प्रत्यक्षत: अध्यवसायो की विशुद्धि का अनुभव कर रहे हैं''
विचारो की उच्चता का इतना चढ़ाव अनन्त-अनन्त
काल के जीवन मे प्रथम बार हो रहा है'''
इसी आधार पर अष्टम गुणस्थान की इस भूमिका को
अपूर्व करण कहा जाता है''''
अध्यवसायों की यह विशुद्धि अपूर्व है, अभूतपूर्व है''''
अभी कर्मों की स्थिति-काल मर्यादा घटती जा रही है''
कर्मों की फलदायक शक्ति भी अभूतपूर्व रूप से क्षीण
होती जा रही है''
इस समय आत्मा मे ऐसी अल्प स्थिति का बन्ध हो रहा
है, जो पूर्व में कभी नही हुआ था
एक तरफ कर्मों की निर्जरा असंख्य गुणित क्रम से बढ़ती
जा रही है, तो दूसरी ओर अशुभ कर्म दलिक शुभ रूप
मे अर्थात् पाप कर्म पुण्य रूप में तीव्रता से बदलते जा रहे हैं''''
अहा !! विचारो की—भावनाओ की इतनी प्रकर्ष प्राप्त
उच्चता अपूर्व है''' ''अद्‌भुत है''''
अलौकिक है''''
अब तो हमारे विचारो की समरसता के साथ समरूपता
और समता गहराती जा रही है''
अब हमारे विचारों मे तारतम्य नहीं साम्य ही बढता जा रहा है''''
विचारों की यह श्रेष्ठता किसी अभूतपूर्व उपलब्धि के
बिना नही रहेगी'''
इसी दृष्टि से इस उच्च स्थिति को नवम अनिवृत्तिकरण
गुणस्थान कहा गया है''''
यहां कर्मों की निर्जरा और भी तीव्रता से होने लगी है''''
हमें अभी अपनी आत्मा एकदम हल्की होती हुई लग रही है''''
कर्मों का भार एकदम हल्का होता जा रहा है'''
जैसे कोई ऊंट नमक के भार को लेकर पानी मे बैठ गया
हो और नमक गल-गल कर पानी मे बह गया हो''''
भार एकदम हल्का हो गया है''

हमारी आत्मा पर से भी कर्मों का भार उतरता जा रहा है''''

निर्जरा का स्तर असंख्य गुणित के क्रम से बढता जा रहा
है और उसी अनुपात मे आत्मविशुद्धि बढ़ती जा रही है....
भाव करें....
अब हमारी मोहकर्म की द्वेषात्मक सभी प्रकृतियां क्षीण हो गई हैं....
मोह कर्म का बन्ध ही रुक गया है
अब तो केवल संज्वलन लोभ का उदय ही शेष बचा है...
इसी दृष्टि से इस दसवें गुण स्थान को सूक्ष्म सम्प्रदाय नाम दिया है....
संसार का हेतु मोह है और वह अत्यल्प रूप मे ही उदय में बचा है....
अध्यवसायों की विशुद्धि इतनी तीव्रता से बढ गई है कि
हमारा मोह एकदम क्षय हो गया है
सूक्ष्म लोभ भी समाप्त हो गया और हम वीतराग भाव
में प्रवेश कर गये...
चूंकि हमने उपशम की प्रक्रिया को नही क्षय की प्रक्रिया
को ही अपनाया था, अतः उपशान्त मोहनीय रूप
ग्यारहवें गुणस्थान को लांघ कर हम सीधे क्षीण मोहनीय
रूप बारहवें गुणस्थान में पहुंच गये हैं....
यह वीतराग अवस्था एकदम अपूर्व आह्लादक है....
अरे ! इसके क्षीण होते ही ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय
और अन्तरायकर्म भी क्षीण होते जा रहे हैं....
आज की हमारी आत्म-समीक्षण की यात्रा बहुत भाव-
विभोर कर देने वाली बन रही है....
आत्मिक आनन्द अभिव्यक्ति से परे हो गया है....
यह क्या ! अरे, तीनों कर्म एक साथ समूल नष्ट हो गए..
हम परम वीतरागी बन गये....
अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन का सूर्य हमारी चेतना में
जगमगा उठा है....
भाव करें...
अभी हम एकदम वीतराग बन गये हैं....
हमारी आत्मा के किसी भी कोने मे किसी प्रकार का
कोई राग-द्वेष नहीं बचा है....
न क्रोध है, न अहकार, न माया है और न लोभ सम्पूर्णतया
राग-द्वेष, मोह, ममता का क्षय हो गया है...

और इसके साथ ही अब हम सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा बन गये हैं....
शुक्ल ध्यान की अपूर्व धारा ने हमें इस स्थिति तक पहुंचा दिया है....
शुक्ल ध्यान अर्थात् केवल आत्मा का ध्यान, जहा समस्त
संकल्प-विकल्प नष्टप्राय हो जाते हैं....
अब तो हम समस्त चराचर के अणु-अणु के द्रष्टा बन गये हैं....
प्रत्येक पदार्थ हमें हस्तामलकवत् सुस्पष्ट दिखाई दे रहा है....
प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक पदार्थ की अन्तर्वाह्य सभी
स्थितियां स्पष्ट परिलक्षित हो रही हैं....
एक-एक तत्त्व के अनन्त-अनन्त पर्याय हमें स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं....
अरे ! अब तो, कुछ देखने, सोचने या उपयोग लगाने
की आवश्यकता ही नही है...
सब कुछ अपने आप ही दिखाई दे रहा है....
जैसे दर्पण के सामने जाते ही उसमे हमारा प्रतिबिम्ब पडता
है उसी प्रकार हमारी आत्मा एक विशाल सर्वतोमुखी दर्पण हो
गई है, जिसमे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रतिबिम्बित हो रहा है
यही नही अनन्त-अनन्त ऐसे ब्रह्माण्ड और भी हो तो उनके प्रतिबिम्बन
की क्षमता भी हमारी इस वीतराग आत्मा मे आ गई है....
अब तो हम अपने मूल सहज रूप मे प्रतिष्ठित हो गये हैं....
विकल्पो-विकारों के सारे पहाड धराशायी हो गये हैं....
हमारी वीतरागता मे ससार का अणु-अणु समाहित हो गया है....
अब हमारे भीतर स्व-रमणता ही बची है :
अब हमारे स्वर सहज प्रस्फुटित होने लगे हैं....
जो किसी राग-द्वेष से प्रेरित नहीं है....
हम जो कुछ बोल रहे हैं, वह केवल यथार्थ ही होता है...
उसमे किसी प्रकार का असत्यांश नही है...
चूंकि अब हमारा बोलना स्वकल्याण के लिये नही केवल जनकल्याण
के लिये ही है, उसमें राग-द्वेष का पुट कथमपि असभव है...
अब हमारी समता चरम कोटि की हो गई है...
अब चेतना के किसी भी अंश मे विषमता की कोई रेखा नहीं है....
भाव करें...
अभी हम वीतरागता के परमानन्द मे रममाण हो रहे हैं....
अब हमारे आयुष्य कर्म के दलिक अल्प बच गये हैं

किन्तु वेदनीय, नाम और गौत्र कर्म के दलिक अधिक बच गये हैं....
उन्हे समस्थितिक बनाने के लिए हम समुद्घात केवली
समुद्घात कर रहे हैं....
भाव करें....
अब हम अपने आत्म-प्रदेशों को सम्पूर्ण लोक में फैला रहे हैं...
आत्म फैलाव के आठ समय की इस प्रक्रिया को केवली समुद्घात
कहते हैं....
इस प्रक्रिया में प्रथम समय में हम अपने आत्म प्रदेशों
को ऊपर-नीचे दण्ड की तरह फैला रहे हैं...
दूसरे समय मे चारों दिशाओ मे कपाट की तरह फैला रहे हैं...
तीसरे समय में चारो अन्तरों को भर रहे हैं ..
और चौथे समय मे मन्थन कर रहे हैं....
वास्तव मे अनुभव करें कि हमारे आत्म प्रदेश सम्पूर्ण लोक
मे व्याप्त हो गए हैं....
लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर हमारी आत्मा का एक-
एक प्रदेश स्थिर हो गया है....
हमारी आत्मा इस चतुर्थ समय मे सम्पूर्ण लोक-व्यापी बन गई है....
पंचम समय मे अन्तरो को समेटने का कार्य हो रहा है...
षष्ठ समय में कपाट समेटे जा रहे हैं....
सप्तम समय में दण्ड समेटा जा रहा है....
और अष्टम समय में पुनः आत्मस्थ हो गये हैं....
समुद्घात की इस प्रक्रिया के द्वारा हमने वेदनीय, नाम और
गौत्र कर्म को आयु कर्म की स्थिति के बराबर कर दिया है....
अब हम आत्मभाव में ही रममाण हो रहे हैं...
अब हमारी चेतना मे शुक्ल ध्यान की धारा गहराती जा रही है....
अभी हम सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती नामक शुक्ल ध्यान मे लीन हैं...
मानसिक, वाचिक, कायिक क्रियाओं के स्पन्दन सूक्ष्म से
सूक्ष्म होते जा रहे हैं...
ध्यान की धारा स्वकेन्द्रित होकर अधिक से अधिक गहरी
होती जा रही है ..
अब हम शुक्ल ध्यान की सर्वोत्तम श्रेणी व्युपरत क्रिया
निवृत्ति रूप चतुर्थ पाये मे रमण कर रहे हैं...

अब हमारे मन, वचन, काया के स्थूल योग रुक गये हैं····
सूक्ष्म योग भी रुकते जा रहे हैं····
अब हमारी चेतना का समस्त योग व्यापार रुक गया है····
अब हम शैलेषीकरण की अडोल-अकम्प अवस्था में पहुंच गये हैं····
पाच लघु अक्षरो के उच्चारण जितने से काल तक हम
इस स्थिति मे रह रहे हैं ···· और हठात्····
हमारे अघाती-शेष बचे चारो कर्म एक साथ क्षय हो गये हैं····
हम देह मुक्त हो गये हैं····
अब हमारी आतमा पूर्णतया शुद्ध-बुद्ध और मुक्त होकर
ऊर्ध्वदिशा में गति कर गई है···
अब हम सिद्धशिला से ऊपर लोक के अग्रभाग पर स्थिर हो गये हैं····
भाव करें····
अब हम केवल सत्-चित् आनन्दघनमय ही रह गये हैं····
अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त चारित्र के अक्षय कोष····
अनुपमेय आत्मानन्द में सदा-सदा के लिये हमारी आत्मा
निमज्जित हो गई है··
हम अपार आनन्द के अथाह सागर में डूब गये हैं····
यह आनन्द जो चेतना का सहज स्वभाव है····
आतमा का निजी गुण है······यही हमारी चरम परिणति है····
अहा ! किस अलौकिक सत्ता मे हम प्रतिष्ठित हो गये हैं····
शांति और आनन्द के चरमान्त का स्पर्श हमारी आतमा
के समस्त प्रदेशो में उद्भूत हो गया है···
सदा-सदा के लिये हम इसी आनन्द में सराबोर बने रहे····
इसी भावपूर्ण तन्मयता के साथ ध्यान से बाहर आ जायें···
अपनी मन.स्थिति मे आ जायें···
भाव करें··
जैसे किसी आनन्दपूर्ण स्वप्न-लोक से हम बाहर आ गये हैं····
हम स्वप्न जनित आनन्द से आप्यायित हो रहे हैं···
ध्यान से बाहर आ जायें···
प्रकृतिस्थ हो जायें



३० | गुरु-पद समीक्षण

ध्यान मुद्रा बनालें
(प्रथम तीन प्रक्रियाओ को अतीव उल्लसित भावो के साथ दोहराएं)
अब तक हमने आत्मा, तन और मन को बहुत हल्का बना लिया है…
हमे प्रतिपल-प्रतिक्षण हल्केपन का गहरा अहसास होने लगा है….
हमारे प्रत्येक दैनिक कर्म मे उस हल्केपन का अनुभव होने लगा है….
अब वह हल्कापन ध्यान मुद्रा काल तक ही सीमित नही
रहा है, अपितु वह सार्वकालिक हो गया है ·
किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि हमे इस हल्केपन की
अनुभूति समीक्षण ध्यान के माध्यम से हुई है ··
और यह ध्यान पद्धति हमें एक महान् ध्यान योगी, समीक्षण
ध्यान साधना पद्धति के उद्गाता महागुरु के द्वारा प्राप्त हुई है….
उस परम गुरु की उपकृति को हम जन्म-जन्मान्तर तक
विस्मृत नही कर सकते हैं….
गुरु चरणो की अनन्त-अनन्त उपकृति हमारे जीवन पर है….
गुरु के उपकारो को शास्त्रकारो ने दुष्प्रतीकार्य ऋण के
रूप में माना है ··
गुरु चरणो मे सर्वस्व समर्पण कर देने पर भी उस ऋण
से मुक्त नही हुआ जा सकता है·
तथापि आज हम अपने देह के प्रत्येक अग पर गुरु चरणो का स्मरण
कर इस तन का अणु-अणु गुरु चरणार्पित करने का भाव करेंगे…
आज की हमारी ध्यान साधना उपकृति के स्मरण एवं
उससे मुक्त होने के प्रयास की साधना होगी··
हमारी इस चेतना पर गुरु चरणो का उपकार अनन्त-
अनन्त है—शब्दातीत-वर्णनातीत है….
गुरु तत्त्व परम आराध्य तत्त्व है…

परमात्व तत्त्व से भी अधिक महिमा गुरु तत्त्व की गायी गई है—
क्योकि गुरु चरणों की स्मृतिमात्र से समस्त भ्रान्तिया
निर्मूल हो जाती हैं....
जीवन एक व्यवस्थित दिशा की ओर गतिशील हो जाता है....
गुरु शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है....
'गु' शब्दस्तु अन्धकार: 'रु' शब्दस्तु निरोधक: ।
अन्धकार निरोधत्वात् 'गुरु' शब्द इत्युच्यते ।।
अर्थात् गुरु हमारे अनन्त-अनन्त काल के अज्ञान अन्धकार
को चीर देते हैं....
गुरु वह दीपक है, जो हमारे अन्तर-बाहर दोनो को
प्रकाशित कर देते हैं....
गुरु वह काम, कुम्भ है, जो सर्व कामनाओ को सन्तृप्ति
प्रदान करते हैं...
गुरु वह चिन्तामणि है, जो सर्व मनोरथो को परिपूरित करते हैं....
गुरु वह कल्पवृक्ष है, जो सर्वकल्पनाओ को साकार रूप
प्रदान करते हैं...
सर्व सौख्य प्रदायी गुरु की महिमा अपरम्पार है....
गुरु शिष्य के लिए सर्वात्म रूप होते हैं...
वह समय-समय पर एक मानव रूप में बाहर और एक
मार्गदर्शक के रूप मे शिष्य के भीतर व्याप्त होते हैं....
गुरु ज्ञान रूप से शिष्य की आत्मा मे निवास करते हैं ·
और इस रूप मे गुरु समस्त चराचर मे संव्याप्त रहते हैं...
वे समस्त चराचर जगत् के कल्याण के लिये साधना-
मार्ग, मुक्ति-मार्ग का प्रवर्तन-प्रकाशन करते हैं...
उन्ही के द्वारा हमें अलौकिक ज्ञानदृष्टि प्राप्त होती है ·
वे परमोपकारी भवतारक-उद्धारक होते हैं··
अत: आज हम अनन्त-अनन्त उपकृति के केन्द्र गुरु चरणों
का ध्यान कर रहे हैं....
किन्तु यह ध्यान किसी बाहर स्थित गुरु का नही अपने
ही अन्तर मे व्याप्त गुरु का....
अर्थात् हम अपने ही अंग-प्रत्यंग मे गुरुत्व की भावना से ध्यान करेंगे....
...गव करें...

हम अभी एकान्त शान्त वातावरण मे चित्त विकारो से
परे होकर उपशान्त भावो मे लीन बैठे हैं…
अभी हमारे बाहर के समस्त विकल्प क्षीण हो रहे हैं….
अभी हमारा ध्यान सर्व देव, सर्वतन्त्र, सर्वमन्त्र, सर्वसन्त-
मय गुरु चरणो पर ही टिका हुआ है ..
हमारा तन अनन्त आराध्य गुरु चरणो के प्रति नमस्कार
की मुद्रा मे स्थित है….
हम इस समय गुरु के सर्वमय-विश्वात्म रूप को देख रहे हैं, उन्हे
भावपूर्ण वन्दन कर रहे हैं, अनन्त-अनन्त प्रणाम कर रहे हैं….
अब हम अपने ही शरीर को गुरुत्व के रूप में आरोपित,
कल्पित या प्रतिष्ठापित कर रहे हैं….
भाव बनाए —जैसे तिल के अणु-अणु मे तेल व्याप्त है,
उसी प्रकार हमारे अणु-अणु में परम गुरुत्व सव्याप्त है…
जैसे तन्तु-तन्तु मे वस्त्र और वस्त्र मे तन्तु व्याप्त है, उसी
रूप मे हम गुरु मे व्याप्त हो रहे हैं ..
जैसे मिट्टी और घट का सम्बन्ध है, उसी प्रकार हमारा
और गुरुत्व का सम्बन्ध है ..
भाव करें ·
इन क्षणो हम गुरु मय ही हो गये हैं ..
अब अपने शरीर के प्रत्येक अंग को गुरु चरणो मे अर्पित
करके उन पर गुरुत्व का ध्यान करने का प्रयास कर रहे हैं ..
हम अपने सिर से लेकर पैर के अगुष्ठ तक समस्त अगो
के लिये यह भाव करेंगे कि ये सब अग गुरु के ही हैं ·
संकल्प करें ..
हम अपने हाथ से अपने सिर का स्पर्श कर रहे हैं और इन भावो
मे बह रहे हैं कि यह सिर मेरा नही, उन परम गुरु का ही है ..
फिर कपाल का स्पर्श कर भाव करें यह कपाल गुरु का ही है….
दोनो आंखो का स्पर्श कर हम भाव कर रहे हैं, ये नेत्र
उन्ही आराध्य गुरु भगवन्त की आंखें हैं ·
सभी दृश्यो के गुरुदेव ही द्रष्टा हैं …
इसी प्रकार दोनो कान, नाक, जिह्वा, दोनो गाल, गला और दोनो
स्कन्धों का स्पर्श कर भाव करें कि ये सब अग गुरुवर्य केही हैं….

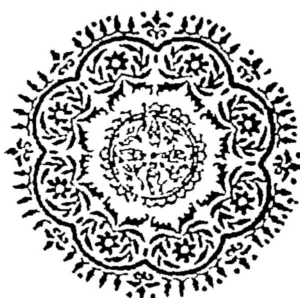
परमात्व तत्त्व से भी अधिक महिमा गुरु तत्त्व की गायी गई है—
क्योंकि गुरु चरणों की स्मृतिमात्र से समस्त भ्रान्तियां
निर्मूल हो जाती हैं....
जीवन एक व्यवस्थित दिशा की ओर गतिशील हो जाता है....
गुरु शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है....
'गु' शब्दस्तु अन्धकारः 'रु' शब्दस्तु निरोधकः ।
अन्धकार निरोधत्वात् 'गुरु' शब्द इत्युच्यते ।।
अर्थात् गुरु हमारे अनन्त-अनन्त काल के अज्ञान अन्धकार
को चीर देते हैं....
गुरु वह दीपक है, जो हमारे अन्तर-बाहर दोनों को
प्रकाशित कर देते हैं....
गुरु वह काम, कुम्भ है, जो सर्व कामनाओं को सन्तृप्ति
प्रदान करते हैं...
गुरु वह चिन्तामणि है, जो सर्व मनोरथो को परिपूरित करते हैं....
गुरु वह कल्पवृक्ष है, जो सर्वकल्पनाओ को साकार रूप
प्रदान करते हैं..
सर्व सौख्य प्रदायी गुरु की महिमा अपरम्पार है....
गुरु शिष्य के लिए सर्वात्म रूप होते हैं...
वह समय-समय पर एक मानव रूप में बाहर और एक
मार्गदर्शक के रूप मे शिष्य के भीतर व्याप्त होते हैं....
गुरु ज्ञान रूप से शिष्य की आत्मा मे निवास करते हैं ..
और इस रूप मे गुरु समस्त चराचर मे संव्याप्त रहते हैं ..
वे समस्त चराचर जगत् के कल्याण के लिये साधना-
मार्ग, मुक्ति-मार्ग का प्रवर्तन-प्रकाशन करते हैं..
उन्ही के द्वारा हमें अलौकिक ज्ञानदृष्टि प्राप्त होती है
वे परमोपकारी भवतारक-उद्धारक होते हैं...
अतः आज हम अनन्त-अनन्त उपकृति के केन्द्र गुरु चरणों
का ध्यान कर रहे है....
किन्तु यह ध्यान किसी बाहर स्थित गुरु का नहीं अपने
ही अन्तर में व्याप्त गुरु का....
अर्थात् हम अपने ही अंग-प्रत्यंग मे गुरुत्व की भावना से ध्यान करेंगे....
भाव करें...

हम अभी एकान्त शान्त वातावरण मे चित्त विकारो से
परे होकर उपशान्त भावो मे लीन बैठे हैं…
अभी हमारे बाहर के समस्त विकल्प क्षीण हो रहे हैं….
अभी हमारा ध्यान सर्व देव, सर्वतन्त्र, सर्वमन्त्र, सर्वसन्त-
मय गुरु चरणों पर ही टिका हुआ है ‥
हमारा तन अनन्त आराध्य गुरु चरणो के प्रति नमस्कार
की मुद्रा में स्थित है….
हम इस समय गुरु के सर्वमय-विश्वात्म रूप को देख रहे हैं, उन्हे
भावपूर्ण वन्दन कर रहे हैं, अनन्त-अनन्त प्रणाम कर रहे हैं….
अब हम अपने ही शरीर को गुरुत्व के रूप में आरोपित,
कल्पित या प्रतिष्ठापित कर रहे हैं….
भाव बनाए —जैसे तिल के अणु-अणु मे तेल व्याप्त है,
उसी प्रकार हमारे अणु-अणु में परम गुरुत्व संव्याप्त है…
जैसे तन्तु-तन्तु मे वस्त्र और वस्त्र में तन्तु व्याप्त है, उसी
रूप मे हम गुरु मे व्याप्त हो रहे हैं ·
जैसे मिट्टी और घट का सम्बन्ध है, उसी प्रकार हमारा
और गुरुत्व का सम्बन्ध है · ·
भाव करें ‥
इन क्षणो हम गुरु मय ही हो गये हैं ‥
अब अपने शरीर के प्रत्येक अग को गुरु चरणो मे अर्पित
करके उन पर गुरुत्व का ध्यान करने का प्रयास कर रहे हैं….
हम अपने सिर से लेकर पैर के अगुष्ठ तक समस्त अगो
के लिये यह भाव करेंगे कि ये सब अंग गुरु के ही हैं‥ ·
संकल्प करें ‥
हम अपने हाथ से अपने सिर का स्पर्श कर रहे हैं और इन भावों
मे बह रहे हैं कि यह सिर मेरा नही, उन परम गुरु का ही है….
फिर कपाल का स्पर्श कर भाव करें यह कपाल गुरु का ही है….
दोनो आखो का स्पर्श कर हम भाव कर रहे हैं, ये नेत्र
उन्ही आराध्य गुरु भगवन्त की आंखें हैं ·
सभी दृश्यो के गुरुदेव ही द्रष्टा हैं…
इसी प्रकार दोनो कान, नाक, जिह्वा, दोनो गाल, गला और दोनों
स्कन्धों का स्पर्श कर भाव करें कि ये सब अंग गुरुवर्य केही हैं…

हमारा सब कुछ तो उन्हें ही समर्पित है…
दोनो भुजाएं, दोनों हाथ, हथेलियां, अगुलियां, छाती (सीना)
पीठ, पेट, हृदय-कमल आदि-आदि अंगो का स्पर्श करते हुए
हम भावना करें कि ये सब अंग गुरु भगवन्त के ही हैं….
दोनो जंघाएं, घुटने, पिण्डलिया, दोनो पैर, पैर की अगुलियां,
अंगूठे सब गुरुचरणार्पित ही हैं…
अरे ! यह सम्पूर्ण जीवन और जीवन की समस्त गति-
विधियां गुरुवर को ही अर्पित हैं ·
यह जीवन ही नही, हमारा तन, मन और प्राण सभी
गुरु चरणो मे समर्पित है….
जीवन के समस्त क्रिया-कलाप गुरु-प्रेरणा से ही स्पन्दित संचरित हैं….
मन मे गुरु चरणो की ही अनुगूंज है….
हमारे अणु-अणु मे गुरु चरण ही व्याप्त है, अतः भाव
करे कि सब कुछ गुरु के हैं, गुरु के हैं, गुरु के हैं….
हमारे हृदय कमल पर परम गुरु विराजमान हैं··
वहां उन्ही का सर्व सत्तापूर्ण अधिकार स्थापित हो गया है….
गुरु ही हमारे परम आराध्य देव है…
गुरु ही हमारे श्रद्धेय, परम उपास्य प्रभु हैं ··
अरे ! ओर कौन गुरु हैं· ·हम स्वयं ही तो गुरुमय हो गये हैं….
भाव करें….
गुरु अग स्मरण की इस भाव प्रक्रिया को हम एक बार
पुन. दोहरा रहे हैं··
किन्तु इस बार हमारा अंग स्मरण का ध्यान व्युत्क्रम से होगा…
पहले हमने मस्तिष्क से प्रारम्भ किया था···
अब हम पैर की अंगुलियो से प्रारम्भ कर रहे हैं…
भाव करें…
हमारा शरीर गुरुत्व धारण कर रहा है….
अपने हाथ से पैर की अगुलियो का हम स्पर्ण कर रहे हैं,
किन्तु यह स्पर्श हमारी अगुलियो का नही वह गुरु की
अंगुलियों का स्पर्श है
इसी प्रकार गुरुत्व के ध्यान के साथ पाव, पिण्डलियां,
घुटने, जघाएं, पेट, पीठ, हृदय, गर्दन, दोनो हाथों की

अंगुलियां, दोनो हाथ, दोनों कंधे सबकुछ गुरु के हैं, गुरुमय
है, गुरुत्व भाव से संव्याप्त है....
मुंह, जिह्वा, होंठ, नाक, दोनो कान, दोनों आंखें और ललाट,
मस्तिष्क सबका स्पर्श हमें गुरुत्व से अनुप्राणित कर रहा है....
गुरुत्व के इस स्पर्श मे कितनी कमनीयता है ।
कितनी सौम्यता, कितनी आह्लादकता है ।
अहो ! कितना अहोभाव भरा स्पर्श है गुरुत्व का ?
भाव करें....
जैसे हमारा अस्तित्व ही मिट गया है....
केवल गुरुत्व का अस्तित्व ही शेष बच गया है....
और वह गुरुत्व भी आधा-अधूरा संकोच भरा नही, वह
परमात्म भाव से अनुप्राणित लोकान्तव्यापी स्पर्श है....
हमारी आत्मा विश्वात्म रूप में विस्तृत-व्याप्त होती जा रही है ..
हमारे चैतन्य के प्रत्येक प्रदेश में गुरु ही गुरु विद्यमान है....
हमारे नेत्रो की ज्योति, में हमारी श्रवण शक्ति मे और आस्वाद
इन्द्रिय में गुरु ही द्रष्टा, श्रोता और भोक्ता बन कर बैठे हुए हैं....
हमारा भोजन हम नही गुरु ही कर रहे हैं...
अरे ! सब कुछ गुरु के प्रति समर्पित हो गया है, तो फिर
हमारा बचा ही क्या है...
सर्वत्र, सब कुछ नानेशमय-नानेशार्पित ही हो गया है ..
अहा ! आज की इस सर्वात्म समर्पणा का आनन्द अनुपम है....
यह व्यक्ति रूप से अस्तित्व का मिटना और गुरुत्व की
समष्टि मे विलीन हो जाना अलौकिक है....
आज हम न जाने किस अमृत के आस्वाद में डूब गये हैं
कि उसे छोडने की इच्छा नहीं होती....
आज न जाने समर्पण के किस सागर मे तैर रहे है कि
बाहर निकलने को ही जी नही करता .
अरे ! आज हम न जाने किस दिव्य-लोक की यात्रा कर
रहे हैं कि पुनः लौटने का भाव ही नही होता है....
हमारी इस यात्रा मे हमारे रोम-रोम मे गुरु नानेश की
संव्याप्ति हो गई है....
आज हमने समर्पणा के वास्तविक आनन्द का अनुभव किया है....

आज हमने समर्पणा को आत्मसात् कर लिया है…
आज हमने समर्पणा के भाव को गहराई से समझा है…
अरे ! यह समर्पणा कहां हुई ? यह हमने अपने को ही
गुरुत्व रूप में बदल लिया है…
गुरुत्व की उस परम आर्हती-ज्योति को स्वयं में समा लिया है…
हमारा यह अद्भुत दर्शन, स्पर्श और समर्पण बहुत
गहरा होता जाय…
हम इस समर्पण के सागर मे खूब डूबते जाएं…
इसी अहोभाव के साथ ध्यान से बाहर आ जाएं…
एक अलौकिक, अनपेक्षित, सतृप्ति का अनुभव करते हुए
ध्यान से बाहर आ जाएं…
अपने आपको एकदम गुरुवत्-गुरुमय अनुभव करें…
चारो ओर अपने परिवेश को गुरुत्व की ओजस्विता से
भावित अनुभव करे…
प्रकृतिस्थ हो जाएं…



परिशिष्ट नं. १

ग्रन्थ में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द

समीक्षण—सम्यक् प्रकार से समता पूर्वक देखना समीक्षण कहलाता है अथवा ध्यान की एक नूतन विधा, जिसका आचार्य श्री नानेश ने प्रतिपादन किया।

आगम—आप्त पुरुष द्वारा कथित, गणधर द्वारा ग्रथित, मुनियो द्वारा अनुमोदित ग्रथ आगम कहलाता है।

निर्वद्य—पाप से रहित।

आरा—जैन काल गणना मे काल खण्ड सूचक एक शब्द।

वज्र ऋषभ नाराच संहनन—हड्डियों की मजबूती। वज्र का अर्थ है कोला, ऋषभ का अर्थ है वेष्टन पट्ट और नाराच का अर्थ है दोनों ओर से मर्कट बंध। जिस संहनन से दोनों ओर मर्कट बन्ध से हड्डियां जुडी हो उन पर पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारों ओर से वेष्टन हो और उनको दृढ करने वाला कीला भी हो हड्डियो की ऐसी मजबूत रचना को वज्रऋषभ नाराच संहनन कहते हैं।

संस्थान—शरीर की विविध आकृतियां, जिन्हे जैनागमो में स्थूल रूप मे छः भागो मे विभक्त किया है।

शुक्ल ध्यान—जैनागमों मे वर्णित ध्यान के चार भेदों में से एक भेद। आत्मा के सर्वोत्तम विचार भाव।

धर्म ध्यान—तत्त्वो और श्रुत चारित्र रूप धर्म के सम्बन्ध में सतत चिन्तन धर्म ध्यान कहलाता है।

आर्त ध्यान—ऋतु अर्थात् दुःख के निमित्त या दुःख मे होने वाला ध्यान आर्त ध्यान है। अथवा दुःखी प्राणी का ध्यान आर्त ध्यान है। अथवा मनोज्ञ वस्तु के वियोग और अमनोज्ञ वस्तु के संयोग के कारण होने वाला चित्त विक्षोभ आर्त ध्यान है।

रौद्र ध्यान—क्रूर और कठोर वृत्ति के व्यक्ति की हिंसा झूठ चोरी और विषय सरक्षण के लिये जो सतत चित्त प्रवृत्ति होती है वह रौद्र ध्यान है।

आश्रव—योग के निमित्त से शुभ या अशुभ कर्मों का आत्मा मे आगमन होता है अतएव योग को आश्रव कहते हैं। अथवा योग—मन, वचन और शरीर की प्रवृत्तियो से आत्मा के प्रति कर्मों के आगमन की प्रक्रिया।

उत्तराध्ययन सूत्र—भगवती सूत्र—जैनागमों के नाम।

सूक्ष्म—जीवों का वह समूह जिनका शरीर चर्म चक्षुओं से दिखाई न दे।

बादर—जीवो का वह समूह जिनका शरीर चर्म चक्षुओं से दिखाई दे।

त्रस—चलने फिरने वाले द्वीन्द्रियादि प्राणी।

स्थावर—ऐसे जीव जो एक स्पर्श इन्द्रियावाले हों और चल फिर नही सकते हो।

वीतराग—जो राग द्वेष से रहित हो गया वह वीतराग है।

रस परित्याग—खाद्य पदार्थों में से रसीले, पौष्टिक, स्वादिष्ट पदार्थों का त्याग करना रस परित्याग नामक तप है।

काया क्लेश—जो साधक श्रम युक्त तप से अपने शरीर, इन्द्रिय और मन को कसते हैं, अपनी सुकुमारता का त्याग करते हैं, आत्म निग्रह हेतु विभिन्न प्रकार के शारीरिक क्लेशों को आनन्द के साथ सहन करते हैं, वह उनका काया क्लेश तप है।

चतुर्विध संघ—भगवान् महावीर के साधको की एक श्रेणी जिसमें चार घटक होते हैं-साधु-साध्वी, श्रावक श्राविका।

प्रासुक—मुनि जीवन के भोजन ग्रहण विधि में प्रयुक्त एक शब्द जो जीव रहित पदार्थ का द्योतन करता है।

सम्यग् दृष्टि—जिसको दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम क्षय या क्षयोपशम होने पर जीवादि तत्त्वो की यथार्थ श्रद्धा उत्पन्न होती है उसे सम्यग् दृष्टि कहते हैं।

वेदना—सुख और दुःख का अनुभव होना वेदना कही गई है।

उपशम भाव—कर्मों के उपशम से जो आत्म शुद्धि होती है वह उपशम भाव है। जैसे जल मे फिटकरी डालने से मैल नीचे बैठ जाता है और जल स्वच्छ हो जाता है वैसे ही सत्तागत कर्म का उदय जब बिल्कुल रुक जाता है तब उपशम रूप शुद्धि होती है वह उपशम भाव है। आत्मा के अध्यवसायो की एक अवस्था विशेष।

क्षायिक भाव—कर्म के आत्यन्तिक क्षय से प्रकट होने वाला आत्मा का मौलिक भाव।

निर्जरा—कर्मों का एक देश से आत्मा से अलग होना निर्जरा कहलाता है।

आत्म-प्रदेश—आत्मा के सूक्ष्मतम अविच्छेद असख्य घटक।

स्कन्ध—अनन्त परमाणुओ के पिण्ड को स्कन्ध कहते हैं अथवा स्कन्ध एक वस्तु का नाम है। स्कन्ध बद्ध समुदाय रूप होते हैं और वे अपने कारण द्रव्य की अपेक्षा से कार्य द्रव्य रूप और कार्य द्रव्य की अपेक्षा से कारण द्रव्य रूप होते है। जैसे द्विप्रदेश आदि स्कन्ध परमाणु आदि के कार्य हैं और त्रिप्रदेश आदि के कारण हैं।

रूप मद—अपने सौन्दर्य का अभिमान करना रूपमद है।

सागरोपम—१० क्रोड़ा कोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है अथवा असख्यात वर्षीय एक काल खण्ड।

अपवर्तन—बद्ध कर्मों की स्थिति तथा अनुभाग मे अध्यवसाय विशेष से कमी कर देना अपवर्तन है।

संक्रमण—एक कर्म रूप में प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश का अन्य सजातीय कर्म रूप मे बदल जाना सक्रमण कहलाता है। बन्धी हुई कर्म प्रकृतियो के सजातीय प्रकृतियो के रूप में बदलने की एक प्रक्रिया।

मिथ्यात्व—जिस कर्म के उदय से जिन प्रणीत तत्त्व के प्रति अश्रद्धान या विपरीत श्रद्धान हो वह मिथ्यात्व है। अथवा 'मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जिन वचन मे अरुचि होना मिथ्यात्व है।

क्षयोपशम—कर्म सिद्धान्त की एक 'प्रकिया जिसमे उदय मे

आये हुए कर्म दलिक का क्षय और उदय में न आए को उपशान्त कर देना क्षयोपशम कहलाता है।

चारित्र मोहनीय—जिस कर्म के उदय से शुद्ध आचरण का घात होता है वह चारित्र मोहनीय है अर्थात् आत्मा की चारित्रिक शक्ति को दबाने वाला कर्म।

दर्शन मोहनीय (मिथ्यात्व मोहनीय)—जिस कर्म के उदय से आत्मा के शुद्ध स्वरूप को नही समझा जा सके वह दर्शन मोहनीय है अर्थात् आत्मा की दर्शन शक्ति को दबाने वाला कर्म।

बन्ध—कर्म पुद्गलो का आत्म-प्रदेशो के साथ एकमेक होना वन्ध कहलाता है।

भेद विज्ञान—देह और आत्मा की भिन्नता का अन्तर बोध।

अध्यवसाय - आत्मा के परिणाम अथवा विचार।

वीरासन—कुर्सी पर बैठे हुए पुरुष के नीचे से कुर्सी निकाल लेने पर जो अवस्था होती है वह वीरासन है।

अम्बकुब्जासन—सिर नीचे और पैर ऊपर रखना अम्बकुब्जासन है।

गोदुहासन—गाय को दुहते समय जो आसन होता है वह गोदुहासन है।

कषाय—आत्म गुणो को कषे नष्ट करे, अथवा जिसके द्वारा जन्म मरण रूप ससार की प्राप्ति हो अथवा जो सम्यक्त्व, देशचारित्र, सकल चारित्र और यथाख्यात चारित्र को न होने दे वह कषाय कहलाती है।

कषाय मोहनीय कर्म के उदयजन्य, ससार वृद्धि के कारण रूप मानसिक विकारो को कषाय कहते हैं।

समभाव की मर्यादा को तोड़ना, चारित्र मोहनीय के उदय से क्षमा, विनय, सतोष आदि आत्मिक गुणो का प्रकट न होना या अल्पमात्रा मे प्रकट होना कषाय है।

निगोद—जीवो का वह समूह विशेष जो अनादिकाल से वनस्पति की एक ही अवस्था मे रहता आ रहा है।

स्थितिघात—कर्मो की दीर्घ स्थिति को अपवर्तनाकरण द्वारा घटा देना स्थितिघात है अर्थात् कर्मो की पूर्व बद्ध स्थिति काल मर्यादा को कम कर देना ।

अपवर्तनाकरण—जिस वीर्य विशेष से पहले बन्धे हुए कर्म की स्थिति तथा रस घट जाते हैं उसे अपवर्तनाकरण कहते हैं। कर्म सिद्धान्त की प्रक्रिया विशेष ।

यथाप्रवृत्तिकरण—अनादिकाल से परिभ्रमण करता हुआ जीव पर्वतीय नदी के पत्थर की भाति दु.ख सहते-सहते स्नेहिल और चिकना बन जाता है । परिणाम शुद्धि के कारण जीव आयु कर्म के सिवाय शेष सात कर्मो की स्थिति पल्योपम के असख्यातवें भाग कम एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम जितनी कर देता है, इस परिणाम विशेष को यथा-प्रवृत्तिकरण कहते हैं अथवा आत्मा के अध्यवसाय-विचार विशेष को यथाप्रवृत्तिकरण कहते हैं ।

रसघात—बधे हुए ज्ञानावरण आदि कर्मों की फल देने की तीव्र शक्ति को अपवर्तनाकरण के द्वारा मन्द कर देना अर्थात् कर्मों की फलदायक शक्ति को घटाने की एक प्रक्रिया ।

गुण श्रेणी—कर्म सिद्धान्त का एक पारिभाषिक शब्द, अर्थात् जिन कर्म दलिको का स्थितिघात किया जाता है उनको समय के क्रम से अन्तर्मुहूर्त में स्थापित कर देना गुण श्रेणी है, अथवा ऊपर की स्थिति में उदय क्षण से लेकर प्रति समय असख्यात गुणे-असंख्यात गुणे कर्म दलिको की रचना को गुण श्रेणी कहते हैं ।

गुणसंक्रमण—कर्म बन्धन के समय होने वाली एक प्रक्रिया विशेष । पहले की बन्धी हुई अशुभ प्रकृतियो को वर्तमान में बधने वाली शुभ प्रकृतियो के रूप मे परिणत कर देना ।

अपूर्व स्थिति बन्ध—पहले की अपेक्षा अत्यन्त अल्प स्थिति के कर्मों को बाधना ।

अनिवृत्ति करण—आत्मा का वह परिणाम जिसके प्राप्त होने पर जीव अवश्यमेव सम्यक्त्व प्राप्त करता है, स्वरूप को समझ लेता है ।

अनंतानुबंधी कषाय—जो कषाय अत्यन्त तीव्र हो, जिसके कारण जीव को अनन्त काल तक संसार मे भ्रमण करना पड़े, वे

कषाय अनंतानुबंधी कहे जाते हैं । ये अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यकत्व के घातक और बाधक होते हैं ।

मति अज्ञान—मिथ्या दर्शन के उदय से होने वाला विपरीत मति उपयोग रूप ज्ञान मति अज्ञान कहलाता है अथवा पाच इन्द्रिया और मन से होने वाला मिथ्यादृष्टि का ज्ञान ।

श्रुत अज्ञान—मिथ्यात्व के उदय से सह चरित श्रुतज्ञान । पांच इन्द्रिया और मन से शब्दोल्लेख की शक्ति से युक्त मिथ्यादृष्टि का ज्ञान ।

ज्ञानावरणीय कर्म—जो आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करे वह ज्ञानावरणीय कर्म है ।

अरिहन्त—(१) जिन्होने चार घनघाती कर्मों को नष्ट कर दिया है, वे अरिहन्त हैं ।

(२) अर्ह धातु का अर्थ-योग्य होना है, जो वन्दन, नमस्कार के योग्य है अथवा जो मुक्ति-गमन की योग्यता रखती हैं वे महान् आत्माएं अरिहन्त कहलाती है ।

(३) जिस आत्मा के ज्ञान दर्पण में विश्व के समस्त चराचर पदार्थ प्रतिभासित होते है, जिससे विश्व का कोई रहस्य छिपा नही है, वह महान् आत्मा अरिहन्त पद पर प्रतिष्ठित होती है ।

आशातना—ज्ञानियों की निंदा करना, उनके बारे मे झूठी बाते कहना, मर्मच्छेदी बाते लोक मे फैलाना उन्हे मार्मिक पीडा हो, ऐसा कपट जाल फैलाना आशातना है ।

सम्यक्त्व—वीतराग एवं वीतराग प्ररूपित तत्वो पर आस्था होना एवं आत्म स्वरूप की प्रतीति होना सम्यक्त्व है ।

गोत्रकर्म—आठ मूल कर्म प्रकृतियो मे से एक कर्म प्रकृति । जिस प्रकार कुम्भकार छोटे बड़े या ऊचे नीचे बर्तन बनाता है इसी प्रकार यह कर्म जीव को छोटे बडे या ऊंचे नीचे रूप मे रहने को बाध्य करता है ।

पुण्य प्रकृति—जिस प्रकृति का विपाक-फल शुभ होता है ।

अनशन—अशन, पान, खादिम, स्वादिम चारो प्रकार के आहार का त्याग करना अनशन है अथवा जैनागमो मे वर्णित बारह तपों मे से एक तप ।

ऊनोदरी—आहार, उपधि और कषाय को न्यून करना अर्थात् आवश्यकता से कम उपयोग करना ऊनोदरी है।

दर्शनावरणीय कर्म—जो कर्म आत्मा के दर्शन स्वभाव को आच्छादित करे सामान्य ज्ञान को आवृत करे वह दर्शनावरणीय कर्म है।

देशविरति—आशिक रूप से अहिंसादिव्रतो का पालन करना देशविरति धर्म है।

सर्वविरति—सब प्रकार के सावद्य योगों से, पाप कार्यों से विरत होना सर्वंविरति धर्म है।

आयुष्य कर्म—यह कर्म आत्मा की स्वतन्त्रता को प्रतिबंधित करता है। जैसे कारागार मे पडा हुआ व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता को खोकर बन्धन में पडा रहता है इसी तरह यह कर्म आत्मा को अमुक काल के लिये एक भव में रोक कर रखता है।

अनन्तवीर्य सम्पन्नता—आत्मा की अनन्त शक्ति।

अव्यवहार राशि—जीवो का वह समूह जो अनादि अनन्त काल से निगोद की एक ही दशा मे पड़ा हुआ है। कभी भी स्थूल व्यवहार मे आने वाले जीव समूहो मे नही आया हो।

सामायिक साधना—जैन साधना पद्धति की एक प्रक्रिया जिसमें ४८ मिनट तक समस्त पाप वृत्तियो का परित्याग करके आत्म-रमणता मे लीन रहना होता है।

अकाम निर्जरा—सम्यग्दृष्टि भाव के अभाव में निर्जरा की भावनाओ के विना सहज रूप से या अज्ञान तपादि से होने वाला कर्मों का आशिक क्षय।

तेजस् शरीर—तेजस् पुद्गलो से बना हुआ सूक्ष्म शरीर तेजस् कहलाता है। आहार के पाचन का हेतु तथा तेजोलेश्या और शीतल-लेश्या के निर्गमन का हेतु जो शरीर है वह तेजस् शरीर कहलाता है।

कार्मण शरीर—कर्मों का बना हुआ सूक्ष्म शरीर कार्मण शरीर कहलाता है, अर्थात् जीव के प्रदेशो के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलो को कार्मण शरीर कहते हैं।

औदारिक शरीर—जिस शरीर को तीर्थंकर आदि महापुरुष धारण करते हैं, जिससे मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, जो औदारिक

वर्गणाओं से निष्पन्न मांस, हड्डी आदि अवयवों से बना होता है, जो स्थूल है, वह औदारिक शरीर कहलाता है अर्थात् गलन, सड़न स्वभाव वाला शरीर जो चर्म चक्षुओं द्वारा देखा जाता है वह औदारिक शरीर है।

गुणस्थान (१) ज्ञान आदि गुणों की शुद्धि और अशुद्धि के न्यूनाधिक भाव से होने वाले जीव के स्वरूप विशेष को गुण कहते हैं।

(२) ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि जीव के स्वभाव को गुण कहते हैं और उनके स्थान अर्थात गुणों की शुद्धि अशुद्धि के उत्कर्ष एव अपकर्ष जन्य स्वरूप विशेष का भेद गुणस्थान कहलाता है अथवा आत्मा के ह्रास-विकास की क्रमिक अवस्थाओ को गुणस्थान कहते हैं।

प्रत्येक वनस्पति—जिस वनस्पति में एक शरीर में एक ही जीव हो वह प्रत्येक वनस्पति है।

मिश्र गुणस्थान—मिथ्यात्व के अर्धशुद्ध पुद्‌गलो का उदय होने से जब जीव की दृष्टि कुछ सम्यक् (शुद्ध) और कुछ मिथ्या (अशुद्ध) अर्थात् मिश्र हो जाती है तब वह जीव मिश्र दृष्टि कहलाता है और उसके स्वरूप विशेष को मिश्र गुणस्थान कहते हैं—विचारों की श्रद्धा-अश्रद्धा में झूलती स्थिति।

अणुव्रत—हिंसादि से अल्प अंश में विरति अणुव्रत है।

पौषध—जो प्रकर्ष रूप से धर्म की पुष्टि या पोषण करता है। वह पौषध है। उपवास के साथ चौबीस घण्टे तक हिंसादि असत् प्रवृत्तियों का त्याग करके धार्मिक अनुष्ठान मे रत रहना।

श्रावक—जैन धर्म का उपासक जो गृहस्थ मे रहकर अल्प आराधना करता है। जो यथार्थ तत्त्व श्रद्धा को पुष्ट करता है वह "श्रा" है। विवेक पूर्ण व्रत धारण करना "व" है और सदनुष्ठान पूर्ण क्रिया करना "क" है। तीनो मिलकर श्रावक होता है।

निर्ग्रन्थ—जो वाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थि-परिग्रह से रहित होते हैं वे निर्ग्रन्थ है अथवा जैन श्रमण साधु के लिये प्रयुक्त होने वाला शब्द।

तीर्थंकर—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चार तीर्थों की स्थापना करने वाले को तीर्थंकर कहते है। जो वीतरागी, सर्वज्ञ, सर्व-द्रष्टा होते हैं, जिन-शासन के आद्य सूत्रधार या प्रवर्तक होते हैं।

समिति—अर्हन्त परमात्मा द्वारा प्रतिपादित प्रवचन के अनुसार शुभ प्रशस्त प्रवृत्ति को समिति कहते हैं ।

श्रमण—जो रागद्वेष का शमन करता है, साधना के प्रति श्रम करता है, श्रमण कहलाता है ।

गुप्ति—मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना गुप्ति है ।

अवधिज्ञान—जैनागमों मे वर्णित अतीन्द्रिय ज्ञान का एक प्रकार अवधि का अर्थ है सीमा मर्यादा । क्षेत्र और काल की विविध मर्यादाओं से बंधा हुआ इन्द्रियो और मन की सहायता लिये बिना आत्म सापेक्ष रूपी द्रव्यो को जानने वाला ज्ञान अवधि ज्ञान है ।

उपशम श्रेणी—पूर्वबद्ध कर्मों को अन्दर दबाते जाना, कर्मो को उदय हीन बनाने की एक प्रक्रिया, जिसमे मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृतियों का उपशम किया जाता है ।

क्षपक श्रेणी—जिस श्रेणी प्रक्रिया मे मोहनीय कर्म की प्रकृतियो का मूल से नाश किया जाता है ।

महाविदेह क्षेत्र—जैन भौगोलिक दृष्टि से एक क्षेत्र या देश विशेष जहां सभी कालो में तीर्थंकरो का विचरण होता है ।

संज्वलन लोभ—हल्दी के रंग की तरह जो सहज ही छूट जाये उस लोभ को सज्वलन लोभ कहते हैं ।

केवली समुद्घात—वेदनीय आदि तीन अघाति कर्मों की स्थिति आयुकर्म के बराबर करने के लिए केवली जिन द्वारा किया जाने वाला समुद्घात "केवली समुद्घात" है । कर्मों के क्षय की एक विशेष प्रक्रिया को समुद्घात कहते हैं ।

सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति—जब सर्वज्ञ भगवान् निर्वाण गमन के पूर्व योग-निरोध के क्रम मे सूक्ष्म शरीर योग का आश्रय लेकर शेष योगो को रोक देते हैं तब सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति ध्यान होता है ।

समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती—(व्युपरत क्रिया निवृत्ति) शैलेशी अवस्था को प्राप्त केवली जब सब योगो का निरोध कर लेते हैं और मानसिक, वाचिक या कायिक कोई क्रिया नही होती, आत्म-प्रदेश सर्वथा

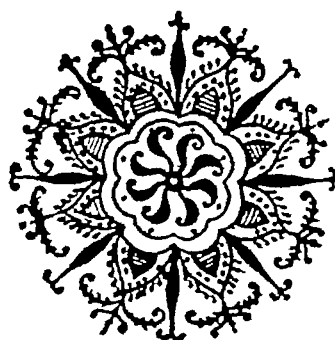
निष्प्रकम्प हो जाते हैं तब जो स्थिति होती है वह समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती ध्यान कहलाता है ।

शैलेशीकरण—वेदनीय, नाम और गोत्र इन तीन कर्मों की असंख्यात गुण श्रेणी से और आयुकर्म की यथास्थिति से निर्जरा करना।

घाति कर्म—आत्मा के अनुजीवी गुणो का आत्मा के वास्तविक (ज्ञानादि) स्वरूप का घात करने वाले कर्म को घाति कर्म कहते हैं ।

अघाति कर्म—जीव के प्रति जीवी गुणो के घात करने वाले कर्म । उनके कारण आत्मा को शरीर की कैद में रहना पड़ता है ।

आर्हंति ज्योति—आत्मा की परमोच्च अवस्था अनन्त ज्ञान ज्योति ।



शुद्धि-पत्र

पृ. स.	पक्ति सं.	अशुद्धि	शुद्धि
१	२१	व पनकृषि	वपनकृषि
२	१८	हेतू	हेतु
७	१०	के	से
१०	५	निषध	निषेध
१०	६	परिवेष	परिवेश
१०	२८	है	है।
२०	२	घटन	घुटन
२०	१८	छिन	छीन
२२	३	की	को
२५	२२	उद्याम	उद्दाम
२६	१	अन्तरामि मुखी	अन्तराभिमुखी
२८	१	अतकर्य	अतर्क्य
३०	३	सम्यक	सम्यक्
३१	२७	का	को
३१	१२	आाकार	आकर
३३	६	आत्त	आर्त्त
३४	४	योग्य	भोग्य
३५	१६	दोग्गइ	दोग्गइं
३५	२४	समग्री	सामग्री
३५	२६	है	हैं
३५	२७	योग	भोग
३६	२३	तथा	तक
४०	४	मप्रमत्तसंयतस्स	मप्रमत्तसंयतस्य
४०	७	विचारण	विचारणा
४२	१८	सीढिया	सीढ़िया
४२	२३	परियट्टणा	परियट्टणा,
४५	११	श्रीताऽनयेति	श्रोताऽनेयति

पृ. सं.	पक्ति सं	अशुद्धि	शुद्धि
४५	१३	यथेषु कार	यथेषुकारं
४५	१३	कमला, वती	कमलावती,
४८	२४	आत्त	आर्त्त
५१	३०	काम	काय
५३	२०	शुद्धस्स	सुद्धस्स
५४	६	अभियान	अभिमान
५४	८	धारणा	धारण
५४	२४	करना	करना अनन्त
५७	३	पदस्यादि	पदस्थादि
५८	१३	न्यूधिक	न्यूनाधिक
६०	३	निप्फराणो	निप्फणो
६०	५	अमिल	आ मिल
६०	३२	"णमोनाणास्य",	"णमोनाणस्स",
६०	३२	"णमोदसणास्य",	"णमोदसणस्स",
६२	२३	पृथ्वी	पृथ्वी की
६३	१७	सल्स	सूकम
६५	६	मनोवृत्तियोंएव	मनोवृत्तियो एव
७२	२२	मौत में	मौत
७४	४	शाश्वत्	शाश्वत
७४	४	दें	दे
७४	६	सर्व तो	सर्वतो
७४	२२	'अर्जने दु.ख'	'अर्जने दु.खं'
७५	९	है।	है ?
७५	१६	निश्चित्	निश्चित
७६	९	पहले	पहले चले
७६	१०	है	है
७७	७	है	–है
७७	८	है	हैं
७७	२६	अशाश्वत्	अशाश्वत
७९	२०	ज्ञातिज्ञन	ज्ञातिजन
७९	२०	है	हैं,

पृ. सं.	पंक्ति स.	अशुद्धि	शुद्धि
८०	१७	होते हुए	होते
८१	१०	ससाराम्मि"	ससारम्मि"
८१	११	अशाश्वत्	अशाश्वत
८३	१८	स्वर्ष	स्वयं
८७	२४	घटाने	घराने
९३	२४	(२०)	(१०)
९३	२६	कास	स्वरूप
९७	८	विघ	विविध
१०२	१७	कोई कोई	कोई
१०४	४	व्याभिचारी	व्यभिचारी
१०४	१६	नवग्रैवेषक	नवग्रैवेयक
१०४	२८	भक्ति	मुक्ति
१०५	१०	कर्म	कर्ममुक्त
१०८	१५	भाग	भाव
१०९	२८	मेरे	मेरी
१११	९	द्वेत	द्वैत
१११	१०	चेतन्य !	चैतन्य !
१११	३१	मुझे	मुझे नही
११५	२९	बनाना है	बनाना
११७	२५	अथया	अथवा
११९	९	विलापया	विलाप या
१२२	२१	प्राप्त ही होते	प्राप्त होते ही
१२८	२८	देता	देती
१३४	१७	प्रवृति	प्रवृत्ति
१३६	३०	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व के
१३८	२४	कायायोग	काया योग
१३८	२५	सूचकादि	सूचिकादि
१३८	२८	प्रकियाएं	प्रक्रियाए
१४६	२१	चलना-फिरना, के	चलना फिरना,

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्धि	शुद्धि
४५	१३	यथेषु कार	यथेषुकार
४५	१३	कमला, वती	कमलावती,
४८	२४	आत्त	आर्त्त
५१	३०	काम	काय
५३	२०	शुद्धस्स	सुद्धस्स
५४	६	अभियान	अभिमान
५४	८	धारणा	धारण
५४	२४	करना	करना अनन्त
५७	३	पदस्यादि	पदस्थादि
५८	१३	न्यूधिक	न्यूनाधिक
६०	३	निप्फराणो	निप्फणो
६०	५	अमिल	आ मिल
६०	३२	"णमोनाणास्य",	"णमोनाणस्स",
६०	३२	"णमोदसणास्य",	"णमोदसणस्स",
६२	२३	पृथ्वी	पृथ्वी की
६३	१७	सल्म	सूकम
६५	६	मनोवृत्तियोएवं	मनोवृत्तियो एव
७२	२२	मौत मे	मौत
७४	४	शाश्वत्	शाश्वत
७४	४	दें	दे
७४	६	सर्व तो	सर्वतो
७४	२२	'अर्जने दु.ख'	'अर्जने दु:खं'
७५	६	है ।	है ?
७५	१६	निश्चित्	निश्चित
७६	९	पहले	पहले चले
७६	१०	हैं	है
७७	७	है	—हैं
७७	८	है	हैं
७७	२६	अशाश्वत्	अशाश्वत
७९	२०	ज्ञातिज्ञन	ज्ञातिजन
७९	२०	हैं	है,

पृ. सं.	पंक्ति स.	अशुद्धि	शुद्धि
८०	१७	होते हुए	होते
८१	१०	संसाराम्मि"	ससारम्मि"
८१	११	अशाश्वत्	अशाश्वत
८३	१८	स्वर्ष	स्वयं
८७	२४	घटाने	घराने
९३	२४	(२०)	(१०)
९३	२६	कास	स्वरूप
९७	८	विध	विविध
१०२	१७	कोई कोई	कोई
१०४	४	व्याभिचारी	व्यभिचारी
१०४	१६	नवग्रैवेषक	नवग्रैवेयक
१०४	२८	भक्ति	मुक्ति
१०५	१०	कर्म	कर्ममुक्त
१०८	१५	भाग	भाव
१०९	२८	मेरे	मेरी
१११	९	द्वेत	द्वैत
१११	१०	चेतन्य !	चैतन्य !
१११	३१	मुझे	मुझे नही
११५	२९	बनाना है	बनाना
११७	२५	अथया	अथवा
११९	९	विलापया	विलाप या
१२२	२१	प्राप्त ही होते	प्राप्त होते ही
१२८	२८	देंता	देती
१३४	१७	प्रवृति	प्रवृत्ति
१३६	३०	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व के
१३८	२४	कायायोग	काया योग
१३८	२५	सूचकादि	सूचिकादि
१३८	२८	प्रक्रियाएं	प्रक्रियाए
१४६	२१	चलना-फिरना, के	चलना फिरना,

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्धि	शुद्धि
१५२	६	लोगों	लोगों को
१५८	६	हूं ।	हूं ?
१६२	२७	हैं	हैं ।
१६३	८	गई ही	गई है
१६६	२२	मा	या
१६८	६	योगिनामप्प्वगम्य:	योगिनामप्यगम्य:
१६८	१४	सेवा	सेप
१६८	२७	पश्चाताप	पश्चात्
१८१	१८	पहुंचना	पहुचना है
१८२	१६	आंखा	आंखो
१८५	१०	अघिसात	अघे सात
१८६	२६	बाधि	बोधि
१८७	६	आत्मन	आत्मन्,
१९१	१२	भटकाव	भटकाव के
१९१	१७	बार	बाद
१९२	१	सयम	संयम
१९२	४	१८	६८
१९६	२३	औब	और उस
१९८	२	कटक	कटुक
१९८	२	फकनें	फेंकनें
१९८	२४	विवेंद्य	निर्वेद्य
१९९	७	दिया दिया,	दिखा दिया,
२००	३	वम्भयेखासं ।	बम्भचेरवासं ।
२००	२१	"सोहो	"लोहो
२००	२६	भूपस्य,	भूयस्स,

द्वितीय खण्ड

२	६	मुक्ति तीव्र	मुक्ति की तीव्र
२	८	पौद्गालिक	पौद्गलिक

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्धि	शुद्धि
२	२०	लिक	लिए
३	१४	प्रकार	प्रकार का
६	२७	शब्दो के	शब्दो का उच्चारण करता जाता है और अन्य सभी साधक उन शब्दो
१०	१५	बिन्दुओ से समझा	बिन्दुओं से उनको स्पस्ट रूप से
१३	२	आलावधि	कालावधि
१०	२६	बन पाएगी।	पाएगी।
१४	८	है	हैं
१४	१०	अथवा अथवा	अथवा
१४	११	भा-विचार-चिन्तन	भाव-विचार-चिन्तन
१४	१५	आन्तर्ध्यान	आर्त्तध्यान
१५	२०	किलष्टेषु	क्लिष्टेषु
१६	६	सभी	ये सभी
१६	२२	व्यक्ति होते	व्यक्ति ऐसे होते
६८	२२	हो	ही
२२	४	जाती है। यह साधना दोहराद जाती है। यह साधना व्यवस्थित	जाती है। यह साधना व्यवस्थित
२२	२०	लगना	लगता
२२	२७	आभ्यन्तर	आभ्यन्तर
२४	६	ले	लें
२४	१४	(तर्जुनो)	(तर्जनी)
२४	१८	रहै	रहे
२६	१६	अंगूठ	अंगूठे
३५	२	को	की
३५	२४	आनन्द डूब	आनन्द मे डूब
३७	११	तन	मन

पृ. सं.	पंक्ति स.	अशुद्धि	शुद्धि
४३	१६	की	का
४३	२२	करेगे	करेंगे
५२	५	हमे	हम
५३	फो. लाइन	अहकार .	बड़प्पन का भाव :
५४	२६	समव	समय
५५	१६	मूलभृत	मूलभूत
५५	२४	प्रताड़ित	प्रतारित
५७	२१	दीव्रतम	तीव्रतम
५८	२१	निकालने	निकलने
६५	२२	हमेँ	हमे
६६	३०	अन्तर के	अन्तर में
६६	१६	भृमिका	भूमिका
७१	६	भाषा 'स्लोपायोजन'	भाषा में 'स्लोपायोजन'
७५	१३	अनुभब कर रहे है	अनुभव कर रहे हैं
७५	३२	परमाण	परमाणु
७६	३०	दम	मन
८०	१०	निमलता	निर्मलता
८६	१	पदाथो	पदार्थों
६१	५	कर	बन
६२	६	अनाशक्त	अनासक्त
६७	१६	जैसी	कैसी
६७	२६	अनिर्वनीय	अनिर्वचनीय
६६	१५	आयरण	आवरण
१००	४	मौंत	मौत
१००	२४	घटनाचकों	घटनाचक्रो
१०७	२०	वीर्य–ओजस्व	वीर्य-ओजस
१०८	४	शक्ति-आत्मभक्ति	शक्ति-आत्मशक्ति
१०८	३१	ढंड	ढूंढ
६	१६	मूलधार	मूलाधार

पृ. सं.	पंक्ति सं.	अशुद्धि	शुद्धि
११०	१५	आ	का
१११	२०	देखे	देखें
११३	२८	रूपातम्तरण	रूपान्तरण
१२१	१५	कभी	अभी
१२२	१	कमों	कर्मों
१२२	७	की	को
१२२	२१	प्रकाष	प्रकाश
१२३	१९	आकर्षक	आकर्षण
१२३	२६	कर्म-परमाण	कर्म-परमाणु
१२८	२	चारो	चारों
२२८	९	(सामान्या व बोध)	(सामान्यावबोध)
१३०	२३	ज्ञानादरणीय	ज्ञानावरणीय
१३१	१	आलम्य	अलभ्य
१३३	२४	मन्निज्य	मम्निज्ज
१३६	२९	कहां	कहा
१६४	४	की	को
१७४	२०	उर्जस्विव	ऊर्जस्विल
१८१	१६	आनन्द भरे	आनन्द से भरे
१९७	२	समुद्घात केवली	समुद्घात-केवली
१९७	३१	व्यपरन	व्युपरत
२०३	१८	सव	सब

